Bundelkhand Ki Loknatya Parampara Aur Alakhnandan

A Thesis Submitted to the University of Hyderabad

in Partial Fulfillment of the Requirements for the Award of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

IN

HINDI

By

CHANDRA PAL

Registration No. 19HHPH12

Supervisor

Prof. V. Krishna

हैदराबाद विश्वविद्यालय
University of Hyderabad

प्रतिष्ठित संस्थान
INSTITUTION OF EMINENCE
राष्ट्रीय अपेक्षाएँ, वैश्विक मानक
National Needs, Global Standards

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF HUMANITIES

UNIVERSITY OF HYDERABAD

HYDERABAD- 500046 (INDIA)

August 2024

बुन्देलखण्ड की लोकनाट्य परंपरा और अलखनन्दन

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की पीएच.डी उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

हैदराबाद विश्वविद्यालय
University of Hyderabad

प्रतिष्ठित संस्थान
INSTITUTION OF EMINENCE
राष्ट्रीय अपेक्षाएँ, वैश्विक मानक
National Needs, Global Standards

वर्ष 2024

शोधार्थी

चन्द्र पाल

19HHPH12

शोध-निर्देशक

प्रो. वी. कृष्ण

हिन्दी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

विभागाध्यक्षा

प्रो. सी अन्नपूर्णा

हिन्दी विभाग

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

DECLARATION

I, **CHANDRA PAL** hereby declare that the thesis entitled **"BUNDELKHAND KI LOKNATYA PARAMPARA AUR ALAKHNANDAN"** (बुन्देलखण्ड की लोकनाट्य परंपरा और अलखनन्दन) submitted by me under the guidance and supervision of **PROF. V. KRISHNA** is a bonafide research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date: 06/08/2024

Signature of the student

CHANDRA PAL

Regd. No. **19HHPH12**

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"BUNDELKHAND KI LOKNATYA"** by **CHANDRA PAL** bearing Reg. No. **19HHPH12** in partial fulfilment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy in the Department of Hindi, is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been:

A. Published research paper in the following publication:

1. "Bundeli Lok Sanskriti Aur Alakhnandan Ke Bundeli Lokshailibaddh Natak" has been published in the Kalavasudha Tramasik Patrika, July-December, 2022, ISSN-2348-3660, Editor by Dr Usha Banarji, published from Lucknow, Uttar Pradesh.
2. "Samajik-Saanskritik Vastvikta Ka Bundeli Lokshailibaddh Natak Hai-Raja Ka Swang" has been published in the Bhairavi Patrika, Special Volume, April, 2023, ISSN 0975-5217, Editor by Prof Pushpam Narain, published from Lalit Narayana University, Darbhanga, Bihar.

B. Research paper presented in the following conference:

1. "Natak Jagar Magar Andher Nagar Mein Abhivyakt Samajik Tanabana" presented at Hyderabad Central University, Hyderabad, Telangana, National Seminar, Dated on 16,17 march, 2023.
2. "Samajik-Saanskritik Vastvikta Ka Bundeli Lokshailibaddh Natak Hai-Raja Ka Swang" presented at Dr Baba Saheb Ambedkar Marathwada University,Aurangabad, Maharashtra, International Conference, Dated on 20-21 January 2023.

Further the student has passed the following courses towards the fulfillment of coursework requirement for PhD during August 2019 to June 2020.

Course CODE	Name	Credits	Pass/Fail
1.HH801	Critical Approach to Research	4	Pass
2.HH802	Research Paper	4	Pass
3.HH805	Research Methodology	4	Pass
4.HH826	Ideology of Hindi Literature	4	Pass
5.HH827	Practical Review	4	Pass

Supervisor
Dept of Hindi
प्रोफ़ेसर / Professor
हिन्दी विभाग / Department of Hindi
हैदराबाद विश्वविद्यालय / University of Hyderabad
हैदराबाद / Hyderabad-500 046.

Head of Department
Department of Hindi
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
Head, Department of Hindi
हैदराबाद विश्वविद्यालय
University of Hyderabad
हैदराबाद, Hyderabad-500 046.

Dean
School of humanities
13/08/24
DEAN
SCHOOL OF HUMANITIES
UNIVERSITY OF HYDERABAD
HYDERABAD-500 046, T.S. INDIA

Sl No. 18096

Notification No. 2

हैदराबाद विश्वविद्यालय

UNIVERSITY OF HYDERABAD

(A Central University Established by an Act of Parliament)

P.O. CENTRAL UNIVERSITY, GACHIBOWLI, HYDERABAD - 500 046 (INDIA)

REGULAR EXAMINATION

SEMESTER GRADE TRANSCRIPT

REG. NO. **19HHPH12**

NAME OF THE STUDENT **CHANDRA PAL**

MONTH AND YEAR OF **NOV 2019** **SEMESTER 1**

COURSE **Ph.D. HINDI**

PARENT'S NAME **BAL RAM / MALTI**

COURSE NO	TITLE OF THE COURSE	CREDITS	RESULTS
HH801	CRITICAL APPROACH TO RESEARCH	4	PASS
HH802	RESEARCH PAPER	4	PASS
HH805	RESEARCH METHODOLOGY	4	PASS

SEMESTER GRADE POINT AVERAGE (SGPA) :**7.67**

(In words) :SEVEN POINT SIX SEVEN

DEPUTY REGISTRAR
(ACAD & EXAMS)

Date Of Result Notification : **Jan 21, 2020**

Date Of Download : **Jul 13, 2024**

This is system generated certificate issued by O/o The Controller of Examinations, University of Hyderabad

Sl No. 92601

Notification No. 5

हैदराबाद विश्वविद्यालय

UNIVERSITY OF HYDERABAD

(A Central University Established by an Act of Parliament)

P.O. CENTRAL UNIVERSITY, GACHIBOWLI, HYDERABAD - 500 046 (INDIA)

REGULAR EXAMINATION

SEMESTER GRADE TRANSCRIPT

REG. NO. **19HHPH12**

NAME OF THE STUDENT **CHANDRA PAL**

MONTH AND YEAR OF **DEC 2020** **SEMESTER 2**

COURSE **Ph.D. HINDI**

PARENT'S NAME **BAL RAM / MALTI**

COURSE NO	TITLE OF THE COURSE	CREDITS	RESULTS
HH826	IDEOLOGY OF HINDI LITERATURE	4	PASS
HH827	PRACTICAL REVIEW	4	PASS

SEMESTER GRADE POINT AVERAGE (SGPA) :**10.0**

(In words) :TEN POINT ZERO

DEPUTY REGISTRAR
(ACAD & EXAMS)

Date Of Result Notification : **Apr 5, 2024**

Date Of Download : **Jul 13, 2024**

This is system generated certificate issued by O/o The Controller of Examinations, University of Hyderabad

अनुक्रमणिका

बुन्देलखण्ड की लोकनाट्य परंपरा और अलखनन्दन

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	I-VI
प्रथम अध्याय : बुंदेलखंड और लोकनाट्य परंपरा	**1-50**
1.1. बुंदेलखंड	3-14
1.2. भारतीय लोकनाट्य की परंपरा	14-33
1.3. बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा	33-36
1.3.1. राई	36-38
1.3.2. रहस	38-40
1.3.3. रामलीला	40-44
1.3.4. नौटंकी	44-46
1.3.5. भंड़ैती	46-47
1.3.6. स्वांग	47-49
1.3.7. कांड़रा	49-50
द्वितीय अध्याय : अलखनन्दन का रंग-व्यक्तित्व एवं कृतित्व	**51-99**
2.1. जन्म	52-52
2.2. शिक्षा	53-55
2.3. कवि	55-60

2.4. व्यवसाय 60-61

2.5. मित्र मंडली 61-61

2.6. प्रदर्शित नाटक 61-62

2.7. व्यक्तित्व वैशिष्ट्य 62-93

2.8. कृतित्व 93-94

2.9. सम्मान 95-95

2.10. अन्य 95-99

तृतीय अध्याय : अलखनन्दन का रंगकर्म : समाज, धर्म और राजनीति 100-145

3.1. अलखनन्दन के रंगकर्म में धर्म-चिंतन 101-107

3.2. अलखनन्दन और जाति के प्रश्न 108-127

3.3. सामाजिक विमर्श और अलखनन्दन की दृष्टियां 127-135

3.4. अलखनन्दन का राजनीतिक बोध 135-145

चतुर्थ अध्याय : अलखनन्दन के नाटकों का मूल्यांकन 146-225

4.1. नाट्य कृतियों का मूल्यांकन

4.1.1. राजा का स्वांग 147-155

4.1.2. स्वांग शकुंतला 155-163

4.1.3. उजबक राजा तीन डकैत 163-166

4.1.4. जगर मगर अंधेर नगर 167-169

4.1.5. सलोनी गौरैया 169-176

4.1.6. भेड़िया तंत्र 176-182

4.1.7. जादू का सूट 182-184

4.1.8. चंदा बेड़नी 184-190

4.2. मंचित नाटकों का मूल्यांकन

4.2.1. सुपनवा का सपना 190-196

4.2.2. अंडोरा 196-199

4.2.3. भगवदज्जुकम् 199-202

4.2.4. स्वांग मल्टीनेशनल 202-204

4.2.5. स्वांग शकुंतला 204-206

4.2.6. तांबे के कीड़े 207-208

4.2.7. चारपाई 208-210

4.2.8. चंदा बेड़नी 210-213

4.2.9. दौरा लाट साहब का (सत्याग्रह मोटेराम का) 213-216

4.2.10. जगर मगर अंधेर नगर 216-219

4.2.11. महानिर्वाण 219-222

4.2.12. राजा का स्वांग 222-225

पंचम अध्याय : हिंदी नाटक और लोकनाट्य परंपरा में अलखनन्दन का योगदान 226 -269

5.1. लेखकीय योगदान 228-235

5.2. प्रस्तुतीकरण का वैशिष्ट्य 235-246

5.3. सांस्थानिक एवं सामाजिक संबद्धता 246-259

5.4. रंगमंच का विस्तार एवं जनोन्मुखी प्रयास 259-262

5.5. रंगमंच में वैचारिक एवं शैलीगत नवाचार 262-269

उपसंहार **270-282**

संदर्भ ग्रंथ सूची **283-290**

1. आधार ग्रंथ
2. सहायक ग्रंथ
3. पत्र-पत्रिकाएं
4. कोश
5. वेब-सामग्री
6. पुस्तकालय
7. साक्षात्कार

परिशिष्ट **291-322**

1. ज्ञानरंजन, महेश आनंद, देवेन्द्र राज अंकुर, शशांक, राजेश जोशी, रामेश्वर प्रेम के साक्षात्कार
2. प्रकाशित शोध-आलेख -1
3. प्रकाशित शोध-आलेख -2
4. राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाण-पत्र -1
5. राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाण-पत्र -2
6. अलखनन्दन निर्देशित रंग प्रस्तुतियों के कुछ छायाचित्र

भूमिका

बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा पर काम करना हमारा उद्देश्य नहीं है; वरन बुंदेलखंड के लोक तत्वों का अलखनन्दन जी ने किस तरह से वहां की लोकनाट्य परंपरा , लोकगीतों , चाल-चलन , हाव-भावों , लोकजीवन का रहन-सहन,समाज, धर्म ,राजनीति का कौन सा रूप अपने नाटकों में सर्वाधिक उपयुक्त पाया? क्या-क्या उन्होंने बुंदेलखंड से लिया? और क्या उन्होंने बुन्देली के पारंपरिक नाट्य में परिमार्जन किया? कहां से उन्होंने यह सब उठाया और उसको कितने ऊंचे-स्तर तक ले गए? यही जानने की मेरी जिज्ञासा रही है। अलखनन्दन पर कोई गंभीर काम नहीं हो पाया। उनकी मृत्यु के आज लगभग एक दशक से भी ज्यादा का समय बीत चुका है। बुंदेलखंड की झांकी करवाना तो सिर्फ मेरा एक उद्देश्य है। इसके अलावा यह जो शोध कार्य हुआ ;इसके केंद्र में अलखनन्दन का रंग व्यक्तित्व , रंग शैलियां, जीवन दर्शन , जीवन संघर्ष, सामाजिक- राजनीतिक -धार्मिक चिंतन और उनके नाटकों और उनके लेखन में जो चीजें विकसित हुईं , हैं । वह चीजें किस तरह से बनी? बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपराऔर हिन्दी रंगमंच में अलखनन्दन का क्या योगदान है ? बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा का क्या महत्व है? इस पर एक पुनर्विचार करने की कोशिश की गई है। इन सब चीजों की जांच पड़ताल के लिए यह शोध कार्य करने का प्रमुख उद्देश्य रहा है। बुंदेलखंड पर काम करने वाले अनेक विद्वान और विश्वविद्यालय रहे हैं, हैं भी , जिनमें आप डॉ हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी ,विकलांग विश्वविद्यालय चित्रकूट, अवधेश प्रताप सिंह रीवा विश्वविद्यालय,महाराज छत्रसाल विश्वविद्यालय छतरपुर इत्यादि ने भी इन सारे विषयों को अपने शोध लेखन का विषय बनाया है ,बुंदेलखंड को साहित्य , शोध कार्य में इन विश्वविद्यालयों में प्रमुखता से जगह मिली है। इसके साथ-साथ स्वतंत्र रूप से बुंदेलखंड के लेखकों ,साहित्यकारों, कवियों ने भी लोक साहित्य को संरक्षण दिया और बुंदेलखंड के लोक जीवन पर जो उनकी दृष्टि पड़ी उसको ध्यान में रखकर उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति प्रदान की। वह भी हमारे लिए किसी धरोहर से कम नहीं है। बुंदेलखंड पर काम करने वाले प्रमुख लेखकों में कैलाश मड़वैया ,बहादुर सिंह परमार, नर्मदा प्रसाद गुप्त ,कपिल तिवारी, बलभद्र तिवारी ,राकेश सोनी, काशी प्रसाद त्रिपाठी, राधावल्लभ त्रिपाठी ,श्यामसुंदर दुबे इत्यादि ने जमकर बुंदेलखंड पर लिखा है। इनके लेखन से मैं भी समृद्ध होता गया हूं। इस लेखन का मैं ऋणी हूँ। इसका इस्तेमाल भी मैंने जरूरत पड़ने पर किया है। बुंदेलखंड की असीम साहित्यिक परंपरा इनके लेखन में भरपूर मात्रा में मिलती है। अलखनन्दन और बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा को साथ जोड़ने के

खास कारण हैं, जिनमें प्रमुख कारण तो यही है कि अलखनन्दन जी बुंदेलखंड के न होते हुए भी बुंदेलखंड की माटी से सांस्कृतिक खाद-पानी लेने वाले व्यक्ति थे। शुरुआती बचपन में ही वह बुंदेलखंड की संस्कृति परंपरा में रच-बस गए थे। वह जीवन भर बुंदेलखंड को मथते रहे। उसको स्नेह करते रहे। उनका परिवार तो मूलतः भोजपुरी भाषी था लेकिन, अलखनन्दन की शिक्षा-दीक्षा,बचपन बुंदेलखंड में ही गुजरा, जिस कारण से अलखनन्दन बुंदेलखंड के खानपान, रीति-रिवाजों, गीत -संगीत, नाट्य परंपरा, गायन से बहुत समृद्ध हुए और उनकी अध्ययन प्रवृत्ति ने और भी बुंदेलखंड को जानने में सहायता पहुंचाई और अलखनन्दन ने भी अपनी बौद्धिक प्रतिभा, प्राणशक्ति इसमें लगा दी। ऐसे में अलखनन्दन का काम और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। जब उन्होंने बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का परचम राष्ट्रीय स्तर पर लहराया। बुंदेली लोकनाट्य स्वांग से सुसज्जित उनके नाटक न सिर्फ भोपाल में प्रदर्शित हुए बल्कि वह बुंदेलखंड के अनेक छोटे-बड़े जिलों में भी हुए और राष्ट्रीय स्तर पर दिल्ली, मुंबई ,नागपुर, कोलकाता और दक्षिण भारत के शहरों में भी उन्होंने प्रदर्शन किए।

चूंकि मेरी उच्च शिक्षा काशी हिंदू विश्वविद्यालय से हुई है अर्थात मैंने वहां से स्नातक, स्नातकोत्तर किया है तो, मैं प्राध्यापकों से इस विषय पर सुझाव, उनकी सलाह लेता रहा, और गंभीर विचार-चिंतन करता रहा। मुझे काशी हिंदू विश्वविद्यालय के मेरे शिक्षक प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी जी ने कुछ नवीन शोध विषय सुझाए। इन नवीन शोध विषयों को लेकर मैंने तुरंत अपने शोध निर्देशक प्रोफेसर वी0 कृष्ण जी से संपर्क किया और उन्होंने 'बुंदेलखंड की लोक नाट्य परंपरा और अलखनन्दन' विषय पर अपनी सहमति जताई और यह कहा कि इसमें कुछ मौलिक किया जा सकता है। अतः इस प्रकार विषय का चुनाव हुआ और मैंने इस दिशा में कार्य करना प्रारंभ किया।

चूंकि बुंदेलखंड मेरी जन्म भूमि है इसलिए, वहां से मैं दिल-दिमाग से, आत्मा से जुड़ा हुआ हूं। उसी का खाद-पानी लेकर मैं बड़ा हुआ हूं। उसी मिट्टी का कर्ज मेरे ऊपर है। एक तरह से आप कह सकते हैं कि प्रत्यक्ष रूप से मैं बुंदेलखंड से परिचित हूं। शोध कार्य के लिए सिर्फ परिचित होने से काम नहीं चलता है। उसके लिए आपको साहित्यिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक अध्ययन की किसी भी क्षेत्र में विशेष पड़ताल की आवश्यकता होती है। तभी आप अच्छे से विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन कर सकते हैं और किसी विषय के साथ न्याय कर सकते हैं और सही निष्कर्षों तक पहुंचा जा सकता है। इसके लिए जांच पड़ताल शुरू हुई। अध्ययन सामग्री की तलाश हुई। इस क्रम में मैंने बहुत सारा भ्रमण कार्य किया और कुछ पत्रिकाओं और बुंदेलखंड से जुड़ी हुई कुछ पुस्तकों को ऑनलाइन खरीदा भी तथा डॉक्टर हरिसिंह गौर सागर विश्वविद्यालय से **'ईसुरी'**, **'नाट्यम'** पत्रिकाएं और भोपाल से **'चौमासा'** पत्रिका के कुछ अंक लिये । अलखनन्दन जी से मैं

पूर्णतया अपरिचित था तो फिर मैंने इंटरनेट से सहायता ली और उनके विषय में पढ़ना शुरू किया। मेधा बुक्स प्रकाशन से सर्वप्रथम उनकी तीन पुस्तकें **चंदा बेड़नी**, **उजबक राजा तीन डकैत**, **घर नहीं पहुंच पाता** ऑनलाइन माध्यम से खरीदी। इनका बार-बार अध्ययन किया। इस क्रम में यह पता चला कि उनका एक नाटक **'स्वांग शकुंतला'** नाम से **नटरंग के 73** में अंक में प्रकाशित हुआ था। तलाश जारी थी तो, 'नटरंग प्रतिष्ठान' गाजियाबाद से संपर्क किया गया और वहां से 'स्वांग शकुंतला' को प्राप्त किया गया। यह अध्ययन सामग्री इस विशाल शोध कार्य के लिए नाकाफी थी तो, शोध सामग्री की तलाश जारी रही और आगे बढ़ते हुए प्रोफ़ेसर **आशीष त्रिपाठी जी** से दोबारा मुलाकात काशी हिंदू विश्वविद्यालय में की। उनके पास अलख जी के नाटकों की कुछ पांडुलिपियों रखी हुई थीं। उनकी प्रतिलिपियां कराई गईं जिनमें **राजा का स्वांग, भेड़िया तंत्र, जगर मगर अंधेर नगर, सलोनी गौरैया, भेड़िया तंत्र इत्यादि रचनाएं प्रमुख थीं।**

एक बात और यहां विशेष रूप से उल्लेख करना चाहता हूं कि **मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय** में कार्यरत **आनंद मिश्रा** जी का एक यूट्यूब चैनल है; जिसके माध्यम से मुझे लगभग बारह नाटकों का अलखनन्दन के निर्देशन में प्रस्तुति देखने का अवसर मिला, जिनका मूल्यांकन भी मैंने अपने हिसाब से एक अध्याय में किया है। यह नाटक इस प्रकार हैं- सूपना का सपना, अंडोरा, भगवत अज्जूकम्, स्वांग मल्टीनेशनल, स्वांग शकुंतला, तांबे के कीड़े, चारपाई, चंदा बेड़नी, दौरा लाट साहब का (सत्याग्रह मोटे राम का), जगर मगर अंधेर नगर, महानिर्वाण, राजा का स्वांग।

इसके बाद मुझे इस विषय पर अध्ययन के लिए क्षेत्र भ्रमण करने का भी अवसर मिला। मैं कई बार राष्ट्रीय **नाट्य विद्यालय, संगीत नाटक अकादमी, नटरंग प्रतिष्ठान**, **भारत भवन भोपाल, जबलपुर, रीवा** इत्यादि जगहों पर गया हूं। 'संगीत नाटक अकादमी' नई दिल्ली में मुझे अलखनन्दन के द्वारा निर्देशित दो नाटक **चंदा बेड़नी और चारपाई** देखने को मिले तथा उनके नाटकों के कुछ छायाचित्र भी प्राप्त हुए। 'छाया नट' और 'नटरंग' के कुछ लेख मुझे 'संगीत नाटक अकादमी' के पुस्तकालय से प्राप्त हुए। इसके बाद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से **रंग प्रसंग** में प्रकाशित कुछ कविताएं अलखनन्दन जी की मुझे प्राप्त हुई। **भारत भवन भोपाल** से अलखनन्दन द्वारा प्रदर्शित नाटकों की एक सूची प्राप्त हुई। **ईसुरी** पत्रिका और **चौमासा** के अंक भी पढ़ने को मिले। अलखनन्दन के नाटकों के प्रदर्शन के **जयंत देशमुख** जी ने और **महेश आनंद** जी ने कुछ छायाचित्र भी उपलब्ध करवाए हैं। हम उनके विशेष आभारी रहेंगे।

मैंने शोधकार्य के दौरान पचास से अधिक व्यक्तियों, अलखनन्दन के कलाकारों, शिष्यों, उनके समकालीन लोगों से घर-घर जाकर और टेलिफोनिक बातचीत करके कुछ साक्षात्कार भी लिए हैं। इन सभी के नाम इस प्रकार हैं—आलोक चटर्जी, सीताराम सोनी, गिरजा शंकर, आनंद मिश्रा उर्फ गंगा मिश्रा, अजय सिंहा छोटू, संतोष पांडे, आनंद सिंहा, योगेंद्र चौबे, राकेश विदुआ, स्वर्णा नामदेव, विजय सिंह, राजकुमार कामले, संजय गर्ग, सरोज शर्मा, प्रेम प्रकाश अस्थाना, सविता दाहिया, आनंद मिश्रा, तपन बनर्जी, मुकेश शर्मा, हिमांशु राय, बसंत निरगुणे, सेवाराम त्रिपाठी, सत्यव्रत राऊत, राजीव गोहिल, रंजना तिवारी, सुरेंद्र वानखेड़े, प्रेम शंकर शुक्ल, राजेश जोशी, राजेश गोस्वामी, डॉक्टर धीरेंद्र सोनी, प्रेम गुप्ता, शरद सबल, अनन्या नामदेव, द्वारिका दाहिया, महेश आनंद, विनय उपाध्याय, विशाल आचार्य, मनोज मिश्रा, आमोद कृष्ण भट्ट, हेमंत देवलेकर, जयंत देशमुख, देवेंद्र राज 'अंकुर', संजय मेहता, राकेश दीक्षित, शशांक, प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी, श्याम सुंदर दुबे, ज्ञान रंजन जी, देवी लाल पाटीदार, सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ, पूषण भट्टाचार्य, रामेश्वर प्रेम जी। अशोक वाजपेई और त्रिपुरारी शर्मा से साक्षात्कार संभव नहीं हो पाया। इन सभी से मैंने जो सवाल पूछे वह कुछ इस प्रकार थे–

1. अलख जी का व्यक्तित्व और आपके बीच का नाट्य संबंध?

2.अलखनंदन जी का बाल नाटककार का रूप?

3.अलख जी का कवि रूप?

4.अलखनंदन जी, समकालीन नाटककारों और रंग निर्देशकों से किस प्रकार भिन्न हैं?

5.ब.व. कारंत, हबीब तनवीर और अलखनंदन जी का संबंध?

6.अलखनंदन जी के कुछ नवीन नाट्य-प्रयोग?

7.अलख जी का नाट्यशिल्प, नाट्यविधान?

8.अलखनंदन जी के नाटकों के कथ्य, कथानक और रंगभाषा?

9.अलखनंदन जी के नाटकों की मंचसज्जा और वेशभूषा?

10.अलखनंदन जी के नाटकों की प्रकाश परिकल्पना?

11.अलखनंदन जी के नाटकों का नाट्य संगीत और कविताओं का मंचन?

12.अलख जी के नाटकों और उनके द्वारा निर्देशित नाटकों में अभिव्यक्त सामाजिक पक्ष?

13.अलखनंदन जी के नाटकों में अभिव्यक्त धार्मिक और राजनीतिक पक्ष? (व्यंग्य, कुरुतियाँ, आडंबर)

14.क्या अलखनंदन जी ने लोकनाट्य का आधुनिक रूपांतरण किया है?

15.अलखनंदन जी का विविध आयामी व्यक्तित्व... असंगत नाटक, यथार्थवादी नाटक और लोकनाट्य

16.रंग जगत में अलखजी का योगदान?

17.अलखनंदन जी से जुड़ी कोई बात, संस्मरणात्मक किस्सा?

प्रथम अध्याय में मैंने बुंदेलखंड की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक पक्ष की संक्षेप में झलक प्रस्तुत की तथा भारतीय पारंपरिक नाट्य परंपरा और उसके विभिन्न प्रादेशिक रूपों पर भी थोड़ा प्रकाश डाला। इसके बाद शोध प्रविधि के अनुसार; मैं बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा पर आया जिसमें, बुंदेलखंडी लोकनाट्य के जितने भी प्रचलित रूप मुझे पुस्तकों में मिले उनका भी यहां यथासंभव वर्णन किया। द्वितीय अध्याय में मैंने अलखनन्दन के जन्म, व्यवसाय, शिक्षा, आजीविका, सम्मान, प्रदर्शित, नाट्य लेखन और उनकी कविता, नाटक तथा उन पर प्रकाशित अन्यत्र सामग्री का हवाला देकर कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं। इसके उपरांत अलखनन्दन के रंग व्यक्तित्व को अनेक साक्षात्कारों का हवाला देकर सामने रखा है। इस शोध कार्य का तीसरा अध्याय अलखनन्दन के रंगकर्म का सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक पक्ष को सामने लाता है। शोधकार्य का चतुर्थ अध्याय अलखनन्दन के लिखित और प्रदर्शित नाटकों के मूल्यांकन पर केंद्रित है। यह विशुद्ध रूप से शोधार्थी की अंतर्दृष्टि का अध्याय है। नाटकों को पढ़ने और देखने(यूट्यूब पर आनंद मिश्रा चैनल) के बाद शोधार्थी पर जो छवियां, विचार सरणियां अंकित हुईं ; उन्ही को इसमें दर्ज करने का प्रयास किया गया है। पंचम अध्याय इस शोध कार्य का महत्वपूर्ण अध्याय है जो कि हिंदी रंग संसार और पारंपरिक लोकनाट्य (बुंदेली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी तथा ब्रजभाषा) में अलखनन्दन के योगदान को अंकित करता है। उस योगदान को जिस योगदान को विभिन्न साक्षात्कार देने वाले रंग अध्येताओं, कला-समीक्षकों,कलाकारों ने बताया था। बहुत सारी बातें शोध कार्य के दौरान निश्चित रूप से छूट गई हैं लेकिन मेरा विश्वास है कि जब यह साक्षात्कार प्रकाशित होंगे तो आने वाले शोधार्थी अलखनंदन पर इन साक्षात्कारों से अनछुए पहलुओं को भी शामिल करेंगे।

इस शोधकार्य के परिशिष्ट में मेरे द्वारा लिए गए कुछ चुनिंदा साक्षात्कार,अलख द्वारा प्रदर्शित नाटकों के कुछ छायाचित्र और टेलीफोनिक साक्षात्कारों को जगह दी गई है । इन साक्षात्कारों में **ज्ञानरंजन, महेश आनंद, देवेन्द्र राज अंकुर, रामेश्वर प्रेम, राजेश जोशी और शशांक** प्रमुख हैं|

इस शोध अध्ययन में बुंदेलखंड और उसकी लोक संस्कृति, लोकनाट्य, ऐतिहासिक, भौगोलिक संदर्भ-प्रसंग सिर्फ परिचय के लिहाज से आये हैं। यह शोधकार्य वस्तुत: अलखनन्दन केंद्रित है। इस शोधकार्य को संपन्न करने में अलखनन्दन से संबंधित पांडुलिपियों, प्रकाशित नाटकों प्रकाशित आलेखों, साक्षात्कार प्रणाली, प्रश्नावली,

प्रश्नोत्तर प्रविधि, सर्वेक्षणात्मक प्रणाली, क्षेत्रकार्य भ्रमण इत्यादि अध्ययन पद्धतियों का इस्तेमाल हुआ है। इन्हीं से प्राप्त कुछ अंशों का इस्तेमाल विश्लेषण, संश्लेषण, व्याख्या, अनुमान इत्यादि में किया गया और उनकी शख्सियत, रंगकर्म को समझने की कोशिश की गई।

अंत में मैं अपने शोध निर्देशक प्रोफेसर वी. कृष्ण का दिल से आभारी हूं कि उन्होंने मुझे अध्ययन की खुली छूट प्रदान की तथा सौ से अधिक नाट्य कृतियां,अस्सी से अधिक रेडियो नाटक, सौ से अधिक कविता संग्रह, बीस से अधिक नाट्य सैद्धांतिक पुस्तकें , नाट्य समीक्षाएं, नाट्य पुस्तकें पढ़ने का तथा यूट्यूब पर अनेक नाटक , अनेक नाट्य प्रदर्शनों को देखने का अवसर दिया। शोध निर्देशक ने कभी किसी प्रकार का मानसिक दबाव नहीं दिया, जो मैं करना चाहता था, जिस प्रकार करना चाहता था उस प्रकार शोध कार्य किया तथा उन्होंने इस शोधकार्य के अध्यायीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और मुझे एक नाट्य कार्यशाला(नीरज कुंदेर,सीधी में) के लिए भेजा भी। धन्यवाद की इस कड़ी में मैं विहाग वैभव जिन्होंने शुरुआती शोध विषय निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, विनोद मिश्रा, पराग पावन ने तकनीकी और उप-अध्यायीकरण में मेरी मदद की। मधु विश्वकर्मा और कौशल्या विश्वकर्मा को इसीलिए भी धन्यवाद देना चाहता हूँ क्योंकि, इन्होंने शुरुआती चार-पाँच साक्षात्कारों को लिपिबद्ध करने में मेरी सहायता की। मैं प्रोफेसर भीम सिंह सर का विशेष आभार मानता हूं कि उन्होंने समय-समय पर शोधकार्य से संबंधित आवश्यक मार्गदर्शन किया तथा मेरे प्रथम अध्याय की प्रूफ रीडिंग भी की। मैं धन्यवाद ज्ञापित करना चाहूंगा चंदन कुमार, वीरेंद्र अहिरवार, कुंवर योगेंद्र सिंह यादव, विनोद मिश्रा का, जिन्होंने इन अध्यायों की प्रूफ रीडिंग की। तकनीकी सहयोग मुझे व्यंकट धारासुरे तथा नीतीश कुमार से समय-समय पर मिलता रहा। इनका भी विशेष धन्यवाद। काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी सर का विशेष आभार जिन्होंने अलखनन्दन के कुछ नाटकों की पांडुलिपियों मुझे बेझिझक सौंपीं। प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी का एक और विशेष आभार मैं व्यक्त करना चाहूंगा कि उन्होंने अलखनन्दन पर शोध कार्य करने का सुझाव दिया और मैं यह कार्य कर पाया। मैं धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूं; अपनी मातृभूमि बुंदेलखंड को जिसका खाद-पानी खा पीकर में फला-फूला और इस संस्कृति का सदैव मुझ पर ऋण रहेगा। तनाव और अवसाद के भरे दिनों में बुंदेलखंडी संगीत ही मुझे मानसिक शांति प्रदान करता रहा है। सबसे बड़ा धन्यवाद मैं अपने माता-पिता (श्रीमती मालती, श्री बल राम) का देना चाहूंगा जिन्होंने मुझे जन्म दिया और खुद मजदूरी करके, पीएचडी की सर्वोत्तम उपाधि तक पहुंचाया।

दिनांक : 06 अगस्त 2024 चन्द्र पाल

प्रथम अध्याय : बुंदेलखंड और लोकनाट्य परंपरा

1.1. बुंदेलखंड

1.2. भारतीय लोकनाट्य की परंपरा

1.3. बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा

1.3.1. राई

1.3.2. रहस

1.3.3. रामलीला

1.3.4. नौटंकी

1.3.5. भंड़ैती

1.3.6. स्वांग

1.3.7. कांड़रा

प्रथम अध्याय : बुंदेलखंड और लोकनाट्य परंपरा

अलखनन्दन के काम को समझने से पहले उनकी पृष्ठभूमि और बुंदेलखंड, बुंदेलखंड की कला संस्कृति समाज भूगोल इतिहास इत्यादि को समझना अत्यंत आवश्यक है। बिना इसके अलखनन्दन के विषय में बात करना अधूरा ही होगा। अगर अलखनन्दन को संपूर्णता में जानने की चेष्टा करना है तो न सिर्फ बुंदेलखंड बल्कि बिहार, भोजपुर, बुंदेलखंड और छत्तीसगढ़ की कला-संस्कृति को भी जानने की आवश्यकता पड़ेगी। यद्यपि हमारा सरोकार बुंदेलखंड तक सीमित है अलखनन्दन ने अपने सृजनात्मक कर्म में बहुतायत बुंदेलखंड को चित्रित करने की कोशिश की लेकिन, लेकिन उन्होंने अपने काम में विविधता बनाए रखी। उनके नाट्य कर्म, कवि कर्म में छत्तीसगढ़-छत्तीसगढ़ी, भोजपुर-भोजपुरी इत्यादि का भी कम महत्व नहीं है। यद्यपि, यह कह देना भी उचित जान पड़ता है कि अलखनन्दन ने सिर्फ लोक पर ही काम नहीं किया था। लोकनाट्य पर ही काम नहीं किया था । बल्कि, उनका व्यक्तित्व बहुआयामी है। यदि यह पूँछा जाए कि उन्होंने लोकनाट्यों में भी किस में सबसे अधिक लेखन और प्रदर्शन किया तो वह बुंदेली,बुंदेलखंड का लोकनाट्य स्वांग ही है। बुंदेलखंड के लोक-जीवन, रहन-सहन, रीति-रिवाज, परंपरा सब में अलखनन्दन घुले मिले थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा, आजीविका इत्यादि की व्यवस्था बुंदेलखंड में ही हुई थी। हमारा उद्देश्य अलखनन्दन को बुंदेलखंड तक सीमित करना कतई नहीं है; बल्कि, उनके साथ जिन विभिन्न कलाकारों ने काम किया शुरुआती जबलपुर की पीढ़ी और भारत भवन भोपाल के उनके साथी तथा 'नट बुंदेले' की उनकी पीढ़ी जिन्होंने उनके साथ काम किया। सबके विचारों को यहां अनेक अध्यायों में दर्ज किया जाएगा और उससे ही विश्लेषण और निष्कर्ष तक पहुंचा जाएगा। इस अध्याय में मूलतः यह बताने का प्रयास किया जाएगा कि बुंदेलखंड में किस प्रकार गायन, नृत्य, नाट्य, वाद्य इत्यादि हैं। बुंदेलखंड की प्राचीन मध्यकालीन और आधुनिक संदर्भों में जांच पड़ताल की जाएगी। बुंदेलखंड के भूगोल, इतिहास, प्राकृतिक-सुषमा, यहां के समाज ,राजनीति इत्यादि पर भी थोड़ा सा प्रकाश डाला जाएगा। इस अध्याय में विशेष रूप से आप बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा और इसके विभिन्न रूप देख सकेंगे। बुंदेलखंड शीर्षक को संपूर्णता में समझा जाए क्योंकि हमने अलग-अलग भूगोल, इतिहास, समाज, राजनीति इत्यादि को विषय नहीं बनाया है; बल्कि बुंदेलखंड बिंदु में ही इन सभी बिंदुओं को शामिल करने की कोशिश की है। बुंदेलखंड अपनी कला-संस्कृति और इतिहास में गौरवशाली है। बुंदेलखंड कई मायनों में विशिष्ट है। इसकी झलक आपको इस अध्याय में मिलेगी। बुंदेलखंड न सिर्फ कला, साहित्य, संस्कृति ,गीत, गायन बल्कि, इसका स्थापत्य भी बेजोड़ है। चंदेल कालीन खजुराहो के मंदिर एक मानक

स्थापत्य माने जा सकते हैं । बुंदेलखंड में कालिंजर जैसे अभेद्य -दुर्ग भी थे। बुंदेलखंड में पहले कपास और धान की भी खेती होती थी। अलखनन्दन का बचपन जबलपुर में बीता जहां बुंदेली बोली जाती है और वहां एक मिश्रित संस्कृति की झलक मिलती है। वहां बंगाल ,पंजाब, बिहार, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत जैसे अनेक राज्यों से रेलवे में नौकरी करने लोग आते हैं और वहीं बस जाते हैं। अलखनन्दन के पिता जबलपुर में नौकरी किया करते थे और अपने परिवार को लेकर वहीं बस गए थे। जाहिर सी बात है कि जो व्यक्ति अपनी बाल्यावस्था से जो चीज अपने सामने होती हुई देखता है तो उनका प्रभाव उसके तमाम जीवन बना रहता है। यही कारण है कि अलखनन्दन भी बुंदेलखंड की संस्कृति, कला, साहित्य, परंपरा, जीवन-शैली, रहन-सहन, वेशभूषा, गीत, संगीत, गायन, वादन, नृत्य, नाट्य इत्यादि से अछूते नहीं रहे। अलखनन्दन के बारे में लोग यही बताते हैं कि उन्हें बुंदेलखंड के गीत संगीत से, बुंदेली लोक धुनों से, गहरा जुड़ाव था। वह बिहार के भोजपुर जिले से आकर अपने पिता के साथ अपने परिवार के साथ जबलपुर में रह रहे थे। यद्यपि जबलपुर वैसे कहा जाए तो बुंदेलखंड का विधिवत हिस्सा नहीं है। यह गोंडवाना क्षेत्र के अंतर्गत आता है तो भी इसमें बुंदेली संस्कृति बोली-बानी के दर्शन हो जाते हैं। किसी भी संस्कृति को आत्मसात करने का सबसे अच्छा तरीका यही होता है कि उसे अर्थात बालक को बचपन में ही किसी क्षेत्र की संस्कृति, परंपरा, सभ्यता, भाषा-बोली, धर्म-संस्कार, रहन-सहन इत्यादि का अंग बना दिया जाए। खान-पान का अंग बना दिया जाए। वही उसके जीवन तमाम जीने का आधार बन जाता है। हमारी बाल्यावस्था में जो चीजें हमारे सामने गुजरती हैं; वह हमें आजीवन भुलाए नहीं भूलती हैं। जीवन के अन्य पड़ावों में जो चीजें घटित होती हैं, वह तो कई बार हम भूल जाते हैं लेकिन बचपन की, किशोर अवस्था की चीजों को आसानी से नहीं भुलाया जा सकता। ठीक यही कहानी रही होगी अलखनन्दन की जो सिर्फ नाटककार नहीं है बल्कि कवि, रंगनिर्देशक, अभिनेता इत्यादि कई रूपों में हमारे सामने आते हैं । यही कुछ पृष्ठभूमि अलखनन्दन के परिवेश निर्माण में कार्य कर रही थी। उनमें प्रखर प्रतिभा थी और प्रखर प्रतिभा का उन्होंने इस्तेमाल किया और उन्होंने कड़ी मेहनत से ऐसे संगी-साथी तलाश किये और स्वयं भी उन्हीं की कतार में जा बैठे। कहां तो बिहार से आया हुआ बालक और कहां वह बुंदेली संस्कृति, आधुनिक बुंदेली नाट्य साहित्य, बुंदेली लोक जीवन का ध्वजवाहक बन गया। इस अध्याय का उद्देश्य सिर्फ कला संस्कृति ही नहीं बल्कि, बुंदेलखंड की फसलें, खान-पान, वनस्पतियां,पशु-पक्षी, जंगली-जानवर, पेड़-पौधे, घासें, पकवान, सब्जियां, तीज-त्यौहारों इत्यादि के दर्शन करवाना भी उद्देश्य है।

1.1 बुंदेलखंड

बुंदेलखंड, विंध्य पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा क्षेत्र प्राचीन काल में 'चेदि' नाम से प्रसिद्ध था। बुद्ध काल में 'चेदि' महाजनपद की गणना की जाती थी। बाद के समय में यह इंद्र और अग्नि की पूजा का क्षेत्र बना। महाभारत काल में शिशुपाल नाम का यहाँ एक प्रसिद्ध शासक हो गया है। इस बुंदेलखंड भूमि के नाम जूझौती, जैजाक भुक्ति, जाजाहोति नाम भी मिलते हैं। बुंदेलखंड के भूगोल पर विचार करते हुए दो ऐसे मत प्राप्त होते हैं; जो, यह बताते हैं कि बुंदेलखंड की संस्कृति, हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से भी पुरानी है। यह दोनों कथन आपके समक्ष इस प्रकार हैं–"वैदिक कालीन यजुर्वेद का अभ्युदय भी यहां हुआ इसी कारण यह क्षेत्र यह अर्जुहोति कहलाया। बाद में अपभ्रंश होकर आर्य संस्कृति में जैजाक भुक्ति तथा जूझौती के नाम से प्रसिद्ध हुआ होगा। विंध्य संस्कृति संसार की सबसे प्राचीन संस्कृति मानी गई है। पुरातत्व वेत्ताओं को नर्मदा घाटी के भु-स्तरों की खोज करते समय यह ज्ञात हुआ की नर्मदा घाटी की सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता से पूर्व की है क्योंकि सृष्टि से पूर्व पृथ्वी इतनी गरम थी कि जीवों का अस्तित्व नहीं था, विंध्याचल की चट्टानों में कोई जीवाश्म नहीं मिले जो कि सिंधु घाटी से प्राप्त हुए हैं। होशंगाबाद की आदमगढ़ गुहा सागर के आबचंद और नरयावल, छतरपुर जिले के किशनगढ़ क्षेत्र में प्रागैतिहासिक गुहा चित्रों में आदिमानव की कला मिलती है"[1] इसी संदर्भ में एक और उदाहरण मुझे मिला जो यह बताता है कि बुंदेलखंड का भूभाग अत्यंत पुराना है और यहां की सभ्यता भी बहुत पुरानी है। "मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के बहुत पहले इस भूभाग पर नर्मदा और चंबल की प्राचीन सभ्यताएं प्रचलित थी जिनका समय प्राचीनतम पत्रों और औजारों के आधार पर लगभग 5 लाख इस पर्व माना गया है।"[2] यह तो बुंदेलखंड के लिए अत्यंत गौरव प्रतीत होने वाली बात है। बुंदेलखंड के इतिहास में सबसे प्रसिद्ध शासक चंदेल हुए। बुंदेलखंड के इतिहास से परिचय करवाते हुए एक उदाहरण दे रहा हूं-"बुंदेलखंड अनेक प्राचीन नामों से जाना जाता था यथा– चेदी, आटविक, मध्य देश, वज्र, जैजाकभुक्ति, जुझौति , जुझारखंड, विंध्येलखंड, दशार्ण आदि इसका प्राचीन नाम दशार्ण अर्थात दस नदियों का देश, दस नदियों के साथ ही दस दुर्गों की बात भी दशार्ण के लिए प्रयुक्त की जाती है। यद्यपि कुछ अत्यंत प्राचीन किले अभी भी यहां स्थित हैं। तथापि उनकी कोई प्रामाणिक नामावली सुलभ नहीं है। सम्राट हर्षवर्धन के शासनकाल में आने वाले चीनी यात्री हुए हेन्सांन ने जिझौती नाम से एक प्रदेश का उल्लेख किया है। महोबा के राजा परमाल के समय के एक

[1] भारतीय लोक नाट्य : स्वांग, डॉ हिमांशु द्विवेदी और डॉ नवदीप कौर, अरुण पब्लिशिंग हाउस, 2016 चण्डीगढ़, पृ. 14

[2] वही, पृ. 15

शिलालेख में 'जैजाक भुक्ति' नाम अंकित है। चंदेल वंश के संस्थापक चंद्रवर्मन के पौत्र जैजक अथवा जयशक्ति के नाम पर प्रदेश का नाम 'जैजाक भुक्ति' पड़ा होगा। 9वीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी तक के आरंभ तक चंदेलों ने इस क्षेत्र पर राज्य किया। चंदेलों के शौर्य के अस्त होने के पश्चात काशी से सूर्य कुलावंतसीय, गहरवार वंशीय क्षत्रियों की एक शाखा ने इस भूमि पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। गहरवार वंशीय क्षत्रिय हेमकरण पंचम ने अपना नाम बुंदेला रखा और बाद में इन्हीं की पीढ़ियों ने एक छोटा-सा राज्य बुंदेला स्थापित किया।.... बुंदेलखंड की स्थापना 1288 वि. के लगभग हुई।"[3] इसमें हिमांशु द्विवेदी ने चंदेल वंश का संस्थापक चंद्र वर्मन को माना है। जबकि इतिहास की पुस्तकों में चंदेल वंश की स्थापना नन्नुक नामक किसी व्यक्ति ने की थी। चंदेल वंश में धंग, विद्याधर, परमर्दिदेव(राजा परमाल),गण्ड इत्यादि शासक हुए हैं। इन्होंने सुबुक्तगीन 990 ई, तुर्क आक्रमणकारी महमूद 1008 ई, पृथ्वीराज चौहान इत्यादि से लोहा लिया। कहा जाता है कि चंदेलों ने 52 लड़ाइयां लड़ीं। इन 52 लड़ाइयां का उल्लेख कुछ इस प्रकार मिलता है- "(1) संयोगिता स्वयंवर,(2) परमाल का विवाह,(3) महोबा की लड़ाई, (4) माड़ौगढ़ की लड़ाई, (5) नैनागढ़ की लड़ाई, (6) बिदा की लड़ाई, (7) मछलाहरण, (8) मलखान का विवाह, (9) गंगा घाट की लड़ाई (10) ब्रह्मा का विवाह (11) नरवर गढ़ की लड़ाई (12) ऊदल की कैद (13) चंद्रावलि की चौथी लड़ाई (14) चंद्रावलि की विदाई, (15) इंदल हरण (16) सिंगल दीप की लड़ाई (17) आल्हा की निकासी (18) लाखन का विवाह (19) गांजर की लड़ाई (20) पट्टी की लड़ाई (21) कोर्ट कामरू की लड़ाई (22) बंगाले की लड़ाई (23) कटक की लड़ाई (24) जिंसी की लड़ाई (25) रूसनीगढ़ की लड़ाई (26) पटना की लड़ाई (27) अंबरगढ़ की लड़ाई (28) सुंदरगढ़ की लड़ाई (29) सिरसागढ़ की लड़ाई (30) सिरसा की दूसरी लड़ाई (31) भुजरियों की लड़ाई (32) ब्रह्मा की जीत (33) बौना चोर की लड़ाई (34) धौलागढ़ की लड़ाई (35) गढ़ चक्कर की लड़ाई (36) ढेबा का विवाह (37) माहिल का विवाह (38) सामर गढ़ की लड़ाई (39) मनोकामना तीर्थ की लड़ाई (40) सुरजावटी हरण (41) जागन का विवाह (42) शंकरगढ़ की लड़ाई (43) आल्हा मनौआ (44) बेतवा नदी की लड़ाई (45) लाखन और पृथ्वीराज की लड़ाई (46) ऊदल हरण (47) बेला का गौना (48) बेला की गौने की दूसरी लड़ाई (49) बेला और ताहर की लड़ाई (50) चंदनबाग की लड़ाई (51) जैत खंभ की लड़ाई (52) बेला सती।"[4] चंदेलों के ही समय में

[3] भारतीय लोक नाट्य : स्वांग, डॉ हिमांशु द्विवेदी और डॉ नवदीप कौर, अरुण पब्लिशिंग हाउस, 2016 चण्डीगढ़, पृ. 14

[4] कला वसुधा, संपा. डॉ उषा बनर्जी, जनवरी-मार्च -2021, आल्हा प्रसंग विशेषांक, पृ. 78

आल्हा ऊदल दो बड़े वीर हो गए हैं इसमें मदन गड़ेरिया, खुन खुन कोरी, इंदल, मलखान, चाचा सैयद इत्यादि बड़े शूरवीर हो गए हैं। इनकी लड़ाइयां पर आधारित ही जगनिक ने तथा चंदवरदाई ने वीरतापूर्ण काव्य की रचना की है। जगनिक द्वारा रचित आल्हा खंड विश्व प्रसिद्ध हो गया है। यह रासो काव्य का बेजोड़ नमूना है। इससे आल्हा गायन की परंपरा चल पड़ी। आल्हा गायन सैरा कहलाता है। इसमें जगनिक,चंदवरदाई, ज्ञानी कवि, ठाकुर कवि, गिरधर कविराय, जितेंद्र सिंह के आल्हा छंदों को गाया जाता है। आल्हा गायन आपको विभिन्न शैलियों में वैसवाड़ा ,अवधी , बुंदेली ,भोजपुरी में मिल जाएगा। आल्हा गायन छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार ,बंगाल तक आपको सुनाई दे जाएगा। आज भी आल्हा गायन जारी है। यह आठवीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी का दौर था। इस बुंदेलखंड के शासन क्रम को समझाते हुए बहादुर सिंह परमार लिखते हैं कि "चंदेलों के उपरांत बुंदेलखंड के मध्य युग में गौड़ ,तोमर, खंगार और बुंदेला शासकों ने शासन किया। यह काल पुनरुत्थान का कल रहा है। इस काल का इतिहास आक्रमणों, युद्धों और संधियों से भरा पड़ा है। यहां के शासक या तो पराजित हो गए थे या फिर संधियों द्वारा गुलामी स्वीकार चुके थे। ऐसे ही निराशा के काल में चंपतराय बुंदेलखंड की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। इनके विरुद्ध दतिया के शुभकरण बुंदेला, चंदेरी के देवी सिंह बुंदेला तथा ओरछा के सुजान सिंह थे। चारों ओर से घिर चुके चंपतराय, उनकी पत्नी लाड़ कुंवरि तथा कुछ सैनिक जंगल जंगल भटकते रहे। इसी भटकाव के दिनों में इन्होंने वीर सपूत छत्रसाल को जंगल में ही जन्म दिया।"[5]

इस उदाहरण से बुंदेलखंड में शासकों का एक विकास क्रम तो बनता दिखाई देता है। कुछ लोग मानते हैं कि विंध्येलखंड से बिगड़ कर ही इसका नाम बुंदेलखंड पड़ा। बुंदेलखंड की पहचान, भौगोलिक और ऐतिहासिक, सांस्कृतिक रूप से समृद्ध रही है। बुंदेलखंड भारत देश का 'हृदय स्थल' के रूप में जाना जाता रहा है। बुंदेलखंड में संस्कृति की बहुलता दिखाई देती है। यह अपने अतीत ,वर्तमान को लेकर काफी चर्चित रहा है। बुंदेलखंड आधिकारिक रूप से तो उत्तर प्रदेश के केवल सात जिले इसके अंतर्गत शामिल हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं- महोबा, हमीरपुर, चित्रकूट, बांदा, झांसी ,जालौन और ललितपुर। मध्यप्रदेश राज्य से इस बुंदेलखंड के अंतर्गत छः जिले हैं लिए गए हैं, जिनके नाम हैं- छतरपुर, सागर, दतिया ,पन्ना ,टीकमगढ़, दमोह ,बीना,विदिशा । इसमें दतिया,निवाड़ी, अशोकनगर ,भिण्ड-मुरैना, ग्वालियर-जबलपुर का कुछ हिस्सा यहां तक की भोपाल में भी बुंदेली बोली समझी जाती है। छिंदवाड़ा तक बुंदेली बोली समझी जाती है। वैसे तो बुंदेलखंड

[5] बुन्देली लोक साहित्य, डॉ बहादुर सिंह परमार, ए के पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2016 पृ. 49

को लोग ज्यादातर जानते हैं कि इस क्षेत्र में भूमि अनुपजाऊ-पथरीली, वर्षा यहां कम ,अक्सर पानी की कमी, भुखमरी-गरीबी इत्यादि है । यद्यपि बुंदेलखंड के लोग और बुंदेलखंड की माटी कर्मठ है। लेकिन यहां के लोग दिल्ली के अलावा अन्य शहरों का रुख करने में संकोच करते हैं। कामकाज के लिए अक्सर आसपास के शहरों में ही जाते हैं। बहुत ज्यादा दूर तक बुंदेलखंडियों की पहुंच कम है। इसका कारण यह है कि वह बुंदेलखंड में ही अपने को सीमित रखते हैं। यद्यपि, बुंदेलखंड की धरती हीरा उगलती है। तथापि, यहां खनिज पदार्थों की बहुतायत है। यहां नदी, पहाड़, जंगल भी हैं। बुंदेलखंड अपनी पलाश की भूमि के कारण भी दहकता हुआ जान पड़ता है। यहां अत्यधिक गर्मी पड़ती है और अत्यधिक ठंड भी होती है। यहां मुख्य रूप से दलहनी और तिलहनी फसलों की पैदावार होती है। एक जमाने में बुंदेलखंड में लोगों की गुजर-बसर मोटे अनाजों पर और मांस पर हुआ करती थी। बुंदेलखंडियों का रहन-सहन ठाट-बाट का होता है। उनकी बुलंद आवाज होती है। उनकी वाणी में ओज और तेजस्विता के दर्शन होते हैं। कई बार लोगों को लगता है कि वह बहुत कड़क ढंग से बात करते हैं। उनमें रूखापन-कर्कशता देखने को भी लोगों को मिलती है। चित्रकूट और बांदा को छोड़कर इस बुंदेलखंड भूभाग में मुख्यतः बुंदेली बोली जाती है। बुंदेली बोली में एक गजब की मिठास होती है। यह सुनने में अत्यंत कर्णप्रिय लगती है। यद्यपि बुंदेली बोली के भी अनेक रूप बुंदेलखंड के विभिन्न क्षेत्रों में दिखाई देते हैं। रीतिकालीन कवियों ने खासतौर से बुंदेलखंड के कवियों ने बुंदेली बोली के शब्दों का इस्तेमाल जरूर अपनी कविता में किया है। लेकिन उन्होंने मुख्य रूप से ब्रजभाषा में ही अपनी कविताई की है। बुंदेलखंड वीर प्रसवा भूमि रही है। यह आल्हा-ऊदल, झलकारी बाई ,रानी लक्ष्मीबाई, अवंती बाई, छत्रसाल, हरदौल, चंपत राय, मर्दन सिंह और चंदेल कालीन राजाओं की वजह से बुंदेलखंड विशिष्ट बन पाया। उनकी वीरता को लेकर यहां काव्य रचे गए हैं। जगनिक, व्यास, मधुकर शाह, तुलसीदास,प्राणनाथ, हरिराम व्यास, अक्षर अनन्य, प्रताप शाही, खुमान कवि, लाल कवि, विष्णु दास, केशव, पद्माकर, बोधा, बिहारी, ठाकुर, भूषण, चिंतामणि, खेत सिंह, ईसुरी, गदाधर भट्ट इत्यादि यहां सुप्रसिद्ध कवि हो गए हैं। वृंदावन लाल वर्मा, लाला भगवानदीन, मैथिलीशरण गुप्त, वियोगी हरि, बनारसीदास चतुर्वेदी, हरि कृष्ण प्रेमी,सियारामशरण गुप्त, केदारनाथ अग्रवाल, नर्मदा प्रसाद गुप्त ,हरि अनुरागी, डॉक्टर गंगा प्रसाद गुप्त, अवध किशोर जड़िया, भगवत रावत, काशी प्रसाद त्रिपाठी, हरि विष्णु अवस्थी, कपिल तिवारी, वीरेंद्र जैन, महेश कटारे, कांति कुमार जैन, बलभद्र तिवारी, डॉ सरोज गुप्ता, डॉक्टर शरद सिंह इत्यादि यहां आधुनिक समय में कवि और साहित्यकार, लेखक हो गए हैं। वर्तमान समय में मैत्री पुष्पा, मृणाल पांडेय, ज्ञान चतुर्वेदी, श्याम सुंदर दुबे, प्रहलाद अग्रवाल, गोविंद मिश्र,कैलाश

मड़वैया इत्यादि बुंदेलखंड का नाम साहित्य के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर ऊंचा कर रहे हैं। विद्वान यह भी बताते हैं कि महर्षि वाल्मीकि ने राम साहित्य यहीं बुंदेलखंड में सृजित किया था। विद्वत जन यह भी बताते हैं कि यह भूमि वेदव्यास, कृष्ण द्वैपायन, भवभूति, कृष्ण दत्त मिश्र इत्यादि की रही है। बुंदेलखंड की धरती पर बैजू बावरा, बाबा रामदास, तानसेन जैसे गायक कालीचरण जैसे चित्रकार, मृदंग आचार्य कुदऊ, उस्ताद आदिल खां जैसे संगीत कलाविद, विश्व को फतह करने वाले गामा पहलवान और हॉकी के जादूगर मेजर ध्यानचंद, क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद की जन्मस्थली बुंदेलखंड की माटी रही है।

इस भूभाग में अनेक धर्मों का सम्मान रहा है। इस बुंदेलखंड परिक्षेत्र में अनेक नदियां कलकल बहती हैं। बुंदेलखंड की धरती में शैव, शाक्त, जैन ,बौद्ध ,इस्लाम, कबीरपंथी, रैदासी, नाथपंथी इत्यादि धर्म और संप्रदायों का बोलबाला रहा है। बहादुर सिंह परमार अपनी पुस्तक 'बुंदेली लोक साहित्य' में 'अपनी बात' लिखते हैं कि "जनपदीय भाषाएं एवं बोलियां जनपद की सामाजिक,सांस्कृतिक तथा राजनैतिक चेतना की संवाहक होती हैं। लोक संस्कृति गतिशील होती है इसलिए उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता रहता है। बुंदेलखंड जनपद (अंचल) एक सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इकाई है ,जो भारत देश के हृदय स्थल में अवस्थित है। इसकी भौगोलिक सीमा सामान्यतः उत्तर में यमुना से ,दक्षिण में नर्मदा से तथा पूर्व में टोंस व पश्चिम में चंबल से मानी जाती है। यह प्राचीन भूभाग है। इसे अतीत में ,दर्शार्ण देश ,जेजाकभुक्ति ,चेदी आदि संज्ञाओं से जाना जाता है। इस अंचल में प्रयुक्त होने वाली भाषा बुंदेली है। बुंदेली की अपनी समृद्ध लोक परंपरा है। यहां के लोक साहित्य में गीत ,गाथाएं, नाट्य के साथ कथाओं की अपनी सुदीर्घ परंपरा है। कोई भी संस्कार बिना गीत के संपन्न नहीं होता। वीरता और शौर्य के आख्यान गाथाओं के रूप में लोक प्रेरणा प्रदत करते हैं। ज्ञान व अनुभव का भंडार कथाओं के माध्यम से जनसामान्य में परिव्याप्त है। अंचल में व्याप्त विसंगतियों तथा विद्रूपताओं पर नाट्यों के माध्यम से प्रहार किया जाता है।"[6]

बुंदेलखंड में आपको लोक काव्य, लोक कथाएं, लोकनाट्य, लोकोक्तियां, लोक मुहावरे इत्यादि मिल जाएंगे। बुंदेलखंड में पहेलियां को 'अटका' कहा जाता है। इन्हें अटका इसलिए भी कहा जाता है क्योंकि लोग बताते समय अटक जाते हैं अर्थात इनका उत्तर देने में वह अपने को असमर्थ पाते हैं। बुंदेलखंड में लोक गायन की विस्तृत परंपरा है इसमें सोहर, बधाइयां, संचत, पीर के गीत, लौटनी, नरा(नाल) काटने के गीत, चौरा और सोर के गीत,

[6] बुन्देली लोक साहित्य, डॉ बहादुर सिंह परमार, ए के पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, अपनी बात (भूमिका) से

काजल आंजने, छठी, दस्तौन, कुआं पूजन, गगरी उतारने, पलना गीत, मुंडन, कनछेदन, अन्नप्राशन गीत बन्ना गीत, गारी गीत, लमटेरा, भगतें, देवी गीत, बिलवारी, सगाई, लगुन, हल्दी चढ़ने के गीत,तेल चढ़ाने के गीत, सीदा छुआने के गीत, बारात आगमन के गीत ,दूल्हा निकासी के गीत, ऊबनी के गीत, मड़वा मारने के गीत, चीकट, चढ़ाव ,भांवर, पांव पखराई के गीत, धान बुवाई, राछ, बधाए, लाकौर, बाबा खेलने के गीत, बंद छोरने तथा खपरा लौटाई के गीत, कुंवर कलेऊ, मोचायने , दसवानू, दादरे, बारहमासी, गोटें ,दिनारी, चक्की पीसने के गीत, फागें, दीवारी, कार्तिक गीत, ढिमरयाई, धुबयाई, कछियाई, अहिरवारी, गम्मत, कबीरपंथी गायन इत्यादि प्रमुख हैं। इसके अलावा युद्धपरक तथा प्रेमपरक लोक गाथाएं आपको बुंदेलखंड में मिलेंगी। देवीपरक गीत प्रबंध भी मिलेंगे। राजा भोज, जगदेव, आल्हा, जगदेव की गाथा (जगदेव का पंवारा), उजराजीत (उदयादित्य) इत्यादि गाथाएं आपको बुंदेलखंड में मिलेंगी। इसके अलावा कारस देव की गोटें, धर्मा सांवरी गहनई तथा परसा गाथाएं भी आपको देखने को मिलेगी। अमन सिंह जू कौ राछरौ, धन सिंह कौ कथा गीत, पारीछत जू की कथा, संत बसंत, राजा गिलंद की गाथा, सुरहन गऊ तथा सिंह की गाथा के साथ-साथ बुंदेलखंड में धार्मिक कथाएं और पशु पक्षियों की कथाएं जिसमें आप लड़इया दाऊजू, बंदरा मम्मा, हाती कक्का, मगरा मम्मा, लुखरो कक्की इत्यादि भी देखते हैं। बहादुर सिंह परमार लिखते हैं कि बुंदेली लोक कथाओं में आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति पाई जाती है। बुंदेलखंडी लोकगीतों की एक सूची मुझे 'कला वसुधा' पत्रिका में प्राप्त हुई जो कि इस प्रकार है–"झिंझिया गीत, चकिया गीत, बिलवारी, कुआं पूजन गीत, मड़वा गीत बनरा, कड़ाही चढ़ाने पर वैवाहिक गीत, सरिया ,कुआं पूजन गीत, तेल चढ़ाने का गीत, न्योता गीत, विवाह गीत, लमटेरा, विदाई गीत, दादरा, जेवनारगारी, सोहर, अखती गीत, लगुन, सतिया धराई गीत, कजरी, बधाई चरुआ, पलना, बन्ना, बिरोठ, ब्याह न्योता, जनेऊ गीत ,देवी गीत, फाग, झूला गीत, झूलनौ, लोरी, बसंत ,सावन , जिकरी, बरुआ, मुंडन गीत, चढ़ावा गीत, सुहाग गीत, राछरो गीत, चैत कटाई पर चैतुआ गीत, दिवारी गीत, कार्तिक, रैंया, स्वांग ,चैत कटाई पर दिनरी गीत, चौकड़िया, खुरयाऊ फाग , लेद ,राछरो, बारामासी, लगुन, मल्हार, राई, धुबयाई, रावला, सैरा, रसिया, सुअटा, मामुलिया, गोटें, अच्छी, कहरवा, आल्हा, बिरहा, ढोला मारू, कर्मा, शैला।"[7]

बुंदेलखंड की संस्कृति में 'कतकारी छेंकना' कार्तिक मास में होता है। यह प्रश्न-उत्तर शैली में गीत में शास्त्रार्थ जैसा किया जाता है। बहुत सारी स्त्रियों के बीच नव-युवक पुरुष उन स्त्रियों के गीतों का उत्तर देता है

[7] कला वसुधा, जनवरी मार्च 2019, संपा. डॉ उषा बनर्जी, बुंदेली लोकगीत - देवकीनंदन शांत, बुंदेलखंड प्रसंग विशेषांक, पृ. 81

और जीतने पर स्त्रियां उसे खूब दूध-दही, मक्खन, मिठाई खिलाती-पिलाती हैं और जीते हुए युवक का खूब सम्मान करती हैं। इसके अंतर्गत दधिलीला,चीरहरण, माखन-चोरी, बंसी-चोरी, गेंद-लीला, दान-लीला, रहस इत्यादि किया जाता है।

बुंदेलखंड में पहेलियों, कहावतों, अहानों, अटकों इत्यादि का अपना महत्व है। अंबिका प्रसाद दिव्य ने बुंदेली पहेलियों को अनेक वर्गों में विभाजित किया है-ढकोसला, भेरी, अटपाव, खुंस, अचका, ओलना गहगड्ड। बुंदेलखंड में रासों की एक विस्तृत परंपरा दिखाई पड़ती है। कवियों ने अनेक प्रकार के रास लिखे हैं। उदाहरण के तौर पर जगनिक ने परमाल रासो लिखा है। जोगीदास भांडेरी ने दलपत राव रासो लिखा है। किशुनेश भाट ने शत्रुजीत रासो, श्रीधर कवि ने पारीछत रासो, आनंद सिंह कृड़रा ने बाघाट रासो, कल्याण सिंह कुड़रा ने झांसी कौ रासो, मदनेश ने लक्ष्मीबाई रासो लिखा है। कुछ पौराणिक और मिथकीय चेतना से गढ़ी हुई कथाएं भी आपको बुंदेलखंड के लोकमन में व्याप्त मिल जाएंगी।

अगर बात बुंदेलखंड की प्राकृतिक सुषमा कि की जाए तो यहां पर अनेक प्रकार के पेड़-पौधे, वनस्पतियां पाई जाती हैं। यद्यपि दूर से यह लगता है कि बुंदेलखंड में पेड़ पौधों का अभाव होगा लेकिन यह एक गलतफहमी मात्र है। बुंदेलखंड में वन, जंगल, पहाड़, पेड़, नदियां सब कुछ हैं। यह तो आज के पत्रकारिता की गलत बयान बाजी से एक धारणा विकसित हो गई है कि बुंदेलखंड में पानी-जंगलों का अभाव है। ककरीली-पथरीली जमीन है। कहना बुरा नहीं है। यह भी है लेकिन इसके अलावा हरे-भरे मैदान, पेड़-पौधे, वनस्पतियां, जलाशय , नदी, ताल-तलैयां , कुएं-बावड़ी यह सब भी बुंदेलखंड में है। बुंदेलखंड में कीकड़, बेरी, मकुइया, तेंदू, महुआ, आम, ओंरा के पेड़, नीम, जामुन, बबूल, बेशरम, कांस, पलाश(छेवला), दुधी, इमली, खिन्नी, कदम, बेलपत्र, तारपाटो, अनार, पपीता, बांस, रेंवजा, कौहा, सागौन, गिलुरुआ, बहेरा, बेला, चमेली, कचनार, गेंदा, मौर श्री, गुलाब, जूही, टेसू, गुड़हल, बेला, अमरबेल, बिहीं, गिंधाता, कटबर, चिट्चिटा, ऊमर, चिल्ला, जरिया, गुंदला, छिरियांटा, गोंद, कनहर, गदूल, कुमुदिनी, गुलनार, लिसुआ, कनकौआ, पुमर्रा, करधई, मोरछल्ली, लभेरो, शीशोन , सफेदा(लिपटस), बरगद, पीपल, करौंदा इत्यादि पेड़-पौधे, फूल-फल, घासें पाई जाती हैं। यह सब मेरा अनुभव आधारित ज्ञान है। इसलिए बुंदेलखंड का लोक जीवन मेरी अंतस् चेतना का हिस्सा है। दरअसल बात यह है कि प्रकृति और लोक का गहरा संबंध है। इसीलिए लोक-अनुभव, लोकजीवन से ही लोकगीत, लोक विधाएं, लोक साहित्य, लोक चित्रकला, लोक वाद्य इत्यादि का जन्म होता है। यह सब नाम बुंदेलखंड में परंपरा से चले आए हुए नाम हैं। इसलिए, मैं इनका उल्लेख करना उचित समझता हूं। बुंदेलखंड में प्राकृतिक खनिज संसाधन भरपूर हैं। यह सब नाम इसलिए गिनाए

गए हैं, यद्यपि यह सूची पूरी नहीं मानी जाएगी तो भी यह यहां की वनस्पतियों का संक्षिप्त परिचय तो कहा ही जा सकता है, ताकि भौगोलिक संरचना का अनुमान पाठक लगा सकें और बुंदेलखंड के भूगर्भ में छिपी हुई चीजों की जानकारी लोगों तक पहुंचाई जा सके। किसी क्षेत्र के पर्यटन के लिए वहां के प्राकृतिक संसाधन, स्थापत्य, मूर्तिकला कोई न कोई विशेषताएं जरूर होनी चाहिए। यह आपको बुंदेलखंड में कूट-कूट कर भरी मिलेंगी। यहां की प्रदूषण रहित प्रकृति आपका मन मोहे बिना नहीं रहेगी। समाज और भूगोल को जोड़ते हुए बहादुर सिंह परमार कहते हैं कि "बुंदेलखंड अंचल की भौगोलिक बनावट इस तरह की है कि यहां गहन वन प्रांतर की गोद में सरिताएं तो प्रभावित होती हैं किंतु उपजाऊ भूमि का रकवा तुलनात्मक दृष्टि से कम है। यहां के निवासी विपरीत परिस्थितियों से लगातार संघर्ष करते रहे हैं। वह आर्थिक रूप से भले ही संपन्न और समृद्ध ना रहे हो किंतु मन से अमीर रहे हैं। वे अपनी आन-बान और शान के लिए अपने प्राणों को निछावर करते रहे हैं। यहां की सामाजिक संरचना भारतीय वर्ण व्यवस्था पर ही आधारित रही है।"[8]

अब हम बुंदेलखंड में पाए जाने वाले कुछ जानवरों की चर्चा कर लेते हैं। इसमें लिड़इया, लुखरिया, अदलिड़वा, विघना, सेही इत्यादि खतरनाक जंगली जानवर बुंदेलखंड में पाए जाते थे। अब भी कहीं-कहीं इनके दर्शन हो जाते हैं। इसी तरह विषैले जीव जंतुओं में करिया सांप, गुहेरे, बिच्छू, ततैया, गुआय, विषखोपड़े, धामन, चिटी, नागिन, सीता की लट, पनिया सांप, दो मुंहा सांप, गेड़ुआ सांप इत्यादि प्रमुखता से गिनाए जा सकते हैं। बुंदेलखंड की संस्कृति में विषैले कीट पतंगों, जीव जंतुओं से बचने के उपाय के तौर पर झाड़-फूंक और जड़ी-बूटियों तथा तंत्र-मंत्र का सहारा भी लिया जाता था। इस तरह के क्रिया-कर्म आज भी यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं। यद्यपि अब लोग चिकित्सा शास्त्र पर ज्यादा भरोसा करने लगे हैं।

बुंदेलखंड में अगर फसलों की और खान-पान पकवान की चर्चा की जाए, तो बुंदेलखंड इसमें भी बहुत आगे रहा है; लेकिन, अब खान-पान में बड़े पैमाने पर बदलाव देखने को मिल रहे हैं। इसका कारण यह है कि अब वैश्विक बदलाव हो रहे हैं और दुनिया एक-दूसरे के करीब आती जा रही है। अब ज्यादा दूरियां किसी राज्य, देश में नहीं रह गई हैं। अब हम लगभग वैश्विक गांव में बदल चुके हैं। संचार क्रांति ने हमारे परंपरागत खानपान में व्यंजनों में भारी बदलाव किए हैं। अब नए-नए खान-पान के तरीकों को ईजाद किया जा रहा है ,तो जो परंपरागत तौर पर जो हमारी संस्कृति थी; खान-पान की वह कम हो गई है या नष्ट होने के कगार पर है। संचार-माध्यम, प्रचार के तंत्र और

[8] बुन्देली लोक साहित्य, डॉ बहादुर सिंह परमार, ए के पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 107

बाजारवाद में जो हमारी क्षेत्रीय पहचान हुआ करती थी; अब वह वैश्विक होती जा रही है। एक तरफ यह अच्छा भी है, दूसरी तरफ यह खराब भी है। जैसे दोसा, इडली पहले दक्षिण भारत का खान पान हुआ करता था; लेकिन, अब यह वैश्विक स्तर पर और भारत के किसी भी राज्य में किसी भी बड़े शहर में आपको आसानी से सुलभ है। प्रसिद्ध खान-पानों की बात अलग है लेकिन अपने खान-पान को छोड़कर दूसरे क्षेत्र के खान-पान को अपनाना अपनी संस्कृति के संरक्षण और परंपरा के संरक्षण में कहीं न कहीं बाधक तो बनता ही है। हमारे खानपान ,रहन-सहन, पहनने-बोलने के ढंग से हमारी पहचान जुड़ी होती है। अब हम बुंदेलखंड के खानपान पर लौटते हैं कि पहले परंपरागत तौर पर बुंदेलखंड में साग-सब्जियों में नोरपा, खटुआ, सिकौली, नारी, चौरई, पलकी, चेंच, गोबी की भाजी, चना की भाजी, फांग की भाजी इत्यादि की भाजी खाई जाती थी। फसलों में यहां तिलहन-दलहनी और मोटे अनाज की खेती किसानी होती थी। इसमें प्रमुख रूप से कुदवा, उरदा, चना, धान, जुंडी, मटर, गेहूं, कटिया गेहूं, ज्वार, बाजरा, कुटकी,पसई, राई, तिली, मूंगफली, मूंग, अरहर, मसरी,जवा इत्यादि हैं। अब अगर हम बुंदेलखंड के खान-पान पकवानों की बात की जाए तो उनमें गुलगुला, मंगौरा, पपरियां, भजिया, सुहारी,लुचई, चीला, खुरा, खुरमी, माड़े ,लटा, फरा,बरा, महेरो, घेंगो, डुबरी इत्यादि प्रमुख हैं। थुली, ठड़ूला, कौंरी, लपटा, बिजौरै, मलीदा, इंदरसे, भूंजा, भंगरी, बिरचुन, सतुआ, मुरका भी बुंदेली खान-पान के सदियों से हिस्सा रहे हैं और यह बुंदेलखंड की परंपरा और संस्कृति में सतत रूप से बने रहे हैं। लेकिन, आधुनिक समय में मामला गड़बड़ा गया है। धीरे-धीरे या कहें की बहुत तेजी से हम अपनी क्षेत्रीय और लोक संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं।

अब हम चर्चा करेंगे बुंदेलखंड के परंपरागत वस्त्र और आभूषणों की। बुंदेलखंड का पहनावा, पोशाकें, ,आभूषण, श्रृंगार की सामग्री इत्यादि से यहां के लोगों को आसानी से पहचाना जा सकता था लेकिन, समय तेजी से बदलता जा रहा है। उदारीकरण, वैश्वीकरण, निजीकरण, वैश्विक गांव की अवधारणाओं ने और इंटरनेट, टेलीविजन, हॉलीवुड, बॉलीवुड इत्यादि ने हमारे खान-पान को या कहें कि परंपरागत, सांस्कृतिक पहचान को एकरूपता देने का काम किया है। अब तो लोग केवल दिखाने के लिए कभी-कभी अपने क्षेत्र के वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं। अन्यथा वह इन सभी पहचानों से अपने को अलग करते हुए नजर आ रहे हैं। उनके ऊपर फैशनपरस्ती का अंधाधुंध नशा छाया हुआ है और वह स्वदेशीपन से अपने को दूर भगाते हुए नजर आ रहे हैं। इस तरह के आभूषणों, वेशभूषा को परंपरागत सांस्कृतिक सजावट को अपने आप को तथाकथित सभ्य समझने वाला शहरी वर्ग, अपने को आधुनिक समझने वाला वर्ग ऐसे लोगों को जो परंपरागत कपड़ों, आभूषणों, पोशाकों इत्यादि को धारण करते हैं ;उन्हें गवार, पिछड़े , असभ्य श्रेणी के लोग वह मानते हैं। लेकिन यहां बात बुंदेली वस्त्रों-आभूषणों की हो रही है तो, उनके बारे

में भी हम जानकारी हासिल कर लेते हैं। वस्त्रों और आभूषणों पर जानकारी से पहले यह जान लेना अत्यंत आवश्यक है कि वस्त्र और आभूषण किसी भी क्षेत्र की जलवायु, मौसम इत्यादि के अनुरूप बनाए जाते हैं। यद्यपि आभूषण तो शरीर के अलंकरण मात्र हैं। वस्त्र भी अलंकरणों का काम करते हैं लेकिन वह मौसम और जलवायु के अनुसार भी तय होते हैं। बुंदेली पारंपरिक आभूषणों में छागल, अरौना, लल्लरी, ढुलनियां, बजुल्ला, अनौठा, लच्छा, झांझें, पंगुरियां, छैलचूड़ी, दुर, ऐरन, बैंदा, दावनी, गुंजें, बाजूबंद, बिछुआ, पांवपोश, हंसुली, खंगौरिया, सुतिया, बिचौली, गोप, हमेल इत्यादि प्रमुख हैं। बात अगर बुंदेली वस्त्रों की जाए तो इनमें फरिया, घंगरिया, सोगी, मंडील, स्वापा, अचकन, सदरी, अंगिया, मिरजई, सराई, बागौ, सलूका, इकलाई, अंगोछा, पंचा, पोलका, परदनी इत्यादि प्रमुख रूप से याद करने लायक हैं।

किसी भी क्षेत्र की पहचान उसके बच्चों के खेलों से भी जुड़ी होती है। बच्चों के खेल-तमाशों से ही पता चलता है कि इस क्षेत्र के बच्चे कितने उत्साही, शरीर से पुष्ट और आलस्य रहित होंगे। बुंदेलखंड क्षेत्र में भी यहां के मौड़ी-मौड़ा, लरका-बच्चा तरह-तरह के खेल, खेलकर अपने शरीर को पुष्ट और मन को उत्साह से भर लेते थे। खेल, कसरत, व्यायाम इत्यादि से ही हम मानसिक और शारीरिक रूप से सक्षम हो जाते हैं और अपना काम मेहनत पूर्वक कर पाते हैं। अन्यथा हमारा शरीर किसी काम लायक नहीं रहता है। बुंदेलखंड में बच्चे अनेक प्रकार के खेल कूद कर अपने को प्रसन्न रखते हैं तथा अपने माता-पिता और पड़ोसियों को भी प्रसन्न रखते हैं। खेलते हुए बच्चे भला किसको प्यारे नहीं लगते ? यद्यपि, इस आधुनिकता की मार ने बुंदेलखंड के खेलों को भी ग्रस लिया है और अपने परंपरागत खेल छोड़कर बच्चे कंप्यूटर , मोबाइल से खेल खेलते हैं और क्रिकेट, बैडमिंटन, हॉकी, फुटबॉल इत्यादि में अपना मन लगा रहे हैं। बुंदेलखंड के बच्चे अब कसरत, व्यायामों से काफी दूर नजर आने लगे हैं। बुंदेलखंड के बच्चों में खासे प्रसिद्धि रहे कुछ खेल इस प्रकार हैं– आती-पाती, गिल्लू डंडा, चपेटा, अटकन-चटकन दही-चटोकन, हूल गदा, किंचा-चिरंगा, घोर-घोर रानी, कौड़ी के रे कोंड़ी के, चोर-सिपाही, आइस-पाइस, कौड़ा दीवान साई पीछे-पीछे मार खाई, चंदा पौवा, लंगड़ी, घुड़िया पार कबड्डी, गेंद गड़ा, टिक्का, रस्सा-कस्सी, नक्का दुआ, टाई-टाई, कंकड़ जिमौवल, सिलो डंडा, आंख मिचौवल, कुश्ती, कबड्डी, दंगल इत्यादि।

बुंदेलखंड के बारे में अगर समग्रता में बात की जाए तो बहुत सारे बिंदुओं को यह उद्धरण स्पर्श करता है। "शौर्य , श्रृंगार, कला एवं समृद्धि का खंड है– बुंदेलखंड। यहां आज भी प्राचीनतम अनार्य लोक संस्कृति के तत्व जीवित हैं। प्रस्तर-युग के अस्त्र-शस्त्रों, राम के चित्रकूट, शिशुपाल एवं कृष्ण की चंदेरी, यजुर्वेद के कर्मकांड, शिव का कालकूट पान, सांची के बौद्ध स्तूप, विराट का राठ, दतिया की मल्लविद्या, आल्हा-ऊदल एवं परिमालों का

महोबा, चंपत राय व छत्रसाल के ओरछा, चंदेलों की मैथुनरत मूर्तिकला का केंद्र आदि में इस क्षेत्र के खजुराहो में पौराणिकता-ऐतिहासिकता समाहित है। बाल्मीकि, जाबालि, वेदव्यास, भवभूति जैसे ऋषियों से लेकर केशव, पद्माकर, बिहारी, मतिराम, भूषण, वृंदावन लाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त जैसे साहित्यकारों एवं तानसेन, कंदऊ सिंह जैसे कला मर्मज्ञों, लोक-नायक हरदौल जू, प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम महिला लक्ष्मीबाई,लोक गायक ईसुरी ,नर्तकी प्रवीण राय व रजऊ से लेकर रुस्तमे-हिंद, गामा पहलवान, हॉकी के जादूगर ध्यानचंद आदि से गौरवान्वित है। विंध्याचल एवं सतपुड़ा की श्रेणियां, घने जंगल–कटीली झाड़ियां ये इस अंचल को दुर्गम बना देती हैं। चंबल, तमसा, गोदावरी ,यमुना ,नर्मदा ,सुनार नदियां प्रमुख है। इसको मध्य प्रदेश में भिंड, मुरैना, ग्वालियर, दतिया शिवपुरी, गुना, विदिशा, सागर, नरसिंहपुर, जबलपुर, दमोह, पन्ना, छतरपुर, टीकमगढ़ एवं उत्तर प्रदेश में झांसी, हमीरपुर, जालौन, मैनपुरी, इटावा जिले सम्मिलित हैं। हिंदी साहित्य के रीतिकाल का विकास प्रमुख रूप से बुंदेलखंड में हुआ।"[9]

हालांकि यहां स्पष्ट करना जरूरी है कि बुंदेलखंड में आधिकारिक तौर पर मैनपुरी और इटावा को शामिल नहीं किया गया है। हमारा देश पारंपरिक लोक कलाओं में दक्ष है और बुंदेलखंड भी इनमें पीछे नहीं है| पहले बात प्रादेशिक पारंपरिक नाट्य की और बाद में बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा की।

1.2 भारतीय लोकनाट्य की परंपरा

"परंपराशील नाट्य और रंगमंच की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हमें इसके वर्तमान रूप का आधार ज्ञात हो जाता है। स्पष्ट है कि इस नाट्य और रंगमंच में दो हजार वर्षों की नाट्य-परंपरा के खंडित अंश यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। एक ओर तो भरत द्वारा निर्देशित पूर्वरंग के तत्व और दूसरी ओर जयदेव द्वारा प्रचलित संलाप और सूत्रधार की शैली, एक ओर भागवत धर्म की अवतारी पुरुषों की कथाएं और दूसरी ओर मुगल-दरबार के परिहास और विनोद, एक ओर हस्तमुक्तावली में दी गई मुद्राओं का चमत्कार, दूसरी ओर सत्रहवीं शताब्दी की वेश-भूषा। मार्के की बात

[9] उत्तर मध्य क्षेत्र की लोक संस्कृति, जयप्रकाश राय, डॉक्टर योगेंद्र प्रताप सिंह, द्वितीय संस्करण 1999, प्रशासन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 171

यह है कि इन विभिन्न तत्वों से मिश्रित शैलियां अपने निजत्व का अब तक निर्वाह कर सकीं और उनमें से कुछ ने अपनी परंपरा अक्षुण्ण रखी।"[10]

इसमें जगदीश चंद्र माथुर पूर्वरंग, संलाप, सूत्रधार की शैली, मुगल दरबार का हास-परिहास, 17वीं शताब्दी की वेशभूषा इत्यादि का वर्णन करते हैं।

भारत का शायद ही कोई ऐसा राज्य होगा जहां खेल-तमाशे, नाटक-नौटंकी न होते हों अर्थात संवाद आधारित परंपराएं अलग-अलग नाम से राज्यों में , संपूर्ण भारत में मिल जाएंगी। कहीं-कहीं सांस्कृतिक जागरूकता ज्यादा है इसलिए; कम और मुखर यह दोनों तरह के प्रकार आपको भारतीय लोकनाट्य परंपरा में देखने को मिलेंगे। पारंपरिक लोकनाट्य समाज में विभिन्न अवसरों पर खेले जाते रहे हैं। इसकी एक विस्तृत परंपरा संपूर्ण भारत में व्याप्त है। कहीं-कहीं पर कम हो गई है। कहीं-कहीं पर अभी भी इसको संरक्षण मिल रहा है और बहुत सारी नाट्य मंडलियां इस लोकनाट्य परंपरा को जीवित रखे हुए हैं। बहुत सारे परिवार पीढ़ी दर पीढ़ी लोकनाट्य परंपरा को बचाए हुए हैं। लोकनाट्य की पृष्ठभूमि ग्राम जीवन है। इसमें ग्रामीण परिवेश को अत्यंत कलात्मक और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता रहा है। सामाजिक, धार्मिक, अनुष्ठानों इत्यादि से गुजरते हुए मेला जैसे अवसरों पर पारंपरिक ग्रामीण पृष्ठभूमि वाला लोकनाट्य खेला जाता है। ग्रामीण ऐसे अवसर अपने व्यस्ततम कृषक मजदूर जीवन से निकाल लेते हैं जिसमें वह अपनी थकान, कुंठाएं, पीड़ा, बेचैनी, शोषण, शारीरिक-मानसिक-सामाजिक दबाव, युगीन संदर्भ इत्यादि को लोकनाट्य के माध्यम से व्यक्त करते रहते हैं और उसी में आनंदित प्रफुल्लित और कई तरह के भावों और विभावों में डूब जाते हैं। यह प्रायः गांव-देहातों ,गली-चौपालों का रंगमंच है। इसलिए यह लोकनाट्य है। इन्हीं बातों को एक उदाहरण के माध्यम से आप देखेंगे और विस्तार पूर्वक समझेंगे कि भारतीय लोकनाट्य परंपरा किस प्रकार की है। "मध्ययुगीन भारत के दौरान पारंपरिक नाटक या लोकनाट्य बहुत प्रसिद्ध था। रंग-मंच के इस रूप में नृत्य की विशेष शैलियों द्वारा आम लोगों के जीवन शैली को दर्शाया जाता था। पारंपरिक रूप से स्थानीय भाषा में सृजनात्मकता सूत्रबद्ध रूप में या शास्त्रीय तरीके से नहीं, बल्की बिखरे, छितराये, दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप होती है । जीवन के सघन अनुभवों से जो सहज लय उत्पन्न होती है, वही अंतत: लोकनाटक बन जाती है। उसमें दु:ख, सुख, हताशा, घृणा, प्रेम आदि मानवीय प्रसंग का संयोग होता है।"[11]

---

[10] परंपराशील नाट्य, जगदीश चंद्र माथुर, राष्ट्रीय नाटक विद्यालय, द्वितीय संस्करण 2019, पृ. 54

[11] भारत के प्रसिद्ध पारंपरिक नाटक या लोकनाट्य की सूची, दैनिक जागरण, 2 अगस्त 2018

इस उदाहरण से लोकनाट्य के क्रमिक विकास क्रम को समझा जा सकता है और उसके महत्व से इनकार नहीं किया जा सकता। इसमें लगभग लोकनाट्य को परिभाषित करने की कोशिश की गई है।

लोकनाट्य की उत्पत्ति या विकास किस प्रकार हुआ होगा? इस संबंध में विद्वान अपनी राय स्पष्ट तरीके से नहीं रख पाते हैं; बल्कि, अनुमान आधारित बातें कहते हैं–"लोकनाट्य परम्परा का जन्म तो मानव जाति के ज्ञात इतिहास से पूर्व अज्ञात सुदूर के गहन अतीत में हुआ होगा, तब उसके काल का निर्धारण, कोरे सिद्धांतों और अटकलों का विषय ही हो सकता है, किसी निश्चित और सटीक प्रमाण के अभाव में विद्वानों के निष्कर्षों को अपने-अपने अनुमान मानना चाहिए। "[12]

हमारे देश में लोगों ने एक ऐसा चिंतन विकसित कर लिया है कि हर चीज का ठीकरा वह विदेशी आक्रांताओं, भारतीय मुसलमानों, अंग्रेजों के माथे फोड़ देते हैं। ऐसा लगता है कि इसके पूर्व अर्थात मुसलमानों के पूर्व भारत में सब चंगा ही चंगा था। कोई तोड़फोड़ नहीं थी? यही हाल यहां के संस्कृत नाटक, लोकनाट्य और कलाओं के विषय में भी लोग लिखने से बाज नहीं आते हैं। जरा इस कथन को देखिए–"11वीं-12वीं सदी में विदेशी आक्रमण एवं आतंरिक विद्रूपताओं के कारण संस्कृत नाटकों और भारतीय शास्त्रीय रंगमंच का ह्रास होना आरम्भ हुआ, उस समय राज्याश्रय के अभाव के कारण भारतीय नाट्य, नृत्य-संगीत आदि केवल मंदिरों तक ही सीमित होकर रह गए । भरतनाट्यम, ओडिसी, कुटियअट्टम, कथकली, अंकिआनाट आदि नृत्य एवं नाट्य-शैलियाँ इन्हीं कुछ शेष रही कलाओं एवं नाट्य-शैलियों का जीवंत उदाहरण है। "[13]

लोकनाट्य के बारे में विद्या सिन्हा मध्यकाल को केंद्र में रखती हैं। लोकनाट्य का वह वर्गीकरण भी करती हैं। एक तरह से उन्होंने लोक नाटक को परिभाषित करने की भी कोशिश की है। कुल मिलाकर इन्होंने लोकनाट्य को नृत्य प्रधान(रास), हास्य प्रधान नाट्य(भांड़), संगीत प्रधान कथाबद्ध लोकनाट्य(नौटंकी, भगत, माच), नाट्य वार्ता प्रधान में विभाजित किया है। "नाट्यशास्त्र की समृद्ध प्राचीन परंपरा के बाद मध्य युग में भक्तिकाल में राम और कृष्ण की लीलाओं के द्वारा लोक भाषा में लोकनाट्य का प्रारंभ हुआ।

---

[12] रंग लोक : भोजपुरी का लोकधर्मी नाट्य, संपा. डॉ आद्याप्रसाद द्विवेदी और अशोक मिश्र, पृ. 47

[13]भारतीय लोक नाट्य-परंपरा और 'बिदेसिया', तुहिना चटर्जी, साहित्यसेतु ई-पत्रिका, वर्ष 11, अंक 63, मई जून 2021

लोकनाट्य की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में मौजूद है। लोक के जीवन से लोकनाट्य का घनिष्ठ संबंध है। लोक जीवन में उत्सवों, अवसरों, मांगलिक कार्यों या शुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से भी इनका अभिनय किया जाता है। लोकनाट्य को हम प्रधानतया दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—

1.प्रहसनात्मक 2. नृत्यनाट्यात्मक(डांस ड्रामा)

प्रहसनात्मक नाटक में जनमन के अनुरंजन के लिए किसी ऐसी घटना को अभिनय का विषय बनाया जाता है जिसे देखकर या सुनकर दर्शक हंसते-हंसते लोट-पोट हो जाएं। लखनऊ तथा बनारस के भांड़ ऐसे प्रहसनों के अभिनय में अत्यंत प्रवीण समझ जाते हैं। इसमें नृत्य का अभाव रहता है। नट अपनी वाणी तथा अभिनय की मुद्रा से जनता के हृदय में हास्यरस का संचार करते हैं। दूसरे प्रकार के लोकनाट्य वे हैं जो किसी सामाजिक घटना, समस्या, सामाजिक समस्या या पौराणिक घटना को लेकर अभिनीत किए जाते हैं। इनमें संगीत,नृत्य तथा अभिनय का तीनों का संयोजन रहता है।"[14]

जगदीश चंद्र माथुर ने लोक नाटक से ज्यादा परंपराशील लोकनाट्य शब्द को समीचीन पाया। वह लिखते हैं कि "इन क्षेत्रीय और जनप्रिय नाटक-शैलियों को प्रायः लोक नाटक के नाम से आजकल संबोधित किया जाता है। किंतु, लोकनाटक शब्द अंग्रेजी के 'फोक ड्रामा' से उधार लिया गया है। 'ऑक्सफोर्ड कंपेनियन आव ड्रामा' के अनुसार 'फोक प्ले', यानी लोकनाटक ऐसा नाट्य-मनोरंजन है जो ग्रामीण उत्सवों पर ग्रामवासियों द्वारा स्वयं प्रस्तुत किया जाता है और प्रायः अशिष्ट और देहाती होता है। यूरोप के लोक-नाटक आदिम जीवन में लोकोत्सवों में प्रारंभ हुए थे। उनमें मृत्यु, पुनर्जन्म तथा स्थानीय महापुरुषों के विवरण, नटों के खेल इत्यादि होते थे। इंग्लैंड में 'ममर्स प्ले' को लोक नाटक कहा जाता है।

स्पष्ट है कि भारतवर्ष की क्षेत्रीय नाट्यशैलियां प्रायः इस प्रकार के लोक-नाटकों से कहीं ऊंचे स्तर के प्रदर्शन और साहित्य से संपन्न है। अतः,उन्हें लोकनाटक की संज्ञा देना समीचीन नहीं जान पड़ता। उनमें कई शैलियां कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। मेरे विचार में इन शैलियों को 'परंपराशील नाट्य' कहना अधिक उपयुक्त होगा"[15]

लोकनाट्य की कुछ विद्वानों ने परिभाषाएं भी दी हैं; जिन्हें भी एक झलक देख लेना चाहिए। डॉ धीरेंद्र वर्मा ने लोक नाट्य के विषय में लिखा है कि "इसमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते है। यह ग्रामीण जनता का

---

[14] भारतीय लोक साहित्य परंपरा और परिदृश्य, विद्या सिन्हा, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, द्वितीय संस्करण 2016, पृ. 42-43

[15] परंपराशील नाटक, जगदीश चंद्र माथुर, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दूसरा संस्करण 2019, पृ. 17

नीति शास्त्र है। लोकोक्तियां मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।"[16]

डॉ श्याम परमार ने लोकनाट्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि "लोकधर्मी रूढ़ियों की अनुकरणात्मक अभिव्यक्तियों का वह नाट्य रूप जो अपने-अपने क्षेत्र के लोक-मानस को आल्हादित, उल्लसित एवं अनुप्राणित करता है, लोकनाट्य कहलाता है। "[17]

जगदीश चंद्र माथुर, लोकरंग मंच और शास्त्रीय रंगमंच में अंतर करते हुए बताते हैं कि "लोक–रंगमंच और नागरिक अथवा साहित्यिक रंगमंच में मुख्य अंतर यह है कि जहां लोक–रंगमंच जन साधारण, विशेषतः देहाती जनता के दैनिक जीवन की एक प्रक्रिया, एक रंग अंग रहा है और सामाजिक उद्देश्यों का एक माध्यम, वहीं नागरिक रंगमंच वर्ग-विशेष के लोगों के मनोरंजन का साधन, उनकी फुर्सत के क्षणों का मन बहलाव। दूसरे शब्दों में, लोक–रंगमंच लोक समाज की देह का अंग है, नागरिक या साहित्यिक रंगमंच उसका बाहरी आभूषण; लोक रंगमंच जीवन की उमंग की स्वाभाविक और अनायास अभिव्यक्ति है, नागरिक रंगमंच कलात्मक और चेष्टा युक्त अभिव्यक्ति"[18]

डॉ श्री राम शर्मा ने लोकनाट्य के बारे में दिलचस्प बातें कही हैं। "लोक जीवन में जितने नाट्य रूप मिलते हैं, वे सब गीतात्मक (गेय) संवादों की परंपरा लिए हैं, इसके आधार पर भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में नाटकों में से तो लोकनाट्य का प्रचलन एवं परंपरा प्राचीन ही होगी, क्योंकि गद्य का आविर्भाव पद्य के बहुत बाद में हुआ। लोक नाटकों में संवाद प्रायः पद्यात्मक ही होते हैं"[19]

डॉ महेंद्र भानावत ने लोकनाट्य के विषय में उसकी उत्पत्ति समझाते हुए, कुछ इस प्रकार अपने विचार रखे हैं। "विविध उत्सवों, अनुष्ठानों, मेलों–ठेलों,वार–त्योहारों तथा धार्मिक संस्कारों पर लोक जीवन अपने बहुरंगे उल्लास में उमड़ पड़ता और नृत्य की अदायगियों एवं संगीत की स्वर लहरियों में भाव विह्वल हो, अपने समग्र जीवन की सुखांत शाश्वतता को साकार हुआ देखता। धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास हुआ और मनोविनोद के ये

---

[16]स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक साहित्य में लोकतत्व, शैलजा भारद्वाज, भारतीय कला प्रकाशन दिल्ली (इंडिया) प्रथम संस्करण 1998, पृ. 10 में उद्धृत

[17] वही, पृ. 11 में उद्धृत

[18] वही, पृ. 12 में उद्धृत

[19] वही, पृ. 15 में उद्धृत

साधन स्थायित्व ग्रहण करने लगे तो विविध भाव भंगिमाओं ने इन्हें एक नई भूमिका दी, जो आगे जाकर लोकनाट्य के रूप में विकसित हुई।"[20]

दरअसल हम जिसे लोकनाट्य परंपरा कह रहे हैं; उसे जगदीश चंद्र माथुर और नेमीचंद्र जैन तथा अन्य विद्वान पारंपरिक नाट्य कहना ज्यादा पसंद करते हैं। जगदीश चंद्र माथुर ने आर्य और द्रविड़ संस्कृति के नाट्य मेल को अपनी पुस्तक में इस प्रकार वर्णित किया है– "लगभग इन सभी शैलियों में किसी-न-किसी प्रकार आर्य संस्कृति के साथ आर्येतर द्रविड़ और आदिम जातियों की संस्कृति को जानबूझकर शामिल किया गया है। पूर्व रंग में मृदंग का निर्दोष और सामूहिक नृत्य, किरात, हिरण्यकशिपु तथा दैत्य पात्रों का सविस्तार प्रत्यक्षीकरण और नाना देवी-देवताओं का पूजन- ये सब इसी समीकरण पद्धति के परिणाम हैं। मध्य युग में जब भागवत धर्म के प्रचार के लिए नाटक को माध्यम बनाया गया, तब तो विशेष सावधानी और उदारहृदयता के साथ शंकरदेव इत्यादि तत्कालीन संतों ने हरिजनों एवं वन्यजातियों की कलाओं और कतिपय प्रथाओं को अपने नाट्य में सम्मिलित किया। शायद यही कारण है कि आज दिन देश के अनेक भागों में यह परंपराशील नाट्य शूद्र और अर्द्ध-आदिम जातियों द्वारा बड़े प्रेम के साथ एक धरोहर के रूप में चालू किए जाते हैं।"[21]

इसमें जगदीश चंद्र माथुर ने दलित, आदिवासी और पिछड़े वर्ग के लोगों के योगदान को भारतीय लोकनाट्य परंपरा में रेखांकित किया है।

नेमीचंद जैन भारतीय पारंपरिक रंग परंपरा को समझाते हुए लोकनाट्य के विकास क्रम हमारे सामने रखते हैं। "अगले एक हजार वर्ष तक रंगकार्य मुख्यतः संस्कृत भाषा में नहीं, देश की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में हुआ, जो या तो दक्षिण की तमिल, कन्नड़ आदि भाषाओं की तरह पहले से ही सृजनात्मक रचना का माध्यम बनी हुई थीं ,या जो इन्हीं दिनों प्राकृतों और अपभ्रंश से निकलकर, विकसित होकर, अपना अलग विशिष्ट रूप ग्रहण कर रही थीं। यह नहीं कि संस्कृत भाषा में रंगकर्म पूरी तरह एकदम खत्म हो गया। देश के विभिन्न भागों में जयदेव के गीत गोविंद पर आधारित संस्कृत में ही, या केरल में कुडिआट्टम की भांति संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओं के मिले-जुले, नाट्य-प्रयोग लगातार होते रहे। पर एक तो ,इनकी संख्या शुरू से कम ही थी, और दूसरे ,बाद में यह धीरे-धीरे लगभग बंद हो गए और हर क्षेत्र में प्रायः सारा रंगकार्य क्षेत्रीय भाषाओं में ही होने लगा ,जो आज तक जारी है।…

---

[20] स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक साहित्य में लोकतत्व, शैलजा भारद्वाज, भारतीय कला प्रकाशन दिल्ली (इंडिया) प्रथम संस्करण 1998, पृ. 17 में उद्धृत

[21] परंपराशील नाट्य, जगदीश चंद्र माथुर, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, द्वितीय संस्करण 2019, पृ. 172

संस्कृत भाषा का केंद्रीय महत्व और वर्चस्व समाप्त हो गया था और विभिन्न प्रदेशों की अपनी भाषाओं, विशिष्ट साहित्यिक, सामाजिक ,सांस्कृतिक और विशेष रूप से रंग मूलक प्रवृत्तियों, धाराओं और पद्धतियों की प्रमुखता की प्रतिष्ठा होने लगी थी। अब पहली बार रंगकार्य के क्षेत्र में एक सूत्रता के साथ-साथ देश की सांस्कृतिक विविधता और समृद्धि भी उभरकर आ रही थी।"[22]

देवेंद्र राज अंकुर भारतीय लोकनाट्य परंपरा को एक हजार से 17वीं शताब्दी तक ले जाते हैं और वह कहते हैं कि "एक हजार से सत्रहवीं शताब्दी तक हमें रंगमंच की एक बिल्कुल नई धारा का जन्म और विकास दिखाई पड़ता है जिसे हम लोक अथवा पारंपरिक नाट्य परंपरा के नाम से जानते हैं। ऐसा भी नहीं है कि लोक की यह नाट्य-परंपरा हमारे यहां पहली बार दिखाई पड़ती है।... किसी भी शास्त्र अथवा शास्त्रीय नाट्य-परंपरा के आविर्भाव से पूर्व एक लंबी लोकनाट्य परंपरा हुआ करती है।"[23] शास्त्र को महत्वपूर्ण बनाता है लोक। लोक से ही नियमबद्धता, सिद्धांतिकी जब तैयार हो जाती है तो फिर वह शास्त्र का रूप ले लेती है।

अब हम कुछ व्यापक रूप से भारतीय लोकनाट्य परंपरा के रूपों को क्रमवार जानेंगे। पारंपरिक लोक नाटक सहज ढंग के होते हैं। यह लोक नाटक अंगों और शब्दों के माध्यम से गतिशीलता और वक्रता लाने का काम करते हैं। इन लोक नाटकों में अनगढ़ता, स्थानीयता एक प्राण तत्व के रूप में आती है। पारंपरिक लोक कलाएं जड़ता और शास्त्रीय रूढ़ियों से लड़ने में और विजय पाने में सक्षम हैं। पारंपरिक भारतीय नाटकों में बहु-आयामिता के दर्शन होते हैं। इन नाट्य शैलियों में यथास्थितिवाद से निपटने की अपूर्व क्षमता है तथा यह आम नागरिकों के अंतर्मन को व्यक्त करने में सहज हैं। इन प्रदर्शनों से उनके सामाजिक दृष्टिकोण और वैयक्तिकता के दर्शन होते हैं। जिस तरह से शास्त्रीय नाटक लोक नाटक से बहुत कुछ लेते हैं। उसी तरह से शास्त्रीय नाटकों का प्रभाव भी लोक नाटकों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। हालांकि, यहां यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि शास्त्रीय रूप का प्रभाव यदि लोक नाटक पर पड़ता है तो उसमें क्षेत्रीय, स्थानीय और लोक रूप आ जाते हैं । लोक और शास्त्र में पारस्परिक आदान-प्रदान एक हद तक होता रहता है। भारतीय पारंपरिक लोक नाटकों में प्रवेश नृत्य, कथन नृत्य तथा दृश्य नृत्य दिखाई पड़ते हैं। दृश्य नृत्य आपको बिहार के बिदापत नाच में देखने को मिल जाएगा। कथन नृत्य का उदाहरण आपको गुजरात की भवाई लोकनाट्य शैली में देखने को मिलेगा। इसी तरह प्रवेश नृत्य कश्मीर के भांडजश्न में मिल जाएगा। इसके अलावा कुटियाट्टम् और अंकीआनाट में प्रवेश नृत्य अपने जटिल स्वरूप और अत्यंत कलात्मक ढंग का मिलेगा।

---

[22] रंग परंपरा, नेमीचंद जैन, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2020, पृ. 28

[23] रंगमंच की कहानी, देवेंद्र राज अंकुर, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2021, पृ. 57

भारतीय लोक नाटक में परंपरागत निर्देशों का प्रयोग गंभीर दृश्य में किया जाता है तथा प्रत्युत्पन्नमति से संवाद गढ़ लेना, समसामयिक विषयों पर टिप्पणियों के लिए किया जाता है। यह आपको विदेशिया, जात्रा, कीर्तनिया, बिदापतनाच, अंकीआनाट तथा बुंदेली स्वांग में देखने को मिलेगा। कुछ और भी भारतीय लोक नाटक की विशेषताएं देखी जा सकती हैं। भारतीय लोक नाटक में पात्रों का प्रवेश और प्रस्थान ज्यादातर अनौपचारिक है। इसके अलावा मंच पर सीधा प्रदर्शन होता है यानी कि ज्यादा भूमिका की जरूरत नहीं है। मंच पर ही कलाकार भूमिका निभाकर बैठ जाते हैं या चले जाते हैं तो यहीं दृश्यांतर हो जाता है। नाटकीय व्यापार की पूर्ण इकाइयां इसमें आप देख सकते हैं। इन नाटकों के गठन में शिथिलता देखने को मिलती है। एक खास तरह का लचीलापन होता है। दो और महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं कि अभिनेता और प्रेक्षक के बीच दूरियां बहुत कम है। संवाद की स्थिति ज्यादा है। दूसरी बात यह है कि इन लोकनाट्यों में स्थानीयता, स्थानीय गाथाओं, ऐतिहासिक चरित्रों को स्थान मिलता है जैसे बुंदेलखंड की नौटंकी में लाला हरदौल, फूलन देवी, झांसी की रानी और छत्रसाल इत्यादि चरित्रों को उभारने में मदद मिली है। लोकनाट्य को प्रभावी बनाने के लिए पात्र मंच पर अपने स्थान बदलते रहते हैं। लोकनाट्यों में प्रायः ऊंचे स्वरों में संवाद चलते हैं। इन लोक नाटकों में लिखित सामग्री नहीं होती है। यद्यपि, बाद के दिनों में नौटंकी और जात्रा में जरूर कुछ लिखित प्रयास भी हुए हैं। इन लोक नाटकों में स्मृति और आशु संवादों से प्रदर्शन आगे बढ़ता है। भारत की लोकनाट्य परंपरा में विदूषक लगभग अनिवार्य है। उनके नाम स्थानीयता, प्रदेशिकता के स्तर पर अलग-अलग हो सकते हैं लेकिन लोकनाट्य में उनकी उपस्थिति अनिवार्य है। लोकनाट्य के पात्र प्रायः अनपढ़ या कम पढ़े लिखे होते हैं। एक उदाहरण से आप भारतीय नाटक की परंपरिकता को समझ सकते हैं। लोक नाटकों पर औद्योगिकरण, औद्योगिक सभ्यता, नगरीकरण तथा फिल्मों का काफी प्रभाव पड़ा है। "भारतीय समाज में पारंपरिकता का विशेष स्थान है। परंपरा एक सहज प्रवाह है। निश्चय ही, पारंपरिक कलाएं समाज की जिजीविषा, संकल्पना, भावना, संवेदना तथा ऐतिहासिकता को अभिव्यक्त करती हैं। नाटक अपने आप में संपूर्ण विधा है, जिसमें अभिनय, संवाद, कविता ,संगीत इत्यादि एक साथ उपस्थित रहते हैं। परंपरा में नाटक क्रीड़ा की तरह है। यह एक तरह की लीला है।

लोकजीवन में गेयता एक प्रमुख तत्व है। सभी पारंपरिक भारतीय नाट्य शैलियों में गायन की प्रमुखता है। यह जातीय संवेदना का प्रकटीकरण है। पारंपरिक रूप से लोक की भाषा में सृजनात्मक सूत्रबद्ध रूप में या शास्त्रीय तरीके से नहीं, अपितु बिखरे, छितराये, दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप होती है। जीवन के सघन

अनुभवों से जो सहज लय उत्पन्न होती है, वही अंततः लोक नाटक बन जाती है। उसमें दुःख ,सुख ,हताशा घृणा, प्रेम आदि मानवीय प्रसंग आते हैं।"[24]

अब हम भारतीय लोकनाट्य परंपरा के कुछ प्रमुख लोक नाट्यों की संक्षेप में प्रमुख विशेषताएं बताते हुए चर्चा करेंगे। इस प्रकार हम देशव्यापी लोक नाटक को समझने का प्रयास करेंगे। इस कड़ी में हम पहले 'भांड-पाथर' का जिक्र करते हैं। यह लोक नाटक पंजाब, कश्मीर में होता है जिसमें, भांड का मतलब है- मसखरा, विदूषक। इसमें आपको नृत्य, संगीत और नाटक तीनों का मणिकांचन संयोग देखने को मिलेगा। इस लोकनाट्य में व्यंग्य, मजाक, नकल, हंसने-हंसाने की परंपरा देखने को मिलती है। इसमें भाग लेने वाले नर्तक, वादक, गायक, अभिनेता सभी भांड कहलाते हैं। इसको शुरू करने वाले का नाम 'सदफ भांड' बताया जाता है। यह कृषि करने वालों का प्रमुख पारंपरिक लोकनाट्य है। 15वीं शताब्दी में सुल्तान जैनुल आबिदीन के राज में इनका बहुत प्रदर्शन होता था। यहां तक की कश्मीर के राजा अलीशाह और हसन शाह ने कर्नाटक संगीत के विद्वानों को अपने यहां बुलाया था। इस लोक नाटक में भांड अपने ईष्ट देवी देवताओं की आराधना भी करते हैं। मई-जून के महीने में फसल आने के बाद इनका आयोजन होना प्रारंभ होता है। इसमें नकल पर बल ज्यादा है। इसे 'भांड जश्न' कहते हैं। इसमें राजा तथा कुलीन लोगों का मजाक उड़ाया जाता है। इसमें प्रदर्शित कथा पूर्व लिखित ,पूर्व निर्धारित नहीं होती है। इसमें दो भांड, दो पुरुष स्त्री वेश में तथा दो सुरनाई वादक, ढोल बजाने वाले और नगाड़ा वादक होते हैं। इसमें एक 'शिकारगा' भांडजश्न की चर्चा है। इसमें जानवरों के मुखौटों का प्रयोग होता है।

दूसरे भारतीय लोकनाट्य में हमने 'स्वांग' को रखा है। यह भी हरियाणा और पंजाब का लोकनाट्य है। स्वांग का अर्थ ही यही होता है कि वेशभूषा और सज्जा के आधार पर अपना रूप बदलकर अभिनय करना तथा लोगों को आभास भी न होने देना कि कुछ हो रहा है। तीज-त्योहारों, विवाह उत्सव पर इनका प्रदर्शन होता है। सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक विषय प्रसंगों पर यह किए जाते हैं। नौटंकी से इसकी समानता स्थापित की जा सकती है। इसमें नगाड़ों और ढोलों की प्रधानता है। इसके अलावा शहनाई, सारंगी, हारमोनियम और मंजीरे का भी इसमें विशेष तौर पर महत्व है। इसमें कुछ कथा गायन तथा कुछ का नाटकीय रूप प्रस्तुत किया जाता है। धार्मिक स्थलों पर इनका आयोजन न होकर के गांव के मोहल्लों, चौराहों , चबूतरों पर इनके प्रदर्शन होते हैं। एक दो कलाकार ही अनेक भूमिकाओं में बारी-बारी से उतरते हैं। सवाल-जवाब, हंसी-मजाक, हास्य-व्यंग इसके प्रमुख चरण हैं। पुरुष ही

[24] भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियां -1, सेंटर फोर कलचरल रिसोर्सेस एंड ट्रेनिंग, न्यू दिल्ली, बृजबासी आर्ट प्रेस 2011

इसमें स्त्री बन जाते हैं। इसमें भाव, मुद्राएं, संवाद, लोकगीत सभी ग्रामीण प्रकृति के होते हैं। अब तो इनमें फिल्मी गीत भी गाए जाने लगे हैं तथा अंग्रेजी के शब्दों को तोड़-मरोड़ के भी प्रस्तुत करने की परंपरा चल पड़ी है।

इस क्रम में अब हम नौटंकी के विषय में बात करेंगे। नौटंकी उत्तर भारत की प्रमुख नाट्य शैली रही है। खास तौर से हाथरस, कानपुर, लखनऊ इत्यादि इसके प्रमुख केंद्र रहे हैं। नथाराम गोड़ और श्री कृष्ण पहलवान जैसे प्रसिद्ध नौटंकी के निर्देशक हो गए हैं। नौटंकी को 'सांगीत' के रूप में भी जाना जाता है। यद्यपि यह कहना ज्यादा सही है कि नौटंकी 19वीं-20वीं शताब्दी में ज्यादा ही लोकप्रिय हुई। नौटंकी में श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। इसमें भगत, स्वांग, नकल इत्यादि रूप देखने को मिलते हैं। ऐतिहासिक, पौराणिक तथा स्थानीय नायकों पर भी नौटंकी के खेली जाती है तथा समसामयिक विषयों को भी अब इसमें उठाया जाने लगा है। नौटंकी में कव्वाली, गजल, ठुमरी, लोक गायन देखने को मिलता है। अगर इसकी भाषा पर बात की जाए तो इसमें उर्दू, फारसी के शब्द तो मिलते ही हैं साथ ही यह बुंदेली, अवधि, खड़ी बोली, भोजपुरी इत्यादि में भी देखने-सुनने को मिल जाएगी। उर्दू, अरबी, फारसी से मध्यकालीन परिवेश, राजशाही, सामंतशाही जीवंत हो उठती है। नौटंकी में दोहे, चौबोला, लावनी, मांड, बहर-ए-तबील, छप्पय, दौड़,क्षेत्रीय-स्थानीय लोकगीत, लोक धुनों इत्यादि छंदों का प्रयोग किया जाता है। किस्सा-ए-लैला मजनू, जाने आलम, भक्त पूरणमल, लाला रुख, प्रेम कुमारी, आंखों का जादू, लाला हरदौल, झांसी की रानी, छत्रसाल, फूलन देवी, अमर सिंह राठौड़, सुल्ताना डाकू, वीर अभिमन्यु, राजा हरिश्चंद्र, भरथरी, ऊदल का ब्याह, वाह री किस्मत, मोरध्वज, सियाह पोश, शीरीं फरहाद, इंदर सभा, रानी दुर्गावती, महाराणा प्रताप, पृथ्वीराज चौहान, शंकर-पार्वती विवाह, नारद मोह, सती सावित्री, लाखन का गौना, मलखान का ब्याह, काबुल पर चढ़ाई, त्रिया चरित्र इत्यादि[25] पर भी नौटंकियां होती रही हैं। नौटंकी पर पारसी रंगमंच का भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। कहने का अभिप्राय यह है कि पर्दों का प्रयोग, सहायक कथानक एवं गद्य संवाद, उच्चारण की शुद्धता और 'बहर ए तबील' छंद इसमें शामिल हुये। इसके अलावा लखनऊ की नौटंकी में वेशभूषा अर्थात वस्त्र सज्जा पर काफी जोर दिया गया। जबकि हाथरस की नौटंकी अपनी गायन शैली के लिए सुविख्यात रही है। हाथरस शैली ब्रजभाषा, लोक गायन और उर्दू के प्रभाव से जुड़ी हुई है। पहले पुरुष कलाकार ही स्त्री चरित्र निभाते थे। नौटंकी का मंच प्रायः खुला होता है और तीन ओर दर्शक बैठते हैं। कभी-कभी पीछे की तरफ पर्दा भी लगाया जाता है जो कि प्रासंगिक होता है। नगाड़ा, ढोलक, पैरों से चलने वाली हारमोनियम, पखावज, सारंगी, टिकारी इसके वाद्ययंत्र हैं। नौटंकी के प्रारंभ होने पर सबसे पहले देवी देवताओं की आराधना की जाती है। जैसा कि जानते हैं कि आराधना सामूहिक होती है। कलाकार एक दूसरे से

[25] लोक नाट्य -नौटंकी : एक विवेचन, नंदल हितैषी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.46,47,48

मिलते हैं। वाद्य यंत्रों और वरिष्ठ कलाकारों गुरु इत्यादि को नमन करते हैं। संवाद, दृश्य वर्णन और अभिव्यंजना के लिए इसमें प्रयुक्त छंद महत्वपूर्ण भूमिका निभातेहैं। जरूरत पड़ने पर पगड़ी, टोपी, मुकुट, किरीट, दाढ़ी, मूंछ, विग तथा सोंटा(चाबुक) कलाकारों के पास होता है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुद्राराक्षस, उर्मिल कुमार थपलियाल यहां तक की अलखनन्दन ने भी 'चंदा बेड़नी' का नौटंकी शैली में प्रदर्शन किया था।

अब बारी है रासलीला की । यद्यपि हम बुंदेलखंड की रासलीला के बारे में विस्तार से लिखेंगे। यहां संक्षेप रूप में वर्णन देखने को मिलेगा। यह मिथकीय नायक श्री कृष्ण पर और उनकी बाल लीलाओं पर आधारित है। उत्तर प्रदेश का ब्रजमंडल इसका स्रोत है लेकिन इसकी व्यापकता अनेक रूपों में देशव्यापी है। रास की लगभग एक हजार साल की परंपरा है लेकिन भक्ति काल में इस पर ज्यादा काम हुआ। इसमें नृत्य और गायन की परंपरा अद्वितीय है और संवाद अर्थात अभिनय भी पद्यमय होते हैं। भावनाओं की कोमलता, सुकुमारता और वात्सल्य रस की अनूठी छटा इसमें देखने को मिलती है। ब्रजमंडल का लोक जीवन साकार रूप धारण कर लेता है। श्री नारायण भट्ट को इसका आरंभ कर्ता माना जाता है यद्यपि और भी नाम इसके आरंभ कर्ता के रूप में माने गए जिनमें नंददास का नाम भी है। इस लीला का आरंभ गोचारण, कालियदमन, सांझी, दान और मान लीला से होता है। रास एक वृताकार नृत्य नाट्य है। राधा-कृष्ण का प्रणय संवेदना के स्तर पर आत्मविभोर करने वाला होता है। इसको कुछ लोग आध्यात्मिक रूप भी दे देते हैं। मंगलाचरण, आरती, नृत्य, झांकी, लीला इत्यादि इसके प्रमुख अंग हैं। रासलीला में शारीरिक अभिनय के साथ-साथ नेत्र संचालन, भंगिमा, पद संचालन, हस्त और मुख मुद्राओं, चलन, हलन , चितवन का खास महत्व है। राधा कृष्ण की मोहिनी मुस्कान, नयनों से नयनों का मिलना, कटाक्षपात, कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा का तो कहना ही क्या। रास मंडल खुले हुए और पटे हुए होते हैं। मुर्दासिन घिसकर मुखमंडल लाल किया जाता है। रोली, चंदन, लंबी बिंदिया लगाकर, काजल, तिकोनी मुकुट का प्रयोग भी रूप सज्जा के लिए होता है। गायन में ही आपको अभिनय संकेत मिल जाएंगे। रासलीला में हारमोनियम, झांझ, मंजीरा, तबला, पखावज, तानपुरा, करताल इत्यादि वाद्य यंत्र होते हैं। आजकल तो रासलीला में शास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय नृत्य कत्थक इत्यादि का इस्तेमाल धड़ल्ले से हो रहा है। रासलीला में पदों और गीतों का उपयोग धार्मिक भावनाओं और नैतिकता के विकास में इस्तेमाल किया जाता है। आधुनिक समय में पारसी रंगमंच का प्रभाव रासलीला पर भी पड़ा है और रासलीलाएं चमकती-दमकती चली गई।

अब बारी है राजस्थान और गुजरात में होने वाले 'भवाई' लोकनाट्य की। इसके दो अर्थ बताए जाते हैं-एक भाव, दूसरा चेचक से ग्रस्त (शीतला)। भवाई नवरात्र पर्व और अंबा देवी के मंदिरों में होता है। भवाया समुदाय ने इसे

प्रचारित प्रसारित किया। जयशंकर भेजक 'सुंदरी' , दीना गांधी और रसिकलाल पारिख ने इस लोकनाट्य में नवाचार(वेश नाट्यालेख) किए हैं। 'मैना गुर्जरी' और 'जस्मा ओड़न' इसके प्रसिद्ध प्रदर्शन है। कहते हैं इसके जन्मदाता असिता या असाइत थे जो, गुजरात के मेहसाणा जिले के रहने वाले थे और राजस्थान में नागाजि को इसका जन्मदाता माना जाता है। शुरुआत में भक्ति भावना से ओत-प्रोत तथा बाद में ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, रूमानी प्रसंग पर भवाई लोकनाट्य खेले जाते रहे। अनेक छोटे-छोटे प्रसंग मिलकर भवाई का वेश तैयार करते हैं। इसका नाट्य मंडप खजूर के पत्तों, फूलों से सजाया बनाया जाता है। दीवारों को सजाया जाता है। खंभों से पर्दे लगाए जाते हैं। मिट्टी का घड़ा अर्थात गरबी या मांडवी शक्ति स्थापित होती हैं। अभिनेता, गरबी को नमस्कार और अंबा देवी से आशीर्वाद लेता है। भवाई कलाकार को 'कंचलिया' कहते हैं। हास्य कलाकार को 'रंगलो' कहते हैं। झूठे मियां, चटकी-मटकी, काजोरा मखदान, तेज सेठानी, रामदेव, जय सिंह इत्यादि इसके प्रमुख नाटक 'वेश' हैं। पखावज, बांसुरी, हारमोनियम, सारंगी, मंजीरा, तबला, ढोलक इत्यादि प्रमुख इसके वाद्य यंत्र हैं। भवाई में दोहा, गीत चौपाई, गद्य इत्यादि का मनमोहक प्रयोग होता है। पायजामा, पगड़ी, कमीज इसकी वस्त्र सज्जा है तथा रूप सज्जा के लिए गेरू, हल्दी, कुमकुम, गुलाल, शंख, जिरू, केसर, गोंद, चंदन, चावल के आटे का इस्तेमाल होता है।

अब बात बंगाल और उड़ीसा में पारंपरिक जात्रा लोक नाटक की होगी। इसमें संगीत की प्रमुखता होती है। सामूहिक गीतों द्वारा तथा मृदंग वादन के साथ अभिनय होता है। यह सब खुले मंच या चबूतरो पर होता था। गायक दल इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जात्रा में गौरचंद्रिका का गायन होता है। शुरुआती जात्राओं में नलदमयंती तथा विद्या सुंदर जात्रा का नाम उल्लेखनीय है। अपने आराध्य देव की लीलाएं करते हुए भक्त लोग एक स्थान से दूसरे स्थान जाते थे। यही बाद में जात्रा कहलाई। कृष्ण की लीलाओं का इसमें प्रत्यक्ष प्रभाव है। इसमें पौराणिक कथाएं, समकालीन विडंबनाएं तथा प्रेम कथाओं का समावेश भी समय-समय पर होता रहा है। यह कुल मिलाकर एक हजार साल पुरानी पारंपरिक नाट्य परंपरा है। यह मूलतः जात्रा गान है। संवाद, एकलाप, कविगान का त्रिकोण इसमें दिखाई देता है। इसके अलावा पांचाली (काव्य), कथकता (व्याख्या), कीर्तन, टप्पा जात्रा के ही अंग हैं। इसका प्रमुख गायक वायलिन बजाता है। इसमें खोल और करताल की ध्वनि भी सुनी जा सकती है। रवींद्र नाथ टैगोर ने 'वाल्मीकि प्रतिभा' और 'मायार खेला' नाटकों की रचना यात्रा परंपरा के अंतर्गत ही की है। पुरुष-पात्र ही नारी पात्रों की भूमिका निभाते हैं। अपने नाम के आगे 'रानी' शीर्षक जोड़ लेते हैं। रंग, काजल, लाल रोगन, सफेद सीसा इत्यादि से रूप सज्जा की जाती है। वेशभूषा में पीले, लाल, गुलाबी, नीले वस्त्र पहने जाते हैं। खलनायकों को चमड़े के कपड़े पहनने पड़ते हैं। जात्रा का व्यवसायीकरण भी खूब हुआ है। माथुर शाह ने 20वीं शताब्दी में 'विवेक'

चरित्र इससे संलग्न किया जो नाटक को आगे बढ़ाने और अनिष्ट की सूचना देने तथा अधम चरित्र के प्रति सावधान करने के लिए रचा गया। यह एक तरह का सूत्रधार ही आप समझिए। पूर्वी, विहाग, श्याम कल्याण आदि राग इससे जुड़े हैं। जात्रा नाटक में पूर्व रंग, युद्ध के दृश्य, प्रणय ,लंबे संवाद, निर्वहण, संगीत से सने हुए हैं। तबला, ढोल, शहनाई, वायलिन, बांसुरी, गिटार, करताल, क्लेरेनेट, इसके प्रमुख वाद्य यंत्र हैं।

मध्य प्रदेश में एक लोकनाट्य है जिसका नाम माच है। विद्वान राजस्थान की 'ख्याल शैली' और उत्तर प्रदेश की 'नौटंकी' से इसकी कुछ समानता भी स्थापित करते हैं। कविता और छंद इसकी मुख्य पहचान है। बालमुकुंद गुरु इसके मुख्य आरंभ कर्ताओं में से एक हैं। इनके लिखे सोलह माच बताए जाते हैं। किसी खुले स्थान में माच का खंभा गाड़ा जाता है। कलाकार इसकी पूजा करते हैं। तीन ओर दर्शक बैठते हैं। मंच के एक ओर घड़ा रखा जाता है। मंच को राजमहल का वैभव प्रदान किया जाता है। मंच के दूसरी ओर पहरेदार का स्थान है। इसमें एक झरोखा भी होता है। इस नाटक में प्रदर्शित अगर विषयों की बात की जाए तो पहले पौराणिक कथाओं तथा बाद में प्रेम कथानक, लोक कथात्मक और ऐतिहासिक विषयों को भी इसमें स्थान मिला। माच में चौबदार, भिश्ती, फर्राश के बिना नाटक नहीं होता है। नगाड़े, ढोलक, सारंगी, ताल वाद्य, माच की जान है। इस लोकनाटक में वस्त्र सज्जा भड़कीली होती है।

अब असम के पारंपरिक लोकनाट्य 'अंकिआ-नाट भाओना' की ओर चलते हैं। इसका प्रस्तुति पक्ष ही भाओना है। इसका अर्थ भी भावों को अभिनय द्वारा प्रकट करना लगाया जाता है। शंकर देव इसके प्रवर्तक हैं। बंगाल, असम, उड़ीसा तथा मथुरा में मथुरा-वृंदावन की सांस्कृतिक झलक लिए हुए यह बड़े धूम-धाम से होता है। इसमें कृष्ण-लीला तथा रामायण के प्रसंग उठाए जाते हैं। जन्माष्टमी, नंद उत्सव, ढोल यात्रा, रास पूर्णिमा जैसे अवसरों पर इनके आयोजन होते हैं। किसानी से विश्राम मिलने पर भी अंकीआनाट होते हैं। सूत्रधार संस्कृत, ब्रजबोली, असमिया का प्रयोग करते हैं। यह मठों और अनुष्ठान से जुड़ा हुआ पारंपरिक लोकनाट्य है। जहां प्रस्तुति होती है उसे भाओना घर कहते हैं। इसमें दीवार और पर्दा नहीं होता है। 'थापना' (सिंहासन या मणिकूट) संगीत मंडली जिसे 'गायन-बायन' कहा जाता है। करताल, बड़ा झांज, मंजीरा, मृदंग, रेहरी-गोमुख इत्यादि प्रमुख वाद्य हैं। इसमें पूर्व रंग (धेमाल), सूत्रधार का प्रवेश, मुख्य नायक के प्रवेश के साथ प्रवेश गीत तथा सफेद चादर खींच कर पूर्व रंग की समाप्ति की सूचना इसका एक क्रम बनता है। भाओना में नृत्य और स्वांग की उपस्थिति है। इसके बड़े नाटक 'नाट' तथा छोटे नाटक 'झुमुरा' कहलाते हैं। छोटे नाटक झुमुरा माधव देव की रचनाएं हैं। पुरुष-पात्र ही स्त्री बनते हैं। आवश्यकता पड़ने पर बाँस के मुखोटे बनाए जाते हैं। इन पारंपरिक लोक नाटकों को दृश्य, प्रसंग, अंकों में विभाजित

नहीं किया जाता बल्कि पूरी कथा के प्रवाह को बनाए रखा जाता है। नृत्य, गीत, अभिनय तथा गद्य का प्रयोग इसमें होता है।

अब महाराष्ट्र की पारंपरिक नाट्य परंपरा की झलक लेते हैं। महाराष्ट्र में प्रमुख लोकनाट्य तमाशा है। यह फारसी भाषा का शब्द है। विद्वानों की माने तो कोरोमंडल तट पर अरब व्यापारियों ने महाराष्ट्र और कर्नाटक के सीमावर्ती क्षेत्रों में जो लोक उत्सव देखे उन्हीं को इंगित करके इन्हें 'तमाशा' कहना शुरू किया। इसके पूर्ववर्ती रूपों की अगर बात की जाए तो इसमें गोंधल, कीर्तन, जागरण तथा लावणी छंद तथा प्रश्नोत्तर-शैली पर संवाद देखने को मिलते थे। इस तमाशा में सूत्रधार को 'सरदार' कहते हैं। पुरुष अभिनेता, संगीतकार और ढोलक का अपना महत्व होते हुए, इसके नृत्य पक्ष को 'मुरकी' नामक अभिनेत्री पेश करती है। इसमें जो स्त्रियां नृत्य करती हैं। तमाशा में भाग लेती हैं। वह महार और कोल्हटी जाति की नर्तकियां होती हैं। तमाशा पारंपरिक लोकनाट्य में मराठी साहित्य, गायन और नाट्य विधा तो है ही इसमें आपको धार्मिक, सामाजिक रीति-रिवाज, अंग-परिचालन, भाव-भंगिमाएं, हस्त-मुद्राओं के भी काल्पनिक और प्रतीकात्मक दर्शन होंगे। इसके प्रसंग लौकिक और स्थानीय होते हैं। इसमें मुरकी नर्तकी कमाल करती है। उसके साज-श्रृंगार में साड़ी चूड़ीदार पजामी जैसी, बालों में वेणी, घुंघरू, गले में कोल्हापुरी साज, हाथों में पाटली, कानों में मोतियों की झालर, नथनी इत्यादि आभूषण होते हैं। यह मुरकियां नृत्य के चमत्कारिक पद विन्यास और नृत्य मुद्राएं दिखाने में कुशल होती हैं। तेल के पारंपरिक दीप जलाकर अथवा बिजली से प्रकाश व्यवस्था होती है। मंच थोड़ा ऊंचा होता है और पीछे पर्दा लगा रहता है। इसके कुछ कलाकारों के नाम गिनाये जा सकते हैं जिन्होंने राष्ट्रव्यापी ख्याति अर्जित की है– नीलू फुले, राम नगरकर, गणपत पाटिल, बिठाबाई नारायण गांवकर, माया जाधव, उषा चव्हाण इत्यादि। तमाशे रात रात भर तक होते हैं। सबसे पहले गणेश वंदना होती है। श्रृंगारिक कथानक 'वग' कहलाते हैं। इसमें धोती, कुर्ता, जैकेट, साफा, नाक में नथनी मराठी वेशभूषा तथा नाल, झांझ, खंजड़ी, ढोलकी इत्यादि वाद्य यंत्र होते हैं। इसका पूर्व रंग 'गण' कहलाता है। वग में गवलण या गौलणि मराठी के कृष्ण-लीला संबंधी धार्मिक रूप हैं। कहने का अभिप्राय है कि पौराणिक प्रसंगों पर भी तमाशे होते हैं। मराठी का जन-समुदाय तमाशों का बहुत शौकीन है। इसमें मराठी लोक-संगीत की झलक मिलने के साथ-साथ शास्त्रीय राग यमन, भैरवी और पीलू का प्रयोग होता है तथा अन्य रागों का भी।

गोवा और कोंकण क्षेत्र में दशावतार की पारंपरिक लोकनाट्य परंपरा है। मिथकीय भगवान विष्णु से यह जुड़ा हुआ नाट्य है। दरअसल, दशावतार की प्रस्तुति भारत में केवल गोवा और कोंकण में नहीं होती। देश के विभिन्न क्षेत्रों, प्रदेशों में यह कथा नाटक के रूप में चलती है। यह भी एक तथ्य है कि 12वीं शताब्दी में जयदेव ने 'गीत

गोविंद' में विष्णु के दशावतारों को नाटकीय रूप देने की सफल चेष्टा की। दशावतारों में भी राम और कृष्ण की लीलाएं छाई रहती हैं। इसमें पूर्वरंग भी होता है। कल्की और बुद्ध के अवतार पर लीलाएं इस प्रदेश में नहीं होतीहैं। कूर्म और वराह अवतार का प्रदर्शन तो होता है लेकिन इनको ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता। इसकी प्रस्तुति मंदिर में की जाती है और मंदिर के देवता को ही यह प्रदर्शन समर्पित होता है। धमाल, मृदंग, मंजीरे की ध्वनि पूर्व रंग में होती है। इस लोकनाट्य में गायन-कला का उपयोग नहीं है। तुड़तुड़े, तंब्री, डफ, खंजरी, ढोलकी, झांझ, तबला इत्यादि इसके प्रमुख वाद्य यंत्र हैं। इस लोक नाटक की वेशभूषा पारंपरिक तथा इसमें मुखोटों का प्रयोग होता है जो कि लकड़ी और कागज के बने होते हैं। इसमें गणेश के मुखौटे का अत्यंत महत्व है। उसकी भक्तगण पूजा करते हैं। इस नाटक में गणेश के साथ-साथ रिद्धि-सिद्धि, मयूर और सरस्वती का भी महत्व है।

कृष्णाट्टम का समय 17वीं शताब्दी और केरल का कल्लिकोट्टा क्षेत्र, राजा मनवाड़ का इससे जुड़ा होना और उनके द्वारा रचित कृष्णागीति कि इसमें बड़ी भूमिका है। नायर-परिवार इसमें अभिनय करते हैं। विशेष वेशभूषा और मंच सज्जा इस नाटक की विशेषता है। इसके प्रदर्शन के समय परिवेश भक्तिमय हो जाता है। इस पारंपरिक नाटक में आठ लीलाएं प्रमुख होती हैं–अंग अवतारम्, कालियमर्दनम्, रास क्रीडा, कंसवधम, स्वयंवरम्, वाण युद्धम्, विविध वधम्, स्वर्गारोहण। इसमें सजावट की उतनी भूमिका नहीं है। इसके प्रारंभ में दीप प्रज्ज्वलन और वाद्य यंत्र बजते हैं। मद्दलम, मंजीरा (एल्तालम) तथा अन्य वाद्य यंत्रों के बाद दो कलाकार मंच पर आते हैं बाकी के कलाकारों के सिर्फ पैर परदों के पीछे दिखते हैं। एक दो लकड़ी के तखत भी होते हैं। एक दो सिंहासननुमा कुर्सियां होती हैं। भू-देवी ने आराधना की कि धरती पर कुकर्म और पाप अधिक हैं इसलिए, भगवान को अवतार लेना चाहिए। इसके कलाकार मुद्रा, अभिनय और संगीत से इसको दर्शाते हैं। श्री कृष्ण की हंसी, खेल और हठ से इसकी शुरुआत होती है। ऐसा भी लोगों में विश्वास है कि संतानहीन लोग इस नाटक को देखकर संतान प्राप्त कर सकते हैं। वासुदेव, भगवान कृष्ण को यशोदा और नंदगोप को सौंप देते हैं। कृष्ण की बाल-लीला और बाल-क्रीड़ा चलती रहती है। बकासुर को मारने का काम कृष्ण करते हैं जो कि पक्षी वेश में होता है। इस कथा के अनुसार ब्रह्मा भी कृष्ण की प्रशंसा नहीं झेल पाते क्योंकि कृष्ण के सखा तारीफों के पुल बांध रहे थे तो ब्रह्मा ने सबको गायब कर दिया तो कृष्ण ने फिर से उनकी सृष्टि की। ब्रह्मा ने अपनी गलती स्वीकार की और कृष्ण से क्षमा मांगी और उनके भक्त हो गए। भगवान कृष्ण को लाल लुंगी, नीले रंग के कुर्ते और सिर पर मुड़ि, जो मोर पंख से बनती है, कलश के आकार का लकड़ी का मुकुट पहने हुए दिखाया जाता है। चेहरे पर चुट्टी होती है। यह चावल, नींबू के रस और पानी से बनाई जाती है। कलाकार की रूप सज़्जा के लिए मुख पर नीलम, मणयोला, चालियम्, पिसा कोयला भी लगाया जाता

है। बालकृष्ण के चेहरे को हरे रंग से रंगा जाता है। कृष्ण कवच के साथ-साथ मोतियों की माला, कमर की पेटी, आभूषणों में पहुंची, कंगन, कान में कुंडल ,माथे पर रंग-बिरंगा तिलक भी लगाते हैं।

मुडियेट्टू भी केरल की नाट्य परंपरा का अंग है। केरल के मलयाली महीने वृश्चिकम् में काली के मंदिर में चेंडा और इलत्तालम् (झांझ) की ध्वनियां सुनाई देती हैं। इसकी शुरुआत श्लोक, वंदना से होती है। इसके बाद शिव और नारद मंच पर आते हैं। नारद, दारिका के पापों का जायजा लेते हैं। इस क्रम में काली और दारिका में युद्ध होता है। दारिका का काली वध कर देती है। यह प्राचीन काल से ही होता चला आया है। यह मूलतः नृत्य ,नाट्य से सुशोभित होता है। विद्वान तो यह भी बताते हैं की कुडियाट्टम् ,कृष्णाट्टम् और कथकली इसी से निकले हैं। यह नाटक भावनात्मकता, उच्च कलात्मक प्रस्तुति और भाव शैली के लिए जाना जाता है। काली को प्रसन्न करने के लिए ही यह सब आयोजन है। एर्नाकुलम जिले से इसकी शुरुआत होती है। बाद में अन्य स्थानों, मंदिरों इत्यादि में भिन्न रूप में यह प्रदर्शित होता है। यह नाटक अनुष्ठान और प्रथाओं से सीधा जुड़ा हुआ है। इसमें धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, बुराई पर अच्छाई की जीत दिखाई जाती है। भद्रकाली के विशाल चित्र की पूजा की जाती है। यदि चरित्रों की बात की जाए तो इसमें दारिका, नारद, शिव, दानवेंद्र, भद्रकाली, कूली तथा कोयंबिदार (नंदीकेश्वर) हैं। लंबे मुकुट, लकड़ी के आभूषण स्वर्णिम आभा लिए हुए रूप सज्जा की जाती है। मरार समुदाय प्रारंभ में इसे करता था लेकिन, बाद में कुरुप समुदाय के लोगों ने भी इसे आगे बढ़ाया।

तय्यम् भी केरल का पारंपरिक नृत्य नाट्य है। तय्यम् शब्द देवम् के लिए इस्तेमाल किया गया है। केरल के लोग अपने पूर्वजों, वीरों की आत्माओं की पूजा करते थे। उन्हीं को श्रद्धांजलि स्वरुप यह नाटक होता है। प्रेत आत्माएं ही देवता मान ली जाती हैं। इसके प्रस्तुतीकरण में ढोल, मंजीरा, कुजल, पेरम्बरा, शंख, चेरूतुती, चेयमंगलम् वाद्य बजाए जाते हैं। इसका तुड़ी(छोटा ढोल) वाद्य यंत्र अनन्य है। इसको बजाने वाला तुड़ीक्कारन कहलाता है। इसमें लय,गति, अंतराल पर विशेष ध्यान दिया जाता है और सावधानी रखी जाती है। इसकी वेशभूषा में कमर में बंधे वस्त्र अरयोट्टा और बांस की खपच्चियों को घेर कर लाल कपड़े से ढांक कर कमर से कसा नृत्य में प्रयोग किया जाता है। इसके सभी पात्र कटकम्, चटकम् नाम की चूड़ियां पहनते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों पायलों को पहनते हैं। कलाकारों के आभूषण नारियल के छिलके तथा मुरिक लकड़ी से बनाए जाते हैं। इसके मुकुट (मुड़ि) काफी बड़े होते हैं। भगवती और क्षेत्रपालन भी यह मुकुट पहनते हैं। इन मुकुटों को बांस की लकड़ी, सुपारी की लकड़ी और सुपारी की पत्तों से, हल्दी, लुग्दी और ताड़ी मिलाकर बनाया जाता है। इस नाटक में चेहरे पर लेखन, चेहरे पर चित्रकारी, पशुओं और फूलों के चित्र इसकी खास विशेषताएं हैं। नारियल का छिलका, पिसे हुए

चावल,कोयला, हल्दी इत्यादि से रंग बनाए जाते हैं। ब्रह्मा के लिए पीला रंग, नीला-हरा विष्णु के लिए, नीला रंग शिव के लिए अनिवार्य हैं। इसमें मुखोटों का प्रयोग भी होता है।

कुट्टियाटम् यह भी केरल की पारंपरिक नाट्य परंपरा का अंग है। मंदिरों से ही इसका विकास माना जाता है। इसका अर्थ मिलजुल कर नृत्य या अभिनय करना माना गया है। संस्कृत की नाट्य परंपरा इसमें दिखाई देती है तथा विदूषक संस्कृत को मलयालम में रूपांतरित करता जाता है। इसे व्याख्यायित करता जाता है। इसमें विशुद्ध पाठ शैलियों तथा शास्त्रीय संगीत के रागों का अत्यंत महत्व है। इसके चरित्र चाक्यार (कलाकार), नांग्यार (स्त्री पात्र) तथा नांब्यार (वादक) कहलाते हैं। इस नाट्य परंपरा में सूत्रधार और विदूषक भी होते हैं जो मुखाभिनय, मुख-मुद्राओं ,नेत्र-प्रक्षेप इत्यादि द्वारा तथा सस्वर पाठ के साथ-साथ हस्त मुद्राओं द्वारा अभिनय को आगे बढ़ाते हैं। मंच (कुटाम्बलम) कहलाता है। वहां दीपक प्रकाश के लिए जलाया जाता है। मंदिर की दीवारों पर पौराणिक दृश्य, रंगमंच को देवस्थान के सम्मुख तथा मंच को केले, पत्तों, नारियल, फूलों से सजाया जाता है। दीपक के पास धान रखी जाती है और मंच पर जल का छिड़काव होता है। एक तरह से अनुष्ठानिक तरह का नाटक इसे आप कह सकते हैं। इसमें नांदीपाठ भी होता है और संगीत की स्वर लहरियों पर सूत्रधार नाचता-गाता हुआ आता है। इसके बाद यंत्रों की बात की जाए तो मिषाव अर्थात दो ढोल, कुझित्ताल, इडक्का, कोमा, कुरूनकुझल, शंख इत्यादि होते हैं। इसमें चारि ,करण, अंगहार अमूर्त रूप से प्रस्तुत होते हैं। पात्र अपने जीवन-चरित्र को बता देते हैं और नाटक शुरू हो जाता है। इसमें रंगबिरंगी प्रतीकात्मक-वेशभूषा और रूप-सज्जा का कलाकार इस्तेमाल करते हैं। इस नाटक की एक और विशेषता यह है कि एक नाटक, एक प्रदर्शन पांच-छः दिनों तक चलता रहता है। इस नाटक का क्रम प्रस्तावन, निर्वाहण, पुरुषार्थम्, विनोदम्, वाचनम्, आशनम्, राज सेवा है। इनके द्वारा सामाजिक रूढ़ियों, अन्याय, सत्ता के दुरुपयोग पर प्रहार किया जाता है। भास का 'बाल चरित्र', 'प्रतिज्ञा योगंधनारायण', हर्ष का 'नागानंद' ,'धनंजय', 'चूड़ामणि' इत्यादि कुटियट्टम् शैली में खेले जाते हैं।

अब बारी है यक्षगान की जो कि मूलतः कर्नाटक में किया जाता है। प्रथम यक्षगान 16वीं शताब्दी का लिखा हुआ माना जाता है। यद्यपि यह तेलुगु भाषा में लिखा गया था। इसका नाम 'गंगा गौरी विलासम' रखा गया था। 17वीं शताब्दी में इसका विकास उत्कर्ष पर पहुंचा और यह कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में भी फैल गया। यक्षगान के प्रसंग कथानक मिथकीय ,पौराणिक होते हैं। जैसे द्रौपदी स्वयंवर, सुभद्रा विवाह, कीचक-वध, लव-कुश युद्ध, बालि-सुग्रीव युद्ध इत्यादि। यक्षगान की रूप सज्जा, वेशभूषा तथा शिरोभूषण सभी चमतकृत कर देने वाले होते हैं। इसके पात्रों को हम चार रूपों में देख सकते हैं– शूरवीर नायक(कौरव-पांडव), रूमानी

चरित्र(गंधर्व ,किन्नर), भयावह देवी-देवता(नृसिंह, चंडी) तथा जनसाधारण(सीता, ब्राह्मण)। यक्षगान की दो पद्धतियां हैं- एक दक्षिणी पद्धति और एक उत्तर की पद्धति। उत्तर की पद्धति बहुत पुराने समय से है। यक्षगान का मुख्य कर्ताधर्ता भागवत अथवा भागवतार कहलाता है; जो पाठ कर्ता, संचालक और कलाकार की भूमिका में आकर घड़ियाल को लकड़ी से पीटता है। गाता है और मंच पर घूम-घूम कर कथा प्रसंग दर्शकों के सामने सुनाता है। भागवत करताल पर बैठता है और हारमोनियम, मंजीरा, झांझ, चंडा बजाने वाले वादक गीत और नृत्य पर संगत देते हैं। चंडा यक्षगान के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण वाद्य यंत्र है । यक्षगान में आर्या छंद का प्रयोग किया जाता है। कहते हैं कि इसमें डेढ़ सौ राग पाए जाते हैं। शिवराम कारंत ने बड़े जतन से इसके लगभग साठ राग इकट्ठे किए हैं। इसमें तीन श्रेणी के राग अर्थात कर्नाटक, हिंदुस्तानी और शुद्ध कन्नड़ संगीत के पाए जाते हैं। यक्षगान में शौर्य, वीरता, रौद्र रूप देखने को मिलता है। इसलिए इसमें सशक्त अंग संचालन, द्रुत गति का नृत्य और पद विन्यास अभिनय और संगीत की तुलना में कहीं अधिक होता है। यक्षगान के पात्रों के चेहरों पर रंगों की रेखाएं खींची जाती हैं। लाल ,काले, सफेद रंगों से वीर और शौर्यपूर्ण दिखाने के लिए गुलाबी-पीले रंग इस्तेमाल होते हैं। गालों, गालों की हड्डियों, ठुड्डी पर गुलाबी रंग लगाया जाता है। यह रंग नारियल के तेल, पानी और चावल और चूने से मिलकर तैयार होता है। काजल भी लगाया जाता है। होंठ लाल किए जाते हैं। ढीला-ढाला पायजामा पहनते हैं। सर पर पगड़ी बांधते हैं। कुछ पात्र चौखानेदार कपड़े पहनते हैं। धोती पहनाई जाती है। आभूषण कमरबंद, बाजूबंद, चूड़ियां, करधनी इत्यादि से पात्रों को सजाया जाता है। लंबे-लंबे बालों का टोपा और मोर के पंख लगे हुए मुकुट भी इसमें इस्तेमाल होते हैं।

अब बारी है तमिलनाडु के पारंपरिक नाटक तेरुक्कुत्तु की। इसका अर्थ सड़क पर किए जाने वाले नाटक से है। इसको मुख्यतः मारियम्मन यानी वर्षा की देवी और द्रौपदी अम्मा के मंदिर उत्सव पर किया जाता है। इसका प्रदर्शन अच्छी फसल और संतान की प्राप्ति के निमित्त भी किया जाता है। कथाओं , पुराणों का प्रदर्शन इसमें होता है। पहले तो इसमें द्रौपदी से संबंधित आठ नाटकों का एक क्रम देखने को मिलता था। अब तो एक रात में ही इसके प्रदर्शन खत्म हो जाते हैं। पहले आठ या नौ रातों तक चलते रहते थे। कार्यक्रम की शुरुआत गणेश वंदना से होती है। गणेश मुखोटे लगाकर तैयार किए जाते हैं। इसमें एक सूत्रधार जो की कट्टियक्कारन कहलाता है। आता है और कुछ राजा, राज्य, राजनीति से जुड़ी बातें बताता है। पात्र अपने परिचय को स्वयं देतेहैं। इसमें दारू-नृत्य भी होता है। इसकी कोई लिखित पांडुलिपि नहीं होतीहै। इसमें थोड़ा बहुत नृत्य भी होता है और शास्त्रीय संगीत का इस्तेमाल भी। इन पात्रों की विशिष्ट वेशभूषा और रूप सज्जा होती है। यक्षगान के मुख्य पात्र का मुकुट सबसे बड़ा होता है।

यक्षगान का खलनायक लाल रंग का इस्तेमाल करता है। काली सफेद बिंदियों से उसका रूप बहुत ही डरावना लगता है। इसके विदूषक को कोमाली कहते हैं। इसके वाद्य यंत्रों में तालम, मद्दलम् और कुरुकुजा इत्यादि का प्रयोग होता है। संगीत, शास्त्रीय व लोक दोनों का मिश्रण होता है। बीच-बीच में स्वांग भी प्रदर्शित कर दिए जाते हैं।[26]

दोड्डाटा उत्तरी कर्नाटक की पारंपरिक लोकनाट्य शैली है। इसमें समसामयिक विषयों के साथ-साथ महाभारत की कहानियां भी अभिनीत होती हैं। मसलन कीचक वध, ब्रभुवाहन, गदा युद्ध इत्यादि। इस नाट्य शैली में बसवन्ना की जीवन शैली भी दिखाई जाती है। दसवीं शताब्दी के कवि रन्न ने गदा युद्ध प्रसंग लिखे। इसके कुछ हिस्सों को इस पारंपरिक नाटक शैली में भी प्रदर्शित किया जाता है। गांव के हनुमान मंदिर के पास में इसका प्रदर्शन होता है। बैलगाड़ी के ऊपर ही मंच बना लिया जाता है जिसे रथ का आकार दिया जाता है और बांस की सहायता से बांध दिया जाता है। इसमें पर्दा भी होता है। इसके पात्रों का प्रवेश बीच के रास्ते से होता है। जबकि रावण का प्रवेश दर्शकों के बीच से होता है। मंच के दरवाजे के पास वाद्य समूह बैठता है। इसका प्रदर्शन रात भर चलता रहता है। इसमें पूर्वरंग, पूजा और आरती होती है। गांव वालों को पहले से प्रदर्शन की सूचना दे दी जाती है। पुरुष ही स्त्री पात्र बनते हैं। ताल, हारमोनियम, तबला इत्यादि से गणेश वंदना होती है। इस तरह के आयोजन गांव के लोग चंदा इकट्ठा करके करवाते हैं। इसका सूत्रधार सारथी कहलाता है। सारथी अभिनय द्वारा पात्रों का परिचय देता है। यह सारथी मंच पर नाटक खत्म होने तक बना रहता है। सारथी हंसी-मजाक नहीं करता। इसका मजाक भी गंभीर होताहै। सभी कलाकार इसमें नृत्य करते हुए प्रवेश लेते हैं। हंसी-मजाक यानी विदूषक का कार्य 'अड़सोंग' करता है। वह केले के पत्ते, नारियल की पत्तियां शरीर पर पहने रहता है। गले में फल-फूल टांगे रहता है जिससे दर्शकों में हास्य उत्पन्न होता है। उसके लिए अलग से नारियल नहीं फोड़ा जाता। सारथी गणेश के वस्त्रों, मुकुट इत्यादि का विस्तृत, अलंकारिक, चमत्कारिक वर्णन प्रस्तुत करता है। सामूहिक गान को इसमें 'हिम्मेड़ा' कहते हैं। यह व्यावसायिक परंपरागत नाट्य शैली नहीं है बल्कि कम तामझाम वाली कम खर्च वाली ग्रामीणों की लोक नाट्य शैली है।[27]

नाच और गम्मत छत्तीसगढ़ की लोकनाट्य शैलियां हैं। इनमें छत्तीसगढ़ का लोक जीवन, उनका उत्साह, उनकी व्यथा-कथा, आर्थिक अभाव जीवंत हो उठता है। यह केवल मनोरंजन नहीं कराता बल्कि सामाजिक को

---

[26] भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियां -2, सेंटर फोर कलचरल रिसोर्सेस एंड ट्रेनिंग, न्यू दिल्ली, बृजबासी आर्ट प्रेस 2011

[27] रंग प्रसंग, अंक 41, 2013, कर्नाटक की लोक शैली - 'दोड्डाटा' और उसमें सारथी का महत्व, बी एस पाटिल , पृ. 155

जागरूकता का संदेश भी देता है। इसका कोई नाट्य आलेख नहीं होता है। सहज बुद्धि से समसामयिक विषयों पर सूक्ष्म और पैनी प्रतिक्रिया कलाकार देते हैं। एक ही कलाकार कई-कई भूमिकाओं में आपको देखने को मिल जाएगा। अभिनय के चारों रूप आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक का सुंदर संयोग इसमें देखने को मिलती है। इसके कलाकार संवादों, अंग संचालन, संप्रेषण की शैली, नृत्य गायन में निपुण होते हैं। नाचा में जब पूर्व रंग होता है तो नचकारी अर्थात परी के गीत, नृत्य के बाद जोकर का प्रवेश होता है। जोकर अर्थात विदूषक नाचा की रीढ़ होते हैं। नाचा गम्मत मतलब हास्य-प्रहसन। इनमें हास्य के साथ-साथ व्यंग्य-विनोद, क्रिया-प्रतिक्रिया देखने को मिलता है। इसके विषय समाज से ही उठाए जाते हैं। समाज, धर्म, राजनीति इसके आलंबन हैं। जोकर, नचैया, परी इसके प्रमुख कलाकार होते हैं। इनमें साखियों, पहेली गीतों और चुटकुलों की भरमार होती है।[28]

इसके अलावा कुरवंजि, गवरी ,नकाब ,शेखावाटी गौंधल, जट जतिन,बिदापत नाच इत्यादि भी पारंपरिक लोकनाट्य हैं।जितनी भी भारतीय पारंपरिक नाट्य परंपराएं यहां दिखाई गई हैं। यह संपूर्ण नहीं हैं। कई अन्य क्षेत्रों में भी लोकनाट्य परंपराएं हैं। हम उन तक नहीं पहुंच सके हैं। यह वर्णन अंतिम नहीं है।

1.3 बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा

बुंदेलखंड अपने आप में सांस्कृतिक रूप से काफी समृद्ध रहा है। यद्यपि बुंदेलखंड लोक गायन और लोक नृत्य में विशिष्ट है। फिर भी यहां जो गायन और नृत्य इत्यादि होता है वह संवादात्मक शैली में भाव भंगिमाओं के साथ देखने को मिलता है। इसमें लोक नाटक की उपस्थिति का भी अनुमान लगाया जा सकता है। बुंदेलखंड में नृत्य और गायन ही वह लोक विधाएं हैं जिनसे लोकनाट्य की निर्मिति संभव हो सकी है क्योंकि इनके बिना लोकनाट्य शायद नीरस हो जाता। राधावल्लभ त्रिपाठी जी ने बुंदेलखंड की प्राचीन परंपराओं के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात कही है–"नाटक और रंगमंच की दृष्टि से बुंदेलखंड में प्राचीन परंपराओं की गहरी जड़े रही हैं। यहां के नगरों में कालंजर का उल्लेख संस्कृत के अत्यंत प्राचीन साहित्य में मिलता है विशेषतः महाभारत तथा पुराणों में।

[28] रंग प्रसंग, अंक 41, सन 2013, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, बदल रहे हैं 'नाचा' और 'गम्मत', योगेंद्र चौबे पृष्ठ 133

कालंजर कई सदियों तक कला और संस्कृति का केंद्र रहा। यहां के शासकों में सातवीं से नवीं शताब्दी के बीच मीमट तथा अनंगहर्ष मायुराज संस्कृत के पहली पंक्ति के नाटककारों में गिने जाते रहे हैं"[29]

इस उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि बुंदेलखंड में लोकनाट्य की परंपरा अत्यंत प्राचीन समय से चली आ रही है और यह कोई नया-नवेला क्षेत्र लोकनाट्य की दृष्टि से नहीं है बल्कि, इसकी एक विशिष्ट परंपरा बनती हुई दिखाई देती है। बुंदेलखंड के नाटककारों ने संस्कृत नाट्य साहित्य को भी समृद्ध किया। चंदेलों के समय में राजा परमाल के समय में एक बहुत बड़े नाटककार हो गए हैं; जिन्होंने देश भर में ख्याति अर्जित की थी। उनका नाम है वत्सराज । यह 11वीं-12वीं शताब्दी में वर्तमान थे। वत्सराज ने छह रूपक लिखे हैं जिनमें 'हास्यचूड़ामणि प्रहसन' और 'कर्पूरचरित' भाण प्रमुख हैं। इनमें आपको बुंदेलखंड के समाज, लोकजीवन इत्यादि के दर्शन हो जाएंगे। आप जानते ही हैं कि इस तरह की रचनाएं लोकनाट्य के अधिक निकट होती हैं। यद्यपि इनका स्वरूप शास्त्रीय ही अधिक रहा होगा। चंदेलों के ही राज दरबार में रहे एक और प्रमुख नाटककार का जिक्र इतिहास के ग्रंथों में मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में इनका उल्लेख किया है और यह नाटककार हैं श्री कृष्ण मिश्र। श्री कृष्ण मिश्र ने 'प्रबोधचंद्रोदय' नाम से एक नाट्य रचना की। यह भी एक संस्कृत नाटक था और चंदेलों के राज दरबार में खेला जाता रहा है। वास्तव में बुंदेलखंड की धरती लोकगीत और लोक नृत्यों के लिए ज्यादा उपजाऊ भूमि रही है। लोकनाट्य की दृष्टि से शायद इसका एक व्यवस्थित विकास नहीं हो पाया। इसकी ओर कई विद्वानों ने संकेत किया है। बुंदेलखंड में लोकनाट्य स्वांग, नौटंकी, भगत या लीलानाट्य(रामलीला, रासलीला) इत्यादि जो रूप मिलते हैं; वह अन्य प्रदेशों से आयातित हैं तो भी उनका विशेष महत्व है और वह बुंदेली लोक भाषा में लोक बोली में घुल मिल गए हैं और वह अब बुंदेली के अपने से प्रतीत होते हैं। यदि आदिकालीन बुंदेली साहित्य का अवगाहन किया जाए और उसमें बुंदेली लोक महाकाव्य आल्हा खंड को देखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अपने गायन-अभिनय ,शारीरिक, चेष्टाओं , भाव-भंगिमाओं, भावदशाओं में विशिष्ट है। इस कारण से इसमें एक संवादात्मक वर्णन, प्रश्न-उत्तर इत्यादि रूप में मिलने से इसको एक काव्य नाटक की तरह भी ,एक लोकनाट्य के शुरुआती रूप की तरह भी देखा जाना चाहिए। ऐसा इसलिए भी कह रहा हूं क्योंकि बुंदेलखंड में चाहे 'रामलीला' ,'रहस'(रास) , 'राई'(नृत्य, स्वांग और गायन का मिश्रित रूप) हों यह सब गायन में ही विशिष्ट हैं। इनमें नृत्य और संवादात्मक भाव अदायगी, शारीरिक-चेष्टाओं, व्यंग-उक्तियों, विशिष्ट वेशभूषा से ही ये लोकनाट्य के

[29] रंगभूमि, संपा. कपिल तिवारी, बुंदेलखंड कि लोकनाट्य परंपरा - डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 51

स्तर तक जा पहुंचे हैं तो फिर आल्हा गायन क्यों नहीं लोकनाट्य माना जाना चाहिए? आल्हा गायक प्रायः जो एक विशिष्ट पोशाक पहनता है और उसमें वह तलवार भी अपनी कमर से बांधे रहता है। गायन के समय और जब जरूरत पड़ती है और जब वह वीर रस से भर जाता है और उसकी भुजाएं फड़कने लगती हैं। उसकी मूछे अकड़ जाती हैं तो खड़े होकर वह एक से एक कलाएं, युद्ध कौशल प्रस्तुत करता है जिस कारण से लोक गायन आल्हा एक विशिष्ट लोकनाट्य में मंच पर बदलता हुआ दिखाई देने लगता है। बुंदेलखंड की सांस्कृतिक धरोहर आल्हा गायन पूरे देश की धरोहर बन गया है। बुंदेलखंड के महोबा जिले में मदन सागर नामक एक तालाब है जिसमें एक जीर्ण नाट्यशाला के अवशेष मिले हैं। इससे यह पता चलता है कि बुंदेलखंड नाट्य कला की अगुवाई करता रहा है और यहां नाट्य कलाएं आश्रय पाती रही हैं और फलती-फूलती रही हैं। इसी तरह की एक नाट्यशाला झांसी में ओरछे दरवाजे की मस्जिद के पास मोती बाई की नाटक शाला थी। मोती बाई ही इस नाटक शाला को संभालती थीं जो कि स्वयं भी एक कुशल रंगकर्मी थीं। राजा गंगाधर राव नाटक के बहुत बड़े प्रेमी थे। यह नाट्यशाला 1857 के गदर से पहले तक अपनी प्रस्तुतियों के माध्यम से बेजोड़ रही है और अपने क्षेत्र के दर्शकों को मनमोहक प्रस्तुतियों से नवाजती रही है। 20वीं शताब्दी के समय आजादी के पहले महोबा जिले (वर्तमान) या हमीरपुर जिले के अंतर्गत एक चरखारी रियासत थी जिसके राजा अरिमर्दन सिंह नाटक के बहुत प्रेमी व्यक्ति हुआ करते थे। राजा अरिमर्दन सिंह ने कारंथियन थियेटर (एल्फिंस्टन नाटक मंडली) को कोलकाता से खरीद लिया था और अपनी रियासत चरखारी में एक भव्य नाट्यशाला का उन्होंने निर्माण करवाया था। इसके संबंध में अभी और भी बहुत कुछ लिखा जाएगा। इस नाट्यशाला का नाम 'महाराज नाट्यशाला' रखा गया था। बाद में इस नाट्यशाला में पारसी थिएटर कंपनियों ने धूम मचाई और अनेक पारसी रंगमंच के नाटककार चरखारी में रहे और कई विशिष्ट अभिनेताओं ने क्षेत्र भर के लोगों को अपनी प्रस्तुतियों से संमोहित रखा।

वस्तुतः राधा वल्लभ त्रिपाठी बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा के प्रारंभ को एक अलग दृष्टि से देखते हैं। उनका कहना है कि "वास्तव में लोकनाट्य क्षेत्र में बुंदेलखंड की अलग पहचान खोजना हो, तो वह उसके अखाड़ों की जमीन पर मिल सकती है। महाभारत के काल से ही हमारे देश में युद्ध कला और नाट्य का घनिष्ठ संबंध रहा है। बुंदेलखंड में अखाड़े, आल्हा गायन और लोकनाट्य तीनों के बीच अंतः क्रिया और अंत: संबंध बन रहे हैं। इन अखाड़ों ने नट और मल्ल को एक जमीन पर ही नहीं ला खड़ा किया, उन्हें एक दूसरे का पर्याय भी बना दिया है"[30]

[30] रंगभूमि, संपा. कपिल तिवारी, बुंदेलखंड कि लोकनाट्य परंपरा - डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 53

यह तो हुई बुन्देली लोकनाट्य की ऐतिहासिक धारा| अब बुन्देली लोकनाट्य के विभिन्न रूपों का वर्णन यह दिया जा रहा है।

1.3.1 राई

राई लोक नृत्य का इतिहास लगभग 1000 साल का है, लेकिन इसका लोकनाट्य में रूपांतरण किस तरह से हुआ यह भी देखने वाली बात है। कोई भी शुभ अवसर हो बच्चों का जन्म, मुंडन, विवाह इत्यादि अनेक अवसरों पर इसकी प्रस्तुतियां बुंदेलखंड में बड़े पैमाने पर होती रही हैं। गांव के मुखिया, रियासत, रजवाड़े के प्रमुख भी राई लोक नृत्य का आयोजन करवाते रहे हैं। इसमें एक मृदंगिया होता है और कई बेड़नियां होती हैं। इसके अलावा यह भी उल्लेखनीय बात है कि बेड़नियां आदिवासी समाज से ताल्लुक रखती हैं और उनका यौन शोषण करने की कोशिश भी सामंतशाही वर्ग करता रहा है। ललितपुर, सागर, दमोह इत्यादि में बड़ी संख्या में बेड़नियां रहती हैं। यह लोग पूरी तरह से जंगल पर निर्भर रहते हैं लेकिन, नाचने-गाने का काम भी अनेक अवसरों पर करते हैं। इससे भी वह अपना गुजारा करते रहे हैं। इस समाज के लोग बीड़ी बनाने का व्यवसाय भी करते आए हैं । राई नृत्य करने वाली बेड़नी बड़ा सा घाघरा पहनती हैं और ढोलक बजाने वाला कमर में ढोलक बांधकर बजाता है। इसमें टिमकी (नगड़िया) भी बजती है। कई बार यह नृत्य जवाबी शक्ल में होता है। स्त्री पात्र अपने बचाव में पुरुष पात्र को ललकारती है तो वहीं पुरुष पात्र भी अपना बचाव करता है। साथ ही स्त्री के सामने चुनौती पेश करता है। नर्मदा प्रसाद गुप्त ने इसको समझाते हुए इसकी प्राचीनता के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं। "राई मूलत: लोकनृत्य है जो वसंत उत्सव से जुड़ा हुआ रहा है, और आज भी वसंत पंचमी से लेकर वैशाख पूर्णिमा तक राई की धूम रहती है। रबी की फसल और फाग का प्रमुख नृत्य होने का कारण इसकी प्राचीनता में कोई संदेह नहीं है। चंदेल नरेश मदनवर्मन् (1129–65 ई.) के समय मनाए जाने वाले वसंतोत्सव का वर्णन जिन मंडन के 'कुमारपाल प्रबंध' में मिलता है। रूपककार वत्सराज ने भी चंदेल–नरेश परमर्दिदेव और त्रैलोक्यवर्मन् के राज्यकाल में वसंतोत्सव का चित्रण किया है। उनके प्रशासन में 'हास्यचूड़ामणि' का अभिनय तो वसंत ऋतु में हुआ था। स्पष्ट है कि यह लोक नृत्य 12वीं शती में प्रचलित था, नहीं तो जायसी–कृत 'पद्मावत' 16वीं शती और केशव–कृत 'रामचंद्रिका' में बेड़नी

(लोकनर्तकी) का वर्णन कैसे आता? अब सवाल उठता है कि इस नृत्य का लोकनाट्य के रूप में रूपांतरण कब और कैसे हुआ?"[31]

बाद में चंदेल वंश बिखर गया। छोटी-छोटी रियासतों, रजवाड़ों में विभक्त हो गया। सामंतो, जागीरदारों, जमींदारों, रईसों के मनोरंजन के लिए यह प्रमुख नृत्य था। इस नृत्य में गायन की बड़ी विशेषता है। गायन बड़े चुटीलेपन को लिए हुए हैं। इसका नृत्य देखकर आप डूब जाएंगे और अद्भुत समा इसके प्रदर्शन के समय बंध जाता है। कई बार इसके संवाद अश्लीलता की हद को छू जाते हैं। हालांकि इसकी शुरुआत ईष्ट देवता की वंदना से ही होती है। इसलिए, इसमें संवादों की भूमिका बढ़ गई और संवाद जब बढ़े तो हास्य उत्पन्न करने के लिए पुरुष कलाकार भी बढ़े। इसी से इसकी नाट्य, नाटकीयता की शुरुआत मानी जानी चाहिए। अब जब इसमें नाटकीयता शामिल हुई तो जाहिर सी बात है कि उन्होंने बहुत सारे विषयों को आधार बनाया। तो नर्मदा प्रसाद गुप्त ने यह मान लिया कि 15वीं शताब्दी के आसपास से राई लोक नृत्य, लोकनाट्य में परिवर्तित हुआ जो कि आज तक निरंतर चल आ रहा है। राई में जो लोक नर्तकी होती है। वह घूंघट डालकर और हाथ में रुमाल लेकर नाचती, गाती और संवाद करती है। राजस्थान में तक इस नृत्य का प्रभाव देखने को मिलता है। राजस्थान में लोकनाट्य 'गवरी' की नर्तकियों को 'राई' नाम से संबोधित किया जाता है। लोग दूर-दूर तक पैदल जाकर भी राई नृत्य-नाट्य को देखने के लिए जाते थे। राई लोकनाट्य बुंदेलखंड की जनता का गले का हार बना रहा। इसके सामने बुंदेलखंड के अन्य नृत्य टिक नहीं पाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि बुंदेलखंड के अन्य नृत्य, नाट्य का कोई महत्व नहीं है। उनका भी महत्व है। एक समय तो ऐसा था कि इसके बिना विवाह, जन्म, तीज-त्यौहार संपन्न ही नहीं होते थे। एक समय बुंदेलखंड में अखाड़ों की भरमार थी। इन्हीं में 18वीं–19वीं शताब्दी में यह लोकनाट्य शिखर पर पहुंचा। उच्च वर्ग के लिए यह लोकनाट्य, नृत्य विनोद और विलासिता, हास्य, मनोरंजन का प्रमुख साधन बन गया था। बुंदेलखंड के घर आंगनों तक बेड़नियां बुलाई जाती रही हैं। उनका आना शुभ संकेत माना जाता था। पूरा का पूरा गांव इनके आयोजन में एकत्रित हो जाया करता था। विवाह में यह नृत्य, नाटक होता ही होता था। खुले आसमान के नीचे चबूतरे पर रात-रात भर इसके प्रदर्शन पूरे बुंदेलखंड में होते चले आए हैं। रस्सी से गोल घेरा बना लिया जाता था ताकि नृत्य ,नाटक का प्रदर्शन अबाध गति से चलता रहे। गायक-वादक, बेड़नियां, मसखरा ही इसके बीच में रहते थे। मशालों द्वारा रात में उजाला किया जाता था। इसके अलावा झांझ, मंजीरा, झींका, किंगरी इत्यादि लोक वाद्यों का प्रयोग इसमें होता था। नर्मदा प्रसाद गुप्त जी ने राई का वर्गीकरण कुछ इस प्रकार से समझाया है। फाग और

[31] बुंदेली संस्कृति और साहित्य, नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 339

कहरवा वाली राई, झूला की राई छतरपुर, पन्ना और दतिया क्षेत्र में होती है। ख्याल आधारित राई टीकमगढ़, ललितपुर क्षेत्र में तथा स्वांग से संबंधित राई सागर, दमोह, जबलपुर क्षेत्र में होती है। जबकि टोक राई झांसी, जालौन क्षेत्र में गाई जाती है। एक बात और कही जा सकती है कि राई के गायन में अभिधा, लक्षणा , व्यंजना तीनों एकाकार हो जातीं हैं। बड़ी ही मार्मिक और वेधक पंक्तियां सुनने को मिलती। इसमें बुंदेलखंड की स्वदेशी वेशभूषा अपनाई जाती है। धोती पहनी जाती है जिसको परदनी बोलते हैं और कुर्ता, मुड़ासा इसमें दिखाई देते हैं। एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि राई नृत्य लंबा चलता था तो नर्तकियां और वादक थक जाते थे तो उन्हें आराम देने के लिए स्वांग बीच-बीच में प्रस्तुत किए जाते थे। ताकि अभिनय का भी जनता लाभ उठा सके। इसी कारण तो नृत्य, नाटक में परिवर्तित हुआ तो भी अधिकांश नृत्य ही रहा। इसमें एक बात और जोड़ने लायक है जो कि नर्मदा प्रसाद गुप्त ने नहीं बताई है। वह यह है कि राई लोकनाट्य में जो स्वांग के जो विषय होते हैं—वह जमीन से उठाए जाते हैं जैसे सेठ, जमींदार, शोषण कर्ता, पाखंड, ब्राह्मणवाद को उजागर करने के लिए ऐसे पात्रों का गठन करके ठाकुर, ब्राह्मण, उच्च वर्ग की शोषणकारी कर व्यवस्था को भी उजागर किया जाता है और हंसी-मजाक के रूप में किया जाता है। ताकि चोट जहां पहुंचना है, वहां पहुंच भी जाए यानी लाठी भी न टूटे और सांप भी मर जाए। हम अंत में यही कह सकते हैं कि यह लोकनाट्य नृत्य परक ही है।

1.3.2 रहस

जैसा कि आप जानते हैं की बुंदेली पश्चिमी हिंदी की एक प्रमुख बोली है और बुंदेलखंड और ब्रज क्षेत्र की सीमा भी मिलती है। हालांकि इस तथ्य से भी इनका नहीं किया जा सकता कि पांच-छः सौ वर्ष तो सिर्फ ब्रजभाषा का ही एक तरफा काव्य क्षेत्र में राज रहा है। बुंदेलखंड का जनमानस कृष्णलीला या रासलीला को ही, कृष्ण के रास को ही 'रहस' नाम से पुकारता चला आ रहा है। इतना अवश्य कहना चाहता हूं कि मुझे जानकारी मिली है कि बुंदेलखंड में मथुरा-वृंदावन से बहुत सारी 'रहस' नाटक की कंपनियां आती थीं, कृष्ण भक्तों द्वारा बुलाई जाती थीं और वह कई-कई दिनों तक कृष्ण की लीलाओं का प्रदर्शन किया करती थीं। वैसे तो बुंदेलखंड शक्ति उपासक प्रदेश रहा है। उसमें ग्राम देवताओं के लिए ज्यादा स्थान है। लेकिन इसके साथ ही साथ इसमें तमाम धर्म संप्रदाय भी समय-समय पर फूलते-फलते रहे हैं। नर्मदा प्रसाद गुप्त ने इस संबंध में बड़ी अच्छी बात कही है- "बुंदेली प्रदेश में कृष्णभक्ति का विकास एरण के गुप्तयुगीन स्तंभों के नीचे आधारफलकों पर उत्कीर्ण कृष्णलीला-विषयक दृश्यों के

रचनाकाल (300- 600 ई.) से रेखांकित किया जा सकता है और यह निश्चित है कि कृष्णभक्ति का संप्रदाय मुक्त स्वरूप यहां 15वीं शती के पूर्व विद्यमान था। श्रीमद् वल्लभाचार्य के वृंदावन में आने के 80-90 वर्ष पूर्व ग्वालियर के कवियों 'विष्णु दास' और 'थेघनाथ' द्वारा कृष्णकाव्य की रचना का समारंभ हो चुका था और 'सनेहनीला' द्वारा लीला काव्यों का। कृष्ण काव्य की यह धारा इस भाग में 19वीं शती के अंत तक निरंतर प्रवाहमान रही और उसमें 'रासलीला' को महत्व भी खूब मिला। इससे प्रकट है कि रहस-परंपरा के लिए वहां पर उपयुक्त वातावरण एवं प्रेरक परिप्रेक्ष्य सदैव मौजूद रहे।"[32]

नर्मदा प्रसाद गुप्त ने बहुत ही ठोस प्रमाणों के आधार पर 'रहस लीला' का उत्कर्ष 16वीं से 19वीं सदी तक निश्चित किया है। उन्होंने यह भी बताया की ग्वालियर शहर ग्वालों का ही एक तरह से शहर था। यहां के कवि विष्णु दास ने महाभारत कथा और थेघनाथ ने भगवत गीता भाषा में कृष्ण भक्ति तरफ इशारा किया है। एक और कवि हरिराम व्यास 1533 से 1603 ई. उन्होंने भी रासलीला की चर्चा की है। रास पंचाध्यायी में भी रासलीला का वर्णन मिलता है। राजा देवी सिंह कृत रस लीला, 1676 प्रेमदास की 1770-97 की भागवत विहार लीला, नवल सिंह प्रधान रचित रस **ला**वणी। यह सब लीला नाटक हैं यानी रहस हैं। भगवान श्री कृष्ण की लीला पर आधारित हैं। रामनारायण अग्रवाल नामक विद्वान ने लीला नाट्य को 19 में शती में ब्रजभाषा में उद्भव बताया है। जबकि नर्मदा प्रसाद गुप्त 18वीं शताब्दी से ही यहां पर लीला नाटकों का उल्लेख करते हैं। 'रहस लीला' वस्तुतः संगीत प्रधान है। इसमें संगीत का अत्यधिक महत्व है। गीत, गायन, नृत्य इसके आधार हैं। लेकिन इसका नौटंकी से कोई लेना-देना नहीं है। इसकी एक पृथक और समृद्ध परंपरा रही है। नर्मदा प्रसाद गुप्त रहस परंपरा को तीन भागों में बांटकर देखते हैं–इनमें से एक है ब्रजबोली की रास-परंपरा, दूसरी है बुंदेली की रहस परंपरा और तीसरी है लीला नाट्य परंपरा। यह परंपरा ब्रजमंडल से जरूर हमारे क्षेत्र में आई है लेकिन इसका स्वरूप यहां आकर बदल गया। यह भी कह सकते हैं कि यहां की बोली-बानी, यहां के वातावरण की अनुकूलता में ढल गई। बुंदेलखंड की रियासतों से ब्रज की रियासतों का संबंध था और वह ब्रजमंडल के प्रशिक्षकों ,कलाकारों और उनकी मंडली को, बुंदेलखंड के कलाकारों को प्रशिक्षित करने के लिए प्रायः बुलाया करते थे। यह सिलसिला अनवरत जारी रहा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की क्रिया-प्रक्रिया चलती रही।

इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि बुंदेलखंड में जो 'रहस' है; वह ब्रजमंडल क्षेत्र की ही देन है। अंततः कृष्ण भक्ति का स्रोत तो ब्रजमंडल से ही निकला है। बुंदेलखंड में रासलीला के और भी भाग हैं जो बुंदेलखंड में

[32] बुंदेली संस्कृति और साहित्य, नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 341

यत्र-तत्र देखने को मिलते हैं। इनमें से एक है कतकारियों की 'रहस लीला' और दूसरा 'लीला नाट्य'। मजे की बात यह है कि दोनों को 'रहस' ही कहा जाता है। कतकारियों की रहस लीला कार्तिक मास में की जाती है। यह वाद-विवाद और गायन की शैली में संपन्न होती है। बुंदेलखंड में पूरा कार्तिक मास कृष्ण की लीलाओं से ओतप्रोत हो जाता है। गांव के गांव इसमें शामिल हो जाते हैं। सुबह चार बजे ग्रामीण महिलाएं उठकर तालाब के बांध पर गाते हुए जाती हैं। गाते हुए ही आती हैं। इसमें दधि-लीला, बंसी-चोरी, गेंद-लीला, दान -लीला, माखन-चोरी, चीरहरण इत्यादि अभिनय संपन्न होते हैं। इ समें स्त्रियां, पुरुष और स्त्री दोनों का अभिनय करती हैं। गायन तो अवश्य होता है लेकिन, वाद्यों का प्रयोग नगण्य होता है। इसमें एक और महत्वपूर्ण बात है जिसे 'कतकारी छेंकना' बोलते हैं। इसमें पुरुष कभी-कभी जो गायन , अभिनय में निपुण होते हैं। वह आती-जाती स्त्रियों(कतकारियों) को लकीर से या रस्सी से छेंक लेते हैं और फिर ग्वाल-बालों यानी कृष्ण के प्रतीक और स्त्रियां, राधा की प्रतीक बनकर प्रश्न-उत्तर शैली में पद्यबद्ध संवादों के माध्यम से मुकाबला करते हैं। इसके बाद लीला नाटकों की चर्चा अगर की जाए तो यह मंडलियों द्वारा रियासतों में या गांव के रईस लोगों के घर के सामने इसका आयोजन होता था। बड़े-बड़े चबूतरे या तख्तों द्वारा मंच निर्मित होता था। इसके पात्रों को 'सरूप' कहा जाता था। इस तरह की 'रहस' लीलाएं व्यावसायिक रंग मंडलियों द्वारा, ब्रज क्षेत्र से आई हुई रहस मंडलियों द्वारा और शौकिया रहस मंडलियों द्वारा भी इस तरह के आयोजन होते रहे हैं। इनमें वाद्य यंत्रों के रूप में पखावज, ढोलक, तबला, वीणा, मृदंग, हारमोनियम, सितार, झींका, मंजीरा सब कुछ शामिल रहते हैं। इसमें सूत्रधार, राधा कृष्ण की वंदना, मंगलाचरण, विदूषक, गायन, नृत्य इत्यादि का समान रूप से महत्व है। पूरी लीला ही गायन की शैली में होती है और गद्य का प्रयोग बहुत कम होता है। इसमें शारीरिक चेष्टाओं, हाव-भावों का विशेष तौर से महत्व है। ऐसा भी सुनने को मिलता है कि कृष्ण की तर्ज पर राम के नाम पर भी इस तरह की रहस लीलाएं हुई। अंतर बस इतना है कि इनको राजमहलों तक ही सीमित रखा जाता था।

1.3.3 रामलीला

यह तो विद्वानों द्वारा माना ही जाता है कि रासलीला से पहले रामलीलाएं प्रारंभ हुई थीं। इन दोनों में अंतर भी है- रामलीला अभिनय प्रधान है जबकि, रासलीला नृत्य प्रधान है। बुंदेलखंड का चित्रकूट राम संस्कृति का केंद्र रहा है। राम की लीलाओं का अंकन सर्वप्रथम बुंदेलखंड की मूर्तिकला में दिखाई देता है। नर्मदा प्रसाद गुप्त के एक

लेख से अपनी बात स्पष्ट करूंगा। "विदिशा के नाग राजा रामचंद्र (ई. पू. 80-50) का नाम 'राम' के नाम पर रखा गया था, जिससे राम के लोकप्रिय होने का पता चलता है। महाकवि कालिदास के 'मेघदूत' में चित्रकूट के 'रामगिरी आश्रम' को एक प्रसिद्ध राम तीर्थ कहा गया है। भारतीय मूर्तिकला में राम की लीलाओं का शिल्पांकन पहले पहल नचना (जिला : पन्ना) और उसके बाद देवगढ़ (जिला : झांसी) में हुआ। नचना में भारत का सबसे प्राचीन राम मंदिर था। लीला से संबंधित शिल्पपट्टों में शूर्पणखा का प्रणय-निवेदन, पंचवटी-निवास, सीता से रावण की भिक्षा-याचना, वानरों से राम का विचार-विमर्श, सुग्रीव के लिए अभय-संदेश, सेतु-निर्माण और राम का समुद्र पर कोप उल्लेख्य हैं। नचना की कला 5वीं शती की है, जबकि देवगढ़ की 6वीं शती की। देवगढ़ के विष्णुमंदिर में उपलब्ध फलकों में शूर्पणखा-प्रसंग, वन-गमन, अहिल्योद्धार, अत्रि ऋषि के आश्रम में, राक्षस-वध, सीता-हरण, राम से हनुमान की भेंट, ताड़-भेदन, सुग्रीव को माला पहनाना, बालि-सुग्रीव-युद्ध, सुग्रीव पर लक्ष्मण का रोष, सेतु-निर्माण, सीता को त्रास देता रावण, संजीवनी बूटी लेकर जाते हनुमान आदि उल्लेखनीय हैं। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि इस जनपद में 6वीं शती तक रामकथा का प्रसार हो चुका था।"[33]

जैसा कि विदित है कि लव कुश ने रामायण का गायन किया था। एक शब्द है कुशीलव जो कहीं न कहीं **नट** का पर्यायवाची है। इसी प्रकार महाभारत में 'रामायण नाटक' खेले जाने का उल्लेख मिलता है। हरिवंश पुराण में भी रामलीला पर आधारित नाटक के मंचित होने का उल्लेख प्राप्त होता है। संभवतः हरिवंश पुराण का समय पांचवी शती ईसा पूर्व है। इसी प्रकार दक्षिण भारत में दशावतार लीलाएं होती थीं। महाराष्ट्र में भी लोकनृत्य-नाट्य परंपरा में दस अवतारों की कथा कही जाती है। इसके साथ-साथ भरतनाट्यम और ओडिसी में भी दशावतार की कथा होती है। बुंदेलखंड में रामलीलाएं अखाड़ों की परंपरा से जुड़ती हैं और आगे बढ़ती हुई गांव-गांव तक पहुंचती हैं। हम कह सकते हैं कि विष्णुदास, तुलसीदास और केशव यह तीनों बड़े नाम बुंदेलखंड की राम की लीला से खासे प्रभावित थे। बुंदेलखंड की रामलीला को नाटक की तरह नहीं बल्कि लोकनाट्य की तरह देखा जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि इसमें बुंदेलखंड का लोक जीवन भी साक्षात दिखाई देने लगता है। रासलीला में संगीत की प्रधानता के साथ-साथ माधुर्यपरक और श्रृंगारिक क्रिया-व्यापारों के लिए ज्यादा स्थान था जबकि, रामलीला में मर्यादा का ज्यादा ध्यान रखा जाता था। नर्मदा प्रसाद गुप्त उक्त लेख में यह तो मानते हैं कि रासलीला से प्रभावित होकर तुलसीदास ने रामलीला मंच की स्थापना काशी में की लेकिन, उसकी प्रेरणा स्रोतों को राउतों के रामपरक

[33] छाया नट-78, बुंदेलखंड में रामलीला : परंपरा और विकास, नर्मदा प्रसाद गुप्त, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, पृ. 4

लोकनाट्यों को वह मानते हैं। इस संबंध में रामनगर की रामलीला का अलग महत्व है और अयोध्या की रामानंददीय रामलीला का अलग। इनमें आपको किशोर पात्र, स्त्री पात्रों की वर्जना, विदूषक का निषेध, विनय पत्रिका से प्रारंभ, अवध का स्थानीय रंग और पर्शियन दृश्यांकन एवं शैली से दूर सहजता और गंभीरता आपको मिलेगी जबकि, काशी की रामलीला में 'नारद वाणी' में सामूहिक व्यास वचनों का गायन, संवादों से पुरानी हिंदी के प्रयोग में भोजपुरी का रंग, सहज प्रदर्शन-शैली, सौम्य वातावरण मिलेगा। इसके अलावा मथुरा शैली की रामलीला नृत्य विधान और संगीतात्मक प्रवृत्ति लिए हुए है। दिल्ली की रामलीला मूक शैली में तथा कहीं-कहीं सूत्रधार के माध्यम से रामलीलाएं चलती हैं। पारसी रंगमंच का व्यापक प्रभाव भी रामलीलाओं पर दिखाई देता है। नर्मदा प्रसाद गुप्त, चित्रकूट और कालिंजर की रामलीलाओं को सबसे पुरानी मानते हैं। चित्रकूट में राउतों द्वारा राम कथापरक लोकनाट्य की परंपरा रही है और कालिंजर की रामलीला में शिवाय और योगियों के वेश, वानर वेश, राम की सेना, रावण की सेना में पूरा गांव का गांव तब्दील हो जाता है। एक तथ्य यह भी वह उजागर करते हैं कि वाराणसी के रामनगर की रामलीला से 1835 में दतिया राज्य की रामलीला और 1865 में जबलपुर के गोविंद राज की रामलीला को प्रेरणा मिली। इस तरह से रामलीलाएं चरखारी, पन्ना, छतरपुर, ओरछा, बिजावर, मैहर इत्यादि रियासतों में फैलती चली गईं। जनता की वाहावाही लूटने के लिए राज परिवारों में होड़ लगी रहती थी कि किसका प्रदर्शन सबसे अच्छा हुआ। राज परिवार में रामलीलाओं में खुलकर धन का व्यय करते थे। रामचरितमानस के अलावा स्थानीय कवियों के छंद, स्थानीय लोकगीत इसमें आ जाते थे। चित्रकूट की रामलीला 1837 ईस्वी में मोनी बाबा द्वारा चलाई गई। अब तो रामलीलाओं में पारसी मंच के पर्दे सज्जा और चमत्कारिक उपकरण भी आने लगे हैं। खड़िया, गेरू, चंदन, रोली,श्री, पाउडर या शंखजरात, भोड़र ,चमकनी आदि से पात्र अपने को सजाते थे। ग्रामीण क्षेत्र की रामलीलाएं ज्यादा लोकनाट्य के निकट हैं। उनमें सहजता ज्यादा है। भाषा सहज, सरल और बोधगम्य है। नर्मदा प्रसाद गुप्त ने रामलीला को ग्रामीण, नागर और कस्बाई में बांटकर देखा है। अब की रामलीलाओं में लोग धार्मिक दृष्टि से कम मनोरंजन की दृष्टि से ज्यादा देखना चाहते हैं। इसके लिए कहीं न कहीं व्यवसायिक मंडलियां जिम्मेदार हैं जो प्रतियोगी भावना रखती हैं और अस्वाभाविक चमत्कारपूर्ण दृश्य प्रसंग और नाटकीय मोड़ दिखाकर जनता को अपनी ओर आकर्षित करती रहती हैं।

जैसा कि विदित है की बुंदेलखंड में चित्रकूट एक जिला है और तुलसीदास का जन्म भी बांदा-चित्रकूट जनपदों के बीच है। यानी बड़ी संख्या में राम भक्तों और राम भक्ति का प्रसार बुंदेलखंड में हुआ। नर्मदा प्रसाद गुप्त लिखते हैं कि चित्रकूट के आसपास राउत लोग थे; जो राम से जुड़े हुए प्रसंगों पर अभिनय करते थे। उन्होंने यह भी लिखा

कि कालपी में भवभूति के नाटक 'उत्तर रामचरित्तम' का मंचन हुआ था। तुलसीदास ने भी स्वांगों का जिक्र अपने लेखन में किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार ब्रज क्षेत्र की रासलीला प्रसिद्ध है। उसी प्रकार से रामलीला तो देशव्यापी हो गई है और बुंदेलखंड इसकी उर्वर भूमि रही है। रामलीला अभिनय प्रधान हैं जबकि रासलीला नृत्य प्रधान है। इसका कारण यह भी है की रामलीला को बहुत गंभीरता से लिया जाता है और रासलीला को लोग मनोरंजन के लिहाज से नटखटपन देखने के लिए देखते हैं। नर्मदा प्रसाद गुप्त कहते हैं कि रामलीला के जन्म को रासलीला से नहीं जोड़कर देखना चाहिए। "इस जनपद में रामलीला की परंपरा स्वांगों में विद्यमान थी। आज भी रामलीला में एक-दो स्वांगों की योजना रहती है। यह बात अलग है कि 'रामचरितमानस' की लोकप्रियता के कारण रामलीला का पूर्व नाट्यरूप उससे जुड़कर एक नवीन स्वरूप का गया। इस प्रदेश में जहां कथा की बुनावट अधिकतर 'मानस' के आधार पर है, वहां संवादों में 'मानस', 'रामचंद्रिका', 'राधेश्याम रामायण' आदि ग्रंथों के अंशों के अलावा क्षेत्रीय कवियों के चुने हुए छंद हैं"[34]

रामलीला का आयोजन गांव के प्रभुत्वशाली लोग करते हैं। चंदा, अनाज सबसे लेते हैं लेकिन शूद्रों को रामायण, महाभारत, रामचरितमानस को छूने तक नहीं देते हैं। गांव के किसी एक चिन्हित स्थान पर हर वर्ष रामलीलाएं खेली जाती रही हैं। यह जरूरी नहीं है कि हर गांव में रामलीला हो। कई गांवों से धर्म के नाम पर धार्मिक-उगाही करके इस तरह के आयोजन होते हैं और उच्च वर्ग की तो इसमें बल्ले-बल्ले हो जाती है। मेहनतकश जनता से चीजें एकत्रित करके शुद्ध घी, दूध, दही, खीर, मेवा, हलवा उच्च वर्ग खाता है और पूरा गांव नतमस्तक उनके चरणों में गिर पड़ता है। रामलीलाओं में भेदभाव भी बड़े पैमाने पर देखने को मिलते हैं। पारसी रंगमंच के आ जाने के बाद यह और भी परिष्कृत रूप में सामने आयी है। रामलीला में जो शीर्ष पात्र होते हैं; वह उच्च वर्गीय लोग निभाते हैं और राक्षसों की सेना की कमान अवर्ण लोगों को दे दी जाती है। इसमें कथा गायन समाजी लोग करते हैं। इसमें मुखोटों का प्रयोग भी अत्यधिक होता है। राम के पक्ष के लोग साफ-सुथरे सफेद वस्त्र धारण करते हैं और राक्षस सेना को काले कपड़ों में दिखाया जाता है। इसके संवाद गायन की शैली में लयबद्ध होते हैं लेकिन, बीच-बीच में गद्य का भी इस्तेमाल होता है। पारसी रंगमंच के बाद तो इसमें गीत और नृत्य का महत्व भी बढ़ गया है। कई बार जनता अभिनय देखते-देखते इतनी डूब जाती है कि जैसा दृश्य मंच पर हो रहा होता है। अमूमन उसी दृश्य में दर्शक भी डूबे दिखाई देते हैं। नर्मदा प्रसाद गुप्त तीन तरह की रामलीलाओं का जिक्र करते हैं। एक तो ग्रामीण रामलीला, एक नगर रामलीला और एक कस्बाई रामलीला। ग्रामीण रामलीला में बुंदेलखंड के गीत, संगीत, गारियां,

[34] बुंदेली संस्कृति और साहित्य, नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 344

पेटू राजा, मसखरा शामिल हो जाते हैं। पूरा बुंदेलखंड का परिवेश ही जीवंत हो उठता है। इसीलिए, रामलीलाओं में स्वांग की परंपरा भी अनुस्यूत हो जाती है। नगरों में होने वाली रामलीला में ऑर्केस्ट्रा तक शामिल होने लगा है। फिल्मी गीत बजते हैं और भी न जाने क्या-क्या होने लगा है। लोग धर्म के नाम पर अंधे हो जाते हैं। रामलीला की नैतिकता से किसी का कोई लेना देना नहीं है; जो इनका आयोजन करते हैं, वह केवल मौज-मस्ती करते हैं। उनमें खुद नैतिकता का अभाव होता है। बहुत कम लोगों का मन रामलीला में लगता है। ज्यादातर तो नाच-तमाशा देखने के उद्देश्य से ही जाते हैं। कई तरह के नए-नए प्रयोग करते रहते हैं और हर साल कोई न कोई तकनीक का सहारा लेकर भी दर्शकों को अचंभित करने का प्रयास किया जाता है। ताकि जनता चमत्कृत महसूस कर सके। चित्रकला, पात्रों का श्रृंगार, साज-सज्जा, पर्दों की विविधता, रंग-बिरंगा प्रकाश इसी से रामलीलाओं को दिखाने का प्रयास किया जाता है। इसी को ग्रामीण लोग जग्ग, जग्गी बोलते हैं। यानी ब्राह्मण लोग यज्ञ करवाते हैं और रात्रि में रामलीला। काशी, इलाहाबाद से भांति-भांति के संतों को बुला लिया जाता है और उनकी चरण वंदना में काफी धन संतो को दिया जाता है। किसी-किसी दृश्य का अभिनय करने के लिए यात्रा नाटक के रूप में भी रामलीलाएं होती हैं अर्थात नदी, तालाब का भी इसमें महत्व है। पहले तो भभके और मशालों के प्रकाश में यह होती थीं। बाद में विद्युत उपकरणों और विद्युत की सहायता से अनेक परिवर्तन हुए हैं। कई बार पुरुष ही स्त्री पात्रों के पाठ करते हैं। अब तो रामलीलाएं भी राजनीतिक हो गई हैं। राजनीति का जोर इतना है कि सत्य की जीत दिखाने के लिए सारे असत्यों का सहारा लिया जाता है। इसमें व्यावसायिक रंग मंडलियां तरह-तरह की पैंतरेबाजी करती हैं। तरह-तरह के अस्वाभाविक चमत्कारपूर्ण दृश्य, प्रसंग और नाटकीय मोड़ जनता के सामने उड़ेलते हैं। बुंदेलखंड की रामलीलाएं देश में अद्वितीय स्थान चाहे न रखती हों लेकिन आम जनता को भरमाने का बढ़िया तरीका अपनाती हैं।

1.3.4 नौटंकी

बुंदेलखंड में नौटंकी हाथरस से आयी। इसके संबंध में नर्मदा प्रसाद गुप्त ने दो-तीन कारण दिए हैं। पहला कारण उन्होंने आल्हा गायन को माना यानी आल्हा खंड। हाथरस के लोक गायको खासतौर से वासम जी, मुरलीधर राय, गोविंद राम, नथाराम गौड़ जैसे सांगीतकारों ने आल्हा खंड को लेकर यानी आल्हा खंड के कुछ प्रसंग विशेष को लेकर हाथरस में कई नौटंकी संबंधी प्रदर्शन किये। यानी, अगर उनकी बात माने तो 20वीं शताब्दी से बुंदेलखंड में नौटंकी का प्रवेश होता है। नौटंकी के प्रचलन का दूसरा आधार नर्मदा प्रसाद गुप्त अपनी पुस्तक में स्पष्ट करते हुए

लिखते हैं कि "इस प्रदेश में नौटंकी के प्रचलन का दूसरा आधार है– लावनी या ख्याल गायकी। लावनी के तुर्रा और कलगी के अखाड़ों का जन्म बुंदेलखंड में ही हुआ था। इसका प्रचार पूरे बुंदेली प्रदेश में था और प्राचीन कथाओं पर आधारित लंबे ख्याल यहां प्रचलित रहे, किंतु ख्यालों से प्रस्फुटित लोकनाट्य का कोई प्रामाणिक साक्ष्य अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ"[35]

नर्मदा प्रसाद गुप्त यह भी बताते हैं कि महेंद्र भानावत ख्याल परंपरा को आगरा और मालवा से राजस्थान में पहुंची हुई मानते हैं। एक अन्य विद्वान श्री राम नारायण अग्रवाल का कथन है कि राजस्थान की तुर्रा और कलगी परंपरा ब्रज क्षेत्र की ही देन है। यह दोनों विद्वान मानते हैं कि ख्याल गायकी चंदेरी से जन्मी है जो कि बुंदेलखंड की एक रियासत थी। वहां अखाड़ों में यह गायकी होती थी क्योंकि, ध्रुपद गायकी को बैजू बावरा ने ही अखिल भारतीय स्तर पर पहुंचाया जिनका संबंध भी चंदेरी रियासत से था। कानपुर में श्री कृष्ण पहलवान ने कानपुरी नौटंकी को नए ढंग से विकसित किया। यह 1910 के आसपास की बात है। बाद में पारसी रंगमंच के प्रभाव से नौटंकी में नवीन परिवर्तन हुए। उसमें नई-नई चीजों का समावेश होता चला गया और नौटंकी में तड़क-भड़क, चटक-भटक बढ़ने लगी। कहने का आशय है कि इसमें सहायक या प्रासंगिक कथा, गद्यमय कथोपकथन, रंग-बिरंगे पर्दे, रंग-बिरंगी दृश्यात्मकता समाविष्ट हुई। झांसी भी नौटंकी के केंद्र में आ गयी थी। इसका कारण यह है कि कालपी के सनेही और रसिकेंद्र ने नौटंकी के प्रारंभ में समूह गायन के लिए सुझाव दिए थे। कानपुरी नौटंकी का भी बुंदेलखंड में प्रभाव देखा जाता है। कानपुरी नौटंकी के एक निर्देशक त्रिमोहन लाल ने नारी पात्रों का अभिनय गायक वेश्याओं से करवाना शुरू किया। यह 1933-34 की बात है। झांसी के महाराजा गंगाधर राव ने 1857 में रंगशाला बनवाई। उसके बाद चरखारी में 1927 के लगभग रॉयल ड्रैमेटिक सोसायटी की स्थापना हुई। उसमें अरिमर्दन सिंह और आगाहस्र कश्मीरी का परम योगदान है। आप सभी जानते हैं कि यह सोसाइटी पारसी रंगमंच के प्रभाव में डूबी हुई थी इसीलिए, बुंदेलखंड की जो नौटंकी विकसित हुई; उसमें भी पारसी रंगमंच प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से शामिल रहा। यानी इसमें कामोत्तेजकता, अश्लीलता, फिल्मी धुनें बढ़ती चली गईं। यानी हम कह सकते हैं कि बुंदेलखंडी नौटंकी पर हाथरस की नौटंकी, कानपुर की नौटंकी और पारसी रंगमंच का प्रभाव बना रहा। इसमें एक बात विशेष रूप से कही जा सकती है कि बुंदेली लोक भाषा, गीत, संगीत, गायन, वादन, नृत्य का इस्तेमाल उन्हें करना पड़ा क्योंकि आखिरकार उन्हें प्रस्तुत तो बुंदेलखंड की जनता के सामने ही था न ? कलाकारों में कुछ सहज प्रतिभाशाली भी होते हैं जो जनता का रुख भांप लेते हैं और उसी के अनुसार संवादों, गायन में परिवर्तन भी कर लेते हैं और लोक

[35] बुंदेली संस्कृति और साहित्य, नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 349

रुचि और लोक परिवेश का खास ध्यान रखते हैं। इसका आशय यह हुआ कि बुंदेली ठुमरी, लेद, दादरा ,टप्पा गायन नौटंकी में तो होता ही था। इसके साथ-साथ नौटंकी में रावला और स्वांग भी बीच-बीच में कर लिए जाते थे। चूंकी, वैश्याएं नौटंकी में ज्यादा पैसा लेती थीं। इसलिए कम पैसा लेने वाली बेड़नी स्त्रियों को भी नौटंकी में स्थान मिलने लगा। कहने का आशय यह है कि आंचलिकता का रंग बुंदेली नौटंकी में चढ़ता ही चला गया और कहीं से ऐसा प्रतीत नहीं हुआ कि नौटंकी आयातित है बल्कि, लगता है कि बुंदेलखंड में ही उसका जन्म हुआ है। बुंदेलखंड के कुछ लेखकों ने बुंदेली में नौटंकियां लिखी भी हैं जिनके नाम हैं– विजय बहादुर श्रीवास्तव ,स्वामी प्रसाद श्रीवास्तव, भैया लाल व्यास इत्यादि। जब हमने अपनी सगी बुआ के लड़के श्री राम रतन अहिरवार जी, कैथी ग्राम जिला हमीरपुर के निवासी से बात की कि किन विषयों पर बुंदेलखंड में नौटंकी होती है तो, उन्होंने कुछ बातें हमें बताईं; जिनके आधार पर हम विषयों की जानकारी लिख रहे हैं। बुंदेलखंड में जिन विषयों पर नौटंकी की जाती है, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–लाला हरदौल, राजा हरिश्चंद्र, भतृहरी(भरथरी), भक्त पूरणमल, अमर सिंह राठौड़, लैला मजनू, मामा भांजे, राजा मोरध्वज, सत्यवान-सावित्री, सुल्ताना डाकू, लज्जावती, पति भक्त और फूलन देवी। इनमें लाला हरदौल और फूलन देवी है। यह बुंदेलखंड की ही हस्तियां हैं, जिसमें लाला हरदौल का बलिदान और फूलन देवी का जो शोषण हुआ और उसका प्रतिकार-प्रतिशोध हमें नौटंकी में देखने को मिलता है। मुझे अपने बचपन में नौटंकी देखने का अवसर मिला जिसमें पैरों से बजाने वाली एक हारमोनियम भी दिखाई देती थी।

1.3.5 भंड़ैती

नाट्यशास्त्र में नाटक के प्रकार जो हैं; उसमें उपरूपकों में एक भाण भी हैं। कई बार जब बच्चे ऊधम मचाते हैं या कुछ अटखेलियां, तरह-तरह के खेल खेलते हैं तो पिता डांटते हुए कहते हैं भाण बनना है क्या? इस शब्द का प्रयोग कश्मीर, पंजाब, हरियाणा में आपको अत्यधिक मिलेगा। इसलिए दिल्ली सल्तनत में यह राज दरबारों में खूब पनपे हैं। हमारे बुंदेलखंड में बुजुर्ग हमें बताते हैं कि झांसी जिले में भांड़ और भंड़ैती कलाकार ज्यादा थे। नर्मदा प्रसाद गुप्त भंड़ैती परंपरा को इस प्रकार समझाते हैं– "बुंदेली प्रदेश में भांड़ों के लोकनाट्य को भंड़ैती या कहीं-कहीं नकल कहते हैं। उसका प्रचलन प्राचीन है, क्योंकि उसकी लोकधर्मी परंपरा ही नाट्य शास्त्र में वर्णित 'भाण' उपरूपक के रूप में स्थान पा सकी। वस्तुतः 'भाण' लोकनाट्य भंड़ैती का ही शास्त्रीय रूप था और 'भाण' का यह परिनिष्ठित रूप ही आगे चलकर भंड़ैती–परंपरा में और भी विकसित हुआ। आदिकाल में स्वांग उत्कर्ष पर रहा, पर

चंदेल–नरेश कीर्तिवर्मनदेव कालीन (1060-1100 ई.) श्री कृष्ण मिश्र का नाटक 'प्रबोध चंद्रोदय' और परमर्दिदेव कालीन (1165 1203 ई.) वत्सराजकृत 'कर्पूरचरित भाण' से स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि भंड़ैती का अस्तित्व था"[36]

आचार्य केशव, तुलसीदास इत्यादि ने भी भांड़ों की चर्चा की है। भाड़-भड़ैती कलाकार राज दरबारों में तो अपना प्रदर्शन करते ही थे साथ-साथ रईसों के यहां भी वह इस तरह के प्रदर्शन करते थे। इसके अलावा तीज-त्योहारों में भी वह भड़ैती का प्रदर्शन प्रायः किया करते थे। इसके प्रदर्शन के लिए किसी खास ताम-झाम की आवश्यकता नहीं होती थी बल्कि अभिनेता की वाक्पटुता, हास्य-विनोद, उत्तर-प्रत्युत्तर, नाच-गायन में निपुणता की भी। विदूषक और विट दोनों का मणिकांचन संयोग ही उनकी उत्कृष्ट अभिनय कला का प्रतिनिधित्व करता था। इसका कथानक हल्का-फुल्का और कथावस्तु गंभीर होती है। समाज, धर्म, राजनीति, श्रृंगार ,वीरता में जो पाखंड, विसंगतियां हैं; उन्हीं को हास्य और व्यंग्य के माध्यम से कभी-कभी सद्य: प्रसूत, कल्पित और स्वच्छंद रूप से कथा आगे बढ़ती है। दो-तीन भाड़ ही मिलकर प्रश्नोत्तर शैली में आगे बढ़ते हैं। बीच-बीच में गीत-गायन, कुछ छंदों का पाठ और नृत्य से भी सहारा लिया जाता है। हाव-भाव का प्रदर्शन इसमें होता है लेकिन, नाटक के समान इसमें कार्य व्यापार कम हैं। कभी-कभी भंड़ैती के बीच में स्वांग डाल दिए जाते हैं। बिना तैयारी के अभिनय ज्यादा मौलिक होता है। इसी से इसके प्रदर्शनकर्ताओं की गहराई का पता लग जाता है। बधाई, प्रशस्ति के साथ-साथ राज दरबारों में विनोद मूलक प्रसंग, घटना, विषमता, विसंगति, भेदभाव पर यह खेले जाते थे। अब यह देखने को नहीं मिलते।

1.3.6 स्वांग

'स्वांग' बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा में सिरमौर है। यहां के ज्यादातर नाटकों, खेल-तमाशों में स्वांग किसी न किसी रूप में आता ही आता है। स्वांग के लिए किसी खास विषय वस्तु, तड़क-भड़क, तैयारी, विशेष संसाधनों की जरूरत नहीं होती है। इसका यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि कथानक और विषय वस्तुओं का स्वांग में नितांत अभाव है। गांव का कोई बुजुर्ग, वरिष्ठ कलाकार थोड़े से समय में ही कुछ लोगों को तैयार करके स्वांग करवा सकता है लेकिन, व्यवसायिक और मझे हुए कलाकार भी होते हैं। घर की स्त्रियों के कुछ वस्त्र, कुछ प्राकृतिक रंग, कुछ घरेलू वस्तुएं लेकर एक से बढ़कर एक, उम्दा स्वांग बुंदेलखंड में रचे जाते हैं और उनके कुशल प्रदर्शन होते हैं। इनमें हास्य और व्यंग्य की प्रधानता होती है। इनके संवाद चुटीले होते हैं। ऐतिहासिकता और

[36] बुंदेली संस्कृति और साहित्य, नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृ. 346

पौराणिकता से इनका कोई संबंध नहीं होता है। यह वर्तमान की समस्याओं की पृष्ठभूमि को लेकर प्रदर्शित किए जाते हैं। इनमें से कुछ परंपरागत भी होते हैं। इसके घेरे में राजा, सामंत, जमींदार, व्यवसायी, व्यवस्था, धर्म-समाज, राजनीति, पाखंड, कुरीतियां, बेमेल-विवाह, वृद्धावस्था, बाल्यावस्था इत्यादि सब आ सकते हैं। हंसी-हंसी, मजाक-मजाक में ग्रामीणजन राजा, सामंत, प्रशासनिक अधिकारियों के सामने अपना रोष बयां कर देते हैं और सामने तथाकथित बड़े लोग भी समझ जाते हैं। हंस देते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। समाज में साहूकार किस तरह से शोषण करता है। ब्राह्मण किस तरह से आम जनों का गला घोंटते हैं और प्रशासनिक अधिकारी किस प्रकार लगान, कर लगाकर लोगों का शोषण करते हैं। इसका बखूबी चित्रण इन स्वांगों में आपको देखने को मिलेगा। जहां तक इसकी प्राचीनता का सवाल है; इसके संबंध में नर्मदा प्रसाद गुप्त लिखते हैं कि "स्वांग सांगीत, भगत और नौटंकी से भिन्न लोकनाट्य है। बुंदेली स्वांग का उल्लेख 'छिताई कथा' (1516-26 ई.) में नट-नाटक के रूप में आता है, और तुलसी के रामचरितमानस, गीतावली और रामलालनहछू में तो बिल्कुल स्पष्ट है। सिद्ध संत कवि कण्हपा (9वीं शती) ने डोम जाति द्वारा सांग करना लिखा है। इससे प्रकट है कि स्वांग 9वीं शती में विद्यमान था। वत्सराज के 'रूपकषटकम्' में भी स्वांगों के अस्तित्व का पता चलता है। भाण, प्रहसन आदि नाट्य रूप स्वांग के ही विकसित रूप हैं। आदिकाल में स्वांग किस रूप में था, इसकी प्रमाणिक जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी, किंतु तुलसी के साक्ष्य से उनके दो रूप स्पष्ट हैं– 1. 'चढ़े खरनि विदूषक स्वांग साजि'(गीतावली) से तात्पर्य है–रूप धारण करना। 2. 'हिलमिल करत सवांग सभा रस केली हो' (रामललानहछू) सोहर लोकछंद की इस पंक्ति का अर्थ है– एकत्रित होकर सब स्वांग लोकनाट्य के अभिनय द्वारा सभी को रसमग्न करते हैं।"[37]

मध्य युग में जरूर इसकी विषय वस्तु पौराणिक, धार्मिक, काल्पनिक, मिथकीय रही होगी, लेकिन आधुनिक समय में राजनीतिक और समस्यामूलक जो मुद्दे हैं; वह स्वांग के माध्यम से सामने रखे जाते हैं। इससे लोगों का मनोरंजन भी होता है और उन्हें जागरूक करने मदद मिलती है। स्वांग कई तरह से विभाजित किये जा सकते हैं जिनमें भक्तिपरक, हास्य-व्यंगपरक, श्रृंगार परक तथा यह जाति आधारित भी हो सकते हैं; जिसमें चमार, धोबी, कोरी इत्यादि जातियां भी स्वांग बड़ी रुचि से करती हैं। आपको बुंदेली लोकजीवन की एक खास बानगी इन स्वांगों में देखने को मिल जाएगी। नर्मदा प्रसाद गुप्त ने लिखा कि स्त्री की इसमें ज्यादा भागीदारी होती है पुरुषों की तुलना में; जो कि मुझे न्याय संगत नहीं लगता क्योंकि, मैंने जितने भी स्वांग देखे हैं, उनमें पुरुष ही स्त्री पात्र बनते हैं। स्त्रियां तो लगभग स्वांगों में कई बार गायब भी होती हैं। एक राई और विवाह के अवसर पर 'बाबा का स्वांग' को

[37] बुंदेली संस्कृति और साहित्य, नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 339

छोड़ दिया जाए तो। 'बाबा का स्वांग' तो कई बार अश्लीलता की सीमा पार कर जाता है। जब बारात चली जाती है तो वर पक्ष की महिलाएं पुरुषों के कपड़े पहन कर तरह-तरह के स्वांग करती हैं। मसलन, अपनी ननद के यौन संबंधों को उजागर करना, किसी स्त्री के परपुरुष से संबंधों को उजागर करना इत्यादि। महिलाएं पूरे मोहल्ले में ढोलक के साथ नाचती-गाती दिखाई देती हैं और जो पुरुष उन्हें गलियों में दिख जाते हैं। उन्हें वह दौड़ा लेती हैं और बेलन की बुरी मार मारती हैं। इससे घबराकर अपने को बचाने के लिए पुरुष कुछ रुपए-पैसे उनको देकर अपना पिंड छुड़ा लेते हैं। इस पूरे लोकनाट्य में अनेक तरह की अश्लील गालियों का प्रयोग होता है। चंदेल काल में आल्हा-ऊदल ने भी जोगी बनकर 'कजरिया छैंकबे को स्वांग' किया था। लेकिन , समय के साथ इन स्वांगों में बदलाव भी हुए हैं। जैसे-जैसे युग का परिवेश बदलता है तो कला में भी तो परिवर्तन आते ही हैं। इन स्वांगों में नए विषय और नई चेतना जुड़ती गई है। यह स्वांग अभिनय को प्रमुखता देते हैं लेकिन गीत-गायन भी इसमें साथ-साथ चलता रहता है। नर्मदा प्रसाद गुप्त ने बुंदेली स्वांग की तुलना में बताया है कि ब्रज के 'भगत' संगीत प्रधान होते हैं। राजस्थान के स्वांग 'भवाई और गुजरात के 'भवाई वेश' नृत्य प्रधान होते हैं। हरियाणा के सांग गीतिप्रधान होते हैं। जबकि, बुंदेलखंड के स्वांग और हिमाचल के 'करियाला' और कश्मीर के 'भांड पात्थर' में अभिनय की प्रधानता होती है। अब यह बताना कठिन है कि बुंदेलखंड में स्वांग की परंपरा हरियाणा से आई या किसी अन्य राज्य से?

1.3.7 कांड़रा

बुंदेलखंड के अधिकांश लोकनाट्यों में 'स्वांग' का तड़का तो लग ही दिया जाता है। कांड़रा के पीछे एक कथा रामसहाय पांडे के बेटे संतोष पांडे ने सुनाई थी; जो कि राजा छत्रसाल से जुड़ी हुई है। एक धोबी था। वह राजा की पोशाक पर प्रेस कर रहा था तो कुछ नाच-गाना आया तो वह पोशाक पर ही प्रेस रखकर नाटक देखने के लिए चला गया ,राजा के कपड़े जल गए। सजा से बचने के लिए उसने एक तरकीब निकाली कि मैं अपना वेश बदलकर राजा के सामने कला का प्रदर्शन करूंगा और राजा से अपनी गलती माफ करने के लिए अनुरोध करूंगा तो, इस प्रकार से यह कांड़रा की परंपरा चल पड़ी। एक तरह से धोबी व्यक्ति कृष्ण का रूप धरकर इसका प्रदर्शन करता है। नर्मदा प्रसाद गुप्त जी इसको दूसरे प्रकार से बताते हैं– "कांड़रा राई की तरह मूलतः नृत्य ही है, लेकिन भक्ति काल के दौरान 16वीं शती के उत्तरार्ध और 17वीं शती के पूर्वार्द्ध में जब रासलीला को उत्कर्ष मिला, तब उसकी प्रतिक्रिया

में निर्गुण ब्रह्म के भक्तों ने कांड़रा नृत्य का विकास किया। उसमें निर्गुनिया भजन गाता हुआ नर्तक नृत्य करता है और अपने गीत के अनुरूप हावों-भावों का प्रदर्शन करता है"[38]

यद्यपि इसमें किसी घटना, प्रसंग, कथा और विनोद को सामने रखा जाता है। इसमें गीतिबद्ध-संवाद, गीतिबद्ध-कथा होते हुए भी यह प्रधान रूप से नृत्यपरक लोकनाट्य बन गया है। खुले रूप से ही इसका प्रदर्शन होता है। इसमें मृदंग, कसावरी, मंजीरा और झींका को लोग बजाते हैं। जबकि, इसमें नृत्य करने वाला सारंगी बजाता है और निर्गुण ढंग का गीत गाता है। इसमें कलाकार विशेष प्रकार का जामा पहनता है और कलगीदार पगड़ी बांधता है। खूब नाचते हुए गोल-गोल चक्कर लगाता है; जिससे जामा पर एक अद्भुत नजारा बन जाता है। गीत, गायन, नृत्य और संवाद , कथा का अद्भुत संयोग यह खेल प्रदर्शित करता है। यह एक तरह का प्रेमपरक गीति नाट्य है। पहले यह एकल अभिनय के ही स्वरूप में था। बाद में स्त्री-पुरुष, गायन-वादन मंडली भी साथ देने लगी। पहले यह गांव-गांव में प्रचलित थे और विवाह के अवसर पर भी इनका प्रदर्शन होता था। वस्तुतः कान्हा से ही कांड़रा बना है। यह लोकनाट्य कृष्ण के इर्द-गिर्द ही घूमने वाला नाटक साबित होता है।

इसके अलावा रावला,कछियाई ,धुबयाई,ढिमरयाई ,तमूरा,बहुरूपयाई और स्त्रियों के बाबा बनने में भी बुन्देली पारंपरिक नाट्य के तत्व दिखाई पड़ते हैं। अतः हमने इस अध्याय के माध्यम से बुंदेलखंड की भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक यात्रा के साथ ही साथ भारतीय पारंपरिक लोक नाट्य तथा बुंदेलखंड के पारंपरिक लोकनाट्य के विषय में जाना।

[38] बुंदेली संस्कृति और साहित्य, नर्मदा प्रसाद गुप्त, पृष्ठ 347

द्वितीय अध्याय : अलखनन्दन का रंग-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.1. जन्म

2.2. शिक्षा

2.3. कवि

2.4. व्यवसाय

2.5. मित्र मंडली

2.6. सम्मान

2.7. प्रदर्शित नाटक

2.8. व्यक्तित्व वैशिष्ट्य

2.9. कृतित्व

2.10. अन्य

द्वितीय अध्याय : अलखनन्दन का रंग-व्यक्तित्व एवं कृतित्व

अलखनन्दन के विषय में जानकारी लिखित रूप से बहुत कम उपलब्ध है। उनके विषय में थोड़ी बहुत जानकारी घर-परिवार के एक दो सदस्यों द्वारा तथा ज्यादातर उनके रचनात्मक कार्य, उनके थिएटर के प्रति समर्पण और उनकी रंग यात्रा से जुड़ी हुई जानकारियां, उनके कलाकारों ,साथियों द्वारा ही कुछ उपलब्ध हो पाई है। हमें खेद है कि एक क्रमवार और तथ्यपरत जानकारी देने में हम असफल रहे हैं। तो भी जितना संभव हुआ है, उस आधार पर जितना कहा जा सकता था। वह मैंने दर्ज किया है। इसके अलावा कुछ सामग्री हमें इंटरनेट पर भी प्राप्त हुई है। गिरीश रस्तोगी की पुस्तक में भी कुछ मिला है। इसके साथ-साथ 'संगीत नाटक अकादमी' से जो थोड़ी बहुत सामग्री मिली(छायानट ,नट रंग) है। उसका भी हम इसमें उपयोग कर रहे हैं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की पत्रिका रंग प्रसंग से भी मैंने सामग्री ली है। हम दर्ज कर रहे हैं।

2.1 जन्म

अलखनन्दन का जन्म कायस्थ परिवार में ग्राम कल्याणपुर ,जिला भोजपुर ,बिहार में अगस्त 1948 में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री जयनंदन प्रसाद सिन्हा था। अलखनन्दन की माता श्री का नाम श्रीमती राज किशोरी देवी सिन्हा था। यद्यपि कायस्थ जाति शासन प्रशासन में, भाषाई रूप से समृद्ध है लेकिन, मध्य प्रदेश में उन्हें उच्च वर्गीय दृष्टि से नहीं देखा जाता है। अलखनन्दन अपने माता-पिता की सबसे बड़ी संतान थे। उनके परिवार में माता-पिता सहित कुल आठ भाई बहनों में से पांच भाई और तीन बहनें थीं। आपके पिता आपको जबलपुर शहर में बचपन में ही ले आए थे क्योंकि पिता ऑर्डिनेंस फैक्ट्री में जो भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के अंतर्गत आती थी, उस में नौकरी करते थे। अलखनन्दन को घर में 'सोना दादा' कह कर बुलाया जाता था। इनके भाई-बहनों के नाम इस प्रकार हैं- मनोरमा सिन्हा, स्वर्णा सिन्हा ,कनक सिन्हा। यह तीन बहने थीं। अलखनन्दन सबसे बड़े भाई थे। इनके बाद वाले भाई अखिलेश्वर प्रसाद सिन्हा ,विजय नंदन सिन्हा ,अजय सिन्हा ,संजय सिन्हा थे। आपकी धर्मपत्नी का नाम श्री मती रेखा वर्मा था। रेखा वर्मा जी अम्बिकापुर ,छत्तीसगढ़ से थीं। आपके सुपुत्र का नाम अंश पायन सिन्हा है।

2.2 शिक्षा

आपकी संपूर्ण शिक्षा-दीक्षा जबलपुर शहर में ही हुई। आपकी प्रारंभिक शिक्षा 'सेंट थॉमस स्कूल' जबलपुर से हुई। आपने हिंदी साहित्य में संभवतः रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय(जबलपुर विश्वविद्यालय) से स्नातक, स्नातकोत्तर की उपाधि ली है। इसके साथ-साथ आपने लोक प्रशासन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा भी अर्जित किया था। अलखनन्दन बचपन से ही मेधावी छात्र रहे हैं। उनमें गहन अध्ययन के प्रति लगाव शुरू से ही देखा गया है। एक तरह से हम कह सकते हैं कि अलखनन्दन एक विद्या व्यसनी व्यक्ति थे। वह यह विश्वास करते थे कि शिक्षा के द्वारा ही वह उन तमाम मुकामों को हासिल कर सकते हैं जो, शायद किसी अन्य कार्य करने से वह हासिल न कर पाएं। अलखनन्दन का बचपन जबलपुर जैसे छोटे शहर में बीता। जहां पर उन्होंने बुंदेली बोली का दूध पिया और बुंदेली लोक संस्कृति से आत्म साक्षात्कार किया, जिसका प्रभाव उनके ऊपर जीवन पर्यंत बना रहा। वह जीवन तमाम साहित्य, कविताएं लिखते-पढ़ते रहे। केवल हिंदी साहित्य ही नहीं वरन अंग्रेजी साहित्य और अन्य भारतीय भाषाओं का अनुदित साहित्य भी लगातार पढ़ते रहे। उनके पास पुस्तकों का एक विशाल संग्रह था जिसको उन्होंने सांत्वाना निगम के माध्यम से नाट्य संस्थान कोलकाता भेज दिया था। क्योंकि ,उनके परिवार में उनके ज्ञान को संरक्षित करने की किसी को फुर्सत नहीं थी। अलखनन्दन की जब मृत्यु 2012 में हुई तो दैनिक भास्कर अखबार में जो छपा है; वह बड़ा ही उल्लेखनीय है-

"15 अगस्त 1948 को बिहार के कल्याणपुर में जन्मा संघर्षशील, अनुशासित, मिलनसार, लेखक, कवि, नाट्य लेखक और रंगनिर्देशक जिसकी सांसों में रंगकर्म धड़कता और संवादों में साहित्य व रंगभाषा की महक थी। वह महज एक नाम नहीं, समकालीन हिंदुस्तानी रंगकर्म की जीती जागती परिभाषा था। रंगमंच में अनुभवों का विराट संसार समेटे, रंग-आंदोलन की अलख जगाते 63 वर्षीय वरिष्ठ रंगकर्मी अलखनंदन रविवार को सुबह 11 बजे रंगमंच से पर्दा गिरा गए। अलखनंदन अब हमारे बीच नहीं हैं। वे अपने पीछे पत्नी रेखा, बेटा अंशपायन, नटबुंदेले संस्था और हजारों रंगकर्मी शिष्यों की जमात छोड़ गए। उनके जाने से कला जगत में शोक की लहर दौड़ गई है। हाल ही में उनके रंगकर्म में योगदान के लिए संगीत नाटक एकेडमी अवार्ड देने की घोषणा हुई थी, लेकिन इस प्रतिष्ठित सम्मान लेने से पहले वे दुनिया को अलविदा कह गए। ऐतिहासिक नाटक महानिर्वाण में अलखनंदन के निर्देशन में भारतीय रंगमंच के शीर्ष पुरुष ब व कारंत ने अभिनय भी किया था। पहली बार भारत भवन के रंगमंडल में बव कारंत को अभिनय करते दर्शकों ने इसी नाटक में देखा था। अलखनंदन की तुलना सिर्फ अलखनंदन से ही हो सकती है। उन्होंने

अपने शुरुआती रंगकर्मी जीवन से अविभाजित मध्यप्रदेश के जिलों और गांवों तक एक सार्थक, सृजनात्मक रंगकर्म की अलख जगाई थी और अनेक रंगकर्मियों के साथ एक हिंदी क्षेत्र का नया रंग मुहावरा गढ़ा और उसके सजाया संवारा। उन्होंने रंगकर्म के लिए सेंट्रल गर्वमेंट की बड़ी नौकरी तक छोड़ दी। बगैर किसी सरकारी मदद के लिए रंगआंदोलन को नई गति देते रहे। नट बुंदेले संस्था में नया रंग भरना, नए कलाकारों को रंगकर्म की जुबान समझाने वाला जुझारू व्यक्तित्व, अनुशासनप्रिय, कवि, समय का पाबंद, जीवटता से भरपूर, प्रयोगधर्मिता उनके व्यक्तित्व की खासियत थी। लौटकर याद करने पर ऐसा इंसान नजर आता है, जिसकी निगाहें आप पर पड़े तो आप हमेशा के लिए उसी के हो जाएं। वे गंभीर बात को सहज रूप में व्यक्त करते थे। वरिष्ठ साहित्यकार ज्ञानरंजन ने कहा कि नाटक करने की प्यास, लगन, पागलपन के कारण अलखनंदन ने सेंट्रल गर्वमेंट का जॉब तक छोड़ दिया था। नाटक में प्रयोग करना, नए कलाकारों को साहित्य रंगमंच से रूबरू कराने वाले अलख के जाने से रंगमंच का एक अध्याय खत्म हो गया। - रंगकर्मी आलोक चटर्जी ने कहा कि मैं जो कुछ भी हूं। उसमें बड़ा योगदान अलखनंदन जी का है। रंगमंच में अनुशासन का दूसरा नाम थे अलखनंदन। मप्र ही नहीं पूरे देश के रंगमंच के लिए यह अपूरणीय क्षति है। - रंगकर्मी केजी त्रिवेदी ने कहा कि वे रंगमंच के डिजाइनर थे, जो नाटक को इस तरह डिजाइन करते थे कि नाटक दर्शकों से संवाद करता था। - रंगकर्मी कमल जैन ने कहा कि मैंने उनसे और कारंत साहब से रंगमंच को जाना। उनके निर्देशन में मुझे महानिर्वाण में कारंत साहब के साथ अभिनय करने का मौका मिला, जो मेरे लिए अविस्मरणीय है। - रंगकर्मी अशोक बुलानी ने कहा कि उनसे हमने रंगकर्म में जीना सीखा। उनके पास जाने पर हमेशा नया सीखने को मिलता था। - लेखक मंजूर एहतेशाम ने कहा कि वे हमारी मित्र मंडली के थे। उनमें साहित्य की समझ, कल्पनाशीलता अद्भुत थी। उनके सामने शब्द बौने हो जाते थे। - कला समीक्षक श्याम मुंशी ने कहा कि वे बहुत अच्छे मित्र, व्यक्ति थे। उन्होंने पूरी जिंदगी थियेटर को दे दी। ऐसे विचार वाले जुझारू व्यक्तियों की आज बेहद जरूरत है। - आर्ट डायरेक्टर जयंत देशमुख ने कहा कि अलख जी को कलाकार के अंदर से अभिनय निकालना आता था। वे ठोंक-पीट कर कुम्हार की तरह मिट्टी रूपी युवाओं को कलाकार बना देते थे। वे रंगमंच के आदिपुरुष थे। - रंगकर्मी सतीश मेहता ने कहा कि रंगमंच को समर्पित नाम था अलखनंदन। अब नटबुंदेले के उनके सैकड़ों शिष्य रंगआदोलन को आगे बढ़ाएंगे।[1]

[1] https://www.bhaskar.com/news/mp-bpl-alakhnandan-is-no-more-2856754.html

[16.4.2024, समय 12:48]

अलखनन्दन का रंगकर्मी के रूप में उभरना चुनौतीपूर्ण था। जिस तरह के वह नाटक देख रहे थे अपने समय में उनसे उनको घुटन होती थी। वह चिल्ला पड़ते थे। अलख प्रयोगवादी नाटककार थे। अलख अल्पभाषी थे लेकिन जब बोलते थे तो, वजनदार बोलते थे। वह फुटबॉल के खिलाड़ी थे। इसलिए ,उनकी रंगभाषा एक खिलाड़ी की भाषा बन गई है। चुस्त-दुरुस्त और फुर्तीलापन उनकी रंगभाषा की विशेषता है। सुप्रसिद्ध रंगकर्मी आलोक चटर्जी ने उनके बारे में लिखा है कि "अलखनन्दन खुद ही से बने नाटककार थे। उन्होंने आधुनिक संस्थानों से कुछ न सीख कर दुनिया से बहुत कुछ सीखा। उनके सीखने में इस देश की परंपरा और लोग थे। अलख जीवन-अनुभवों के नाटककार थे। उन्होंने अपने जीवन को जैसे एक किसी बड़े नाटक का हिस्सा बना लिया था। प्रारंभ में वे नाटकों को हूट करते थे और फिर एक बड़े पाए के नाटककार बने"[2]

2.3 कवि

अलखनन्दन अपने छात्र जीवन से ही कविताएं करने लगे थे। जैसे-जैसे समझ विकसित होती गई, वह जो निम्न मध्यमवर्गीय चेतना लेकर पैदा हुए थे, निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मे थे, उसके दुखों, तकलीफों, परेशानियों से अलखनन्दन हमेशा दो-चार होते रहे। अलखनन्दन सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर थे। उस दिशा में क्या वह अपना योगदान दे सकते हैं? उन्होंने इसके लिए साहित्य, संस्कृति की शरण ली। यह वह अपने छात्र जीवन से ही विचार करने लगे थे और उन्हें ऐसे माध्यमों की तलाश थी जिससे वह अपना कुछ न कुछ योगदान समाज को दे सकें। अलखनन्दन को पहलवानी का, पुष्ट शरीर का और फुटबॉल खेल का शौक अपने जवानी के दिनों से ,बचपन के दिनों से ही हो गया था । एक तरह से हम उन्हें रामविलास शर्मा और निराला की परंपरा में पाते हैं। अलखनन्दन दिखने में छोटे कद के थे लेकिन उनका शरीर पुष्ट, फुर्तीला और मजबूत था। वह कठिन परिश्रम में विश्वास करते थे। जब तक वह परिपक्वता नहीं पा लेते थे, तब तक उन्हें संतोष नहीं होता था। उनके लंबे घुंघराले बाल थे जिससे आपको मैला आंचल के लेखक फणीश्वर नाथ रेणु और सुमित्रानंदन पंत की याद आ जाएगी। अलखनन्दन स्वभाव के बाहरी तौर पर अत्यंत कठोर व्यक्ति थे। लेकिन, अंदर से सुलझे हुए और कोमल हृदय के व्यक्ति थे। उनमें संवेदनाओं की अधिकता थी अर्थात वह संवेदनशील व्यक्तित्व के धनी थे। ऐसा उनके बारे में उनके शिष्य ,उनके

[2] नटरंग-92, संपा. अशोक वाजपेयी और रश्मि वाजपेयी, अप्रैल-जून- 2012, पृष्ठ 39

परिवार वाले प्रायः बताते हैं। उनकी कविताएं समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। यद्यपि हमें इसकी जानकारी बहुत कम मिली है। उल्लेखनीय तौर पर उनका एक काव्य संग्रह 'घर नहीं पहुंच पाता' और ब व कारंत की मृत्यु पर उनकी तीन कविताएं 'रंग प्रसंग' पत्रिका अंक दो, जुलाई-दिसंबर 2003 में प्रकाशित हुई थीं। इसके अलावा वह नाट्य निर्देशक भी थे। हम उनकी काव्य प्रतिभा से परिचित कराने के लिए यहां उनकी दो कविताएं दे रहे हैं। एक उनके कविता संग्रह 'घर नहीं पहुंच पाता' से है। दूसरी, जो कविताएं उन्होंने बी वी कारंत की मृत्यु पर लिखी थीं, उनमें से एक यहां दी जा रही है।

"प्रार्थना

ओ

अग्नि

चिता से कहना

सुर में जले

लपट से कहना

लपके लय में

तेरी धन गोद में

सोने आता

ध्वनियों का जादूगर

आग लपट

तूफान बवंडर

पीले पत्तों का वृंदगान

आकाश की सरगम

पशुओं की कातर गुहार

तितली का गाना

परियों की गुनगुन

चुड़ैल का चिल्लाना

सागर की हुंकार

पहाड़ों की चुप्पी

सुरों के अपने आंगन में

ऐसे रचता था

आग पे बैठी

तितली गाती

नतमस्तक होते पहाड़

सागर

बच्चों के पांव पर

माथा धरता

क्या जाने

तेरे आंचल में

गुनगुना उठे

कोई चैती

रक्त में कोई

नई नवेली

धुन अटकी हो

तालों का जंजाल

शिराओं में

स्तंभित

ओ

अग्नि

उसको अपनी

अंजुरी में

लेना हौले से

जैसे वह

दुःख को समेट कर

सुख रचता था

इसलिए

ओ

अग्नि

चिता से कहना

सुर में जले

लपट से कहना

लपके लय में"[3]

अलखनन्दन की कविताओं में नाट्यकीयता और संवाद की स्थिति बनती है। यह जो कविताएं यहां दी जा रही है, वह पाखंड और ब्राह्मणवाद को उजागर करती हुई समाज की सच्चाई को बयां करती है।

आखिरकार

"शुरू करने वाले का

अंत किसने किया?

—पुरोहित ने

पुरोहित को किसने मारा?

—सात हत्यारों ने।

किसने की

सात हथियारों की हत्या?

–लोगों ने।

लोगों को

किसने उजाड़ा?

–जिसने लोगों को उजाड़ा

हत्या की सात हथियारों की

[3] रंग प्रसंग, संपा. अशोक वाजपेयी और रश्मि वाजपेयी, वर्ष 6 अंक 2 : जुलाई-दिसंबर 2003, पृ. 117-118

पुरोहित को मारा

शुरू करने वाले का

गला चाक किया

पूजा घर तोड़े

क्योंकि उसे गढ़ने थे

और सारे शुरू करने वाले

बहुत सारे पुरोहित

स्थापित करने थे

कई-कई

सात हत्यारे

बनाने थे

असंख्य पूजा घर

और इन सबके पीछे दौड़ने वाले

लोगों के अलग-अलग रेवड़

इस तरह

बहुत से लोग

अलग-अलग पैदा हुए

फिर पूजा घरों ने

पूजा घर तोड़े

लोगों ने ही मारा

लोगों को

हत्यारे ने हत्या की

हत्यारों की

पुरोहितों ने

पुरोहितों को मारा

आखिरकार

शुरू करने वालों ने

शुरू करने वालों को मारा

और खुद ने मारना शुरू किया

खुद को।"[4]

2.4 व्यवसाय

आजीविका के लिए अलखनन्दन 'गन कैरिज फैक्ट्री' जबलपुर में काम किया अर्थात सरकारी नौकरी की। उन्होंने 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया' के मातहत पत्रकारिता भी की। इसकी विशेष जानकारी हमें नहीं उपलब्ध हो पाई है। पत्रकार के रूप में काम किया और भोपाल, रायपुर, बिलासपुर इत्यादि जगहों पर काम किया। इसी दौरान उन्होंने बी वी कारंत और बंसी कौल को नाट्य कर्म करते हुए देखा और उनसे प्रभावित हुए। बाद के दिनों में वह हबीब तनवीर के काम से बड़े ही मुतासिर हुए। यद्यपि, अलखनन्दन के घर में कोई भी नाटक से, संस्कृति से, नृत्य, गायन से जुड़ी परंपरा नहीं थी। चूंकि, उन्होंने ज्यादातर शौकिया रंगमंच किया था और आप जानते हैं कि शौकिया रंगमंच में रुपए-पैसा तो उतना होता नहीं है। बस मानसिक संतोष मिलता है। इसके लिए उन्होंने अपनी रेपर्टरी 'नट बुंदेले' बनाई और भारत सरकार,संगीत नाटक अकादमी ,नवोदय विद्यालय की नाटक परियोजनाओं में काम किया और उससे भी अपनी आजीविका चलाई। इसके अतिरिक्त उन्होंने शासन प्रशासन की योजनाओं,परियोजनाओं के प्रचार हेतु भी कुछ नुक्कड़ नाटक लिखे और उनका प्रदर्शन किया, जिससे भी उनका परिवार पलता था। इसके अलावा वह कुशल अभिनेता भी थे। उन्होंने जबलपुर में भी अभिनय किया था। 'आधे अधूरे' नाटक में भी उन्होंने अभिनय किया था। भोपाल में बी वी कारंत के नाटकों में भी उन्होंने अभिनय किया। इसके अलावा उन्होंने मणि कौल की फिल्म 'सतह से उठता आदमी' में सहयोग भी किया था। भारत भवन भोपाल में बी वी कारंत के साथ सहायक निदेशक भी रहे। इसके साथ-साथ उन्होंने चंडीगढ़ विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में नाटक विभाग में कार्य किया। इसके अतिरिक्त बेंगलुरु में उन्होंने 'उर्दू थिएटर' की स्थापना में भी अपना योगदान दिया।

[4] घर नहीं पहुंच पाता, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, दिल्ली, संस्करण 2016, पृष्ठ 103-104

इसके अलावा उन्होंने अविभाजित मध्य प्रदेश जिसमें छत्तीसगढ़ भी शामिल था; रायपुर, सरगुजा, बिलासपुर, छतरपुर, सागर, रीवा, शहडोल, सतना, जबलपुर इत्यादि में घूम-घूम कर रंगमंच किया और रंग कार्य शालाओं में प्रशिक्षुओं को प्रशिक्षण दिया। इसके अलावा उन्होंने नवोदय विद्यालयों में बच्चों को भी रंगमंच की शिक्षा दी जो कि उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, राजस्थान, मध्य प्रदेश इत्यादि राज्यों में फैली हुई है। देश के विभिन्न प्रदेशों में वह लगातार अपनी प्रस्तुतियां ले जाते रहे हैं। इससे भी अलख के परिवार को रोजीरोटी मिलती थी।

2.5 मित्र मंडली

अलखनन्दन की मित्र मंडली बहुत बड़ी है। कह सकते हैं कि राष्ट्रव्यापी है। उन्हें जबलपुर में ज्ञानरंजन और हरिशंकर परसाई जी का आशीर्वाद और स्नेह, मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। ज्ञानरंजन जी ने तो उनके एक नाटक में मुक्तिबोध की एक कविता का पाठ भी किया था। उनकी शिष्य मंडली भी बहुत व्यापक है। फिल्म, टेलीविजन, नाटक,रेडियो की दुनिया में अलखनन्दन द्वारा प्रशिक्षित अनेक अभिनेता अभिनेत्रियां फल-फूल रहे हैं। जबलपुर से शुरुआत करें तो आलोक चटर्जी, सीताराम सोनी, राजकुमार कामले, गौरी शंकर यादव,कुमार किशोर ,प्रकाश कुलकर्णी , अरुण पांडेय, बुंदेली गायक रुद्र दत्त दुबे, तपन बनर्जी, सुधीर नेमा, विजय सिंह, संजय गर्ग, मणि कौल, बंसी कौल, रामेश्वर प्रेम, त्रिपुरारी शर्मा, गुरुदेव हबीब तनवीर, गुरुदेव बीवी कारंत, मंजूर एहतेशाम, विनोद मिश्रा, मनोज मिश्रा, आनंद मिश्रा, गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा, रंजना तिवारी, सुरेंद्र वानखेड़े, कुमुद मिश्रा, नीरज कुंदेर, वसंत निरगुणे, कहानीकार शशांक, विनय उपाध्याय, अशोक वाजपेई, कमल जैन, अशोक बुलानी, श्याम मुंशी, जयंत देशमुख, संजय मेहता, सरोज शर्मा, ओम प्रकाश चौरसिया, शारदा सिन्हा, पूषण भट्टाचार्य, के एन पण्णिकर, इरफान सौरभ, के जी त्रिवेदी,सत्य ब्रत राऊत ,कन्हैया लाल कैथवास,महेश आनंद ,देवेन्द्र राज अंकुर इत्यादि।

2.6 प्रदर्शित नाटक

जैसा कि आप जानते हैं कि अलखनन्दन नाट्य निर्देशक भी थे। अलखनन्दन ने लगभग सभी रंग शैलियों में नाटक प्रदर्शित किए हैं तथा लोक बोलियों में भी उनके नाटक हुए हैं। मसलन शैलियों की बात की जाए तो यथार्थवादी, विसंगत नाटक, संस्कृत रंगमंच, पाश्चात्य रंगमंच, लोक रंगमंच, बाल नाटक, कविताओं का रंगमंच,

नुक्कड़ नाटक, कहानियां तथा लोक कथाओं का नाट्य रूपांतरण तथा लोक भाषाओं में बुंदेली, भोजपुरी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी इत्यादि में उनका रंगमंच हुआ है। हमें जितने नाटकों की जानकारी मिली है, वह अंतिम नहीं है ,तो भी उल्लेखनीय है–

जैसे हम लोग (1 मे 1975 शशांक), रामकली(नुक्कड़ नाटक) तथा एड्स की जागरूकता के लिए भी उन्होंने नुक्कड़ नाटक लिखे और खेले भी। जबलपुर में उन्होंने 'विवेचना' नाट्य संस्था तथा 'कचनार' नाट्य संस्था के अंतर्गत अनेक नाटकों के प्रदर्शन किये, जिनमें प्रमुख नाम इस प्रकारहैं–जैसे हम लोग (शशांक), दुलारी बाई(मणि मधुकर), बकरी(सर्वेश्वर दयाल सक्सेना), इकतारे की आंख(मणि मधुकर), बहुत बड़ा सवाल(मोहन राकेश), रस गंधर्व (मणि मधुकर), तीन अपाहिज(विपिन कुमार अग्रवाल), गिनी पिग (मोहित चटर्जी), वेटिंग फॉर दी गोदो (सैमुअल बैकेट), आधे अधूरे, आषाढ़ का एक दिन 1982(मोहन राकेश), क्लर्क की मौत(चेखव), आगरा बाजार(हबीब तनवीर), सत्र संतान, चंदा बेड़नी, ताम्रपत्र(देवाशीष मजूमदार), जगर मगर अंधेर नगर(भारतेंदु के चार-पांच नाटकों का कोलाज), चारपाई, अजात घर, सुपरईमो (रामेश्वर प्रेम), महानिर्वाण(सतीश आलेकर), भए प्रकट कृपाला दीन दयाला(पु.ल. देशपांडे), बांझ घाटी(अलखनन्दन ,त्रिपुरारी शर्मा), किशन लाल(सुदीप बंदोपाध्याय), तांबे के कीड़े(भुवनेश्वर), मुक्ति संग्राम (दलित महापुरुषों और दलित जीवन पर), सुपनवा का सपना(शाहिद अनवर), मोटेराम शास्त्री का सत्याग्रह(सफदर हाशमी, हबीब तनवीर), अंडोरा(मैक्स फ्रिश्च), धूर्त समागम,भगवदज्जुकम् (बोधायन संस्कृत), मूर्ख शिरोमणि, बुद्धि बहादुर, हमारी पृथ्वी, हम हवाएं (बाल नाटक) मूर्ख गुरु के मूरख चेले, सिंहासन खाली है(सुशील कुमार सिंह), अंधेरे में (मुक्तिबोध), मगध से मगध तक (श्रीकांत वर्मा) तथा काव्य रंग (रवींद्र नाथ टैगोर),डरा हुआ आदमी' और 'अखाड़े के बाहर से'(फजल ताबिश), दरिंदे (हमीदुल्लाह), वीक एंड(निर्मल वर्मा), जज (एच सी ब्रेनर), एक था गधा उर्फ अलादाद खां(शरद जोशी), मुर्गा देसी बांग बिदेशी (मोलियर), अमरू का कुरता, जाति ही पूछो साधु की(विजय तेंडुलकर), अड़हा राजा तीन ठगरा, गोडाला देखत हन(छत्तीसगढ़ी), मशीन (सफदर हाशमी), अलीबाबा (मोहित चटर्जी, हिंदी नाट्य रूपांतरण सांत्वना निगम),राजा का बाजा इत्यादि।

2.7 व्यक्तित्व वैशिष्ट्य

जबलपुर शहर के नामी कहानीकार, 'पहल' पत्रिका के संपादक ज्ञानरंजन जी ने अलखनन्दन के व्यक्तित्व के बारे में हमें बताया कि ' अलखजी का व्यक्तित्व और उनकी शारिरिक रचना, उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनका बोलना-चालना, बहुत फक्कड़, जिसको कह सकते हैं, वह बहुत फक्कड़ थे और अक्खड़ भी थे। फक्कड़ भी थे और अक्खड़ भी थे। इसको समझिए! मतलब ये कि वह किसी की परवाह नहीं करते थे। अपने रास्ते पर चलते थे। एक कठिन मार्ग उन्होंने चुना था। ये बुन्देली चरित्र हैं। यद्यपि वह बुंदेलखंड के नहीं थे। लेकिन, ये बुन्देली चरित्र है कि वह फकीर की तरह रहता है। मौज-मौला की तरह रहता है। बहुत अक्खड़-पंथी होता है। और धूल झाड़कर चलने वाला आदमी होता है। गिरता है। धूल झाड़ता है और फिर चल देता है। वह अकेला होता है। फिर धीरे-धीरे उसके पास लोग इकट्ठे होते हैं। क्योंकि, उसके साथ रहना कठिन है। वह कठिन मार्ग का साधक है। तो अलखनंदन कठिन मार्ग का साधक था। वह माइग्रेट करके बिहार से छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़ से फिर, उस समय तो छत्तीसगढ़ भी मध्यप्रदेश ही था,वहां से फिर जबलपुर आया और जबलपुर में उसने नौकरी की, गन कैरिज फैक्टरी में। एक दिन जाता था। एक दिन नहीं जाता था। तनख्वाह कट जाती थी। कभी-कभी आधी भी नहीं मिलती थी। लेकिन, चूंकि उसे नाटक का रंग चढ़ा हुआ था, नाटक करने का। उसने क, ख, ग से नाटक करना शुरू किया। वह शून्य था। उसके पास जो स्लेट थी, शून्य थी। लेकिन उसने उस स्लेट को पूरा भरा। आप इस बात को समझिए। इसका प्रतीकात्मक अर्थ है कि उसने जो कुछ भी किया। उसको मिला नहीं, अर्जित किया। उसने अर्न किया। उसने कभी नौकरी की परवाह नहीं की और अंततः हम लोगों के बहुत समझाने-बुझाने के बावजूद भी कुछ दिनों तो चलाता रहा। बाद में उसने नौकरी भी छोड़ दी। उसको पूरी पेंशन नहीं मिली। पूरा फण्ड नहीं मिला। उसके आर्थिक जीवन में बहुत तंगी रही। लेकिन, उसके पास दो रुपये भी जेब में होता था,तो वह यहां पंद्रह किलोमीटर बस करके, टेम्पो करके, पैदल, सायकिल चला कर के रिहर्सल की जगह पहुंच जाता था। तो, मैंने जो अलखनंदन को देखा है। मैंने जो अलखनंदन को समझा है। वह यह है कि वह सूनी स्लेट पर, खाली स्लेट पर इबारत को भरने वाला, रंग भरने वाला, नाटक की कलाओं को सीखने वाला , गिरकर-उठकर, धूल-झाड़कर चलने वाला, एक अनोखा इंसान था।'[5]

इस बातचीत से अलखनन्दन के बहु-आयामी व्यक्तित्व की झलक मिलती है। अलखनन्दन के पास कोई रंग-परिवेश नहीं था। परिवार में कोई सांस्कृतिक चहल-पहल नहीं थी। अलखनन्दन ने अपने आप को कला-संस्कृति के क्षेत्र में अपने अध्ययन से, अपनी जिजीविषा जीवटता से, कठिन अभ्यास और परिश्रम के दम से, खुद

[5] ज्ञानरंजन से 10 मार्च 2022 को जबलपुर में लिये गये साक्षात्कार का अंश

ही एक मुकाम को अर्जित किया था। अलखनन्दन ने अपने व्यक्तित्व को एक विशाल व्यक्तित्व में बदलने का काम स्वयं ही अपनी मेहनत से किया था। वह किसी रहनुमा की वजह से रंग-साधना में तत्पर नहीं हुए थे। अलखनन्दन ने बहुत ही सार्थक, सरल, सहज जीवन जी कर, निरंतर नाट्य कला को ऊंचाई प्रदान करने में अपने को झोंक दिया था। भला केंद्र सरकार की नौकरी करने के बावजूद, कोई व्यक्ति यदि फक्कड़ का जीवन जी कर, अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर रहा है तो, उसमें जरूर किसी बड़ी बेचैनी का होना आवश्यक बन जाता है। रंग कला, साहित्य, संस्कृति, सामाजिक-बदलाव इत्यादि का अलखनन्दन पर भूत सवार हो गया था। उन्हें आजीवन कलाओं के प्रति खासतौर से लोक कलाओं के प्रति समर्पित बनाए रखने में सहायक सिद्ध हुआ। अलखनन्दन ने बुंदेलखंडी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी इत्यादि लोक बोलियां में लोक रंगमंच को आधुनिक मंच प्रदान करने का काम किया। आर्थिक तंगी में भी, संसाधनहीनता में भी अलखनन्दन ने रंग कर्म को शीर्ष तक पहुंचाने में, सृजनात्मक बनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी थी। अलखनन्दन का व्यक्तित्व जलते हुए अंगारों से निर्मित लगता है। वह कोई साधारण व्यक्तित्व नहीं है। यदि साधारण व्यक्तित्व होता तो, जबलपुर जैसे छोटे शहर से मध्य प्रदेश रंग मंडल भोपाल में सह रंग निर्देशक न बन पाता और देशभर में उसको वह पहचान न मिल पाती, जो उनको मिली थी। अलखनन्दन ने अपने शरीर, घर-परिवार की परवाह न करके घोर अध्ययन किया। अपनी प्रतिभा को साबित कर करके दिखाया। दुनिया के श्रेष्ठ रंगकर्मियों के साथ बैठकर, उनसे कंधे से कंधा मिलाकर अपना अलग मुकाम बनाया। अलखनन्दन का व्यक्तित्व यूं ही निर्मित नहीं हो गया। इसके लिए उन्होंने अपने शरीर की कुर्बानी दी। दिन-रात अपने को तपाया-गलाया। रंग कला के प्रति उनके अंदर गहन संवेदना थी। एक गहरा समर्पण का भाव था। तभी तो इसी भावना के साथ वह आगे बढ़े। उन्होंने इतना काम किया कि पूरे मध्य प्रदेश में और पूरे देश में अलखनन्दन ,अलखनन्दन हो गए। इस बातचीत से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अंदर रंग कला को लेकर स्पष्ट धारणा थी। यह सरल विद्या तो नहीं है। यह निरंतर घोर परिश्रम द्वारा ही चमक सकती है। जब इंसान के जो इरादे होते हैं, अगर वह इतने फौलादी हों कि समझौता न कर पाएं , तो ऐसा आदमी एक न एक दिन अपने को जरूर साबित करके ही दम लेता है।

एक और साक्षात्कार मैंने अलखनन्दन के व्यक्तित्व पर और उनकी रंग शैलियों पर बात करने के लिए अरुण पांडे जी का लिया था। । जबलपुर के रंगकर्मी ,पत्रकार और अलखनन्दन के प्रमुख शिष्य अरुण पांडे से अलख के व्यक्तित्व के बारे में जब मैंने उनसे प्रश्न किया तो, उन्होंने अपने उत्तर में कहा कि 'अलखजी बहुत पढ़े लिखे आदमी थे। बहुत सुलझे दिमाग के थे। हालांकि, जन्म से तो बिहार के थे। लेकिन, फिर वह मध्यप्रदेश में आकर रच बस गए थे। उनकी पत्नी थीं, वह भी छत्तीसगढ़ की थीं। उनको लोकसंगीत, लोकसंस्कृति का बहुत अच्छा ज्ञान था।

दोनों ने आपसी तालमेल से मध्यप्रदेश में बहुत अच्छा काम किया। मेरा संबंध उनसे 1978-79 से रहा है। चार-पांच साल तक हमलोगों ने साथ-साथ काम किया। मैंने उनके निर्देशन में 'डरा हुआ आदमी', बकरी, दुलारी बाई, एक तारे की आँख, इस तरह के हमने चार-पांच नाटक उनके निर्देशन में किये। छः-छः, सात-सात घंटे साथ-साथ रहते थे। हम लोगों का बहुत अच्छा संबंध था।'[6]

अलखनंदन के दिमाग का सुलझा होना यह बताता है कि उनके अंदर बुद्धि और विवेक तो था। अलखनन्दन की पत्नी छत्तीसगढ़ मूल की होने के कारण ,उन्हें कहीं न कहीं बुंदेली और छत्तीसगढ़ी को समझने का भरपूर अवकाश मिला। इससे अलखनन्दन की लोक संस्कृति को लेकर, जो उनके अंदर एक सम्मान की भावना है, वह उजागर होती है। लोक संस्कृति के प्रति अलखनन्दन का अगाध प्रेम, इन बातों से प्रकट होता है। उनके अध्ययनशील गुण की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। अलखनन्दन को उनके पिता बचपन में ही जबलपुर ले आए थे। जबलपुर उन दिनों एक छोटा शहर जैसा था। लेकिन, रेलवे विभाग एक बड़ा रोजगार देने वाला साबित हुआ। यह शहर मेट्रोपॉलिटन शहर की तरह विकसित होना शुरू हुआ। इस शहर में कई प्रदेशों के लोग नौकरी करने आने लगे। बंगाल, पंजाब, बिहार, महाराष्ट्र, दक्षिण के कई राज्यों के लोग यहां पर आपको मिल जाएंगे। इस पर भी यह मूलतः बुंदेली भाषी शहर है। यहां बुंदेलखंड की लोक संस्कृति के दर्शन आपको सर्वत्र हो जाएंगे। व्यक्ति चाहे कहीं भी जन्मा हो, यदि उसको बचपन में एक नए परिवेश में रख दिया जाए तो, उसके संस्कार, उसकी संस्कृति, खान-पान हर चीज जो वहां उपलब्ध है, उन चीजों से उसका वास्ता रोज व रोज होता है। इसलिए, जिस व्यक्ति के पास प्रखर चेतना होती है। वह इन सभी गुणों से समृद्ध होता चला जाता है। बुंदेलखंड की लोक संस्कृति का जादू अलखनन्दन के पूरे व्यक्तित्व में सर चढ़कर बोलता था। वहां का रहन-सहन, गीत-संगीत ,बोलचाल हर चीज के अलखनन्दन कायल नजर आते हैं। यही वह तत्व हैं जिनका, उन्होंने अपने आधुनिक रंग कर्म में बखूबी इस्तेमाल किया है। अलखनन्दन अपने भारतीयपन ,स्वदेशीपन ,लोक संस्कृति को मुक्त हस्त से स्वीकार करने वाले व्यक्ति नजर आते हैं। वह पाश्चात्य को ठुकराते नहीं। अपने देश में भी पारंपरिक लोक रंगमंच की इतनी समृद्ध परंपरा है कि कोई अगर उसको न अपनाएं तो, यह उसकी ही गलती है, न कि देश की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर की। अलखनन्दन ने इस लोक सांस्कृतिक धरोहर को खूब पहचाना था। इसका इस्तेमाल अपने रंग कर्म में पूरी श्रद्धा और विश्वास के साथ तार्किक ढंग से, युगीन परिवेश में ढालकर, आधुनिक रूप देकर तैयार किया था।

[6] अरुण पाण्डेय से 3 मार्च 2022 को जबलपुर में लिए साक्षात्कार का अंश

जबलपुर के एक और वरिष्ठ रंगकर्मी हैं- सीताराम सोनी । उनका साक्षात्कार भी मैंने लिया है। अलख के रंग व्यक्तित्व के संबंध में, जब मैंने उनसे उनकी राय जानी तो उन्होंने कहा कि 'राष्ट्रीय सेवा योजना का एक कैंप लगता था। उस कैंप में हम लोग गए। उस कैंप के दौरान ही अलखनन्दन जी वहां पर आए थे। नाटक 'दुलारी बाई' उनको करना था। उस के संदर्भ में वह हमको और राजकुमार कामले को उसी कैंपस से लेकर आए थे। इस तरह उनसे संपर्क हुआ। धीरे-धीरे उनके नाट्यशास्त्र से परिचय हुआ, किस तरह का रंगकर्म था। ऐसा क्या करवाया, मेरी समझ में ही नहीं आता था। वह काम किस तरह से कर रहे हैं। जब थोड़ी सोचने-समझने की उम्र आई तो मुझे लगा कि हिंदुस्तान के अंदर जो वास्तविक थिएटर है, वह वही कर रहे हैं। उनका काम सिर्फ कला का प्रदर्शन नहीं था। फिर अलखनन्दन जी के साथ आए तो नाट्य शास्त्र का भी थोड़ा बहुत ज्ञान हुआ। फिर जब थोड़ी सी समझ बढ़ी तो ,मैंने यह समझा कि शायद साहित्य नाटक का मूल अंग है। बिना साहित्य के नाटक किया ही नहीं जा सकता। साहित्य की समझदारी भी बहुत जरूरी है। वह एक्टर को बहुत बेहतर बनाती है। सोचने और समझने के लिए पढ़ना भी बहुत जरूरी है। अलखनंदन जी का व्यक्तित्व बहुत बड़ा है, जिसे हम आज भी परिभाषित नहीं कर सकते। लेकिन, इतना मुझे समझ में आया, उनके साथ काम करते हुए । पहले तो समझ में नहीं आया। बाद में जब मेरी समझ बढ़ी तो मुझे यह लगा कि, सबसे पहले वह व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रहार करते थे। उसको सामान्य भाषा में हम ईगो कह सकते हैं। सबसे पहले उस पर प्रहार करते थे। उसमें कितनी भी बड़ी विशेषता हो लेकिन, जितने साथी रंगकर्मी हैं , उनके साथ मिला देते। चाहे नया हो, चाहे पुराना हो। क्योंकि, वहाँ बिल्कुल नये थे लेकिन ,पुरानो के साथ भी उनके काम करने का तरीका वही था। वह नए-पुराने का सारा भेद खत्म कर देते थे। आपके संपूर्ण व्यक्तित्व से, आपकी जो बुराइयां हैं, उसको खत्म कर देते थे। फिर एक्टर को बिल्ड-अप करते थे। धीरे-धीरे वह करैक्टर जो है खिलने लगता था। एक्टर को मजा भी आने लगता था। उसे करने में भी अच्छा लगता था। बहुत से बड़े महान निर्देशकों को मैंने काम करते हुए देखा। पर जिस तरह से जमीनी तौर पर अलखनन्दन जी काम करते थे। वह मैंने कहीं नहीं देखा'[7] इससे अलखनन्दन की साहित्य के प्रति अभिरुचि प्रकट होती है। वह नाटक के लिए साहित्य के अध्ययन को, अभिनय के लिए साहित्य के अध्ययन को अनिवार्य मानते रहे होंगे। अभिनय के लिए ,नाटक करने के लिए अभिनेता का पढ़ा लिखा होना अनिवार्य है। इसके बिना अभिनय की कल्पना नहीं की जा सकती। कलाकार पर अलख काफी काम करते थे। उन्हें तोड़-मरोड़ कर नया बना देते थे। यह उनकी व्यक्ति से चरित्र निकालने कि शैली भी कही जा सकती है।

[7] सीताराम सोनी से 3 मार्च 2022 को लिए साक्षात्कार का अंश

भारत भवन रंगमंडल भोपाल में अलखनन्दन के साथ रामेश्वर प्रेम जो कि स्वयं वहां आवासीय नाटककार के रूप में अपनी सेवाएं दे रहे थे। जब मैंने रामेश्वर प्रेमजी का साक्षात्कार लिया। उन्होंने मुझे अलखनन्दन के रंग व्यक्तित्व के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें बताईं। उन्होंने बताया कि 'मूलतः अलखजी कवि थे। जिन रचनाओं में कविताएँ होती हैं या जो रचनायें कविता पर आश्रित होती हैं या उस तरह से प्रेरित होती हैं। इस पर उन्होंने बहुत अच्छा काम किया। उसमें मैं भी शामिल हूँ। और भी उनकी जितनी रचनायें हैं। बुंदेलखंडी भी हैं। इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं। जिस दौर में उन्होंने काम किया। वह ऐसा दौर था जिसमें बहुत काम होता था। बातचीत कम होती थी। काम ही ज्यादा होता था। वह बुंदेलखंड-बुन्देली से किस तरह से प्रेरित थे। ये कुछ रचनाएँ मिल जाएं आपको 'चंदा बेड़नी' टाइप। आपको अपने आप उन सब में दिखाई देगा। वह ऐसा सैद्धांतिक नहीं है जिसको लेकर बातचीत की जाय या कहा जाय। उनका जो है प्रेक्टिकल है। उनकी रचना 'चन्दा बेड़नी' खासतौर से उसको पढ़कर उसमें से बहुत सारी चीजें आप निकाल सकते हैं कि वह क्रियापद का इस्तेमाल कैसे करते थे? उसमें व्याकरण नहीं होता था। व्याकरण, जो बोलचाल की भाषा थी। वह ही होती थी। मैं आपको ऐसा नहीं बता सकता जो सैद्धान्तिक हो। उनका अनुभव काफी बड़ा था रंगमंच पर। एज अ राइटर भी वह बहुत अच्छा काम कर रहे थे। अभी और कुछ करने वाले थे। तब तक उनकी मौत हो गई। मेरा संयोग उनके साथ काफी बड़ा था। संग-संग के थे। आप कह सकते हो। वह संगाती थे। उन्हें बुंदेलखंड से विशेष लगाव था। भोपाल का जो अपना रंगमंच था और उसकी जो भाषा थी, उनका उससे काफी प्यारा ताल्लुक था और उसी तरह से उनको देखा जाना चाहिए।'[8]

इस तरह से अलखनन्दन का बुंदेलखंड से स्नेह ,उसकी संस्कृति से लगाव और उनकी सिद्धांतहीनता ,व्यावहारिक पक्ष पर रामेश्वर प्रेम जी उनके व्यक्तित्व की ओर इशारा करते हैं। उनके लेखकीय गुणों को भी वह बताते चलते हैं। खासतौर से उनके कवि व्यक्तित्व में और कविता को लेकर जो उनमें स्नेह था, वह भी कहीं न कहीं कूट-कूट कर भरा था। बुंदेलखंडी में अलखनन्दन ने जो काम किया, वह बुंदेलखंड के लोक रंगमंच को एक आधुनिक पहचान देने में एक महत्वपूर्ण काम है। इससे भी अलखनन्दन का व्यक्तित्व निखर कर सामने आता है। इससे एक बात तो प्रमाणित हो जाती है कि, अलखनन्दन के व्यक्तित्व में काव्य को लेकर एक विशेष आग्रह उनके रंगमंच का हिस्सा जरूर था। यह उनके नाटकों में, उन्होंने जो नाट्य गीत लिखे, जो कविताएं इधर-उधर प्रकाशित हुईं; इससे भी यह बात साबित हो जाती है कि अलखनन्दन के व्यक्तित्व में कविता का विशिष्ट स्थान था। अलखनन्दन के समय में सृजनात्मक व्यक्ति का काम ही बोलता था। वहां अपना ढिंढोरा नहीं पीटा जाता था। काम में अगर ताकत

[8] रामेश्वर प्रेम से 1 नवंबर 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

होती थी तो वह स्वत: स्थापित हो जाते थे। एक तरह से कह सकते हैं कि वह शास्त्रीयता से दबे हुए व्यक्ति नहीं थे। उनके व्यक्तित्व की शास्त्रीयता अंग नहीं थी। इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि उनका व्यक्तित्व नितांत ढीला था। वह निश्चित रूप से सुदृढ़ और मजबूत व्यक्तित्व के धनी थे। सरलता, सहजता, व्यावहारिकता के साथ अपनी बात को आम लोगों के बीच में संप्रेषित करने का उनमें खूब हुनर था। वह व्याकरणिक ऊहापोहों में अपने श्रोताओं-पाठकों को उलझाते नहीं थे। अलखनन्दन ने लेखक के रूप में भी अपनी पहचान बनानी शुरू कर दी थी। उनके साथ दुर्भाग्य हुआ कि वह अपने उरूज पर पहुंचने से पहले ही बहुत कम आयु में इस दुनिया से ही चले गए। हालांकि, अपने रंग कर्म का लोहा उन्होंने मनवा लिया। उन्होंने पूरे देश भर में अपने नाटकों के अनेक प्रदर्शन किये। अपनी एक अमिट छाप छोड़ी।

श्यामसुंदर दुबे जो कि बुंदेलखंडी के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। मैंने अलखनन्दन पर एक संक्षेप में साक्षात्कार लिया है। वह अलखनन्दन के रंग व्यक्तित्व पर कुछ दिलचस्प बातें बताते हैं। वह कहते हैं कि 'अलखनन्दन का व्यक्तित्व एक कला सम्मेलन व्यक्तित्व था। उनको साहित्य और नाटक की गहरी समझ थी। वे प्रारंभ में कविताएं लिखते थे। उनकी कविताएं बहुत मार्मिक और छोटी-छोटी होती थीं। मैंने उनकी प्रारंभिक कविताएं 'साक्षात्कार' पत्रिका में पढ़ी थीं। उनके ससुर अंबिकापुर में वन विभाग में थे। मैं उन दिनों अंबिकापुर में कॉलेज में प्रोफ़ेसर था। वहां उनसे अक्सर मुलाकात होती थी। ससुराल के घर पर चर्चाएं होती थीं। लेकिन, उस समय चर्चाएं इस रूप में होती थीं कि वह साहित्य पर अधिक चर्चा करते थे। उनकी साहित्य में अभिरुचि अधिक थी। उनकी पत्नी जो थीं, वह मुक्तिबोध पर पीएचडी कर रही थीं। वह उनकी पीएचडी में भी सहयोग कर रहे थे। इसलिए, उनकी नई कविता में, विशेषकर के मार्क्सवादी रुझान वाली कविता में गहरी रुचि थी। वह उसमें विशेष रूप से दखल रखते थे। भीतर से नाटक के प्रति उनमें शुरू से ही रुचि थी। लेकिन बाद में रुचि जागृत हुई नाटक के प्रति। वे नाटकों का अध्ययन भी करने लगे। नाटकों में भाग भी लेने लगे। बाद में उनको अवसर भोपाल में नाटक के लिए मिला, जो नाटक का एक विभाग था। उनको संस्कृति विभाग में सम्मिलित होने का , उसमें चयनित होने का अवसर मिला। उस समय वहां ब व कारन्त जैसे प्रयोगधर्मी लोग वहां कार्यरत थे। उन्हीं के साथ इनको नाटक की बारीकियां, नाटक का गहरा अर्थ संबोधन, वहां से प्राप्त होने लगा। इसी समय एक बार 'हटा' में मेरे घर आए थे। पता नहीं किस रूप में वह यहां आए थे। उनसे लगभग एक घंटे चर्चा हुई। उन्होंने कहा कि मैं बुंदेली में नाटक करना चाहता हूं। बुंदेली की शब्दावली पर मेरी चर्चा हो रही थी उनसे। एक शब्द का उन्होंने बार-बार जिक्र किया। बोले! बुंदेली का 'काय' शब्द बहुत महत्वपूर्ण शब्द है। जैसे कोई काम कर रहा है तो काय। काय कर रहे? इतना भर कह दीजिए काय। यह

बहुत अर्थ वाला शब्द है। अगर कोई गलत काम कर रहा है तो बोल दो काय। वह झिझक जाएगा। अगर कोई अच्छा काम कर रहा है तो काय। या कोई प्रश्न पूछना चाहे तो काय(प्रश्नवाचक) । वह बुंदेली शब्दों पर बहुत गौर करते थे। जैसे 'ठाड़े' पर उनसे चर्चा हुई। बोले! ये बुंदेली का शब्द बहुत व्यापक ध्वनि वाला है। इससे खड़े हो जाने का जो बोध हो जाता है। वह और किसी शब्द से नहीं होता। 'खड़े' से भी नहीं होता। वह शब्द बोध 'ठाड़े' शब्द से बोध होता है। यह शब्द की जो बारीकी थी, वह नाटक में ज्यादा काम करती थी। नाटककार शब्द साधक होता है। साहित्यकार तो सब साधक होता है। लेकिन, नाटककार उससे भी बड़ा शब्द साधक होता है। क्योंकि, वह शब्द को जीवंत करना चाहता है। शब्द वहां चक्षु: इंद्रिय का विषय बन जाता है। माने जो दृश्य काव्य है। वह शब्द के माध्यम से संचरित होता है। इसलिए, वह शब्द के ऊपर विशेष ध्यान देते थे। बाद में उन्होंने 'नट बुंदेले' नाम की एक संस्था स्थापित की थी। उन्होंने जिसमें बुंदेली वाले ,बुंदेली शब्दावली वाले अनेक नाटक इसके माध्यम से किए थे। 'चंदाबेड़नी' उस समय का बड़ा प्रसिद्ध नाटक था। बेड़नी यहां राई नाचने वाली एक जाति कहलाती है। राई का नृत्य करती है । नारी के प्रति एक सहिष्णु-दृष्टिकोण उनके नाटकों में था। नारी की स्वाधीनता और स्वाभिमानता उनको मूल्यवान थी। विशेष रूप से लोक नारी की। लोक नारियों का शोषण बहुत होता रहा है। बुंदेलखंड में तो नारियों का शोषण ही होता रहा है। जबकि क्या है कि स्वतंत्रता संग्राम को अपन(हम) कहते हैं कि 1857 में प्रारंभ हुआ था। यह एक बेड़नी के कारण ही बुंदेलखंड खंड में प्रारंभ हुआ था। पहला स्वतंत्रता संग्राम जो हुआ ,वह बेड़नी की वजह से ही हुआ था। हुआ क्या था कि एक जगह सागर के पास एक छोटा सा धनी राज्य था।(मधुकर शाह बुंदेला का) वहां के राजा नेबेड़नी के माध्यम से 'राई' का आयोजन किया । एक अंग्रेज जो अफसर था। वह भी वहां आया था। उसे राई के नृत्य को देखने के लिए आमंत्रित किया गया था। उस अफसर ने जब बेड़नी का नृत्य देखा तो वह उस पर वह मोहित हो गया। उसने उस बेड़नी को अगवा कर लिया। मानो उसे अपने घोड़े पर बैठा कर ले जाने लगा। उस राजा ने रोका। उसके साथ जो लोग थे, उन्होंने भी रोका। तो उसने(अंग्रेज) राजा से बोल दिया। मैं तो इसको लिए जा रहा हूं। तुम अपनी औरत को नचाना। बस इस बात ने उस राजा को इतना आहत कर दिया कि उसने अंग्रेजों को मारने के लिए सेना बना ली। युद्ध हुआ। वह पहला 'बुंदेला विद्रोह' के नाम से जाना जाता है। गोविंद नामदेव ने उसके ऊपर एक किताब लिखी है। बुंदेलखंड की अस्मिता, नारी की अस्मिता बड़ी अस्मिता थी। अलखनन्दन ने अपने नाटकों में उस अस्मिता को बहुत ऊंचाइयों दी हैं। देखिए! उनका मानस पूरी तरह से प्रगतिशील था। वे अपने नाटकों में उसी दृष्टिकोण को उभारते थे। भाषा और शब्दों के ऊपर

विशेष ध्यान देते थे। फिर जो बुंदेली लहजा जो उनका था, वह गजब का था। वह बुंदेली लहजे को ही नाटक में उतारते थे।'[9]

जिस पुस्तक की चर्चा श्याम सुंदर दुबे बुंदेलखंड विद्रोह के संदर्भ में कर रहे थे। वह गोविंद नामदेव की पुस्तक या नाटक 'मधुकर शाह' है। श्याम सुंदर दुबे, अलखनन्दन को एक कला प्रेमी, कलाओं के प्रति स्नेहिल व्यवहार रखने वाले व्यक्तित्व के रूप में देखते हैं। अलखनन्दन को बुंदेली लहजा ,भाषा ,शब्दों पर जो सूक्ष्म पकड़ और दृष्टि थी। उसको भी उन्होंने अपनी बात में स्पष्ट किया। अलखनन्दन की साहित्य ,नाटक की गहरी दृष्टि और समझ थी। शुरुआत में अलखनन्दन कविताएं लिखते थे। धीरे-धीरे नाट्य विधा की ओर भी वह आकर्षित होने लगे थे। उनकी साहित्यिक अभिरुचि बढ़ती चली गई। खास तौर से जो मार्क्सवादी विचारों की कविताएं वह ज्यादा पढ़ते और पसंद करते थे। नई कविता का वह दौर था। उससे अलखनन्दन बहुत प्रभावित और प्रेरित हुए। इसके साथ-साथ एक और महत्वपूर्ण बात श्याम सुंदर दुबे ने रेखांकित की कि उनका सघन संपर्क बड़े-बड़े नाटक निर्देशकों, साहित्यकारों से बढ़ता चला गया और वह उसमें डूबते चले गए। यह उनकी नाट्य रचना और उनके नाट्य प्रदर्शनों में और उनके निर्देशन में साफ तौर पर दिखाई देती है। शब्दों की बारीकियों की समझ के कारण श्याम सुंदर दुबे ने उन्हें 'शब्द साधक' कहा। इसलिए, अलखनन्दन को नाटक का 'शब्द साधक' कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं है। इसके अलावा एक बात जो उनके व्यक्तित्व की थी। वह यह थी कि वह स्त्री के प्रति सम्मान का दृष्टिकोण रखते थे। स्त्रियों में भी बुंदेलखंड की स्त्री जिसको श्याम सुंदर दुबे लोक नारी कहते हैं। स्त्री की स्वाधीनता, स्वच्छंदता और स्वाभिमान के साथ अलखनन्दन का व्यक्तित्व एकमेव हो जाता है। अलखनन्दन ने अपने नाटकों में खास तौर से लोक स्त्री की अस्मिता को बुलंदी तक पहुंचाया। उसके व्यक्तित्व को एक नई पहचान दी। अलखनन्दन के जो व्यक्तित्व, मस्तिष्क की संरचना थी। वह प्रगतिशील मनोसंरचना थी। उनका प्रगतिशील मानस था। उनके नाटक प्रगतिशील दृष्टिकोण से ही संगुफित हैं।

अलखनन्दन के साथ काम कर चुके प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी अलख के बारे में विस्तृत रूप से बताते हैं। आशीष त्रिपाठी जी ने अलखनन्दन द्वारा निर्देशित बुंदेली में, 'अंधेर नगरी' में राजा का किरदार भी निभाया था। उन्होंने अलखनन्दन के व्यक्तित्व के विषय में हम से कुछ दिलचस्प बातें साझा की हैं। वह बताते हैं कि 'एक स्तर पर यह भी लगता था कि वह बहुत ही बीहड़ ,असंतुलित ,एक तरह के अकेले आदमी थे। मतलब ऐसा लगता था उनको देखकर जैसे पूरा जीवन अकेले गुजार रहे हैं। पत्नी है, बेटा है, दोस्त भी हैं। जैसे मंजूर एहतेशाम से बहुत

[9] श्यामसुंदर दुबे से 4 जनवरी 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

गहरी दोस्ती थी। कमला प्रसाद जी के साथ ,राजेंद्र शर्मा के साथ बहुत सारे और भी लोग थे। फजल ताबिश की उसी समय मृत्यु हुई थी। जब मैं भोपाल की बात कर रहा हूं । अलख जी ने उनका नाटक 'अखाड़े से बाहर' का प्रदर्शन किया था। फजल ताबिश को मैंने नहीं देखा। अलख जी के साथ, इकबाल मजीद के साथ, सत्येंद्र कुमार के साथ यह जो मंजूर साहब की मंडली थी उसके साथ, भगवत रावत के साथ इन लोगों के साथ मिलने का मौका मिला। यह लगता था कि वह बहुत ही बीहड़ आदमी है । मने समतल और जो चिकने लोग होते हैं। बहुत ही सुरुचि संपन्न लोग, जो बहुत ही मतलब ऐसी बातें करते हैं ,जो सिस्टमैटिक होती हैं। शिष्टाचार के अनुकूल होती हैं। वैसा अलखनन्दन का व्यक्तित्व नहीं था। बीहड़ था। काफी साफ और सफाई एक हद तक मुंहफट कह सकते हैं। बेलौस! जो बात समझ रहे हैं। वही बात कह रहे हैं। इसीलिए उनको पसंद करने वाले की संख्या कम थी। इसलिए उनके दोस्त भी बहुत कम थे। अक्सर जो उनके दोस्त थे दूसरे इलाकों के थे। यानी रंगकर्मियो में से शायद ही कोई उनका ऐसा दोस्त था ,जो भोपाल में रंगकर्मी हो और उनका दोस्त हो। कविता-कहानी वालों के साथ, पत्रकारों के साथ उनकी दोस्तियां थीं । उनके साथ लेकिन यह सारी बीहड़ता के बाद मैं यह अनुभव करता था कि अलख जी भीतर से बहुत ही स्वाभिमानी भी हैं। बहुत संवेदनशील और बहुत कोमल आदमी थे। मने ऊपर की जो पूरी की पूरी बनक थी । मतलब में संस्कृत के उस श्लोक का सहारा लेकर कहूं। मैं कह सकता हूं कि वह नारियल की तरह थे। ऊपर से कठोर, बहुत कठोरता से डांटने वाले। मुझे याद है कि वह अपने रंग कर्मियों को मतलब जब रिहर्सल के दौरान डांटते थे। कोई चीज न होने पर, तो कोई दूसरा आदमी जो थोड़ा रंगकर्म को नहीं जानता या यह थियेटर ग्रुप्स कैसे काम करते हैं उसको न जाने। उसको लगेगा कैसा बेहूदा आदमी है? ऐसी बातें कर रहा है। मतलब ठेठ समाज में जो ठेठ गालियां होती हैं। वह गालियां देते हुए, चप्पल फेंक के मार दी। जूता उतार लिया या जूता लेकर गए अभिनेता के हाथ में दे दिया। कहा कि मालिक! मुझे यहां सर पर मारिए। इससे शायद आपके अंदर से कुछ निकले। मतलब इस तरह की बातें वह करते थे। लेकिन, फिर भी वह भी अंदर से बहुत ऐसा मुझे लगता है कि बहुत ही परवाह करने वाले। पर, जो अलखनन्दन को मैंने जाना, भीतर से एक बहुत, कलाकार अपनी धुन की खोज में लगा हुआ और अपने से लगातार एक जद्दोजहद करता हुआ, लड़ता हुआ, एक आदमी परिवार की तरफ से शायद वह बहुत संतुष्ट नहीं थे। इसका असर भी उनके जीवन पर किसी न किसी स्तर पर दिखाई देता ही था। समाज से, रंग जगत से भी उस तरह से, वह संतुष्ट नहीं थे। एक तरह का अकेलापन भी उनके पर्सनालिटी में रिफ्लेक्ट होता था। जिसे मैं ऊपरी तौर पर अनुभव करता था। असल में वह भीतरी तौर पर सही है। क्योंकि, अलख जी भीतर से बहुत अकेले आदमी

थे। मुझे कभी-कभी लगता है। हर रचनाकार अंत में ऐसा ही हो जाता है। भीतर से अकेला, खुद से और समाज से समंजन की कोशिश करता हुआ, लेकिन लड़ता हुआ। ऐसे ही अलख जी थे'।[10]

प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी, अलखनन्दन की बीहड़ता, उनके असंतुलित जीवन और अकेलेपन के बारे में खुल के बात करते हैं। ऐसा कहा भी जाता है कि जो व्यक्ति जितना ज्यादा बीहड़, असंतुलित और अकेला होता है; वह अपनी सृजनात्मक क्षमता का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल भी कर सकता है। वह किसी संभ्रांत कुल में उत्पन्न व्यक्ति नहीं थे। इसलिए कि उन्होंने जो मांगा वह मिल गया। ऐसा नहीं था । बल्कि उन्होंने खुद ही परिश्रम करके अपने को बड़े-बड़े ऊंचे दर्जे के लेखकों, कवियों, नाटककारों, रंगनिर्देशकों के बीच में अपने को बैठाया था। यानी कोई व्यवस्थित जैसी बात अलखनन्दन के व्यक्तित्व का अंग नहीं थी। घुमा-फिरा के, बहुत व्यंजना-लक्षणा में बात करना अलखनन्दन की जीवन शैली नहीं थी। जो भी व्यक्ति सीधे-सीधे बात करता है। कूटनीति नहीं अपनाता है। उससे लोग अक्सर खफा हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति लगभग अकेला पड़ जाता है। यही अलखनन्दन के साथ था। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि अलखनन्दन किसी चालाक व्यक्ति का नाम नहीं है। बल्कि, निडरता और निर्भीकता का नाम है। इसलिए, अलखनन्दन की मित्रता में एक वैविध्य है। उनके मित्र रंग-निर्देशक, नाटककर भले ही न हों पर कविता, पत्रकारिता से जुड़े हुए व्यक्ति होते थे। उनके मित्र अक्सर दूर के हुआ करते थे। अब ऐसे व्यक्ति का स्वाभिमानी होना और गुस्से से भरा हुआ होना लगभग तय है। लेकिन, अलखनन्दन भीतर से कोमल और संवेदनशीलता से भरे हुए व्यक्ति हैं। इसका अर्थ कतई यह नहीं लिया जाना चाहिए कि वह किसी का ख्याल नहीं रखते थे। वह ख्याल भी रखते थे। अपने आप से लड़ते थे। समाज से लड़ते थे। समाज में अपनी जगह बनाने के लिए उनमें पर्याप्त जिजीविषा भी थी। शायद अलखनन्दन को परिवार और उनके रंगमंच के साथियों से उतना सकारात्मक सहयोग नहीं मिला, जितना मिलना चाहिए था। इसकी वजह से भी उनके अंदर एक गुस्सा व्यक्तित्व का अंग बनता चला गया। वरना, अलखनन्दन जैसा पहलवान, तगड़ा कसा हुआ शरीर कैसे बासठ-तिरसठ वर्ष की उम्र में क्षीण हो गया होता? मेरा अनुमान है कि यही सारी चीजें अलखनन्दन को मद्य व्यसन की ओर ले गई होंगी।

मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक आलोक चटर्जी अलखनन्दन के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि 'मैं जब जबलपुर में कॉलेज में पढ़ता था। जब मैं फर्स्ट ईयर 1978 में कॉलेज गया था। उसी साल अलखनन्दन जी से मेरा परिचय हुआ था। वह जबलपुर में 'विवेचना' संस्था के नाट्य निर्देशक थे। उस संस्था के कुछ लोग साइंस कॉलेज में अरुण पांडेय वगैरह मेरे साथ पढ़ते थे। उन लोगों ने मुझसे कहा चलो संस्था में चलकर

[10] प्रो आशीष त्रिपाठी से 13 अप्रैल 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

नाटक करते हैं। हम विवेचना गए। वहां अलख जी से हमारी मुलाकात हुई। उन दिनों अलख जी, हमीदुल्लाह राजस्थान के नाटककार हैं, उनका लिखा हुआ 'दरिंदे' एक नाटक था। वह नाटक कर रहे थे। मैं उससे जुड़ा। हम उस नाटक को लेकर लखनऊ वगैरह आ भी गए। पहली बार हम उस नाटक को लेकर विदिशा और भोपाल भी आए 1978 में। धीरे-धीरे उनसे ऐसा परिचय बढ़ता गया। तब वह मिलिट्री के ऑर्डिनेंस डिपार्टमेंट के ऑडिट थे। जबलपुर में ऑडिट विभाग में नौकरी करते थे। शाम को थिएटर करते थे। लेकिन, उस समय भी श्योर थे कि बहुत जल्दी नौकरी छोड़ देंगे। यह विचित्र बात है कि जिस आदमी ने थिएटर के लिए सेंट्रल गवर्नमेंट की छोड़ी है, आज उस आदमी की जरूरत आदमियों को पड़ रही है। बहुत इंटरेस्टिंग बात है। उस आदमी ने रंगमंच करने के लिए सेंट्रल गवर्नमेंट की ऑडिट डिपार्टमेंट की पकी-पकाई नौकरी छोड़ दी। घर में बूढ़े मां-बाप थे। तीन भाई थे(पांच)और दो(तीन) बहने थीं। सब का खर्चा अलख जी अकेले उठाते थे। ताकत किसी इंसान के अंदर, अंदर से आती है। वह बाहर से नहीं होती है। बाहर तो हर पुलिस वाला पहलवान भी दिखता है। उससे क्या होता है? अलखजी ने एक मैं कहूंगा बहुत ही निम्न से निम्न मध्यम वर्ग से, वर्गीय स्थिति से, उस समय सेंट्रल गवर्नमेंट की नौकरी करने के बाद भी उनकी आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि वह अठारह किलोमीटर साइकिल चला कर रिहर्सल करवाने के लिए आते थे। अठारह किलोमीटर साइकिल चला कर जाते थे। इसका मतलब 37 से 38 किलोमीटर साइकिलिंग वह आदमी तब करता था ,जब उसके पास सेंट्रल गवर्नमेंट की नौकरी थी। लेकिन, थिएटर करने के लिए वह यह करता था। उसके बाद मैंने उनके साथ दूसरा नाटक किया 'दुलारी बाई'। तीसरे नाटक में उन्होंने मुझे मुख्य भूमिका दी। वह नाटक था, भोपाल के ही नाटककार थे फजल ताबिश। फजल साहब का नाटक है 'अखाड़े के बाहर'। ‘अखाड़े से बाहर’ नाटक हुआ। उसमे अलखनंदन जी ने मुझे मुख्य भूमिका दी। उसमें मैंने उनका पूरा एक विराट रूप देखा। अलखनन्दन शौकिया रंगमंच के उन निर्देशकों में से थे, जिनसे ज्यादा पढ़े लिखे प्रोफेशनल थिएटर में भी कम हैं। जबलपुर जैसे शहर में उसके पास नाजिम हिकमत की कविताएं थीं। फैज अहमद फैज थे। एंटन चेखोव और प्रेमचंद थे। टैगोर और मार्क्स का ‘दास कैपिटल’ भी था। ऐसा पढ़ा लिखा आदमी सेंट्रल गवर्नमेंट की नौकरी को लात मारकर थिएटर करूंगा कहकर चला आया। मेरे लिए सबसे पहले उदाहरण वही बने। फिर उनके पीछे-पीछे ही मेरा ग्रेजुएशन कंप्लीट हुआ। वह भारत भवन रंगमंडल के डिप्टी डायरेक्टर बनकर आए। मैं यहां सौभाग्य से एक्टर बन के आया। यहां हमने फिर कारंत जी के साथ में काम करना शुरू किया। रंगमंडल में भी अलख जी ने जो पहला नाटक उठाया, वह बहुत एक्सपेरिमेंटल नाटक था। चेखव का 'क्लर्क की मौत'। इसके बाद उन्होंने जो दूसरा नाटक 'आधे अधूरे'उठाया। फिर, उसमें उन्होंने मुझे मुख्य भूमिका दी। वह नाटक इतना हिट हुआ था कि

मोहन राकेश के जिंदा रहते जिन लोगों ने 'एनएसडी' में उनके सामने किया था। उस कास्ट ने कहा था कि हम लोग भी इतना अच्छा नहीं कर पाए थे। वह लोग 40 साल के एक्टर थे जिन लोगों ने आधे अधूरे किया था। हम लोग 22 साल और 23 साल के एक्टर थे जिन्होंने सावित्री, महेन्द्रनाथ किया था। लेकिन, वह पता नहीं अलखनन्दन के निर्देशकीय कौशल का, उनकी प्रतिभा का कमाल था कि वह पार एक्सीलेंस चला गया। माना गया कि 'आधे अधूरे' का जो एनएसडी की रेपर्टरी ने जो शो किया था- सुरेखा सीकरी, मनोहर सिंह ने, उससे आगे की यह प्रस्तुति है। यह अलखनन्दन का जलवा था। वह कभी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नहीं गए। वह कभी एफटीआई नहीं गए। वह कभी भारतेंदु नाट्य अकादमी नहीं गए। लेकिन तीनों संस्थाओं ने उन्हें अपने यहां एज एन एक्सपर्ट इनवाइट किया। यह उनकी उपलब्धि है। उन्होंने कभी इन संस्थाओं में एडमिशन नहीं लिया मेरे जैसे। लेकिन, बिना गए ही वह वहां के मास्टर बने।

उसके बहुत बाद की बात है। जब वह रंगमंडल छोड़ चुके थे। जब अलख जी 50 साल के हो गए थे तो उनका दिमाग आया, कुछ बुंदेली परंपरा का कुछ करते हैं। संगीत नाटक अकादमी की एक स्कीम थी। उसमें उन्होंने चंदा बेड़नी की जिंदगी के ऊपर एक नाटक तैयार करवाया। वह नाटक बहुत टर्निंग प्वाइंट था। उन्होंने उसके लगभग डेढ़ सौ शो अपनी संस्था से किए। उसके बाद ही उन्होंने फिर 'स्वांग शकुंतला' लिखा। वह क्या है? 'उजबक राजा तीन डकैत' ,उसमें कुछ-कुछ बुंदेली संवाद ,बुंदेली स्वांग और कुछ उसका जायका मिलता है। लेकिन, वह शुद्ध बुंदेलखंडी लोक परंपरा के नाटक नहीं है। अगर आप कहें 'चंदा बेड़नी' हो, 'स्वांग शकुंतला' हो या 'उजबक राजा तीन डकैत' हो। इसमें कुछ बुंदेली बोलने वाले लोग हो गए। इससे वह बुंदेली परंपरा का नाटक नहीं बन जाता। जैसे, मैं आपसे इस समय उर्दू में जहीन लफ्जों में कुछ अर्ज करूं। तो, मैं उन अल्फाजों के कारण, मैं उर्दू का आदमी नहीं हो जाऊंगा। मैं आदमी तो हिंदी का ही रहूंगा। वह एक एक्सपेरिमेंट है, जो अलख जी ने किये। क्योंकि, उनको लगा कि बुंदेलखंडी में चुटीलापन है। वह बोलते थे कि बुंदेली लोग बहुत लट्ठ होते हैं। साले तीखा मारते हैं। ऐसा पिंच कर करके, तो वह बुंदेली साहित्य में भी है। वह बुंदेली स्वांग में भी है। भड़ैती में भी है। अलख ही उसका इस्तेमाल करते थे कि कोई कैरेक्टर आएगा; बड़े कैरेक्टर का मजाक उड़ा देगा। झांकी उसकी उड़ा देगा। एकदम से, वह कुछ नहीं है। अलख जी एक ऐसे आदमी थे जिन्होंने बुंदेली नाटक परंपरा के साथ-साथ आधुनिक रंगमंच; उन्होंने मोहन राकेश, चेखव हों बहुत किए। उनके जीवन के, उनका जो अंतिम काम था, वह तो रियलिस्टिक था 'ताम्रपत्र' ,जिसमें मैंने मेन रोल किया था। उसके बाद उनकी जो अंतिम प्रस्तुति थी, जिसके बाद वह हॉस्पिटलाइज हो गए। वह टैगोर की कविताओं के ऊपर एक डेढ़ घंटे का कार्यक्रम का 'काव्यरंग' था। अब वह अद्भुत था। उन

कविताओं में टैगोर के चरित्र आते थे। अलख जी की एक आदत थी कि कभी वह एक्टर को प्लेन लाइट में नहीं दिखाते थे। उनकी एक विचित्र आदत थी या तो वह बैकलाइट में दिखाते थे या साइड से डालते थे। बोलते थे कुछ हवा में धुंधला सा लटका हुआ चेहरा दिखना, बहुत साफ सुथरा सा नहीं दिखना चाहिए। वह अनगढ़ता में एक विश्वास करते थे। उनके नाटकों में अनगढ़ता का एक सौंदर्य दिखता था । कई लोग बहुत एसथेटिकली क्लीन नाटक करते हैं। अलख जी के नाटकों में क्लूनेस भी होती थी। अचानक कोई आदमी नाड़ा लटकाए चला जा रहा है। कोई लौटा पकड़ के चला चला जा रहा है। कुछ भड़ैती, कुछ स्वांग टाइप की चीजें होती थीं । अलख जी का जो लाइफस्टाइल था। वह जिंदगी को भी कुछ ऐसा ही लेते थे। एक दिन जिंदगी खत्म हो जाएगी। जिंदगी को ज्यादा सीरियसली मत लो। जिंदगी में जो काम है न? उसको ज्यादा सीरियसली लो। वह काम ही है जो रह जाएगा; जिसकी वजह से बाद में याद करेंगे लोग। जिंदगी की वजह से याद नहीं करेंगे। जिंदगी तो हर आदमी जी रहा है। वह बेलौसपन, वह अनगढ़ता, अलख जी के सौंदर्य शास्त्र का हिस्सा थी। आप कह सकते हैं।'[11]

इससे यह पता चलता है कि अलखनन्दन के पास जिम्मेदारियों का अंबार लगा था। वह घर के सबसे बड़े बेटे थे। इसलिए, उनकी जिम्मेदारी दोहरी हो जाती है। रंगमंच को लेकर उनकी जो निष्ठा-प्रतिबद्धता है । वह भी यहां स्पष्ट परिलक्षित होती है । निम्न मध्यम वर्गीय परिवार से ताल्लुक रखने की वजह से, अलखनन्दन को जीवन भर गरीब, पिछड़ा, दलित के जीवन की कठिनाइयों, जटिलताओं का एहसास था। यही कारण है कि वह आजीवन इन वर्गों के प्रति मित्रवत और वफादार रहे। अलखनन्दन के परिवार में ऐसा कोई सांस्कृतिक माहौल भी नहीं था। अलखनन्दन ने अपनी कठिन अध्ययन वृत्ति से रंगमंच जैसी श्रमसाध्य विधा में अपनी जगह बनाई। अपना मुकाम हासिल किया। शौकिया रंगमंच करने वाले अलखनन्दन अध्ययन में कभी पीछे नहीं रहे। अलखनन्दन जिस तरह का रंग मंच करते थे, जैसा वह काम करते थे कि उनके समकालीन नाटककार, रंग-निर्देशक उनके मुरीद हुए बिना नहीं रह पाते थे। यही उस व्यक्ति की खासियत थी। उसकी औपचारिक शिक्षा साहित्य की तो हुई थी लेकिन संगीत, कला, रंगमंच इत्यादि की नहीं हुई थी। तिस पर भी अलखनन्दन की प्रतिभा चोटी की थी, जिसके लिए दूसरी प्रतिभाएं अपना सर झुका देती थीं। बड़ी-बड़ी नाट्य संस्थाओं ने उन्हें अपने यहां रंग प्रशिक्षक के तौर पर आमंत्रित किया । अलखनन्दन ने अपने निर्देशकीय-कौशल का लोहा बनवाया। आलोक चटर्जी जी की बात से सहमत हुआ जा सकता है कि उन्होंने कोई बुंदेली परंपरा को हू-ब-हू नहीं लिया। लेकिन, इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने बुंदेली लोकनाट्य के लोक तत्वों का, बुंदेली गीत, बुंदेली हरकतों का प्रयोग अपने नाटकों में और उसे

[11] आलोक चटर्जी का 13 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

सर्वथा युगीन परिवेश में आधुनिक बनाकर के पेश किया। एक तरह से बुंदेली ,बुंदेली के रंगमंच को पूरे भारत के रंग मंच में जगह दिलाने में, पहचान दिलाने में अलखनन्दन का नाम प्रथमत: आना चाहिए। अनगढ़ता उनकी रंग शैली का मुख्य अंग है। वह अपने नाटकों में सीधे-सीधे, साफ-सुथरे ढंग से कोई बात नहीं कहते थे। बल्कि, कुछ सोचने समझने को छोड़ देते थे। अलखनन्दन ने अपने संपूर्ण रंग जीवन में अपने कर्म को अहमियत दी। वह किसी पुरस्कार ,पद लालच के चक्कर में नहीं पड़े। उनके काम में ही वह ताकत थी जिसके द्वारा वह एक सफल रंग निर्देशक, नाटककार ,कवि के रूप में स्थापित हुए। जिंदगी को उन्होंने शायद उतनी गंभीरता से नहीं लिया जितना कि वह अपने सृजनात्मक कर्म को गंभीरता से लेते थे। एक तरह से कह सकते हैं कि रंगमंच, नाटक, संगीत, नृत्य, कलाएं जैसे सृजनात्मक कर्म ही उनके लिए प्राण वायु, औषधियों की तरह थे। इनसे अलग करना मतलब अलखनन्दन को मृत देखने के समान है।

नाट्य समीक्षक, आलोचक, पत्रकार और अलखनन्दन के गहरे मित्र गिरिजा शंकर **हैं।** गिरजा शंकर अलख के रंग व्यक्तित्व के बारे में बताते हैं कि 'अलखनन्दन जो है ,उनसे जो मेरा ताल्लुक जो है, मैं समझता हूं उनके थिएटर के शुरुआती दिनों से ही हम लोग साथ रहे। हालांकि दोनों का फील्ड अलग-अलग था। मैं जर्नलिज्म में चला गया। वह थिएटर में पूरी तरह रम गए। आगे यात्रा दोनों की अलग-अलग रही। लेकिन, बहुत ही एक सुलझा हुआ व्यक्ति और थिएटर को बहुत गंभीरता से लेने वाला, उस माध्यम को एक सामाजिक सरोकार के साथ में लेने की मतलब शुरू से उनकी समझ थी। दूसरा, जो है एक कमिटमेंट था। थिएटर को लेकर भी और समाज को लेकर भी। दोनों को लेकर जो एक कमिटमेंट था। उसकी वजह से उनके काम में और उनके साथ जो काम करने वाले लोग थे। उनमें एक खास तरह का डिसिप्लिन देखने को आपको मिलेगा। दूसरा, उन्होंने कहीं से कोई ट्रेनिंग नहीं ली थी। वह कोई किताबी ज्ञान से नहीं आए थे। थिएटर को लोक से उठाकर और जो आम जन जीवन में उन्होंने स्थापित किया। इसलिए, आप देखेंगे कि अलखनन्दन के थिएटर में किसी की छाप नहीं मिलती। वह उनकी अपनी एक शैली, अपना एक अंदाज उन्होंने डिवेलप किया। जो पूरी तौर पर फोक से लिया हुआ था। लोक जनजीवन से लिया हुआ था। वह सब कुछ उनके नाटकों में आपको देखने को मिलेगा। जो उनके कमिटमेंट का आपको, आप इस रूप में देख सकते हैं। थिएटर को लेकर कि एक बड़ा हिस्सा उनका जो है, वह बच्चों को थिएटर सिखाने में गुजरा। वहीं स्कूलों में जाकर, अलग-अलग कॉलोनियों में जाकर बच्चों के लिए वर्कशॉप करते थे। बहुत सारे बच्चे जो उनके साथ सीखे। आज वह थिएटर में अच्छा काम कर रहे हैं। एक उनका जो कमिटमेंट था। थिएटर को लेकर डिवोशन था। वह इन तमाम चीजों में दिखता है। वह इस तरह का था। दूसरा बहुत फक्कड़ अंदाज में थे। ज्यादा

वह चिंता फिक्र करना और तमाम चीजें और बहुत साफगोई थी। यदि वह आपको पसंद नहीं करते हैं। वह लिजलिजापन नहीं था। साफ-साफ कहेंगे। हम पसंद नहीं करते हैं आपको। हमको यह ठीक चीज नहीं लगी। इसलिए, उनके जो शिष्य हैं। बात करेंगे आप तो उनको, उनकी सिखायी हुई बहुत सारी चीजों की के अलावा उनकी डांट भी उनको याद होगी। डांट खूब पड़ती थी उनके साथ। क्योंकि, वह बहुत कमिटेड थिएटर पर्सनैलिटी थे। वह डिसीप्लिन को लेकर ,काम को लेकर, सीखने को लेकर आचार व्यवहार को लेकर और सबसे बड़ी बात विचारों को लेकर, वह विचारवान थिएटर करते थे। मतलब यह स्वांत: सुखाय के लिए या अनुदान के लिए या किसी और के लिए काम कर रहे हैं। इस तरह की बात नहीं थी। इसलिए, उनकी अलग पहचान थी। वह कभी महानगर नहीं गए। किसी बड़ी नाट्य संस्था में नहीं रहे। उसके बावजूद उनकी पहचान जो है, वह राष्ट्रीय स्तर पर इसीलिए बनी हुई है। उन्होंने अपनी एक अलग शैली विकसित की। वह अलखनन्दन की शैली है। जो आज थिएटर कर रहे हैं, बहुत सारे लोग, चाहे वह विश्ना चौहान यहां पर हों, अरुण पांडे हों या बाकी बहुत सारे लोग हैं। वह उस शैली को आगे बढ़ा रहे हैं।'[12]

नाट्य समीक्षक गिरजा शंकर उनके सुलझेपन, प्रतिबद्धता और उनके सरोकार जो थे, उसकी तरफ इशारा करते हैं। नाटक और रंगमंच को अलखनन्दन हंसी-मजाक, फूहड़ता, मनोरंजन का साधन नहीं मानते थे। बल्कि नाटक और रंगमंच को सामाजिक बदलाव, सजगता के रूप में देखते थे। वह नाटक और रंगमंच को एक गहरे कर्तव्यबोध और एक बड़ी जिम्मेदारी के रूप में लेते थे। उनके लिए रंगमंच करना धन उपार्जन का साधन, व्यवसाय नहीं था। बल्कि, शौकिया तौर पर एक आंदोलनकारी प्रभाव वह अपने रंगमंच के माध्यम से छोड़ते थे। इसलिए अलखनन्दन नाटक, रंगमंच और निर्देशन की दुनिया में एक खास तरह के अनुशासन के लिए भी जाने जाते हैं। उन पर कभी कोई हल्की-फुल्की टिप्पणी नहीं की जा सकती। यही परंपरा वह अपने शिष्यों में छोड़ गए हैं। इस बातचीत में गिरजा शंकर जी, अलखनन्दन के रंगमंच को लोकनाट्य से विकसित होने वाला मानते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने कहीं से उधार लिया है। अगर वह किसी के ऋणी हैं तो वह लोक जीवन का स्वाभाविक यानी बुंदेली लोकनाट्य का स्वाभाविक रूप उनके रंगमंच में आपको दिखाई देता है। अलख के यहां लोक की स्वीकारता अत्यधिक है। उनका जोर भी लोक ,देशीपन पर है। इस तरह से भारत के विविध लोकनाट्य, भारतीय रंग परंपरा उनके मन मस्तिष्क पर छाई हुई है। बच्चों और विद्यार्थियों के रंग मंच पर जितना कार्य अकेले अलखनन्दन ने किया पूरे मध्यप्रदेश में शायद ही उनके जैसा कोई रंग-निर्देशक, नाटककार हुआ हो जो उनकी बराबरी कर सके। वह बहुत

[12] गिरिजा शंकर का 14 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

ही फक्कड़ और मस्त-मौला किस्म के, साफगोई, पाक-साफ रहने वाले व्यक्ति थे। अलखनन्दन कोई ढीला-ढाला लोकनाट्य रंगमंच नहीं करते थे। उनके साथ जो भी काम करते थे या तो पूरी मेहनत और ईमानदारी से करते थे। अन्यथा छोड़ के चले जाने का रास्ता खुला था। उनके साथ रंगमंच करना कठिन था। जिन्होंने भी उनके साथ रंगमंच किया। वह चोटी के कलाकार भी बनकर निकले। आज भी नाटक-रंगमंच और फिल्म की दुनिया में अलखनन्दन के अनेक शिष्य सक्रिय नजर आते हैं। वह थिएटर अपनी खुशी के लिए नहीं करते थे। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनको इसमें मजा आता था। बल्कि, अपने रंगमंच से विचारों की एक छाप छोड़ते चलते थे। अलखनन्दन के व्यक्तित्व और उनके रंगमंच की विचारहीनता कभी हिस्सा नहीं रही।

पत्रकार और रंगकर्मी अलखनन्दन के शिष्य राकेश दीक्षित , अलखनन्दन के व्यक्तित्व को इस प्रकार से रेखांकित करते हैं। 'ऐसा है कि मैं कॉलेज में, मैं और अरुण पांडे, आलोक चटर्जी वगैरह कॉलेज में सोशल गैदरिंग में नाटक वगैरह किया करते थे। हमारे वरिष्ठ साथी अरुण पांडे ऑलरेडी संस्था में 'विवेचना' से जुड़े हुए थे। 'विवेचना' में ही फजल ताबिश का नाटक 'डरा हुआ आदमी' हुआ था। उसमें अरुण पांडे की मुख्य भूमिका थी। अलख जी ने उसका निर्देशन किया था। जब उस नाटक को देखा तो मैं भी आकृष्ट हुआ। फिर, मैं अलख जी से मिलने के लिए आया। मुझे वह मुलाकात अच्छे से याद है। अलख जी वहां पर जबलपुर में एक 'चंचला बाई कॉलेज' है । वहां पर हम लोग रिहर्सल किया करते थे । मैं मिला अलख जी से। एक तो अलख जी का व्यक्तित्व ऐसा था कि कवि भी हैं। ऐक्टर भी थे और निर्देशक तो थे ही। उन्होंने पहली मुलाकात में बहुत प्रेरित नहीं किया। बहुत एनकरेज नहीं किया। मुझे लगा कि इनके साथ जुड़कर काम करना चाहिए। इस तरह से मैं उनसे जुड़ गया । उनके बारे में बहुत सारी बातें फिर पता लगीं। मसलन, जबलपुर जैसे शहर में उन्होंने 'वेटिंग फॉर गोदो' सैमुअल बैकेट का नाटक किया था। इतना जटिल नाटक, इतना दुरूह नाटक जबलपुर जैसे शहर के लोगों के बीच करना और उसकी स्वीकृति बना लेना। यह अपने आप में बहुत बड़ी बात थी। उनके पहले क्या था कि जबलपुर में हर किस्म के नाटक हुआ करते थे। गंभीर नाटकों का नितांत अभाव था। जो भी थे और कम से कम पश्चिमी नाटकों को समझने के लिए तो कोई तैयार ही नहीं था। ऐसे समय में उन्होंने 'वेटिंग फॉर गोदो' जैसा नाटक किया। यह अपने आप में बहुत बड़ी बात थी। फिर उसके बाद मैं जुड़ा। फिर भारत भवन में एक नेशनल फेस्टिवल के लिए एक नाटक तैयार होना था- 'इक तारे की आंख'। वह मणि मधुकर का लिखा हुआ नाटक था। वह नाटक कबीर के जीवन पर आधारित था। उसका दिल्ली में मंचन होना था। उसमें एक बहुत बड़ी कास्ट की जरूरत थी। उसमें अभिनेता अभिनेत्री की जरूरत थी । उसमें मुझे भी शामिल किया। पहले उन्होंने मेरे लिए मुख्य भूमिका कबीर के बारे में सोचा । फिर बाद में, उसमें बहुत

सारे पात्रों की जरूरत थी। मुझ में यह था कि मैं नृत्य भी कर सकता था। बहुत सारे पात्र निभा सकता था। फिर उन्होंने मुझे दूसरे पात्रों के लिए चुना। दिल्ली में 1980 में नाटक हुआ। उससे उसकी काफी धूम रही। अलख जी को दिल्ली में एक तरह से एक्सपोजर मिला। पहली बार अलख जी के नाटक को एक तरह से मान्यता मिली। उन्हें लगा कि हां! मध्य प्रदेश से कोई एक महत्वपूर्ण निर्देशक उभरकर आया है। 'इकतारे की आंख' के बाद ही फजल ताबिश का एक नाटक था 'अखाड़े से बाहर'। वह भी जटिल नाटक था। वह साधारण नाटकों की तरह नहीं था। बहुत प्रयोगवादी नाटक था। उसके भी बहुत सारे मंचन ग्वालियर ,भोपाल ,जबलपुर में हुये। फिर उसको लेकर भी अलख जी को काफी ख्याति मिली। उससे उनके निर्देशकीय कौशल का पता लगा। वह किस सफाई के साथ ,कितनी गहराई और तन्मयता के साथ में पात्रों को गढ़ते हैं और किस तरह से वह अभिनय में अभिनेता के जो छुपा हुआ टैलेंट है, जो उसके अभिनय कौशल हैं ,उसको कैसे निकाल पाते हैं। यह देखकर हम बहुत आश्चर्यचकित हुए कि यह प्रतिभा उनमें कहां से है। यह दो नाटकों में मुख्य रूप से मेरा साथ रहा। उसके बाद 1982 में उस समय मध्य प्रदेश सरकार में भारत भवन बनने और भारत भवन में रेपर्टरी रंगमंच बनने की तैयारी शुरू हो गई। फिर अलखनन्दन उसमें असिस्टेंट डायरेक्टर हो कर चले गए। हम लोग, मैं, अरुण पांडे वगैरह जो 'विवेचना' के प्रमुख कलाकार थे। वह लोग पत्रकारिता में चले गए। बांकी हमारी संस्था के जो अलख जी के अलावा चार-पांच लोग और साथ में चले गए। वह उनकी भोपाल रेपर्टरी में थे। जैसे आलोक चटर्जी थे। श्री राजकुमार कामले जी थे। गंगा मिश्रा थे। यह तीन लोग तो प्रमुख रूप से थे। उनके साथ में चले गए थे। यह जर्नी रही है उनकी।'[13]

इस तरह से अलखनन्दन एक विविध आयामी व्यक्तित्व, कवि, सामाजिक, आंदोलनकर्मी रंग-निर्देशक के तौर पर याद किए गए। एक तरह से जबलपुर में गंभीर नाटकों की जो शुरुआत ही अलखनन्दन करते हैं। पश्चिमी रंगमंच से जबलपुर के दर्शकों को अपने आगोश में लेते हैं। इससे यह बात पता चलती है कि अलखनन्दन में नाटक एवं रंगमंच के प्रति एक गंभीरता शुरू से ही थी। वह नाटक, रंगमंच और निर्देशन को हल्की-फुल्की विधा, मनोरंजन तक सीमित नहीं मानते थे। यह उनके व्यक्तित्व की एक खास विशेषता रही है कि रंगमंच को उन्होंने सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है। इसी कारण अलखनन्दन जबलपुर तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने बहुत सारे प्रयोग अपने नाटक और रंगमंच में किए हैं। इसलिए वह प्रयोगवादी नाटक भी करते रहे हैं। उनके काम में और उनके व्यक्तित्व में सफाई, गहराई, तन्मयता है। अलखनन्दन का ही यह एक व्यक्तित्व का रूप है कि वह छुपी हुई प्रतिभा की पहचान रखते हैं। उसको निखार कर सबके सामने लाते हैं।

---

[13] राकेश दीक्षित का 30 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा अलखनन्दन के शुरुआती रंग साथियों में से हैं तथा रंग निर्देशन और फिल्मों में भी काम करते रहे हैं। वह अलखनन्दन के व्यक्तित्व पर निम्न टिप्पणी करते हैं—'अलख जी का व्यक्तित्व और अलख जी का साथ, मेरे रंग संबंध, मित्रता, व्यवहार सब जबलपुर से आरंभ हुआ। यह उन दिनों की बात थी। जब अलख जी ने रंगमंच में नया-नया प्रवेश किया था। उन्होंने एक दो नाटकों का निर्देशन जबलपुर में किया था। मेरी उनसे भेंट हुई 'विवेचना' के साथ। 'विवेचना' में लखनऊ से एक साहब आए थे। उनका नाम था चितरंजन दास। उन्होंने एक छोटा नाटक उसे नुक्कड़ नाटक कह सकते हैं। उसे करने की बात की। अलख जी से तब मेरी मुलाकात हुई थी। उस नाटक का नाम था 'दरिंदे'। उसमें हमें अलख जी ही कुछ बताते थे। चितरंजन दास जी भी, पटेल साहब भी, हम लोगों ने उसे मिलकर तैयार किया था। फिर हम उसे मंचन करने के लिए लखनऊ गए थे। वहां पर भी लालबाग है। वहां रवींद्र भवन है। लखनऊ स्टेशन ने उसकी वीडियो रिकॉर्डिंग भी की थी। फिर हमने उसके कई प्रदर्शन अलग-अलग शहरों में किए। उसके पश्चात अलख जी ने पहली बार जो है ,'दुलारी बाई' नाटक का निर्देशन 'विवेचना' ने उन्हें सौंपा। फिर उन्होंने शुरू किया। रेखा भाभी भी जो उनकी पत्नी थीं। वह म्यूजिक कर रहीं थीं। उसमें सीताराम सोनी, मैं , तपन बनर्जी थे। अजय घोष था। अरुण पांडे जी थे। हम लोगों ने उसे तैयार किया था। तब से हमारी अलख जी के साथ रंग यात्रा आरंभ हुई। वह बहुत ही सहज व्यक्ति थे और व्यवहार कुशल थे। जब निर्देशक की हैसियत से हमारे साथ काम करते थे तो उनका एक रूप अलग होता था। तत्पश्चात, रिहर्सल के उपरांत जब हम मित्र हो जाते थे। चाय वाय पीना तो फिर एक मित्रता रखते थे। फिर वह बहुत सहज व्यक्तित्व रखते थे।'[14]

गंगा मिश्रा, अलखनन्दन की नुक्कड़ नाटक से रंगमंच की शुरुआत मानते हैं। यह भी बताते हैं कि उन्हें 74-75 में अलखनन्दन अपनी साहित्यिक रंग संस्था 'विवेचना' के तहत देश के कई शहरों में रंगमंच करने के लिए जाते थे। अपने रंग निर्देशकीय कौशल का लोहा मनवा कर आते थे। उनके काम की चर्चा धीरे-धीरे फैल रही थी। इसका प्रमाण है। लखनऊ में उनके नाटक की की गई वीडियोग्राफी। उनकी पत्नी श्रीमती रेखा वर्मा तो रंगमंच में सहयोग करती ही करती थीं । अन्य रंग साथी भी अलखनन्दन को प्रायः रंगमंच में सहयोग देते थे। अलखनन्दन का स्वभाव अंदर से अत्यंत मृदु और कोमल था। जब वह मंच पर या किसी प्रस्तुति को आकर दे रहे होते थे। तब अपने कलाकारों से बड़ी कठोरता से पेश आते थे। ताकि नाटक का जब प्रदर्शन हो तो उसमें किसी भी तरह का ढीलापन दिखाई न दे। जो प्रदर्शन हो, वह देखने वालों को लगे की हां! इसमें कड़ी से कड़ी मेहनत की गई है। अलखनन्दन

[14] गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा का 16 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

के पास सीखने-सिखाने की गजब क्षमता थी। उनका स्वभाव भी कुछ ऐसा था जिसमें हेकड़ी कम थी। नाट्य प्रदर्शन बेहतर हो सके। इसकी पूरी-पूरी चेष्टा की जाती थी। यह बिना सहजता के संभव नहीं था।

सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ भारतेंदु नाट्य अकादमी के पूर्व निदेशक हैं तथा अलखनन्दन के मित्रों में से एक हैं। वह अलखनन्दन के व्यक्तित्व पर अपनी बात रखते हुए कहते हैं कि–'उनका व्यक्तित्व एक तरह से कहना चाहिए कि एकदम खुला व्यक्तित्व, मन में कुछ समय अटके न रखना, जो सामने आए वह कह देना। भले ही झगड़ा हो जाए। लेकिन, उनके साथ झगड़ा भी झगड़े जैसा नहीं होता था। एक तरह से वैचारिक डिस्कशन उनके साथ होता था। वह झगड़े की शक्ल ले सकता था। लेकिन, उसमें मित्रता में कोई फर्क नहीं पड़ा। कभी कई चीजों में मतभेद भी हुए। लेकिन, मित्रता में कोई फर्क नहीं पड़ा। वह खुलकर अपनी बात कहते थे। कोई लाग-लपेट के साथ, अगर कोई चीज नहीं पसंद आई तो साफ कह देते थे। यह चीज ठीक नहीं लग रही है। यह खुलापन जो व्यक्तित्व में था, दूसरों के बारे में अपनी राय जो थी। दूसरों के साथ अपने खुलेपन के साथ राय रखते थे। किसी ईर्ष्या द्वेष के तहत नहीं। बल्कि, अगर आलोचना होती थी तो आलोचना करते थे। तारीफ होती थी तो तारीफ करते थे। उसमें यह नहीं था कि यह अपना है। यह पराया है तो इसकी तारीफ कर दूंगा। इसकी बुराई कर दूंगा। कोई अपना पराया नहीं था। खुलकर सबके बारे में बात करते थे। व्यक्तिगत संबंधों में तो प्यार कहना चाहिए कि प्यार और जानते थे कि संबंध क्या होता है? यह तो उनके व्यक्तिगत स्वभाव की बात हुई। रिहर्सल के समय बहुत स्ट्रिक्ट होते थे। रिहर्सल में वह किसी एक्टर को या किसी को भी इस तरह की लिबर्टी नहीं लेने देते थे। क्रिएटिव लिबर्टी तो खूब देते थे। करो अपने आप। अच्छा हां और निकालो और निकालो। इस तरह से क्रिएटिव लिबर्टी देते थे। लेकिन कोई ढिलाई करने लगे यह नहीं। यह बिल्कुल बर्दाश्त नहीं करते थे। कोई रिहर्सल में कंसंट्रेट नहीं कर रहा है। कोशिश नहीं कर रहा है काम करने की। उसको नहीं बर्दाश्त करते थे। उनका प्रोसेस भी बहुत ही इंटरेस्टिंग था । एक्टर्स के ऊपर वह बहुत चिल्लाते भी थे और बहुत प्यार भी करते थे। एक्टर्स, जिनके साथ वह एक बार काम कर लें। उनसे उनका ऐसा संबंध बन जाता था, उन एक्टर्स के साथ कि वह आजीवन संबंध बन जाता था। जिसके साथ उन्होंने बीएनए की भी। जब बीएनए में स्टूडेंट के साथ प्रोडक्शन किए । उनका ऐसा संबंध बना जो कि ऐसा नहीं था कि एक प्रोडक्शन कर लिया तो संबंध खत्म । लेकिन, वह संबंध बनाना जानते थे और उसको वह निभाना भी जानते थे। बाकी अपना(संबंध) खैर इतना जबरदस्त था। जब उनकी तबीयत खराब हुई लखनऊ में, तबीयत खराब होने के बाद उनको हॉस्पिटल ले गए, डॉक्टर के पास ले गए । लेकिन, उसके बाद भी कहने लगे कि बहुत हो गया। उनको हॉस्पिटल में एडमिट भी कराया। लेकिन, अब हो गया। अब रिहर्सल करना है। काम करना है। छोड़ो! अब काम

करना है। हो गया। बाद में देखेंगे। वह अपने काम को बहुत गंभीरता से लेते थे। जहां तक उनकी क्रिएटिविटी की बात है तो वह फोक एलिमेंट्स को मॉडर्न बनाकर कैसे प्रस्तुत किया जाता है? इसमें उनकी महारत हासिल थी। मतलब उनके फोक थिएटर को भी आप मॉडर्न थिएटर कह सकते हैं। उनके मॉडर्न थिएटर को भी फोक थिएटर कह सकते हैं। अगर स्क्रिप्ट कोई है। मॉडर्न स्क्रिप्ट है तो उसके साथ भी वह काम करते थे और लोक शैली को खासतौर से कैसे उसके साथ नए प्रयोग किए जाएं। नए कंटेंट को कैसे लोक शैली में प्रस्तुत किया जाए जा सकता है? इस चुनौती को भी स्वीकार करते थे। मतलब, चूंकि, लोक शैलियों के अपने कंटेंट एक तरीके से जिसको कहना चाहिए जो सामंतवादी समाज था। उस समय जो लोक शैलियां विकसित हुईं थीं। उनके कंटेंट भी सामंतवादी होते थे। वह इस चीज को तोड़ना चाहते थे। उसमें, उस कंटेंट में सामंतवादी एप्रोच, सामंतवादी वैल्यू आकर, मॉडर्न वैल्यू इसको उसमें लाने की, तो जो मॉडर्न वैल्यूज को लाना पड़ेगा तो, फिर उसके लिए जैसे-जैसे कहते हैं कि कंटेंट ही निर्धारित करता है, किसके किस फॉर्म में किया जाए। अपने आप ही हर नाटक में यह नहीं कि एक नाटक में उन्होंने जो शैली इस्तेमाल कर ली। दूसरे नाटक में भी फिर वहीं से ली होगी। हर नाटक में शैली कंटेंट के हिसाब से बदलती रहती थी। लेकिन, कुल मिलाकर वह मतलब यह लोक से अछूती है। यह नहीं कह सकते हैं। लोक तो उसमें शामिल रहता था।'[15]

सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ के अनुसार अलखनन्दन का व्यक्तित्व एक खुला व्यक्तित्व है। उसमें स्पष्टवादिता अधिक है। वैचारिक संवाद, विमर्श अधिक है। उनके कूटनीतिक जवाब नहीं हैं जो कहना है सो कहना है। सभी से प्यार करने वाले व्यक्तित्व के रूप में सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ,अलख के बारे में बताते हैं। एक और विशेषता उनकी रंगशैली की यह है कि रचनात्मक, सृजनात्मक स्वतंत्रता वह अपने कलाकारों को जरूर देते थे। लेकिन, किसी को अनुशासन तोड़ने की इजाजत नहीं थी। अनुशासन तोड़ने वालों को अलखनन्दन का हृदय क्षमा नहीं करता था। अनुशासन का वह कड़ाई से पालन करते थे और करवाते थे। यही कारण है कि जिन्होंने उनकी डांट फटकार को सह लिया। ऐसे शिष्यों ,कलाकारों से उनका संबंध उम्र भर बना रहा। अलखनन्दन की जीवंतता का ही यह प्रमाण है कि चाहे वह बीमार ही क्यों ना पड़ जाएं लेकिन रंगमंच उनकी रग रग में बसा था और रंगमंच के लिए ही वह जीते-मरते थे। उसके लिए वह किसी भी सीमा तक जा सकते थे। एक और महत्वपूर्ण बात इससे निकलकर आई कि अलखनन्दन को लोक तत्वों की पहचान और उसका आधुनिकीकरण करने में एक तरह की विशिष्टता हासिल थी। सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ की यह बात अत्यधिक उपयुक्त लगती है कि उनके लोक रंगमंच को कोई आधुनिक रंगमंच कह सकता है। उनके द्वारा

[15] सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ का 6 जनवरी 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

किए गए आधुनिक रंगमंच को लोक रंगमंच। इससे अनुमान यह लगता है कि उनका रंगमंच आधुनिकता और लोक का सम्मिश्रण है। एक-दूसरे के पूरक हैं। वह आधुनिक रंगमंच को लोकरंग मंच में बदल सकते थे और लोक रंगमंच को आधुनिक बनाकर पेश करने की चुनौती स्वीकार करने की अद्भुत क्षमता उनके व्यक्तित्व का अंग थी। अलखनन्दन सामंती मूल्यों से टकराने वाले और उसका विनाश करने का अदम्य साहस रखने वाले रंगमंच के एक अनोखे निर्देशक हैं। वह अपनी रंग शैलियों में बदलाव रंगमंच की विषय वस्तु के अनुसार कर लेते थे। एक ही रंग शैली का इस्तेमाल वह बार-बार नहीं करते थे। बल्कि, नई रंग शैली की तलाश उन्हें नई विषय वस्तु को पेश करने के लिए जो आवश्यक होती है, वह करते थे। यह कहा जा सकता है कि उनकी कोई भी रंग शैली में लोक रंग शैली तो उसमें जरूर निहित होती ही होती थी।

पूषण भट्टाचार्य बांग्ला और हिंदी भाषा के अभिनेता हैं तथा अलखनन्दन के साथ कार्य कर चुके हैं। वह उनके व्यक्तित्व पर कुछ इस प्रकार हमें बताते हैं। 'अलख जी जो हैं, वह बुनियादी रूप से एक ग्रामीण पृष्ठभूमि से और साथ में अंदर जो भदेसीपन था, वह भरपूर रूप से रहा, ताजिंदगी रहा। ताजिंदगी अपनी मिट्टी से दूर रहने के लिए तकलीफ में रहे। वह बिहार के रहने वाले थे। बिहार के कल्याणपुर के। उनका कल्याणपुर गांव था। वह मतलब गाहे-बगाहे अपने गांव-माटी को, अपनी जमीन को खूब याद किया करते थे। इसीलिए, मतलब थिएटर में भी जो काम किया उसमें यह बात उनकी झलकती थी कि वह जमीन से कितने ज्यादा जुड़े हुए थे। वह जमीन से मतलब कटा हुआ थिएटर, वह उनको पसंद नहीं था, जो मतलब आधुनिक थिएटर है। यह जो पश्चिमी थिएटर है। पश्चिमी थिएटर के अंदर से भी वह उन तत्वों को निकाल लाते थे जो उनको जमीन के साथ जोड़ते थे। यह काम उन्होंने अच्छे तरीके से भोपाल में भारत भवन रंगमंडल में आने के बाद किया। जो उन्हीं की देन थी। चाहे प्राचीन भारतीय नाटक हो या क्लासिक यूरोपीय नाटक हो। यह सारे नाटक भारतीय मूल की भाषाओं में किए जा सकते थे। वह बुंदेली में भी किए जा सकते हैं। अंग्रेजी में भी किए जा सकते हैं। बघेली में भी किए जा सकते हैं। यह कंसेप्ट उनके अंदर इसी चीज से आया था कि वह भाग्यशाली थे और उन्हीं भाषाओं में उन्होंने नाटक किए। उनका किया हुआ जो उनका सबसे प्रसिद्ध नाटक है- 'चंदा बेड़नी'। एक बुंदेली लोक कथा के रूप में, वैसे उस नाटक लेखक विजयदान देथा थे ।(इसे प्रमाणिक नहीं माना जा सकता।) वह बुंदेली नहीं थे। राजस्थानी मूल के थे। पर, उसको उन्होंने बुंदेली इलाके की चीजों के साथ इतने अच्छे तरीके से समाहित किया कि कोई भी उससे मोहित हुए बिना रह नहीं सकता। बाद में उन्होंने मतलब मोलियर का नाटक 'बुर्जुआ जेंटलमैन' उसको उन्होंने 'मुर्गा देसी बोल(बांग) विदेशी' नाम से बुंदेली में किया। ऐसे उन्होंने कई एक्सपेरिमेंटे किए। जो इस बात को दिखाते हैं कि नाटक मतलब उनके

लिए करना जिनको समझ में आए। वह नाटक केवल किसी-किसी के लिए नहीं करना या नाटक खुद की कला को दिखाने के लिए नहीं करना। नाटक उनके लिए करना जिनको उस नाटक से कुछ सीखने को मिले। मैं एक उदाहरण दूंगा। 'चंदा बेड़नी' नाटक जो है, 'चंदा बेड़नी' नाटक में कई उसमें लोक संगीत, लोक नृत्य आदि का समावेश किया। परंतु ,उसमें उन्होंने जो मूल तत्व जो रखा है कि एक सामंत किस तरीके से अपनी हेकड़ी बनाने के लिए एक गरीब दलित मोची से एक बेड़नी नाचने वाली नाचते समय रस्सी कटवा कर हत्या कर देता है। यह समाज के अंदर किस तरीके से जो नीची जातियों का उपयोग ऊंची जातियों के लोग करते हैं। यह कहने का साहस सिर्फ अलख जी के अंदर इतना जबरदस्त रूप से था। यह बहुत कम नाटककारों में मिलता है।'[16]

पूषण भट्टाचार्य की इन तमाम बातों से स्पष्ट हो गया कि अलखनन्दन के व्यक्तित्व में और उनके रंगमंच में एक भदेसीपान की गंध आती थी। अलखनन्दन का व्यक्तित्व ग्राम्य जीवन का मिश्रित व्यक्तित्व है। इसके अलावा पूषण भट्टाचार्य ने यह भी अपनी बात में स्पष्ट करने की कोशिश की कि उन्होंने पश्चिमी रंगमंच में भी भारतीय लोक जीवन, लोकनाट्य के तत्व, देशी ग्रामीण तत्वों का समावेश किया। पश्चिमी जो नाटक थे, उनमें से उनको ग्रामीण लोक बोलियों में रंगमंच कर आम जनों के सामने सरल भाषा में परोस दिया, जो निश्चित रूप से इस बात को बताता है कि यदि भाषा बड़ी दुरूह है, तो उस भाषा को अपनी लोक बोलियां में अनुवाद करके भी रंगमंच किया जा सकता है। इसलिए, उन्होंने नाट्य भाषा को आम लोगों की भाषा बनाकर रंगमंच किया। जिन क्षेत्रों में वह रहे, उन भाषाओं, बोलियां में रंगमंच को किया। एक और बात यहां स्पष्ट हो गई कि उनके जो नायक हैं, वह निम्न वर्गीय मेहनतकश मजदूर वर्ग से आते हैं। जो कि तथाकथित ऊंची जातियों के दंभ को चुनौती देते हैं। यही अलखनन्दन के रंगमंच की एक मूलभूत विशेषता है। उनके व्यक्तित्व की भी यही विशेषता है कि वह कमजोर को बड़ा बनाते हैं। आमजन को विश्वास देते हैं। इसलिए, अलखनन्दन ने आधुनिक रंगमंच को जमीन से, लोक से, ग्रामीण चेतना से जोड़ कर रखा और अपने व्यक्तित्व से उसे सिंचित किया। यही अलखनन्दन की विशिष्ट पहचान है।

संजय मेहता अलखनन्दन के साथ भारत भवन में थे। कलाकार के रूप में काम किया है। अलखनन्दन के व्यक्तित्व और उनकी रंग शैलियों से परिचित हैं। वह अलख के व्यक्तित्व का वर्णन इस प्रकार करते हैं—'अलख जी को हम, हम लोगों ने साथ में काम किया है । बहुत लंबे समय तक काम किया है। व्यक्ति के रूप में और एक कलाकार के रूप में उनके व्यक्तित्व में बहुत फर्क नजर आता है। लेकिन, वह व्यक्तित्व की ही कई खूबियां हैं जो उनके कला क्षेत्र में दिखाई देती हैं या कलाकार में दिखाई देती हैं। जब मैं 1985 में रंगमंडल भारत भवन में ज्वाइन

[16] पूषन भट्टाचार्य का 3 फरवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

किया। उस समय अलखनन्दन असिस्टेंट डायरेक्टर बतौर काम कर रहे थे। कारंत जी उसमें डायरेक्टर थे और अलखनन्दन जी असिस्टेंट डायरेक्टर थे। एक जो व्यक्तित्व की सबसे बढ़िया चीज जो उनकी थी। जिस तरह से कारंत जी से थोड़ा सा हम लोग डरते थे। थोड़ा सा एक डिस्टेंस भी रहता था। अलख जी के साथ वह नहीं था। अलख जी के साथ बहुत ही एक संपर्क हो जाता था। बहुत आसानी से हो जाता था और हर स्तर पर हो जाता था। मतलब जब कि वह असिस्टेंट डायरेक्टर थे। हम लोग आर्टिस्ट थे। फिर भी, उनसे हर स्तर पर संपर्क करने में हमें आसानी रहती थी। बतौर निर्देशक उन्होंने रंगमंडल में काफी सारे प्लेज किए हैं। उन्होंने 'आधे अधूरे' डायरेक्ट किया है, जो कि बहुत ही एक मोहन राकेश का रियलिस्टिक प्ले है, एक तरह से देखा जाए। फिर उन्होंने 'जज' किया है। वह डायरेक्ट किया था। वह भी बहुत रियलिस्टिक प्ले था। उसका बहुत अलग कंटेंट था। उसके बाद पी एल देशपांडे का 'बिट्ठल आला रे आला' प्ले किया। बहुत ही अलग किस्म का प्ले, एक शैलीबद्ध प्ले था। जिसको हम कहें कि जिसमें म्यूजिकल भी है। गाने भी हैं और तमाम चीजें हैं। वह भी थीं। फिर उन्होंने सतीश आलेकर का प्ले 'महानिर्वाण' किया। वह भी पूरा का पूरा म्यूजिकल प्ले था। एक तरह की ब्लैक कॉमेडी है जिसमें बीवी कारंत जी ने उसमें म्यूजिक किया था। इसके अलावा एक 'अलीबाबा' प्ले भी उन्होंने किया। रंगमंडल में ऐसा नहीं है कि उन्होंने एक ही तरह के प्ले किए हों। वह शैलीबद्ध थे या म्यूजिकल प्ले थे। वह भी किए। जो रियलिस्टिक थे, वह भी किए। दोनों तरह के प्लेज उन्होंने किए। कंटेंट वाइज भी अलग-अलग किए हैं। 'महानिर्माण' एक ब्लैक कॉमेडी थी। एक तरह का सटायर था। 'जज' और 'आधे अधूरे' बहुत ही सीरियस किसम के प्ले हैं। 'विठ्ठल तो आला आला' कॉमेडी है। ब्लैक कॉमेडी भी उसे कह सकते हैं। इस तरह का जिसमें कि मनुष्य किस तरह से बदल रहा है। भगवान को लेकर उसके संदर्भ किस तरह से बदल रहे हैं। उसको लेकर प्ले था। उसके आने के पहले हम लोग सुनते हैं कि उन्होंने एक प्ले किया था 'वेटिंग फॉर गोदो'। जो बाद में उन्होंने रंगमंडल में छत्तीसगढ़िया में भी किया। छत्तीसगढ़ी लैंग्वेज में भी, बोली में भी किया। वह उनके जीवन का बहुत ही चोटी का प्ले था। सर्वश्रेष्ठ प्ले माना जाता है। हम उनकी कला यात्रा को देखें या उनके व्यक्तित्व को देखें तो व्यक्तित्व में यह है कि वह उनको बहुत छोटे-छोटे चरित्रों की पकड़ थी। शायद समाज में कई बार बतौर रंगकर्मी या बतौर नाटककार आप नहीं देख पाते। चूंकी, वह जहां से आते थे। उनका अनुभव बहुत था। एक व्हीकल फैक्ट्री जबलपुर में काम करते थे। जबलपुर और कटनी एक ऐसा एरिया है, जहां पर बहुत सारे कैरेक्टर समाज के मिलते हैं। जहां शायद वह रहते रहे होंगे। वह जो उनके नाटकों में कुछ कैरेक्टर दिखते थे। वह लगता था कि यह अलख जी ने ही गढा़ है। वह कोई नाटककार का कैरेक्टर नहीं है या किसी दूसरे ने नहीं बताया है। वह उनका गढ़ा हुआ ही होता था। वह उसके लिए जगह ढूंढ लेते

थे, उस नाटककार के नाटक में भी। उनकी यह सबसे बड़ी खूबी थी। बहुत बार जब कास्टिंग को लेकर बात करते थे। फिर कुछ करते थे तो बहुत बार टिपिकल कास्टिंग भी करते थे। जैसा व्यक्ति है ,वैसा ही लाते थे। हम लोग बोलते भी थे कि साहब हम भी यह रोल कर सकते हैं। क्यों नहीं देते? वह कहते थे कि नहीं जब ऐसा ऐसी बात होगी तो हम करेंगे। उस तरह का बाद में काम वह समझ में भी आता था। जब एक आदमी कर रहा है। टिपिकल है। बहुत ज्यादा भाव तो उसको वैसा ही ट्रीट कर रहे हैं। उससे वह उनका कैरेक्टर उभर कर आ रहा है। क्योंकि, उस कैरेक्टर को भरना है। वह कैरेक्टर उभरा है तो नाटक उभर कर आएगा। यह उनका सोच रहता था हमेशा। पूरे रंगमंडल का यह तो वहां का कार्यकाल था। उसमें था और बतौर निर्देशक भी उन्होंने जो काम किया। साथ ही व्यक्तित्व के रूप में कभी हमें ऐसा लगा ही नहीं कि उनसे बहुत बात नहीं कर सकते। किसी भी तरह चाहे बातचीत हो, चाहे बहुत व्यक्तिगत हो या सामाजिक हो, उनके फंडामेंटल बहुत क्लियर थे। उस जमाने में अगर हम बात करें तो जिस समय वह अस्सी इक्यासी में आए होंगे। तब दिल्ली, मुंबई या दूसरे शहर बड़े शहर कहलाते थे। जबलपुर एक बहुत ही छोटा शहर मानेंगे। उसको उस समय के हिसाब से देखा जाए। वहां से आकर, जिस तरीके से इस तरह की चेतना थी रंगकर्म को वह कंपीट करती थी। दिल्ली, मुंबई के लोगों के बराबर और उससे भी कहीं आगे। वहां पर भी उस समय वैसे लोग नहीं थे। चेतना का उनका बड़ा विस्तार था। सोच बहुत साफ थी। उनकी दृष्टि साफ थी। वह जो कहना खुद चाहते थे। वैचारिक रूप से बहुत ही परिपक्व थे। किसी भी चीज में उनको हैजीटेशन नहीं होता था। यार यह चीज मुझे कहां से क्या होगा? लेकिन, फिर उन्होंने प्रोफेशनल रेपर्टरी में आकर जिस तरह का काम किया। बहुत बार लगता है कि कई बार डायरेक्टरों को बहुत सारे स्कूल्स में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय या फलाना कहीं ठिकाना कहीं ट्रेनिंग ले ले के बाद में निकलता है। लेकिन, चूंकी अलख जी की वैचारिक पृष्ठभूमि इतनी स्ट्रांग थी। वह जबलपुर में थिएटर कर रहे थे। रंगमंडल में आकर जब कारंत जी के साथ थिएटर शुरू किया, तो सिर्फ शायद उन्होंने थोड़ी बहुत तकनीकों को जाना होगा। क्योंकि, उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि बहुत स्पष्ट पुष्ट थी। बहुत मजबूत थी तो वह उन चीजों से बहुत आगे निकल गए। एक अच्छा काम किया। व्यक्तिगत रूप से भी हम उनसे संपर्क में रहते थे। मैं बहुत बार वॉक करने जाता था। मेरे साथ वह वॉक करने जाते थे। सरल थे। ऐसा कोई कंप्लीकेशन उनके मन में, न तो वैचारिक रूप से होता था, न ही हम कोई बहुत व्यक्तिगत बात कर रहे तो होता था। एक ऐसी पर्सनालिटी थी जो बहुत छोटे शहर से आती है। बहुत ग्रो करती है। सेम कारंत जी के बारे में है, लेकिन कारंत जी एक दूसरी किस्म की पर्सनालिटी के रूप में आते हैं। लेकिन, अलख जी कभी किसी इस तरह से बड़े इंस्टिट्यूट में नहीं गए हैं। जैसे कारंत जी बनारस चले गए। यूनिवर्सिटी में पढ़ाई की। पढ़े, फिर वहां एनएसडी चले गए। अलख जी का ऐसा कोई

इतिहास नहीं है। वह बहुत ही छोटे शहर से निकल कर आए। ऐज एन असिस्टेंट डायरेक्टर वहां पर आ गए। उस लिहाज से देखेंगे तो बहुत आगे के निर्देशक थे। मुझे लगता है कि काम करते शायद अगर वह बहुत अर्ली एज में न चले जाते। वह एक तरह से अर्ली एज में ही गए हैं। बहुत आगे तक और भी वह बहुत कुछ करते। अपनी संस्था(नट बुंदेले)के साथ रहते हुए उन्होंने बहुत सारे नाटक किए ही, जो बहुत प्रसिद्ध नाटक हुए। 'चंदा बेड़नी' हुआ। वह उन्होंने किया, जो काफी प्रसिद्ध रहा। 'मोटे राम का सत्याग्रह' प्रेमचंद की कहानी पर आधारित है। वह किया। ऐसे कई और भी नाटक किए। बहुत प्रसिद्धि उन नाटकों ने उनको दिलवाई। क्योंकि वह मूलतः कवि भी थे। लिखते भी थे। पढ़ते भी थे। उनकी एक अच्छी वैचारिक समझ बहुत पुष्ट थी।'[17]

संजय मेहता, हमें अलखनन्दन के व्यक्ति रूप और कलाकार रूप में फर्क बताते हैं। इसके साथ-साथ यह भी बताते हैं कि अलखनन्दन अपने कलाकारों को अपने शिष्यों को एक स्थान देते थे। डरा धमकाकर के नहीं रखते थे। अलखनन्दन से आसानी से संपर्क साधा जा सकता था। क्योंकि, अलखनन्दन जमीन से जुड़े हुए व्यक्ति थे। इसलिए, वह लोगों को ज्यादा स्थान देते थे। उन्होंने नाटक और रंगमंच की दुनिया में कई तरह के प्रयोग किये और उनमें भिन्नता बनाए रखी। उन्होंने एक ही तरह के नाटक कभी नहीं किये। कभी उन्होंने यथार्थवादी किये। कभी उन्होंने लोक नाटक किये। कभी उन्होंने बच्चों के नाटक किये। कभी उन्होंने विसंगति बोध के नाटक किये। कभी उन्होंने हास्य किये तो कभी उन्होंने संगीत प्रधान नाटक भी किये। यह उनकी रंगमंच वैचारिक परिपुष्टता को दिखाते हैं। उन्होंने कभी भी अपने आप को एक शैली में बांधकर नहीं रखा। उनके नाटकों और मंचन में विषय वस्तु की भिन्नता भी एक चीज है। वह मनुष्य के स्वभाव में आए परिवर्तन, समाज में आए बदलाव को अपने छोटे-छोटे चचित्रों के माध्यम से व्यक्त करते थे। कोई देखकर ही बता सकता था कि यह चरित्र तो अलखनन्दन द्वारा ही हो गढ़ा हुआ हो सकता है। उनके विचार बहुत ही स्पष्ट थे। उनमें कहीं पर भी दुरूहता नहीं थी, जिस कारण से उन्हें जो कहना होता था, वह अपने रंगमंच और नाटकों के माध्यम से, अपनी कलाओं के सृजनात्मक हस्तक्षेप से करके दिखाते थे। अलखनन्दन की सोच, अलखनन्दन की पहचान और चेतना में इतना विस्तार था कि किसी भी बड़े शहर ,महानगर के रंग निर्देशकों, नाटककारों से वह प्रतियोगिता में कम साबित नहीं होते थे। वह किसी भी तरह की झिझक अपने विचारों के प्रदर्शन में नहीं रखते थे। वैचारिक जटिलता उनके स्वभाव का अंग नहीं थी। कविता पढ़ना, लिखना और साहित्य से गहरे रूप से जुड़े रहना ही, उनकी वैचारिक समझ का द्योतक है।

[17] संजय मेहता का 4 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

मूर्तिकार और चित्रकार देवीलाल पाटीदार भारत भवन भोपाल में कार्यरत हैं। अलखनन्दन को भोपाल के शुरुआती रंगमंच से जानते हैं। वह अलख के व्यक्तित्व पर कुछ रोशनी डालते हुए कहते हैं कि 'दरअसल जब हम इक्यासी-बयासी के आसपास में भोपाल आना शुरू हुए। जिन लोगों के साथ बातचीत और जिनका काम देखने का मौका मिला। उसमें बहुत सारे लोग हैं। उसमें अलख जी भी हैं। बाद में अलखनन्दन जी के साथ एक अलग तरह का ऑफिस के संबंधों के अलावा व्यक्तिगत संबंध भी विकसित हुआ। जो चीज हमको खास तौर पर आकर्षित करती थी। वह उनका व्यवस्था विरोधी स्वभाव था। जो अलग-अलग तरह से उनके कामों में आता था। जहां तक कंसर्न की बात है तो उन्होंने हमेशा बाद के कामों तक, जब उनका फॉर्मेट तय हुआ। उनका काम करने का तरीका तय हुआ। उनका अपना स्टाइल डिवेलप हुआ। उनका विषय और उनके लोग ,पात्र; जिसे हम तलछट का जीवन कहते हैं, वहां से आते हैं। उस जमीन को, उन लोगों को, वह काफी नजदीक से जानते थे। मतलब उनके स्वभाव को, उनकी परेशानियों को उनके अच्छे या बुरे पक्षों को या इनको और उसके थ्रू वह अपना काम और वह अपनी चीजें कर रहे थे। उन्होंने बहुत अच्छी की। पर, एक चीज आप जानते हैं कि हमारे देश में खास करके जो कंटेंपरेरी आर्ट है , इसका जो सीन है, यह थोड़ा सा अर्बन क्लास -क्लास वाला है। इस कारण इनके काम को जिस तरह से स्वीकृति मिलना चाहिए। वह लोग नहीं दे रहे थे। क्योंकि, वह लोग उस क्लास के साथ ही उनका कोई डायलॉग नहीं है। वह क्लास उनका मीटर नहीं है। यह चित्र में भी, साहित्य में भी और इसमें भी और उसमें भी है । हम बात करने के लिए उनकी बात करते हैं। कुछ अपने को प्रोग्रेसिव और बड़ा वह दिखाने के लिए, पर दिखा ज्यादातर कंटेंपरेरी आर्ट में जो पेंटर हैं, राइटर हैं, पॉएट हैं । यह है । वह है । उनका सीधा उसके साथ कोई रिलेशन नहीं है। ईवेन, अभी भी वह उसको अपने पास बिठाने को तैयार नहीं है । यह वह चीज है, जो अलख जी के काम को दूसरे सभी उनके कंटेंपरेरी नाटककारों से अलग कर देती है। मतलब जैसे एक हद तक हबीब साहब ने भी अपनी टीम में छत्तीसगढ़ के ग्रुप के लोगों को शामिल किया था। पर, वह फॉर्म के लेवल पर और वह आर्टिस्ट के लेवल पर कम्युनिकेशन था। उन्होंने उनको अपने साथ जोड़ा भी। पर, हबीब साहब खुद इलीट क्लास से बिलॉन्ग करते थे। उन्होंने कभी भी अपने कलाकारों के साथ वैसा समानता का रिश्ता नहीं बनाया। वह डीक्लास नहीं होना चाहते थे। अलख जी अपने को डीक्लास करते हैं। अपने माध्यम में भी, अपने काम में भी, अपने उन लोगों में भी। अलख जी के बारे में बात करते हुए, इस चीज को थोड़ा सा सामने लाना चाहिए। उनके काम के बारे में बात करते हुए क्योंकि आप खुद जानते हैं। आपने खुद देखा होगा। खासकर के कंटेंपरेरी हमारी जो रचनाकारों की जो बिरादरी है। आप फोक और ट्राइब में जाएंगे तो वहां यह क्लास वाला चक्कर नहीं है। पर इधर है। मतलब शर्मनाक तो यह

है। अभी तक लोग कौन किस जाति का है और किसका है। यह वह बात करते हैं। उसके आधार पर अपने ग्रुप बनाते हैं। अपने प्रोग्राम करते हैं। अपने संबंध बनाते हैं। किस को प्रमोट करना है और किसको नहीं प्रमोट करना है। कुछ इस तरह का चलता रहता है। अभी इस सबसे एक लड़ाई जैसी, एक तरह का विद्रोह जैसा अलख जी ने नाटक के रूप में शुरू किया। इसी कारण उन दिनों के जो स्थापित नाम हैं और जो स्थापित लोग हैं। वह अलख जी के काम को देखते भी थे। पसंद भी करते थे। पर, उस को प्रमोट नहीं करते थे। मतलब किसी देश के डायरेक्टर से आप बड़े क्रिटीक से, समीक्षक से, आलोचक से बोलो पांच नाटककारों के नाम बताओ तो उसमें अलख जी नहीं होंगे। है न? यह कोई एक चीज है जो अलख जी के काम को मेनस्ट्रीम में और फॉर्म की तरह, फॉर्मेट की तरह आगे बढ़ने में आड़े आई। जैसे बहुत सारी चीजें ,हमारे अपने समाज की जकड़बंदियां क्योंकि जो लोग कंटेंपरेरी आर्ट में आते हैं। कंटेंपरेरी थिएटर में पेंटिंग, लिटरेचर में ; वह आते हमारे उसी सड़े समाज से हैं। जहां, यह सारी कुरीतियां और सारी जहालत है। इंटरनली यहां आकर भी कविता लिखने से, वह प्रोग्रेसिव हो जाएगा। ऐसा नहीं है। उसके घर में वैसा ही माहौल है। उतना ही दकियानूसी, वह अपनी बीवी-बच्चों के साथ वैसा ही व्यवहार करता है। यानी यह जो छल है। लोग एक तरह का दोहरा जीवन जीते हैं। मतलब जब गैलरी में या किसी कल्चरल प्लेस में होते हैं तो वह अलग तरह का व्यवहार करते हैं। जब घर में, अपने गांव में, अपने रिश्ते में, अपने खेत में होते हैं तो वह अलग तरह का व्यवहार करते हैं।'[18]

इस तरह से देवीलाल पाटीदार ने कुछ महत्वपूर्ण बातें अलखनन्दन के बारे में कहीं, जिसमें एक है अलखनन्दन का व्यवस्था विरोधी स्वभाव। अब इसका आशय क्या हो सकता है? इसका आशय यह है कि जो लोकतंत्र है, जो राजनीति है, उसे जिस तरह के काम करने चाहिए, वह वही काम नहीं करते हैं। बाकी सारे काम करते हैं। इसीलिए, राजनीति के इस दोहरे स्वरूप से अलखनन्दन को चिड़ थी।

दूसरी महत्वपूर्ण बात देवीलाल पाटीदार बताते हैं तलछठ का जीवन। तलछठ के जीवन से उनका आशय निम्न मध्यम वर्ग, दलित, आदिवासी, सफाई कर्मी, मजदूर, किसान के जीवन से है। अलखनन्दन जिनके आजीवन नजदीकी रहे। यद्यपि वह स्वयं तथाकथित ऊंची-जाति से आते थे। उनकी गहरी संवेदना ,सहानुभूति और उनके खुद के परिवार की पारिवारिक स्थिति जिस तरह की थी, उससे उन्हें वर्गविहीनता पर उतरना ही था। जो महानगरों के तथाकथित प्रबुद्ध नागरिक हैं, बुद्धिजीवी हैं। वह दोहरा जीवन जीते हैं। यही बात अलखनन्दन को पसंद नहीं थी। अलखनंदन को दोहरा व्यवहार करने वाले लोग पसंद नहीं थे। इसी कारण से अलखनन्दन को भी ऐसे तथाकथित

[18] देवीलाल पाटीदार का 12 जनवरी 2022 को भारत भवन भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

दोहरा व्यवहार करने वाले लोग भी पसंद नहीं करते थे। इ स कारण से अलखनन्दन को वह आगे बढ़ता हुआ भी नहीं देखते थे। अलखनन्दन की रंग शैलियों को वह खास काम की शैलियां नहीं मानते थे। ऐसे तथाकथित प्रबुद्ध नागरिक अपने को गरीब, दलित ,पिछड़ा ,आदिवासी, मजदूर और किसान हितैषी होने का नाटक करते हैं। लेकिन, उन्हें अपने पास फटकने तक नहीं देते। यहीं अलखनन्दन इन सभी से अलग हो जाते हैं। सामाजिक जकड़बंदी, दकियानूसी और दोहरे जीवन से ,दोहरे व्यवहार से अलखनन्दन अपने को दूर रखना चाहते थे।

कहानीकार शशांक अलखनन्दन को जबलपुर के दिनों से जानते हैं। अलखनन्दन के खास मित्रों में से एक हैं। वह अलख के व्यक्तित्व के एक नए आयाम से हमें परिचय करवाते हैं। ' दरअसल, अलखनन्दन ने 'चिन्दिओं की झालर' नाम से एक नाटक लिखा था। वह करना चाहता था। उन लोगों को, 'विवेचना' चलाते थे ज्ञान। ज्ञान जी ने कहा कि नहीं शशांक ,तुम्हारी रूपरेखा ठीक है। तुम घर में रहो। मैं हॉस्टल में था। दो दिन के अंदर तुम लिख कर दे दो। जबरदस्ती की गई। मुझे बंद कर दिया गया। फिर मैंने लिखा। हम और अलख कॉफी हाउस में रोज बैठते थे। तो वह एक मस्त आदमी थे। उनके नाटक अच्छे हैं। उनका सबसे अच्छा नाटक हुआ है- 'वेटिंग फॉर गोदो'। सबसे अच्छा वही है। फिर 'नट बुंदेले' संस्था से उन्होंने जो बुंदेली में किए। वह भी अच्छे नाटक हैं। मुझे 1974 में मिले अलखनन्दन। अक्सर हम लोगों की जो मुलाकातें थीं कॉफी हाउस में ही होती थीं। जब पहले उनको देखा। उनके लंबे घुंघराले, बड़े बाल थे। खादी के बड़े-बड़े छापों वाली ढीली-ढाली कुर्तानुमा शर्ट पहनते थे और बातचीत में बीच-बीच में चश्मा निकाल-निकालकर बात करना। मतलब एक ट्रांस में जिस तरह आदमी प्रवेश कर जाता है। बेसुधी में कभी-कभी थोड़ी-थोड़ी बातचीत करता है। वैसे ही वह बात करते थे। उनका बहुत आकर्षक व्यक्तित्व था। इसके पीछे कहीं न कहीं उनकी जो वेशभूषा है, उसमें कुछ वह रेणु जी का प्रभाव झलकता था। वह रेणु की बातें भी बहुत करते थे। उनका स्वभाव जो था बहुत मीठा था। बातचीत अच्छे से करते थे। हमारी इस तरह की दोस्ती थी। वह प्रायः कॉफी हाउस में ही आया करते थे। उन दिनों उन्होंने एक नाटक 'चिन्दयों की झालर' लिखा था। साथ में वह कविताएं भी लिखते थे। कविताओं का जो वाचन है ,वह भी उन्होंने काफी हाउस में भी किया। मुझे ऐसा लगता है। उनकी बातचीत में भी, कविताओं पर भी, उन पर समाजवादी पार्टी विचारधारा का बहुत प्रभाव था। इस नाते वह भवानी भाई! भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं को वह बहुत पसंद किया करते थे। मेरे संबंध तो यही है। दोस्ताना संबंध रहे हैं। चूंकि, नाटक वह अभी शुरुआत ही थी। उनके नाटक की। 1975 में नाटक की योजना बनी, 'चिंदियों में झालर' की। नाट्य मंचन किया जाए। उस पर 'विवेचना' में बैठक हुई। 'विवेचना' एक साहित्यिक ,सांस्कृतिक और नाटक संस्था थी। इसकी शुरुआत हरिशंकर परसाई जी ने की थी। फिर उसका दिशा

निर्देशन, फिर उसमें सक्रियता ज्ञानरंजन जी ने की थी। वहां यह नाटक पढ़ा गया। नाटक पढ़ने के बाद फिर लोगों का उत्साह उतना दिखाई नहीं पड़ रहा था। फिर मैंने उनको बताया कि आजकल जो है थोड़ा एक 'सड़क नाटक'(नुक्कड़ नाटक) ,सड़क नाटक की शुरुआत भी हुई थी उस समय सत्तर-पचहत्तर में। रमेश उपाध्याय ने बांग्ला नाटक जो कुछ हिंदी में किए गए थे। मैंने उनको बताया कि बेरोजगार, नौजवान, मजदूर, फोटोग्राफर को एक लेकर एक नाटक किया जाए, किया जा सकता है जो थोड़ा बड़ा होना चाहिए। आमतौर पर पहले सड़क नाटक चौदह-पंद्रह मिनट के होते थे। फिर वह बढ़ जाता था। फिर नाटक को करने के बाद, फिर जो टीम होती थी दूसरे चौराहे पर जाकर करने लगती थी। मगर मेरी राय यह थी कि आप नाटक इतना थोड़ा बड़ा हो जो दूसरे चौक पर किया जाए। उसे लोग देखकर पसंद करें, जिसमें नाटक भी हो और संदेश भी हो। यह जो मैंने बताया प्रारूप कि ऐसा होना चाहिए। यह लोग मेरे हॉस्टल के कमरे में ही बैठे थे। ज्ञान जी ने कहा कि अब यह तय हो गया कि तुम इस नाटक को लिखकर मुझे दोगे। इसको ही अलख खेलेंगे। कोई दूसरा नहीं खेलेगा। तुमको, जो है परसों तक दे देना है। तुम निकल नहीं सकते। उस मीटिंग में मलयज भी थे। श्यामसुंदर दुबे थे। ज्ञानरंजन जी थे। हिमांशु राय थे। अलख थे। इस प्रकार मैंने नाटक लिखा। उस नाटक को अलख ने देखा। इस नाटक की जो पहली रिहर्सल हुई। पहला नाटक का प्रदर्शन हुआ। 1 मई 1975 को हुआ। उस 75 में जो नाटक किया गया। वह मई में होने से गन कैरिज फैक्ट्री, व्हीकल फैक्ट्री, इनके जो मजदूर जो हैं बहुत बड़ी तादाद में घनश्याम दास एक चौराहा है, वहां पर प्रमुख इलाका वहां पर यह नाटक हुआ। इतने अधिक लोग थे। मने इतने नाटकों में तो मैंने देखे ही नहीं है। हजारों की संख्या में लोग थे। मगर वे नाटक के लिए नहीं, वे अपने जुलूस के लिए थे। मगर उन सब ने भी नाटक देखा। इस नाटक में नंदकिशोर पांडे, नितिन श्रीवास्तव, अजय घोष के अलावा अलखनन्दन की भी भूमिकाएं थीं। डायरेक्शन भी अलखनन्दन का था। इससे अलखनन्दन को बहुत ज्यादा, उनके डायरेक्शन में बड़ी प्रशंसा मिली। उनकी नजदीकी भी हम लोगों से बढ़ी। कभी कविताओं पर बातचीत हो रही है। नाटकों पर बातचीत हो रही है। इसके बाद अलख ने सैमुअल बैकेट का नाटक 'वेटिंग फॉर गोदो' के लिए तैयारी शुरू की। उस नाटक को किया। उनके सभी नाटकों में मुझे उनके डायरेक्शन का प्रदर्शन सबसे अच्छा 'वेटिंग फॉर गोदो' का ही प्रभावित करता है। क्योंकि, उसमें उन्होंने अपनी प्रयोगशीलता का भरपूर किया उपयोग किया। इस नाटक को बहुत ही रोचक सामने रखा। बाद में चलकर अलख वहां 'गन कैरिज फैक्ट्री' में काम करते थे। उसमें वह अकाउंटेंट के डिपार्टमेंट में थे। वहां से हटकर वह असिस्टेंट थिएटर डायरेक्टर रंगमंडल में आ गए। भोपाल आ गए वो शिफ्ट होकर। यहां पर उन्होंने रंगमंडल संभाला और नाटकों के लिए काम करवाया। बहुत अच्छे ढंग से लोगों को सिखाया। एक रेपर्टरी में जैसे लोगों को शिक्षा दी जाती है। उन्होंने अपने

अभिनेताओं जो भी हैं ,उनको शिक्षा दी। इसके अलावा फिर बाद में उन्होंने अपना लोकनाट्य के ऊपर, लोक कलाओं पर आधारित एक के संस्था बनाई जिससे लोक कलाओं पर खासतौर से जो यहां के सागर और खजुराहो, छत्तीसगढ़ के इलाके की भाषाओं को लेकर के, बुंदेली को लेकर 'नट बुंदेले' ,उनकी संस्था का नाम था। उन्होंने कुछ नाटक यहां बनाएं। यह उनका विकास है। मगर मैं भी भोपाल में आया। पढ़कर 1975 के बाद। फिर मैं अपनी नौकरियों में इधर से उधर चला गया। बीच-बीच में आता था। मुलाकात होती थी। मगर वह दोस्ती की प्रगाढ़ता थम गई थी। क्योंकि, हम लोग अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग रहे हैं। मगर मैं कहीं गया हूं तो उनको मैंने वहां बुलाने का प्रयत्न किया है। जैसे छतरपुर में, पटना में, हमारे कार्यक्रमों में हम बुलाते थे उनको।।'[19]

अलखनन्दन को नाटक और रंगमंच में आगे बढ़ने की अपने को स्थापित करने की एक अलग ही धुन सवार थी। यह धुन इतनी प्रखर थी कि कभी-कभी वह अपनी सुद-सी खो बैठते थे। कहानीकार शशांक द्वारा यह बताया जाना कि वह बातें फणीश्वर नाथ रेणु की करते थे और उन्हीं की तरह अलखनन्दन की वेशभूषा भी हुआ करती थी। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि अलखनन्दन के मन मस्तिष्क पर रेणु के साहित्य का भी प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। इस तरह से कहा जा सकता है कि जिस तरह फणीश्वर नाथ रेणु अपनी कहानियों-उपन्यासों में निम्न मध्यमवर्गीय परिवार का चित्रण करते हैं, उनके दुःख ,तकलीफ, कठिनाइयों का और शोषण का चित्रण करते हैं। इसी तरह से अलखनन्दन ने भी अपने नाटकों और रंगमंच में समाज के निचले तपके तथा धर्म ,राजनीति और समाज की जटिलता, द्वंद को जगह दी है। इसी से एक बात और भी साबित होती है कि अलखनन्दन ने अपने शुरुआती दौर में ही कविताएं, नाटक लिखना शुरू कर दिया था। अलखनन्दन पर समाजवादी विचारधारा का जादू सर चढ़कर बोलता था। इसलिए तो भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और मुक्तिबोध जैसे उनके प्रिय कवि हुए। नाटक रंगमंच में अपने निर्देशकीय कौशल को निखारने के लिए अलखनन्दन ने छोटे से यानी की नुक्कड़ नाटकों से अपनी प्रतिभा को आजमाना शुरू किया था। हम कह सकते हैं कि यह उनकी एक प्रयोगशाला थी और इसी प्रयोगशाला से वह निकले थे। बाद में हीरे की तरह चमक उठे थे। 1975 के बाद अलखनन्दन की निर्देशकीय स्वीकार्यता बढ़ती गई। जबलपुर जैसे छोटे शहर से निकलकर उनका भारत भवन भोपाल का रास्ता साफ हुआ। जो कि यह अखिल भारतीय बाद में हो गया। शुरुआती दिनों में वह अभिनय में भी गहरी दिलचस्पी लेने लगे थे। एक तरह से यह बात भी अलखनन्दन के बारे में कहीं जा सकती है कि भले ही अलखनन्दन को औपचारिक और विधिवत शिक्षा-दीक्षा नाटक और रंगमंच की नसीब न हुई हो लेकिन, उन्होंने अपने शिष्यों

[19] शशांक का 19 मई 2023 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

प्रशिक्षणार्थियों को औपचारिक प्रशिक्षण में किसी भी तरह की कोताही नहीं बरती। सही मायने में अलखनन्दन का ध्यान लोक कलाओं, विविध लोकनाट्यों की ओर भारत भवन रंगमंडल के परिवेश में ही गया था। यद्यपि यह कहना भी अतिश्योक्ति न होगी कि उन्हें नाटक और रंगमंच का खाद पानी तो लोकनाट्य और लोक जीवन से ही मिला था।

2.8 कृतित्व

अलखनन्दन ने अपना संपूर्ण जीवन नाट्य प्रदर्शनों में ही बिताया है। इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि उनमें लेखन कौशल का अभाव था। उन्होंने अपने करियर की शुरुआत एक तरह से कहा जाए तो पत्रकार के रूप में ही की थी। वह रायपुर, भोपाल इत्यादि शहरों में शुरुआती दिनों में पत्रकार के रूप में भी काम कर रहे थे। जैसा कि आप जानते हैं कि पत्रकारिता मूलतः लिखन कौशल से जुड़ी हुई चीज होती है। जैसा कि पूर्व अध्याय में उल्लिखित है कि वह विद्यार्थी जीवन से ही कविताएं लिखने लगे थे। किसी व्यक्ति की सृजनशीलता को केवल लेखन से नहीं समझा जा सकता या लेखन का पर्याय ही सृजनशीलता नहीं है। व्यक्ति यदि कलाओं में मूर्ति कला में, चित्रकला में, नृत्य में, गायन में, संगीत में, कहीं पर भी अपना मौलिक योगदान दे रहा है; इसका मतलब है कि वह कुछ सृजन कर रहा है। जैसा कि विदित है कि अलखनन्दन एक पढ़ाकू व्यक्ति के रूप में जाने जाते थे। जो व्यक्ति अध्ययनशील होता है, उसमें स्वत: ही सोचने-समझने की, कुछ रचने की प्रबल बेचैनी का जन्म लेना एकदम स्वाभाविक बात है। बात अगर अलखनन्दन की कीजाए तो इससे साफ स्पष्ट हो जाता है कि अलखनन्दन ने अपने अध्ययन-कौशल और तीक्ष्ण बौद्धिक क्षमता से बौद्धिक समाज में अपनी जगह बनाने में एड़ी-चोटी की मेहनत की। दरअसल, उन्हें ऐसी सोहबत भी हासिल हुई जिसके चलते वह काव्य, नाटक, रंगमंच इत्यादि से प्रभावित होते चले गए। अब इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है कि उन्हें हरिशंकर परसाई और ज्ञान रंजन सरीखे चोटी के साहित्यकारों का सानिध्य प्राप्त हुआ। जबलपुर में कला सृजन में सक्रिय जितने भी लोग थे, जबलपुर शहर में मालवीय चौक में राजनीतिक सामाजिक बहसें होती थीं; उसमें अलखनन्दन का उपस्थित होना कोई अचंभे की बात नहीं थी। अलखनन्दन ने अपना पूरा मन बना लिया था कि उन्हें जीवन को व्यर्थ नहीं जाने देना है। इतिहास के पन्नों में अपने नाम को दर्ज करना है। समाज परिवर्तन में अपने बौद्धिक कौशल का, सोच-विचार का समाज को लाभ दिलाना है। सामाजिक बदलाव का हिस्सा बनना है। वह लोहिया, जयप्रकाश नारायण, रघुवीर सहाय सर्वेश्वर

दयाल सक्सेना, धूमिल, मुक्तिबोध, रामधारी सिंह दिनकर, श्रीकांत वर्मा , फणीश्वर नाथ रेणु इत्यादि से गहरे प्रभावित थे। अलखनन्दन भी इन्हीं कवियों, लेखकों, राजनेताओं इत्यादि की कतार में शामिल होना चाहते थे। वह समाजवादी आंदोलन और मार्क्सवाद से गहरे प्रभावित थे। इसलिए, कुछ कर गुजरने की सृजन करने की, कुछ अपने पद चिन्हों को छोड़ जाने की, उनमें गहरी लालसा थी। क्योंकि, वह जानते थे कि आखिरकार मनुष्य एक नश्वर प्राणी है और सब का अंत होता है। लेकिन, रचने वाला, किसी विचार को जन्म देने वाला, किसी नवाचार को जन्म देने वाला व्यक्ति ही जन्म-जन्मांतर तक पीढ़ियों तक समाज में बना रहता है। इसलिए, उन्होंने कविताएं तो लिखी ही लिखी। साक्षात्कार भी लिए। अनेक नाटकों की रचना की। कहानियों का नाट्य रूपांतरण किया। नाट्य निर्देशन के क्षेत्र में भी नवीन प्रयोग किये। अपनी नवीन सोच को उन्होंने मंच पर प्रदर्शित किया। नए-नए तरीकों से उन्होंने रंगमंच को सुसज्जित किया। नई-नई रंग प्रविधियों को उन्होंने अपनाया और जो युगीन बोध था, जो उनके युग का तनाव था। घर्षण था। ऊंच-नीच, गैर बराबरी, असमानता, कट्टरता, सांप्रदायिकता, पाखंड था। वह उनकी लेखन शैली में गाहे-बगाहे कलात्मक रूप से दर्ज हुआ। इस अध्याय में उनके द्वारा उनकी प्रकाशित कृतियां तथा अप्रकाशित कृतियों की विश्लेषणात्मक प्रस्तुति की जाएगी। इन कृतियों के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक पक्ष उजागर करने की कोशिश की जाएगी। इन कृतियों के माध्यम से लेखक अलखनन्दन क्या कहने की कोशिश कर रहे थे? इसका भी अवगाहन करने की कोशिश की जाएगी। प्रत्येक कृति का सामाजिक ,राजनीतिक, धार्मिक संदर्भों में निहित निहितार्थों को समझने की कोशिश की जाएगी और समझाने की कोशिश की जाएगी।

अलखनन्दन ने जबलपुर में सबसे पहले यानी 1975 के आसपास 'चिंदियों की झालर' नाम से एक नाटक लिखा। यद्यपि इस नाटक के कहीं प्रकाशित होने की सूचना नहीं है, न ही इसके प्रदर्शन की। अलखनन्दन को इसके प्रदर्शन की चाह जरूर थी। इसके बाद उन्होंने शशांक के नाटक 'जैसे हम लोग' को निर्देशित किया था और उसमें स्वयं अभिनय भी किया था। इसके बाद उन्होंने भारत भवन अर्थात अस्सी के दशक में नाटक लिखने की सोची। इनके प्रमुख नाटक इस प्रकार हैं–चंदा बेड़नी, उजबक राजा तीन डकैत, स्वांग शकुंतला, राजा का स्वांग, भेड़िया तंत्र, सलोनी गौरइया, मुक्ति संग्राम, नारद जी फंसे चकल्लस में, जादू का सूट, स्वांग मल्टीनेशनल, काव्य रंग , मगध से मगध तक,बुद्धि बहादुर ,मूर्ख शिरोमणि इत्यादि। इसके अलावा उनका एक कविता संग्रह 'घर नहीं पहुंच पाता' है। इसके साथ-साथ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में खास तौर से छाया नट, नटरंग,रंग प्रसंग इत्यादि में उनके लेख, साक्षात्कार प्रकाशित हुए हैं और कविताएं भी प्रकाशित हुई हैं।

2.9 सम्मान

अलखनन्दन को अनेक सम्मान प्राप्त हुए हैं। उनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं– समकालीन हिंदी रंगमंच में बुंदेलखंडी स्वांग के पुनराविष्कार के लिए सीनियर फैलोशिप 1992-1996 प्राप्त हुई। मध्य प्रदेश का शिखर सम्मान 2006 में प्राप्त हुआ। उन्हें मास्टर फिदा हुसैन नरसी सम्मान भी मिला है। भोपाल की मधुबन संस्था द्वारा श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान भी उन्हें प्राप्त हुआ। लाइफटाइम अचीवमेंट पुरस्कार, रंग आधार संस्था, भोपाल द्वारा उन्हें मिला। अलखनन्दन जी को हबीब तनवीर सम्मान भी मिला है। इसके साथ-साथ सबसे बड़े पुरस्कारों में से एक संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार भी अलखनन्दन की झोली में गया है। यद्यपि यह सम्मान उन्हें बहुत पहले मिल जाना चाहिए था लेकिन, वह चापलूस किस्म के आदमी नहीं थे। निडरता थी। आलोचना से दूर नहीं भागते थे।[20]

2.10 अन्य

इसके अंतर्गत हमने सभी पठित सामग्री का उपयोग किया जिनमें अलखनन्दन का जिक्र था। अलखनन्दन के लेख जहां भी प्रकाशित हुए उनको भी इसमें स्थान मिला। जैसे अलखनन्दन के प्रदर्शन 'चारपाई' पर हमें यह अंश पढ़ने को मिला। "Presented today was play Charpai that deals with the frustrations and complexities of a lower middle class family struggling to remain afloat.Sensitively enacted, the story is well-supported by apt dialogues, a fitting stage set up and actors who are well-rehearsed and clued into the needs of the play.

The gloomy set up takes viewers right into the home of such families groaning under financial pressures to the extent that they even lose out on the fine wealth of relationships that exist around them. The burden of the storyline, the weight of the dialogues and the

[20]https://amp.bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%85%E0%A4%B2%E0%A4%96%E0%A4%A8%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A4%A8

[16.4.2024, समय 12:25]

pressures of the family perpetually in a defensive mode could have suffocated the viewer but the sheer reality and truthfulness of the scenario kept the interest alive."[21]

एक और लेख(ब्लॉग) इंटरनेट पर पढ़ने को मिला जिसमें अलखनन्दन के विषय में काफी महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

"A playwright and Hindi poet of repute, Alakhnandan, 63, is also a master in the field of children's theatre. He started his theatre career as an actor and after a thorough and field study of the folk and traditional theatre forms of North India, got into theatre direction. He has broken new grounds to recreate the Bundelkhandi Swang with an innovation on con temporary stage. He is highly regarded for his innovations and poetic approach in theatre direction".[22]

हबीब तनवीर के रंगकर्म पर एक लेख 'कुछ बातें' शीर्षक से नटरंग 86-87 अंक में प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने हबीब तनवीर जी के रंगकर्म के बारे में गंभीर टिप्पणियां की हैं। एक अंश हम यहां दे रहे हैं। अलखनन्दन के इस लेख को पढ़कर आपको उनके उर्दू संबंधी इल्म की भी जानकारी हो जाएगी।

"इसलिए यह याद रखना चाहिए कि यह सिर्फ पेशकश की स्टाइल और तकनीक का थिएटर नहीं है। खालिस आम आदमी के दुख-दर्द की कहानी कहने का थियेटर है और उसको पेश करने वाले अदाकार, कलाकार भी आर्थिक रूप से आम आदमी है और अपनी जिंदगी में वैसे ही दुख भोग रहे हैं जैसे उनके जरिए पेश किए गए ड्रामे के किरदार। इसलिए हबीब तनवीर का थियेटर सच्चे अर्थ में हिंदुस्तानी आवामी थियेटर है। उसमें आवाम की तस्वीर है। उसकी मौसीकी अवामी है नाच आवामी है, उसके अदाकार आमतौर पर समाज की छोटी जातियों से आते हैं। लेकिन आवाम के दुख-दर्द, संघर्ष, गैर बराबर समाज के सामंतों और रियासत की मार के बाद भी मिडल क्लासियत से दूर इस थियेटर में ठसक है और हजार दुखों के बाद भी नाउम्मीदी की जगह नहीं है।.... चरणदास के मना करने पर रानी झूठ बोलती है और हरम में घुसने के आरोप में चरणदास को मरवा देती है। बर्टोल्ट ब्रेश्ट के ड्रामे कोकेसियन चौक सर्किल में राजकुमार की जान बचाने जैसा भला काम करने वाली नौकरानी ग्रूशा आफतों में फंसती है पर बच जाती

---

[21] https://timesofindia.indiatimes.com/city/nagpur/middle-class-travails-rest-on-charpai/articleshow/12551367.cms

(24.4.2024 समय 11:40)

[22] https://ndsharma.wordpress.com/tag/alakhnandan/

(24/04/2024, समय 12:25)

है। सत्य बोलने पर चरणदास मारा जाता है। बहादुर कलारिन नाटक एकदम से सोफोंक्लीज के नाटक इडीपस के उलट की याद दिलाता है। किंतु इडीपस अनजाने में अपनी मां से शादी करता है, बच्चे पैदा करता है जबकि बहादुर कलारिन रंग के बेटे छछान की सत्ता, धन और औरत की लालसा इतनी बढ़ जाती है कि वह अपनी मां से ही होशो-हवास में हमबिस्तरी करना चाहता है। हमारे समय की व्यवस्था से दो-दो हाथ करने, टकराने के इतने उदाहरण शायद काफी है। इस तरह यह राजनीतिक हस्तक्षेप का रंग मंच है।"[23]

गिरीश रस्तोगी जी ने भी अपनी पुस्तक में अलखनन्दन द्वारा प्रस्तुत श्रीकांत वर्मा के काव्य संग्रह 'मगध' की प्रस्तुति पर कुछ लिखा है। "इधर पिछले वर्षों में श्रीकांत वर्मा का 'मगध' काव्य भी कई प्रकार के रूपांतरों द्वारा प्रस्तुत हुआ। नरेंद्र शर्मा, उषा शर्मा, अलकनंदा(अलखनन्दन) और स्वयं मैं भिन्न-भिन्न रूप में, 'मगध' की परिकल्पना की। किसी ने काव्य को प्रधानता दी, किसी ने संगीत और नृत्य को और किसी ने रूपांतरण को प्रधानता दी पर मैंने 'मगध' की कविताओं को चुनकर, उन्हें एक कथात्मक और मंचीय क्रम देकर उन्हें मंच पर उपस्थित पात्रों से ही संवादात्मक या लयात्मक ढंग से कहलवाया" [24]

जब अलखनन्दन जी की मृत्यु सन 2012 को हुई तो प्रसिद्ध कहानीकार और 'पहल' पत्रिका के संपादक ज्ञानरंजन जी ने उनके बारे में बहुत ही अच्छा लेख लिखा। इस लेख में उन्होंने अलखनन्दन की कर्मठता और बुंदेलखंड से उनके लगाव, बिहार से जुड़ाव और उनके मितव्ययी स्वभाव तथा शारीरिक बनावट की चर्चा की है। अलखनन्दन तीस वर्ष जबलपुर में रहे और तीस वर्ष ही भोपाल में। आरंभ जबलपुर से था तो अवसान भोपाल में हुआ। जब जबलपुर में अलखनन्दन का उदय हो रहा था तो विनोद कुमार शुक्ल और नरेश सक्सेना शहर छोड़ चुके थे। मुक्तिबोध का देहावसान हो गया था। हरिशंकर परसाई जरूर थे। अलखनन्दन ने नौटंकी और रामलीलाएं खूब देखी थीं। अलखनन्दन में बेचैनी बहुत थी। वह नींद में भी संवाद बोलने लगते थे। ज्ञानरंजन ने तो यहां तक लिखा कि अलखनन्दन में उन्हें अपना आवारापन दिखाई देता था। अलखनन्दन ने मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ के लोकनाट्य, लोक संगीत का गहन अध्ययन कर लिया था, जिस कारण वह काव्यात्मक बिंबों की रचना करने में और लोक तत्वों के पुनराविष्कार में और नवाचार करने में माहिर हो गए थे। ज्ञानरंजन ,अलखनन्दन को एक बेचैन, मेहनती और जिद्दी आदमी मानते हैं। ज्ञानरंजन ने जिक्र किया कि पंकज स्वामी को उन्होंने साक्षात्कार में कहा था

---

[23] नटरंग 86-87, जुलाई दिसंबर 2010, हबीब तनवीर विशेषांक, संपादक- अशोक वाजपेई, रश्मि वाजपेई, पृष्ठ 89-90

[24] नाटक तथा रंग परिकल्पना, गिरीश रस्तोगी, प्रथम संस्करण 1992,पृ . 37

कि यदि मुझे ढाई सौ वर्षो का जीवन मिले तो उतने ही समय तक रंगकर्म करते हुए मैं थकूंगा नहीं। बच्चों के लिए उन्होंने दस से अधिक नाटक रचे जो कि विशिष्ट बात है। अलखनन्दन आठ वर्ष तक ब व कारंत के साथ सह-रंगनिर्देशक रहे और कुल सोलह वर्ष तक भारत भवन भोपाल में रहे। इसके अलावा ज्ञानरंजन यह भी बताते हैं कि भारत भवन में एक कुर्सी अलखनन्दन के लिए खाली रखी जाती थी। यदि वह नाटक नहीं देखते थे तो समझा जाता था कि आज भोपाल शहर में अलखनन्दन अनुपस्थित हैं। नाटकों में कविताओं का प्रयोग अलख प्रायः करते थे।

"रंगकर्मी, निर्देशक और कवि अलखनन्दन ने चार दशकों तक निरंतर रंगकर्म करते हुए अनेक बेजोड़ नाटकों की प्रस्तुतियां देश भर में की हैं।... भोपाल में भारत भवन से बाहर स्वतंत्र रूप से नाटकों का मंचन करना और श्रमजीवी तरीके से 'नट बुंदेले' नाम की रंगसंस्था को राष्ट्रीय पहचान देना एक ऐसा चुनौतीपूर्ण काम था जिसे अलखनन्दन ने बखूबी संगठित और संपादित किया। जबकि अपार साधनों के बावजूद भारत भवन अपना रंग मंडल नहीं चला पाया। हम सभी जानते हैं कि हिंदी में मौलिक नाटकों की लंबी कमी, साधनों का अभाव, और घटते दर्शकों की परिस्थितियों के कारण निरंतर रंगकर्म करना अब मुश्किलों भरा काम है। इसलिए अलखनन्दन जैसे सक्रिय रंगकर्मी की मौत एक बड़ा सांस्कृतिक आघात है।

अलखनन्दन मजबूत काठी के स्वस्थ और सकारात्मक व्यक्ति थे। शरीर पुख्ता और कसरती था। किशोर अवस्था से ही भारतीय भाषाओं के साहित्य और खास तौर पर लोक नाट्य की पढ़ाई करने लगे थे। उदार वामपंथी थे, आत्महत्या के विरुद्ध थे लेकिन आजीवन कठोर परिश्रम और रंगकर्म की लगातार रात-दिन जागती दिनचर्याओं और मुठभेड़ों ने उन्हें पता नहीं चला, धीरे-धीरे तोड़ दिया। उनके फेफड़े तवाह हुए और चौबीस घंटों की ऑक्सीजन उन्हें लग गयी। उन्हें 'फाइब्रोसिस ऑफ लंग्स' की बीमारी थी।... बिहार से विस्थापित होकर वे छत्तीसगढ़, सरगुजा और बुंदेलखंड के इलाकों में बार-बार जाते रहे। इन इलाकों से उनका गहरा लगाव और प्रेम था। उनकी समूची बुनावट में जो मिश्रण था वह इसी घुमंतू आचरण का परिणाम था। वे भोजपुरी बोलना कभी नहीं भूले, जबकि उनका अंतिम लैंडस्केप बुंदेलखंड ही बना। जबलपुर आकर वे स्थिर हुए और प्राणपण से काम करना शुरू हुआ। उनकी काया में जो भाषा तैर रही थी। वह संघर्षशील हिंदी पट्टियों में ही तैयार हुई थी। अलखनन्दन कर्मकार के चाक की तरह अभिराम अपने जीवन को चलाते रहे। उन्होंने नाटक किये भी और लिखे भी।"[25]

[25] उपस्थिति का अर्थ, ज्ञान रंजन, प्रथम संस्करण 2020, सेतु प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ 137,138

प्रतिभा अग्रवाल ने 'भारतीय रंग कोष' में रंग व्यक्तित्व के अंतर्गत अलखनन्दन के बारे में कुछ महत्वपूर्ण बातें कही हैं जिन्हें दर्ज करना मैं आवश्यक समझता हूं— "अलखनन्दन ने एक नाटककार, निर्देशक, अभिनेता, संगीत निर्देशक, दृश्य-प्रकाश एवं वेशभूषा आदि के अभिकल्पक के रूप में रंगकर्म के विभिन्न पक्षों को समृद्ध किया।.... अलखनन्दन की नाट्य गतिविधियां नाट्य–लेखन, निर्देशन, अभिनय तक ही सीमित नहीं है। अनेक नाटकों में सेट और वेशभूषा जैसे नेपथ्य कर्म का दायित्व निभाया है।

अलखनन्दन अंतरराष्ट्रीय ख्याति के फिल्म निर्देशक मणि कौल के साथ लंबे समय तक सिनेमा कला से संबद्ध रहे। प्रदीप किशन की अंग्रेजी फिल्म इलेक्ट्रिक मून तथा मर्चेंट आइवरी की फिल्म इन कस्टडी में अभिनय किया। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नाटक निर्देशकों में ब व कारंत, पीटर ब्रुक, फ्रिट्ज बेनेविट्ज, कावलम् नारायण पणिक्कर के साथ आपने लंबे समय तक रंगकर्म का अनुभव अर्जित किया है तथा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के रंग विस्तार कार्यक्रम के अंतर्गत अनेक रंग शिवरों का संचालन किया है।"[26]

मैंने तो ऐसा भी सुना है कि मणि कौल की फिल्म 'सतह से उठता आदमी' में अलखनन्दन ने सह-निर्देशक की भूमिका निभाई थी, लेकिन अपना नाम फिल्म से नहीं जोड़ा। अलखनन्दन के व्यक्तित्व के बारे में हमारी बातचीत उनके कई संगी-साथियों और परिवार के अन्य जनों से बातचीत हुई तो उनकी प्रतिक्रियाओं के आधार पर हम उनके व्यक्तित्व की एक झलक देख सकते हैं। अलखनन्दन के 'इक तारे की आंख' पर कविता नागपाल ने भी 'मार्क्सिस्ट इंटरप्रिटेशन ऑफ कबीर' लिखा। लेकिन, हमें दुर्भाग्यवश यह पढ़ने को नहीं मिला।

अतः हमने द्वितीय अध्याय में नाटककार,रंगनिर्देशक अलखनन्दन के रंग व्यक्तित्व के बारे में विभिन्न साक्षाकारों के माध्यम से तथा अन्य स्त्रोतों से जाना ।

[26] भारतीय रंगकोश, खंड-2, रंग व्यक्तित्व, सं.प्रतिभा अग्रवाल, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, प्रथम संस्करण 2006

तृतीय अध्याय : अलखनन्दन का रंगकर्म : समाज, धर्म और राजनीति

3.1. अलखनन्दन के रंगकर्म में धर्म-चिंतन

3.2. अलखनन्दन और जाति के प्रश्न

3.3. सामाजिक विमर्श और अलखनन्दन की दृष्टियां

3.4. अलखनन्दन का राजनीतिक बोध

तृतीय अध्याय : अलखनन्दन का रंगकर्म : समाज, धर्म और राजनीति

मैंने अलखनन्दन से जुड़ी रंग हस्तियों तथा कलाकारों , निर्देशकों, रंग समीक्षकों के माध्यम से धर्म, राजनीति, समाज से जुड़ा जो उनका चिंतन था, उसको समझने की चेष्टा की। इसका कारण यह है कि प्रकाशित सामग्री की अनुपलब्धता थी। इसी कारण हम इस ओर प्रेरित हुए कि क्यों न जिन लोगों ने अलखनन्दन के नाटकों का प्रदर्शन देखा है, उनके साथ काम किया है, उनके साथ दोस्ती की है। वह जरूर कोई न कोई राय उनके समाज ,धर्म ,राजनीति से जुड़े विचारों से रखते होंगे। यह अध्याय इसी दिलचस्पी से भरा है कि किसी भी प्रकार से अलखनन्दन के नाटक, नाट्य चिंतन ,उनकी कविताएं, उनके प्रदर्शित नाटक, उनके लेख, उनकी सोच विचार की प्रक्रिया को सामने लाया जाए। यह अध्याय पूर्णतया साक्षात्कारों पर आधारित है। इस पर शोधार्थी की भूमिका मात्र व्याख्याकार,टिप्पणी कर्ता और संकलन की है। इसमें साक्षात्कारों से मुख्य बातों को रेखांकित और दर्ज करने की भरसक चेष्टा की गई है।

3.1 अलखनन्दन के रंगकर्म में धर्म-चिंतन

विजय सिंह संगीत नाटक अकादमी और एफएम की दुनिया से जुड़े हैं। उन्होंने भी अलखनन्दन के कुछ नाटकों को प्रदर्शित होते हुए देखा है और अलखनन्दन से उनकी लगातार भैंटें होती रही हैं। वह अलखनन्दन के रंगकर्म में समाज, धर्म, राजनीति को इस तरह से रेखांकित करते हैं—'मैंने उनके दो नाटक देखे थे। एक तो 'भगवदज्जुकीयम'। कुछ लोग इसे भगवत उज्जकम कहते हैं तो कुछ लोग इसे भगवत् अज्जुकीयम कहते हैं। उनके'चारपाई' की मुझे बहुत अच्छी स्मृति है। 'चारपाई'में जिस तरीके की हमारी भारतीयता है। वर्तमान हमारे समाज का जो निम्न मध्यम वर्ग है, जो गरीबी से थोड़ा ऊपर उठा हुआ है लेकिन, निम्न मध्यम वर्ग में ही निम्न मध्यम वर्ग वाली साइड में झाँका है। ऐसे एक परिवार की कहानी है। वह कैसे एक छोटी सी जगह में रहते हैं। उसमें अपनी वैयक्तिकता, जो वैयक्तिकता है उनकी, उसके लिए वो संघर्ष करते हैं। हर आदमी को अपना स्पेस चाहिए। चाहे आप कितना भी समाज का हिस्सा हों, कुछ हों लेकिन, आपका अपना एक वैयक्तिक स्पेस है;जिसमें आप रहते हैं,जिससे आप बाहर आते हैं। वापिस उसमें एनर्जी लेकर फिर बाहर आते हैं। बाहर से एनर्जी लेकर अंदर जाते हैं। ये परस्पर जो ये संवाद चलता है, वैयक्तिकता में और सामाजिकता में। उसकी जो घुटन है। उसे न मिल पाने का जो

तनाव है। उसकी इच्छायें हैं। वह सब उसमें परिलक्षित होती हैं। वह सामाजिक विद्रूपताओं की तरफ ये भी इशारा है कि हमें एक-दूसरे के कमरों में झांकने की बहुत जल्दी होती है। लेकिन, इसके बावजूद हम चाहते हैं कि कोई हमारे कमरे में न झाँक पाए। फिर भी, कुछ लोग न चाहते हुए कुछ चीजें हमारे सामने आ जाती हैं। हम चाहकर भी उन्हें अनदेखा नहीं कर पाते। उस समय, जब एकदम से मानलीजिए कि आपके बाथरूम का दरवाजा कोई खोल दे तो आपको भी कैसा लगेगा? जो अंदर है, उसको भी कैसा लगेगा? वह जो दोनों तरह की स्थितियां हैं। जो दोनों से उपजी फ्रस्ट्रेशन है। वह उसको अपनी प्रोडक्शन में निकालते थे। 'चारपाई' के बारे में तो यही है। अच्छा वह स्क्रिप्ट भी ऐसी कि हर एक्टर को अपना- अपना देखना पूरी तफसील से मिलता है। एक घर का एक बुजुर्ग है। किस तरह की चीजें हैं। आपने 'चारपाई'(रामेश्वर प्रेम) पढ़ा तो जरूर होगा। बस यही है । फिलहाल तो मैं इतना ही कहूंगा।"[1]

अलख के नाटकों में भारतीयता का विचार सर्वोपरि था। अलख के रंगमंच में भारतीयता ने के अनेक रंग आपको देखने को मिलेंगे। उन्होंने क्षेत्रीयता का झमेला अपने रंगकर्म का हिस्सा नहीं बनाया। इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि उन्होंने लोक रंगमंच की उपेक्षा की। संपूर्ण भारत का लोक रंगमंच कर पाना तो एक व्यक्ति की कूव्वत के बाहर है। इस पर भी अलखनन्दन ने बुंदेली, छत्तीसगढ़ी और भोजपुरी के रंगमंच को जीवंतता प्रदान की। निम्नमध्यमवर्ग की पहचान अलखनन्दन को थी। इसलिए, उसकी पीड़ा, उसके द्वंद्व-संघर्ष का उचित मंचन अलखनन्दन कर चुके हैं। निम्न वर्ग की भी व्यक्तिगत जगह है। व्यक्तिगत स्थान में वह रहना चाहता है। व्यक्तिकता और समाज का अंतः संबंध अलखनन्दन अपने रंगमंच में तलाशते हैं। उनके रंगकर्म में व्यक्ति की इच्छा, घुटन, तनाव का वैशिष्ट उभर कर आता है। हमारा समाज व्यक्तिगत जीवन में ताक-झांक करने वाला, हस्तक्षेप करने वाला समाज है। व्यक्तिकता और सामाजिकता के संघर्ष से जो कुंठा जन्म लेती है, उसका निचोड़ अलख के रंगमंच का महत्वपूर्ण केंद्र बिंदु है।

सुरेन्द्र वानखेड़े ने अलखनन्दन के नाटकों में संगीत दिया है। वह अलखनन्दन के नाटकों ,प्रदर्शनों में उनकी विचार प्रक्रिया में समाज, धर्म, राजनीति के स्थान को इस तरह से हमारे समक्ष रखते हैं–'देखिए ! क्या है कि उनकी राजनीतिक सोच तो बहुत बड़ी थी और राजनेताओं से वह चिढ़ते भी थे। कई तरीके से और राजनीतिक में उनकी बहुत ही पकड़ थी। राजनीति में भी कई उनके दोस्त और उनके नेता लोग रहे। लेकिन, उनकी राजनीति में भी बहुत पकड़ थी। बहुत चीजें जानते थे। वह राजनीति में बहुत चीजें जानते थे। जहां तक समाज की बात है तो समाज से तो जुड़े ही रहते थे। तब तो वह इतने अच्छे-अच्छे नाटक और समाज से भी इस तरीके से, जैसे आपने उनका अगर

[1] विजय सिंह का 1 मार्च 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

'महानिर्वाण' देखा हो? तो, 'महानिर्वाण' में भी पूरे समाज से क्या-क्या चीजें होती हैं? उस आदमी की समाज में बहुत ज्यादा पकड़ थी। उस आदमी की इतनी ज्यादा पकड़ थी । एक उदाहरण आपको बताता हूं। आदमी जब किसी एक फिल्म में जाता है तो वहां क्या सोचता है? इस आदमी की इतनी पकड़ थी। अब सोच लीजिए आप कि सामाजिक रूप में उस आदमी की कितनी पकड़ थी। बहुत ज्यादा पकड़ थी। उनके नाटक में समाज तो दिखता ही है। समाज की चीजें तो दिखती हैं। सब समाजों में जो छोटे-छोटे से कैरेक्टर होते हैं। समाज में इधर-उधर जो चीजें होती रहती हैं। उस आदमी की बहुत पकड़ थी। समाज की तो उनकी बहुत मैनुअली पकड़ थी। बहुत ज्यादा समाज में और मेरे ख्याल से अधिकतर वह समाज में पकड़ होने की वजह से ही अपने नाटक में बहुत अच्छे तरीके से समाज को दिखाते थे। बहुत अच्छे तरीके से दर्शाते थे। जैसे उन्होंने 'चारपाई' में जो चीजें पकड़ी हैं। 'चारपाई'में एक छोटे से मध्यमवर्गीय से भी गरीब परिवार को उन्होंने उसमें पकड़ा है। उन्होंने उसमें बहुत गरीब परिवार को पकड़ा है। जिसके पास बिछाने के लिए बिस्तर तक नहीं है। उन्होंने उसमें एक सामाजिक तरीके से एक खाट की जो बुनावट होती है न? खाट की रस्सी की जो बुनावट होती है। उस रस्सी से पूरा आधा-अधूरा सेट बनाया हुआ था। उन्होंने उस नाटक में बताया था कि समाज में लोग कैसे उलझे हुए हैं। रस्सियों की तरह उलझे हुए हैं। मुख्य सारी चीजें बहुत मायनूटली ऑब्जरवेशन था। समाज को लेकर बहुत माइन्यूटली ऑब्जरवेशन था। उनका धर्म के विषय में तो बहुत ज्यादा, धार्मिक तो वह बिल्कुल नहीं थे। बिल्कुल धार्मिक नहीं थे। वह बोलते थे। मेरा काम ही यह है। मैं इसी से धार्मिक हूं। धर्म के खिलाफ ऐसा कुछ बोलते भी नहीं थे। जिनको करना है, वह करें। जैसे 'भए प्रकट कृपाला दीन दयाला' में उन्होंने बहुत बड़ी चोट की है। बहुत। लोगों को बताया है। जहां तुम भगवान को विराजते हो। वह समाज में जो मंदिर का गर्भ गृह है। गर्भ गृह में साला तुम कभी सफाई नहीं करते हो। आजकल मतलब पंडित इतना ज्यादा वह हो गया है। भगवान को चिन्ना अमृत की जगह चूने की कटोरी में चूना खिलाता है। उन्होंने इतना बड़ा समाज में थप्पड़ मारा है। वही तो पु ल देशपांडे कहते थे। मैंने तो यह सोचा ही नहीं था। यार! यह नाटक ऐसा हो जाएगा। समाज को बहुत बड़ी चोट करने वाले थे। मंदिर में लोग क्या-क्या करते हैं। जूते चुरा के ले जाते हैं। क्या-क्या करते हैं? भगवान के वस्त्र चुरा के ले जाते हैं। मंदिर की लोग घंटियां चुरा कर ले गए। जो समाज में आज इधर-उधर होता है। इस तरह के लोग फैले हुए हैं न? मोबाइल में डलवाने के लिए लोगों के पास पैसे ही नहीं हैं। तो, मंदिर का कलश उतार के ले गए। है न? ऐसे लोग भी हैं। मंदिर में बहुत लोग हैं। उन्होंने बताया। उन्होंने समाज में चोट करी। फिर भगवान जब बाहर निकल कर आ जाते हैं। वह गर्भ ग्रह से भगवान तो प्रकट हो जाते हैं। फिर वह पंडित की पोल खोलते हैं। मास्टर रहता है। उसकी पोल खोलते हैं। दर्जी रहता है। उसकी पोल खोलते हैं। शिक्षक

रहता है। उसकी पोल खोलते हैं। जोड़ों का डॉक्टर रहता है तो उसकी वह पोल खोलते हैं। इस तरीके से उन्होंने समाज में खींच खींच(तमाचा) के मारा है। आप बता ही नहीं सकते।'[2]

राजनीति की बारीकियों को अलख जानते थे। इसलिए, अलखनन्दन ने बहुत सुंदर ढंग से राजनीति को मंच पर उभारा भी। सामाजिक असलियत की गहराई उनके रंगमंच में, लेखन में, काव्य में आई है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता है। इस तरह के मुद्दों को वह उठाते थे। इससे जाहिर हो जाता है कि समाज की अनेक तहों को उभारने में अलख सफल हुए हैं। समाज से छोटे-छोटे पात्र उठकर उनके यहां आते हैं। उनमें रंग भरने का काम अलख बखूबी जानते थे। अलख अपने रंगमंच में समाज की बिखरी हुई चीजों का एक कोलाज तैयार कर देते थे। समाज से एक-एक कड़ी उठाकर रंगमंच में जीवंतता लाना, अलख की अनोखी प्रतिभा का कमाल था। गरीब आदमी की विवशता, व्यथा, बेचैनी को अलख जानते थे। इसलिए, उनके नाटकों व रंगमंच में यह चीज स्पष्ट दिख जाती है। सामाजिक उलझनों से दो-चार होना अलख के मंच पर दिखता था। धर्म-पाखंड का चक्कर ही नहीं था। कर्म ही उनका धर्म था। कर्म को ही वह नाटक, रंगमंच मानते थे। धर्म नाम के ढकोसले का पर्दाफाश अलख के यहां है।

पेशे से पत्रकार और रंगकर्मी अरुण पांडेय अलखनन्दन के रंग कर्म में उद्घाटित समाज, धर्म, राजनीति पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि ' बाद में, रंगमण्डल जाने के बाद उन्होंने अपने नाटक लिखे न? मैंने कहा न वह बहुत प्रगतिशील थे। भोपाल में वह फ़जल ताबिश के बुलाने पर गए थे। फ़जल ताबिश बहुत बड़े उर्दू के लेखक थे। उन्होंने उनके 'डरा हुआ आदमी', 'अखाड़े से बाहर' दो नाटक किये। वह नाटक साम्प्रदायिकता के खिलाफ थे। उसका उन्होंने निर्देशन किया। उनका उन्होंने भोपाल में मंचन किया। रियाज किया। बाद में उन्होंने लोककथाओं से प्रेरित, उन्होंने नाटक खुद लिखे। लेकिन, वह भोपाल जाने के बाद का मामला है। वह अस्सी के बाद का मामला है। अस्सी के पहले वह सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी' करते थे। मणि मधुकर का 'रसगन्धर्व' किया। 'अखाड़े से बाहर' किया। मोहित चटर्जी का 'गिनी पिग' किया। ये सारे नाटक छपे छपाए थे। लेकिन, इसमें कोई न कोई मुद्दा था। वह कोई वेवजह का नाटक नहीं करते थे। उनके भीतर मजा लगाने वाला तत्व नहीं था। '[3]

पेशे से पत्रकार और रंगकर्मी अरुण पांडे ने अलखनन्दन के रंगमंच की प्रगतिशीलता की ओर संकेत किया। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि अलखनन्दन प्रगतिशील, समाजवादी, लोहियावादी, जय प्रकाश नारायणवादी के विचारों से प्रभावित और धनी थे। उनके नाटकों में भी ,मंचन में भी, कविताओं में भी यह

[2] सुरेन्द्र वानखेड़े का 2 जनवरी 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

[3] अरुण पाण्डेय का 3 मार्च 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

प्रगतिशीलता कूट-कूट कर भरी होती थी। इसका अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि वह जबरन इस विचारधारा का समावेश अपनी सृजनशीलता में करते थे। उन्हें यही विचारधारा विवेकसंमत लगती थी। अलखनन्दन के नाटकों में और उनके मंचन में सांप्रदायिकता के खिलाफ जो विषय वस्तु होती थी, उसका वह प्रदर्शन करते थे। इस सामाजिक-धार्मिक बुराई पर राजनीतिक-धार्मिक-सांप्रदायिकता पर प्रहार प्रायः करते थे। आपसी वैमनष्य के विरुद्ध थे। आपसी भाईचारा का संदेश उनके नाटकों में, उनके चिंतन का प्रमुख विषय रहा है। लोक कथाओं पर आधारित भी उन्होंने जो नाटक किये मसलन 'चंदा बेड़नी', 'उजबक राजा तीन डकैत', 'राजा का स्वांग' तो इसमें भी उनकी सामाजिक सोच का स्तर काफी ऊंचा है। उन्होंने कोई भी नाटक अकारण नहीं चुने। बल्कि उसमें गहरी सामाजिकता, राजनीति और धर्म का समावेश मिलता है। सामाजिक जो ताना-बाना है, जिसमें जकड़बंदी है, वैमनष्य है, ऊंच नीच है, धार्मिक पाखंड हैं, बुराइयां हैं, राजनीतिक-सांठगांठ और उसका समाज पर जो प्रभाव पड़ता है, उसको केंद्र बनाकर उन्होंने अपने नाटकों का प्रदर्शन किया। उन्होंने कविताएं लिखीं। नाटक उनके प्रगतिशील विचारों के द्योतक हैं और रंगमंच उनका प्रगतिशीलता का। उनके नाटकों में यदि हास्य भी आता है, तो वह भी कुछ न कुछ संदेश देकर जाता है।

हिमांशु राय 'विवेचना' संस्था में रहे हैं। अलखनन्दन को काफी अच्छे से समझते हैं। वह अलखनन्दन के रंगकर्म में, उनके निर्देशकीय कौशल में, समाज, धर्म, राजनीति को इस तरह से रेखांकित करते हैं–'वह तो नाटकों के चयन में ही दिखता है। नाटक की स्क्रिप्ट ही ऐसी है। तभी तो उन्होंने चुने है न? जैसे 'डरा हुआ आदमी' जो था। यह अपने सांप्रदायिकता के एक पक्ष को लेकर है। घर में एक आदमी बंद बैठा हुआ है। वह कितना डरा हुआ है। यह दंगों के कारणों को लेकर है। वह पूरा 'अखाड़े से बाहर' और 'इक तारे की आंख' यह दो नाटकों के साथ मेरा दुर्भाग्य है कि उस समय में जबलपुर से बाहर था। मैंने न उनकी रिहर्सल देखी न शो देखे।'[4]

अलखनन्दन द्वारा लिखित और दूसरे नाटककारों द्वारा लिखित नाटकों का चयन और बाद में उनका प्रदर्शन ही इस प्रकार का होता था कि समाज, धर्म और राजनीति के आधुनिक समसामयिक सवाल, वर्तमान दौर की समस्याएं पीछे न रह जाएं। इन पर अलखनन्दन का रंगमंच टिका था। सांप्रदायिकता का जहर समाज को किस प्रकार विषाक्त कर रहा है। इसकी पहचान अलखनन्दन को थी। इसी का उपयोग अलखनन्दन अपने अध्ययन और अपनी सूझ-बूझ से , अपनी रंगयुक्तियों में अक्सर किया करते थे। समाज को एक संदेश देने की कोशिश किया करते थे।

[4] हिमांशु राय का 5 मार्च 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

जयंत देशमुख भी अलखनन्दन के साथी, रंग कर्मी रहे हैं। वह अलखनन्दन की विचार दृष्टि, रंग शैलियों से सुपरिचित हैं। वह अलखनन्दन की धर्म-राजनीति संबंधी चिंतन प्रक्रिया को उनके नाटकों, रंगकर्म में इस प्रकार से समाविष्ट मानते हैं—'यह बिल्कुल सीधी सीधी होती हैं। (धर्म, राजनीति और समाज)'महानिर्वाण' में भी सीधी होती हैं। सीधा मतलब घुमा कर बोलने की बात ही नहीं है। सीधा है 'महानिर्वाण' में तो कथा भी ब्लैक कॉमेडी। बेसिकली, वह सतीश आलेकर का प्ले है । उसके कैरेक्टर भी वैसे ही हैं सीधे और सीधे-सीधे समझ में आता है। कैसे बाप बेटे और मां का रिलेशनशिप है। मरने के बाद आदमी कैसा सोचता है? क्योंकी, कहानी यह है कि भाऊराव मर गया है। फिर वह सोसाइटी में आ जाता है । किस तरह से सोसाइटी जिंदेपन में रिएक्ट करती थी। उसके मरने के बाद रिएक्ट करती है। वह उस नाटक का पूरा थीम है। उसमें सीधे-सीधे चरित्र हैं। सीधे-सीधे समझ में आते हैं। ऐसे ही इसमें भी 'भए प्रगट कृपाला दीन दयाला' में सीधे चरित्र हैं। समाज पर भी कमेंट करते हैं। समाज की स्थिति बताते हैं। चरित्रों की स्थिति बताते हैं। वकील कैसा है? कविता कैसी है? फिल्म वाले कैसे हैं? अंधा कैसा है? क्योंकि, उस पूरे नाटक में अंधे को ही भगवान दिखता है। बाकी किसी को भगवान नहीं दिखता है। वह उनके सारे, यह दो नाटक तो मैं खासतौर से कह सकता हूं। समाज में जो विद्रूपताएं हैं या समाज में विसंगतियां हैं या समाज में जो प्रॉब्लम्स हैं, उसको सीधा-सीधा दोनों प्ले हमको बताते हैं । दिखा देते हैं । हमको आईना दिखा देता है कि यह है। बॉस यह सोसाइटी है। पर है तो यह। जैसे मंटू लिखता है न कि समाज ही ऐसा है तो मैं कैसे लिखूं कि सब कुछ अच्छा है? सामाजिक विद्रूप है। समाज ही ऐसा है, तो समाज जैसा है, मैं तो वैसा लिख रहा हूं। वैसा ही मुझे इन दोनों नाटकों में लगता है। सीधा-सीधा समाज दिखता है। कोई लाग लपेट वाला लफड़ा है नहीं कि कान थोड़ा दूसरी जगह से पकड़ने की जरूरत है। सीधा पकड़ लो तो यह दोनों नाटकों में मेरे को दिखा और उनकी विचारधारा भी थी।'[5]

धर्म, राजनीति और समाज की आधुनिक समय की समसामयिक समस्याएं हैं। मुद्दे हैं। वह अलख के रंगमंच के हिस्से हैं। बहुत सीधे सहज सरल अंदाज में जो कि आम जनता तक पहुंचाए गए हैं। ऐसा नहीं है कि उनको समझा नहीं जा सकता। वास्तव में उनका रंगमंच जनसाधारण की भाषा बोली में हुआ। उन्हीं के लिए हुआ। पारिवारिक संबंधों की जटिलता को बहुत ही आसानी से अलख अपने नाटकों के प्रदर्शन में बगैर किसी लाग लपेट के दिखाते थे । सामाजिक दोहरेपन की जो राजनीति है। विद्रूपता है। उसे अलख ने रंगमंच में खास तवज्जो दी है। उनके नाटकों के चरित्र सीधे-सीधे अपने लपेटे में धर्म,राजनीति और समाज को ले लेते हैं। उनमें कोई कूटनीतिक नियोजन नहीं

[5] जयंत देशमुख का 17 मार्च 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

है। होता ही नहीं है। जैसा धर्म, समाज और राजनीति का रवैया है, अलख ने हू-ब-हू उसको रंगमंच पर उतार दिया है। समाज की समस्याओं, विद्रूपताओं, विसंगतियां के निहितार्थों को खोलना अलख के रंगमंच का मुख्य सार है। अलखनन्दन का रंगमंच समाज, धर्म, राजनीति की नग्न सच्चाई का सीधा-सीधा प्रदर्शन है। जैसा पंथ था वैसा ही अलखनन्दन ने भजनों में सुना दिया। जिसकी थोड़ी भी बुद्धि जागृत है तर्कशीलता है। वह समझ जाएगा कि भैया! कुछ तो गड़बड़ है। इसके पीछे कुछ तो कारण है।

प्रेम प्रकाश अस्थाना अलखनन्दन के अभिनेताओं में से एक हैं। वह अलखनन्दन की सोच विचारधारा और रंग शैलियों से बखूबी परिचित हैं। वह अलख के रंगकर्म में उपस्थित समाज, धर्म, राजनीति को इस रूप में देखने की कोशिश करते हैं—'देखो वह अपने नाटकों में समाज को एक संदेश जरूर देते थे। समाज की भी यही रहती थी। समाज आज भी वर्तमान में चल रहा है। वह पहले भी चलता था। पहले भी समाज विभिन्न टुकड़ों में बटा हुआ था। आज भी बटा हुआ है। समाज को एकजुट करने का प्रयास तो उनके नाटकों में नहीं। उनके नाटकों में संदेश जरूर रहता था। वह राजनीति से कोई मतलब नहीं रखते थे। अलख जी हमेशा अपने गुरु के प्रति, अपनी कला के प्रति सम्मान करते थे। नाटक को ही जीना। नाटक के लिए ही मरना। नाटक को ही ओड़ना और नाटक को ही बिछाना। उनका ऐसा था। अलख जी के 'महानिर्वाण' नाटक में एक ऐसा है कि आदमी मर जाता है। मरने के बाद में उसकी आत्मा निकलती है। फिर वह देखती है कि उसी की लाश को ही लोग-बाग जलाने जा रहे हैं। मुर्दाघर में जा रहे हैं। मुर्दाघर बंद मिलता है। फिर वह मरने के बाद में अपने बड़े लड़के का इंतजार करते हैं। तभी उसकी आत्मा बोलती है। मेरा लड़का पता नहीं कब आएगा। फिर आखरी में वह उस मुर्दे को अग्नि देते हैं। नहीं! लड़की नहीं अग्नि देगी। लड़का ही अग्नि देगा तो यह है न? धर्म के अनुसार कि लड़का ही अग्नि देगा। हर कोई तो नहीं दे सकता लेकिन ऐसा संदेश है उसमें।'[6]

अलखनन्दन के नाटक सामाजिक सीख जरूर छोड़ जाते थे। सामाजिक एकजुटता का रंगमंच अलख का रंगमंच रहा है। सामाजिक बंटवारे से हमारी एकता को खतरा होता है। राजनीति में प्रत्यक्ष भागीदार अलखनन्दन नहीं थे। किंतु ,राजनीति की चालें ,दाव-पेंच खूब समझते थे। रंगमंच में उनका उपयोग भी करते थे। लेकिन, आम जनों को सचेत और जागरूक बनाने के निमित्त मात्र। धार्मिक, अनुष्ठानिक-पाखंड, अंधविश्वास की जितनी दीवारें ढहें उतना ही अच्छा होगा। ऐसा प्रयास अलखनन्दन अपने निर्देशकीय कौशल से प्रदर्शित करते थे।

[6] प्रेम प्रकाश अस्थाना का 4 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

3.2 अलखनन्दन और जाति के प्रश्न

प्रसिद्ध कवि, अलख के रंग शिष्य हेमंत देवलेकर इस विषय पर कहते हैं कि 'वह ,क्योंकि मैंने बताया कि वह मूल रूप से कवि हैं। कवि जो है हमेशा दो-तीन तो उसकी बातें रहती हैं। एक तो संवेदनशील बहुत है। प्रकृति के लिए बात करेगा। समाज के लिए बात करेगा। भले के लिए बात करेगा। अन्याय के विरोध में बात करेगा और जहां पर भी सत्ता की तरफ से तानाशाही आएगी। सत्ता की तरफ से गलत आदेश आएंगे। दमन होगा। उसके विरोध में बात करेगा और प्रेम पूर्वक बात करेगा। है न? तो यह, यही इंसान को कवि बनाते हैं। कोई भी विकृतियों का विरोध है। मतलब सर्वहारा के हर किसी के सम्मान और न्याय के लिए बात करेगा। यह कुछ जो मूल तत्व हैं। मूल्य हैं। क्या बोलते हैं? उनके सारे नाटकों में भी आते हैं। चाहे वह 'राजा का स्वांग' को आप देखोगे तो ,उसमें भी वह कहीं न कहीं दमनकारी नीति और इसके विरोध में हैं। मेरे को एकदम याद में नहीं आ रहा है लेकिन आपने जैसा पूछा उसमें सामाजिक प्रतिबद्धता क्या थी? मुझे लगता है कि उनके सारे लिखे नाटकों में एक कवि में जो मूल्य होते हैं। एक इंसान को कवि बनाते हैं। चाहे प्रेम की बात हो। संवेदनशीलता की बात हो। सत्ता की जो तानाशाही है। जो दमन है, उसके विरोध की बात हो। हर किसी के लिए एक न्याय और सम्मान की बात हो। यह जो कुछ मूल्य हैं। एक आदमी को जो कवि बनाते हैं। एक कलाकार बनाते हैं। दृष्टा बनाते हैं। यह सारे मूल उनके नाटकों में समाहित होते थे। उसके बगैर वह कोई नाटक नहीं लिखते थे। मतलब निश्चित रूप से वह नाटक समाज को संप्रेषित, समाज के लिए बनाए हैं। वह कुछ न कुछ बात कह रहा है।

देखिए! धार्मिक तो मुझे नहीं लगता है। राजनीतिक की तो बातें हैं। कई जगह हुई हैं। 'चंदा बेड़नी' में राजनीति वाली बात हुई है। 'राजा के स्वांग' में भी राजनीति वाली बात हुई है। एक धार्मिक वाली बात भी कर लेते हैं। एक धार्मिक पाखंड के ऊपर उनका बहुत अच्छा नाटक था। वह है -'स्वांग शकुंतला'। आपने पढ़ा होगा। उसमें एक बात है भले ही वह पूरी तरह तो उस पर आधारित नहीं है, लेकिन उसमें उन्होंने एक बाबा लिया है, जिसमें उन्होंने बातचीत में यह बताया है। मतलब वह आशाराम के रूप में उन्होंने लिया। जबकि, यह बात बहुत पुरानी थी। यह केस तो अभी-अभी खुले हैं। लेकिन, वह उन्होंने पहले ही देख लिया था। पाखंड किस तरह से है और यह धार्मिक-लोलुपता, धार्मिक-पाखंड हमारे समाज में किस ढंग से फैला हुआ है। धार्मिक पाखंड पर भी उनकी दृष्टि बहुत पैनी रही है। जैसे मैंने कहा कि वह व्यंग्यकार हैं। कवि हैं। अगर व्यंग्यकार कोई व्यक्ति है तो वह हर जगह चोट करेगा। जहां-जहां उसको लगता है कि यह धार्मिक यहां पर कुछ बात खराब हो रही है। वहां पाखंड पर चोट

करेगा। वह पाखंड के तो सख्त खिलाफ थे। उनकी बात-बात में निकलता था कि मुझे पाखंड से नफरत है। पाखंड के सख्त खिलाफ थे। सांप्रदायिक सौहार्द के वह इतने हिमायती थे। यह हिंदू-मुस्लिम वाला उनको शब्द ही पसंद नहीं था। जातीय और सांप्रदायिक सद्भावना के बहुत बड़े हितेषी और बहुत बड़े वह इतने बड़े हिमायती और उसको वह मानने वाले थे। आप देखेंगे कि मंजूर भाई और इरफान भाई के घर बाकायदा ईद में उनको पहुंचना है। है न? यह तो खैर एकदम अलग बात है। वह शायरी को बहुत ज्यादा पसंद करते थे। तमाम बड़े-बड़े शायरों को उनको मुंह जबानी याद थे। किसी भी तरह के जातीय और सांप्रदायिक जो विद्वेष हैं। वह तो उनकी संकीर्णता है। विद्वेष तो बड़ी बात हो गई। वह संकीर्णता से बहुत दूर थे। इसका मतलब यह है, उनमें जबरदस्त एक ऐसी राजनीतिक, एक ऐसी सामाजिक भावना है कि जो लोगों को उसका मेल-जोल बढ़ाए। प्रकृति के लिए अच्छा सोचें। यहां तक कि जो सत्ता है। वह भी प्रजा के लिए अच्छा सोचे। है न? यह हमारी एक मित्र ने एक जिक्र किया। चूंकी, इस बात से यह बात निकली। इसलिए बता रहा हूं कि कालिदास ने एक जगह लिखा है। रघुवंश में कहीं लिखा है कि राजा को सिर्फ प्रजा का ही ध्यान नहीं रखना है। राजा को पुष्पों का भी ध्यान रखना है। फूलों का भी ध्यान रखना है। अब देखो कितनी करोड़ वाली बात कवि ने लिख दी है। राजा को पुष्पों का भी ध्यान रखना है। पादप का ध्यान रखना है। वनस्पति का ध्यान रखना है। उसको सिर्फ लोक का ध्यान नहीं रखना है। कितनी बड़ी बात कह दी! अलख जी में यह भी बात है कि भाई हमें सब का ख्याल रखना है। वह जितनी भी सामाजिक प्रतिबद्धता है। मानवीय मूल्य है। वह उनके नाटकों में पूरी तरह से समाया हुआ है।'[7]

अलखनन्दन के रंगमंच में जो संवेदनशीलता है, वह उनके कवि व्यक्तित्व के कारण है। इसी से उनके नाटकों में सामाजिक सरोकार जुड़ते गए। अन्याय, अत्याचार, दमन का विरोध, सत्ता की मुखालफत उनके लेखन, रंग प्रदर्शन की आधार बनी। सर्व समाज के हित की बात उनके रंगमंच में बार-बार आई है। सामाजिक विसंगतियों के खिलाफ यह संवेदनशीलता खड़ी हो जाती थी। सभी को इज्जत और बराबरी का अधिकार है। सम्मान किसी के बाप की बपौती नहीं है। यही उनके नाटकों में भी बात प्रदर्शित हुई है। प्रेम, संवेदनशीलता का वर्णन उनके नाटकों में है। साथ ही सत्ता की तानाशाही के सतत विद्रोही स्वरों की अनुगूंज भी उनके रंगमंच-नाट्य की थाती रही है। यह सारी अनुगूंजे समाज को संबोधित ही थीं। कई नाटक उनके राजनीतिक परिपेक्ष को भी सामने रखते हैं, जिसके केंद्र में आम जन मानस, निम्नवर्ग,स्त्री,दलित,आदिवासी किसान की पीड़ा है। भारतीय ढोंगी बाबाओं के छल-प्रपंच में किस तरह से भारतीय जकड़े हुए हैं। यह उन्होंने अपने नाटकों के प्रदर्शनों में स्पष्ट की थी। अलखनन्दन के व्यंग

[7] हेमंत देवलेकर का 3 फरवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

संपन्न होने से उनके नाटकों और प्रदर्शनों, मंचनों में भी वह चुटीलापन नजर आता है। यह व्यंग्य समाज धर्म राजनीति के दोचित्तेपन पर है। जात-पांत पर है। भेदभाव, असमानता पर है। कई आधुनिक समस्याओं को अलख ने अपने नाटकों में मुख्य रूप से उठाया है। समसामयिक और सामाजिक जातीय विद्वेष के खिलाफ उनकी कलम लिखती रही है। वह मानव मात्र के कल्याण के सपनेअपने रंगमंच के माध्यम से दिखाते हैं। सामाजिक प्रतिबद्धता और मानवीय मूल्य ही उनके नाटकों में सर्वाधिक उकेरे गए हैं।

विशाल आचार्य अलखनन्दन के शिष्य हैं। वह अलखनन्दन के नाटकों , रंग कर्म में निहित समाज, धर्म ,राजनीति को इस तरह से वर्णन करते हैं—-'राजनीतिक मैंने बताया। भले लोग कहते थे कि लेफ़्टिस्ट हैं। सामाजिक सोच तो हमेशा एंटी कास्टीज्म, एंटी रिलीजियस और ऑर्थोडॉक्स के खिलाफ थे। बट, मैंने कहा न हमेशा उनके अंदर एक मानवता थी। लोग उनको चाहे जो कहें। मैं यह मानता था कि उनके अंदर सोशलिस्ट विचार ज्यादा थे। मतलब उनके नाटकों को अगर आप देखें। हर एक नाटक की बात करना, नाटक के हर एक पक्ष की बात करना, शायद इतने संक्षेप में अभी संभव नहीं है। पर, मैं आपसे ज्यादा बड़ी बात नहीं कहता। आज आप हिंदुस्तान में इतने विचार, विचारों की लड़ाई है। उसमें टकराव है। जगह-जगह चिंगारियां उठ रही हैं। हर कोई अपने थॉट को जस्टिफाई करना चाहता है। देशी। यह सही भारत है। कोई बोलता है। यह सही भारत है। कोई बोलता है। हमने ऐसा सोचा। ऐसा भारत देखना चाहिए। हम मोटे-मोटे चार-पांच लोगों की बात करते हैं। दीनदयाल उपाध्याय जी की जैसे बात करते हैं। अंत्योदय! आप महात्मा गांधी, उनके विचारों की बात करते हैं। एक पक्ष है जो भगत सिंह और सुभाष चंद्र बोस के भी विचारों की बात करते हैं। राम मनोहर लोहिया जी की बात करते हैं। मेरा ऐसा मानना है, उन सभी के जो अच्छे पक्ष थे। वह आपको अलख जी के नाटकों में दिखेंगे। उसमें आपको जो कहते हैं न पंक्ति में जो आखिरी व्यक्ति बैठा है ,जो अंत्योदय की बात करते हैं। उसमें उनके नाटकों में वह विचार भी आपको दिखेगा कि वह किस के भले की बात कर रहे हैं? उसमें आप अगर सोशल रिफॉर्म की बात करेंगे तो वह भी आपको दिखेगी। उसमें जो सत्ता की कुरीतियां ,भ्रष्टाचार इन सब चीजों को तो आप बिल्कुल देखेंगे। उनके नाटकों में न, सबके अच्छे पक्ष दिखेंगे। वही मैंने कहा और सब के अल्टीमेट अच्छे पक्ष क्या है? पोएटिक जस्टिस जिसे वह वर्ड्स वर्थ बोलते हैं। उस पर वह बहुत बिलीव करते थे कि अंत में दुनिया अच्छी होनी चाहिए। हर इंसान बराबर होना चाहिए। एक इंसानियत की बात करते थे। मानवतावाद की बात करते थे। मैंने कहा। मैं तो उनको हमेशा उस श्रेणी में ही रखूंगा।'[8]

[8] विशाल आचार्य का 2 जनवरी 2022 को रीवा में लिया गया साक्षात्कार का अंश

विशाल आचार्य की बातों से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि एक विपक्ष, वाम की भूमिका के बारे में लोग अलख के विषय में परिचर्चा करते हैं। वह आजीवन जाति विरोधी, धर्म विरोधी और रूढ़ियों के विरोधी रहे हैं। यही उनके रंगमंच में भी दिखाई देता है। मानवता की पक्षधर्ता का रंगमंच अलखनन्दन का रंगमंच कहा जा सकता है। अलखनन्दन के अंदर समाजवादी विचारधारा का आवेग मौजूद था। विचारों की लड़ाई हमेशा से रही है। विचार बलवान होते हैं। विचारों की सघनता और संघर्ष अलख के यहां दूसरी तरह से दिखता है। महापुरुषों के अच्छे विचारों की झलक आपको अलख के यहां मिल जाएगी। उनके रंगमंच में भी दिखती है। सामाजिक बदलाव और कुरीतियों, भ्रष्टाचार पर बड़ी बेवाकी से अलख रंगमंच कर रहे थे। अंततः अलख के रंगमंच का उद्देश्य दुनिया की बेहतरी के सपने में हैं। मानवता ही उनका ध्येय था।

खैरागढ़ विश्वविद्यालय के रंग निर्देशक योगेन्द्र चौबे, अलखनन्दन के नाटकों को दर्शक रुप में याद करते हुए कहते हैं कि 'देखिए नाटक मैंने बहुत पहले देखा था। यह मेरे शुरुआती समय का नाटक देखा था। लेकिन, जब मैं बेड़नी की बात कर रहा हूं। वह तो वही था न कि उसमें सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियां थीं, जो तत्कालीन हमारी जो सामाजिक और जो व्यवस्था थी। उस व्यवस्था को लेते हुए, वह जो है उन्होंने उस नाटक का ताना-बाना उन्होंने बुना था। ऐसे समय पर जब बेड़नियों को लोग स्वीकार नहीं करते थे। वह व्यथा तो बेड़नियों की ही थी लेकिन, स्वाभाविक है कि उसमें समाज का ताना-बाना, जो हमारा सामाजिक बेड़नी को हमको नजदीक नहीं लाना है। बेड़नी का काम नाचने गाने का ही है। उसको केंद्र में रखकर जो उन्होंने किया था। वह मेरे उसमें कहीं है।'[9]

बेड़नियों को हेय समझा जाता था। उन्हें सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। अलख बेड़नी स्त्री को अपने नाटक का मुख्य किरदार भी बनाते हैं और नाट्य शीर्षक देते हैं। यह उनकी सामाजिक सोच को रेखांकित करता है।

प्रसिद्ध लोक साहित्यकार बसंत निरगुणे अलखनन्दन के रंगकर्म में प्रदर्शित समाज, धर्म, राजनीति को इस रूप में देखते हैं–'असल में वह समाज की विद्रूपताओं से बहुत चिढ़ते थे। समाज में जिस तरह की विद्रूपता आ रही है। अलखनन्दन उसके सबसे बड़े आलोचक थे। उनका समाज में एक सामंजस्य स्थापित करने का सपना था । क्योंकि, समय के साथ जो बदलाव परिवर्तन या आंदोलन होते थे। उनमें से सत्य को ढूंढने का प्रयास वह करते थे। उसको स्थापित करते थे। उन्होंने नाटकों में अभिव्यक्त करने की कोशिश की है । इसलिए, अलखनन्दन अलग दिखाई देते हैं ।

[9] योगेंद्र चौबे का 4 फरवरी 2023 को खैरागढ़ (छत्तीसगढ़) में लिया गया साक्षात्कार का अंश

मैं सोचता हूं। अलखनन्दन ने राजनीतिक क्षेत्र में बहुत कम सीधे-सीधे व्यंग किए। उन्होंने नाटकों में सामाजिकता को ही प्रमुखता दी है। असल में, वह प्रगतिशील विचारधारा का व्यक्ति रहा है। इसलिए धर्म-कर्म में जो आडंबर है। वह उसके सदैव खिलाफ रहे हैं। है न? ईश्वर नाम की जो शक्ति है वह नहीं मानते थे। लेकिन, उसके जो आसपास जो कलाएं हैं। नाटकों में उसका भरपूर उपयोग करते थे।'[10]

समाज में जो दोहरापन है। बाहर जो चीज दिखाई देती हैं, दरअसल वह वैसी नहीं हैं। धर्म, राजनीति ,सामंती शक्तियों ने अपने फायदे के लिए उनको वैसा स्वरूप दिया है। सामाजिक बदलाव के आंदोलन का प्रभाव अलखनन्दन के रंगमंच और लेखन पर दिखाई देता है। इनकी तह तक अलखनन्दन जाते हैं। सत्य का अनुसंधान करते हैं। राजनीति पर सीधे-सीधे कटाक्ष हल्के-फुल्के ढंग से अलखनन्दन नहीं करते थे। बल्कि, बड़ी गंभीरता से सवाल अपने रंगमंच के माध्यम से उठाया करते थे। अलखनन्दन ने प्रगतिशील सोच को रंगमंच में, लेखन में, प्रदर्शन में जगह दी है। वह अपने नाटकों के माध्यम से धार्मिक ढकोसलों के खिलाफ आवाज उठाते थे। ईश्वर इत्यादि के अस्तित्व को उन्होंने नकारा है। लेकिन, ईश्वर के लिए जो पाखंड का साम्राज्य फैला है। उसको उद्घाटित करना अलखनन्दन के रंगमंच की एक अन्य विशेषता है।

पूषण भट्टाचार्य ने अलखनन्दन के साथ काम किया है। वह अलख के नाटकों में अभिव्यक्त, रंगमंच में प्रदर्शित समाज, धर्म, राजनीति पर निम्नवत टिप्पणी करते हैं–'मैंने आपको बताया शुरू में कि उन्होंने 'चंदा बेड़नी' में किस तरीके से जो देश की एक प्रमुख सामाजिक कुरीति। मैं कुरीति नहीं कहूंगा। यह विकृति है कि समाज में जो जाति के आधार पर जो भेदभाव है और जो भेदभाव के साथ-साथ ऊंची जाति के साथ जिस तरीके से अपने से नीची जातियों का दुरुपयोग और दोहन किया जाता है। उसको उन्होंने बड़ी स्पष्टता से उस नाटक में रखा है। इसके अलावा सामाजिक कुरीतियां उन कुरीतियों पर, वह अपने तमाम नाटकों में उनकी कोशिश रहती थी। उनके नाटकों का सिलेक्शन भी उसी तरीके का होता था, जिससे समाज में एक पॉजिटिव मैसेज जाने के साथ-साथ यह बात जाएगी गलत है कि आखिर उसको समझो और उसके लिए उनकी राजनैतिक सचेतनता बहुत साफ थी। वह अपने राजनीतिक स्वरूप में बहुत क्लियर थे। दबे छुपे मुंह बंद करके या चुप करके कोई काम नहीं किया जा सकता। जो करना है, वह खुलकर करना पड़ता है। पड़ेगा। यह काम उन्होंने कई नाटकों में किया। यहां मैं एक उदाहरण दूंगा। क्रिश्चियन एंडरसन की एक कहानी को उन्होंने 'उजबक राजा तीन डकैत' नाम से किया। वह उस फ्रेम में किया .जब इस देश में निजीकरण-निजीकरण की एक बयार चल रही थी। सब कुछ विदेशी ले आओ। इस तरह

[10] वसंत निरगुणे का 14 जनवरी 2022 को भोपाल में लिया गया साक्षात्कार का अंश

की बयार चल रही थी। उस नाटक को, उसका नाम भी उन्होंने 'स्वांग मल्टीनेशनल' रखा। मतलब मल्टीनेशनल किस तरीके से लूटते हैं। एक बच्चों का एक कॉमिक नाटक के बावजूद, उस नाटक में मतलब सीधे तरीके से इस बात को रेखांकित और व्यक्त किया। किस तरह से जो मल्टीनेशनल हैं, किस तरह से जो कॉर्पोरेट हैं, वह जनता को बेवकूफ बनाकर लूटते हैं। बेवकूफ बना कर ले जाते हैं। मैं जिक्र करना चाहूंगा। अलख जी से ही मेरी बात इस बारे में हो रही थी। यह जो नाटक बना, इस नाटक बनने के पीछे एक कविता थी। कहानी तो आपने भी पढ़ी है। हमने भी पढ़ी है। हेंस क्रिश्चियन एंडरसन की। उस एंडरसन की कहानी के आधार पर, एक बंगला कवि निरंजन नाथ चक्रवर्ती ने एक कविता लिखी थी। उस कविता का नाम 'उदंड राजा' था। उन्होंने लिखी इमरजेंसी के दौर में वह कविता थी। उनकी उस कविता में साहित्य अकादमी और ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था। उस नाटक में उस कविता की अंतिम लाइन जो है, उसने अलख जी को बहुत प्रभावित किया था। उस कविता की जो अंतिम लाइन जो थी, राजा ,मतलब मैं ट्रांसलेट करके तो नहीं बता सकता कि राजा नंगा सड़क पर चला जा रहा है। सब चुप हैं। एक बच्चा बाहर निकल कर कहता है कि राजा तेरे कपड़े कहां हैं? कवि लिखते हैं। आज मुझे तलाश है। उस बालक की जो बाहर निकले और राजाओं को कहे कि राजा तेरे कपड़े कहां हैं? मतलब इमरजेंसी के दौर में जिस तरीके से नंगा नाच किया जा रहा था। उसमें लोगों के मुंह बंद थे। एक बच्चा आकर खड़ा हो जाता है। वह बच्चा समाज का प्रतिनिधि था। इस कविता ने अलख जी को बहुत हिलाया था। इसी के आधार पर फिर उन्होंने नब्बे के दशक में, जब यह मल्टीनेशनल और उदारीकरण का दौर था। तब, उन्होंने इस नाटक को बनाया और तैयार किया और मंचन किया। है न? उसी तरीके से मैं बहुत लंबा न कहते हुए 'मगध' नाटक के जरिए, किस तरीके से 'मगध' में मतलब श्रीकांत वर्मा की लंबी कविता थी, पर उसमें से उन्होंने जो अंश निकाले, वह साफ-साफ तरीके से वह सत्ता पर हमला करते थे। उसको उन्होंने विजुलाइज किया। ताकि देखने वालों को समझ में आए कि सत्ता किस तरीके से गलत कारगुजारियां करती है। सत्ता किस तरीके से जनता के साथ अत्याचार करती है। उन्होंने 'अंधेरे में' नाटक किया। 'अंधेरे में' नाटक, 'अंधेरे में' कविता जो है, जो पूरे समाज के अंदर का घिनौना रूप है, जो सत्ता का घिनौना रूप है, उसको उजागर कर दिया। उन्होंने नाटक के माध्यम से सामने लाकर लोगों के सामने रखा। इसलिए, वह नाटक पॉपुलर हुआ । उनके अंदर यह साहस था कि वह 'किशनलाल' जैसा नाटक करें। नाटक जो धार्मिक रूढ़ियों पर एकदम सीधा हमला करता है। सुदीप बंधोपाध्याय उस नाटक के नाटककार थे। सुदीप ने कहा था। मुझे विश्वास नहीं था। मेरा लिखा हुआ नाटक भी यह मंचन करेगा। क्योंकि, मैंने जिस तरीके से धर्म पर हमला किया। वह मंचन करने का साहस ही न कोई करे। अलख में यह संस्था जिन्होंने इसका मंचन किया और अंत में जाकर रवींद्रनाथ टैगोर नाटकों को जब

मंचित कर रहे थे। रवींद्रनाथ के नाटकों पर उन्होंने अंतिम काम किया। उसमें भी उन्होंने रवींद्रनाथ द्वारा किस तरीके से महिलाओं का तत्कालीन जो जीवन था, उस पर किस तरीके की टिप्पणियां की हैं। महिलाओं को घर के अंदर बंद रखा जाता है। महिलाओं को बाहर नहीं निकलने दिया जाता। महिलाओं के साथ अत्याचार किया जाता है। उन कविताओं को उन्होंने ज्यादा सिलेक्ट किया। मतलब मेरे कहने का अर्थ यह है, चाहे वह सामाजिक हो, चाहे वह महिला का प्रश्न, चाहे वह दलितों का प्रश्न हो, चाहे वह राजनीतिक प्रश्न हो सारे विषयों पर, उन्होंने बराबर टिप्पणी की है। वह एक बात बार-बार कहा करते थे। हम लोगों को थिएटर सिखाते समय भी और काम करते समय भी कि, बगैर पढ़े थिएटर नहीं हो सकता। समाज से कटकर थिएटर नहीं हो सकता। अगर हम यह सोच ले कि हमको तो बगैर पढ़े और बगैर समाज को समझे थिएटर का ज्ञान हो गया है। समाज से कटकर थिएटर करते रहेंगे, तो हो सकता है कि बड़ा खूबसूरत सा दिखने में क्रिएशन हो जाए। दिखने में बहुत खूबसूरत हो परंतु, उसके अंदर सार्थक कुछ नहीं होगा।'[11]

पूषण भट्टाचार्य के अनुसार जाति के आधार पर भेदभाव का चित्रण अलख के नाटकों में हुआ है। इससे उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता की एक झलक मिलती है। तथाकथित ऊंची जातियों द्वारा निम्न वर्ग का दोहन और शोषण किया जाता है। इसका भी जायजा अलखनन्दन ने लिया है। हमेशा अपने नाटक और रंगमंच से एक सामाजिक सकारात्मक संदेश देने की कोशिश अलखनन्दन की रही है। उनकी राजनीतिक सचेतनता स्पष्ट थी। वह जो भी कहते थे। डंके की चोट पर प्रहार करते थे। उन्होंने धार्मिक पाखंड और सांप्रदायिकता की विषय वस्तु पर आधारित भी नाटक चुने। उन्होंने उच्च जाति और निम्न जाति के संघर्ष और द्वंद के नाटक भी किये। उन्होंने जो देश के लिए नीतियां बनती हैं। उन्होंने उसको भी आधार बनाकर निजीकरण के अथवा जो विदेशी कंपनियों का साम्राज्य का जाल हमारे देश में फैलता जा रहा है, उसको आधार बनाकर भी नाटक में दिखाने की कोशिश की। इसके साथ ही निम्न वर्ग से, किसी कमजोर, कम ताकत वाले को ज्यादा मजबूत ढंग से चित्रित करने की कोशिश अलखनन्दन ने अपने काम में की। एक तरह से आपातकाल में एक नंगा नाच किया गया। सबके मुंह बंद करने की कोशिश की गई। वह व्यवस्था से किसी ऐसे व्यक्ति, ऐसे समूह की आकांक्षा रखते थे कि वह ऐसी जकड़बंदी का विरोध कर सके। सामाजिक नायकों का उदय हो सके। वह ऐसा सपना देखा करते थे। पूषण भट्टाचार्य ने 'मगध' और 'किशन लाल' का जिक्र किया, जिसका कि सीधे-सीधे सत्ता पर हमला करना उद्देश्य रहा। सत्ता किस प्रकार से आम जनजीवन को प्रभावित करती है। सत्ता किस तरह से व्यवस्था का मखौल बना कर रखती है और अपने पक्ष में सारी गोटिया उड़ेल

[11] पूषण भट्टाचार्य का 3 फरवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

लेती है। उसको उजागर करने का काम अलखनन्दन ने किया। भारत में जो भी राजनीतिक घिनौनापन व्याप्त है, अलखनन्दन उसकी भी बखिया उधेड़ते चलते हैं। जैसे कि 'किशनलाल' नाटक धार्मिक रूढ़ियों पर सीधा वार था। उनका जो अंतिम काम था 'काव्य रंग', उसमें स्त्रियों के जीवन को दर्शाया गया था। चाहे महिला का प्रश्न हो, दलित का प्रश्न हो, ऊंच-नीच, छुआछूत, धार्मिक-पाखंड, रूढ़ियों का प्रश्न हो, इन सभी को अलख अपने नाटकों में संबोधित करते थे और अपने ढंग से करते थे। उनका यह भी मानना था की बगैर विस्तृत अध्ययन के रंगमंच करना लगभग मूर्खता है। समाज से हटकर अन्य विषयों पर नाटक करना. अलख दादा को स्वीकार नहीं था।

प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी अलखनन्दन के रंग नाट्य में धर्म, राजनीति और सामाजिक, वैचारिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ' जैसा कि मैंने कहा कि हबीब तनवीर की ही तरह अलखनन्दन बहुत ही गहरे सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक प्रतिबद्धता के व्यक्ति थे। रंगकर्म सिर्फ रंगकर्म करने के लिए नहीं करते थे। आत्म तुष्टि और आत्म संतोष के लिए रंगकर्म नहीं था। समाज में परिवर्तन के लिए था। समाज में कुछ ऐसी चीज जो समाज में मिसिंग है। जैसे हमारे जमाने में अब देखेंगे कि स्वातंत्रोत्तर भारतीय साहित्य में सबसे बड़ी विशेषता है कि लोकतंत्र की आलोचना उसके अंदर होती है। लोकतंत्र एक बहुत अच्छी राजनीतिक व्यवस्था है। पर ,लोकतंत्र जहां रुका हुआ है। बड़े लोगों की हवेलियों में लोकतंत्र ठहरा हुआ है। वह नीचे गरीब आदमी तक औरत तक, दलितों तक वह नहीं जा रहा है। इसलिए लोकतंत्र में जो दबंगों का बोलबाला है। मने, आप एक तरफ 'भूल गलती बैठी है जिरहबख्तर पहनकर तख्त पर दिल के' आप, मुक्तिबोध के यहां देखते हैं। दूसरी तरफ आप सर्वेश्वर की कविताओं में देखते हैं 'कुआनो नदी' या रघुवीर सहाय के यहां आप देखते हैं। 'रामदास उस दिन उदास था। अंत समय आ गया पास था। उसे यह बतला दिया था उसकी हत्या होगी।' यह जो लोकतंत्र का चेहरा है। लोकतंत्र में और लोकतंत्र में संकट है, कहकर हंसने वाले जो मिडिल क्लास का चेहरा है। 'लोकतंत्र का अंतिम क्षण है कहकर आप हंसे। सहसा मुझे अकेला पाकर फिर से आप हँसे ।', यह पोस्टमार्टम की रिपोर्ट है या सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की हमारे बगल के कमरे में लाश पड़ी हो तो, क्या तुम गाना गा सकते हो? यदि तुम्हारे देश का कोई एक हिस्सा जल रहा है। कुछ लोग मारे जा रहे है। कुछ लोगों की बस्तियों में, मोहल्लों में घुसकर, लोग दूसरों को मार रहे हैं। तुम यहां क्लासिकल संगीत कैसे सुन सकते हो? जो लोकतंत्र की आलोचना है। यानी लोकतंत्र की आलोचना एक व्यवस्था के तौर पर लोकतंत्र ठीक है। पर लोकतंत्र जिन लोगों के हाथों में चला गया है। इसमें सिर्फ पॉलीटिकल पार्टी का सवाल नहीं है। सामाजिक वर्गों का सवाल है। वह जो एक मूल चेतना है, स्वातंत्र्योत्तर साहित्यकारों की जिसमें मुक्तिबोध भी हैं, हरिशंकर परसाई भी हैं, रघुवीर सहाय भी हैं, नागार्जुन भी हैं, केदारनाथ अग्रवाल भी हैं और ढेर

सारे लेखक हैं। दुष्यंत भी हैं। वह सारी की सारी चेतना अलखनन्दन के यहां भी है। यानी ऐसे रंगकर्मी हैं, अपने समय के साहित्य से, यानी कविता से, कहानी से, उपन्यास से, बहुत गहरे तक नाभिनालबद्ध हैं । यानी अपनी वैचारिक खुराक कहां से लाते हैं। अपने समय के साहित्य से लेते हैं। मुक्तिबोध से लेते हैं। परसाई से लेते हैं। रघुवीर सहाय से लेते हैं। नागार्जुन से लेते हैं। राहुल सांकृत्यायन से लेते हैं। इसलिए उनकी कविता में सिर्फ इतना नहीं है कि रूढ़ियों पर टिप्पणी है। एक मूल परिवर्तन की बात है । जैसे 'चंदा बेड़नी' के सिलसिले में मैंने कहा। जब तक धर्म सत्ता रहेगी। जब तक राजसत्ता रहेगी। जब तक समाज में लोग ताकतवर होंगे। तब तक स्त्री मुक्त नहीं हो सकती। इसलिए स्त्री को और श्रमिकों के साथ एक गठबंधन बनाना होगा। श्रमिक शब्द कम चलता है आजकल। आप कह लीजिए, शूद्रों के साथ ,दलितों के साथ। यदि शूद्र मुक्त होंगे। दलित मुक्त होंगे। तभी स्त्री मुक्त होगी। स्त्री मुक्ति के लिए अनिवार्य है दलितों की मुक्ति, श्रमिकों की मुक्ति। क्योंकि, अंततः स्त्री भी एक श्रमिक है। यह बात तो 1983-84 की। यह कोई रूढ़ियों पर टिप्पणी नहीं कर रहे हैं। वह एक आमूलचूल व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की बात कर रहे। अलखनन्दन की जो चेतना है, जैसे 'स्वांग मल्टीनेशनल' है या 'भेड़िया तंत्र' है या 'राजा का स्वांग' है या 'अखाड़े से बाहर' जो फजल ताबिश का नाटक है। यह सारे के सारे यह क्यों कर रहे हैं? 'चारपाई' क्यों कर रहे वह रामेश्वर प्रेम का? 'महानिर्वाण' क्यों कर रहे हैं? वह सारे को आप जब समझेंगे। लगेगा कि हां! धर्म सत्ता, सामंत सत्ता, राजसत्ता, पितृसत्ता, यह जो सत्ता की एक साथ दो अवधारणाएं हैं। उससे वह चलते हैं। वह अंततः उस को चुनौती देते हैं। उसके चरित्र का उद्घाटन अपने नाटकों के अंदर करते हैं।'[12]

प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी अलखनन्दन को सामाजिक, राजनीतिक और वैचारिक प्रतिबद्धता से संलग्न नाटककार और रंगकर्मी मानते हैं। वह समाज में आमूल परिवर्तन के लिए रंगमंच करते हैं। वह कोई स्वांत: सुखाय या आत्मतुष्टि के लिए रंगमंच को आवश्यक नहीं मानते हैं। हमें जो राजनीतिक लोकतंत्र प्राप्त हुआ। वह अंग्रेजों से होकर भारत में जो ताकतवर शक्तिशाली वर्ग था, यानी सामंत थे, पुरोहित थे, तो उनके यहां जाकर के लोकतंत्र अटक गया। जबकि, लोकतंत्र व्यापक तौर पर सभी वर्गों तक पहुंचना था, जो कि नहीं पहुंचा। इसी बात को लेकर अलखनन्दन के मन में चिंड़ है। जब लोकतंत्र तथाकथित उच्च वर्गों तक सीमित रह गया, हालांकि वहां भी लोकतंत्र नहीं है। आपसी खींचतान, उठापटक चल रही है। लेकिन, यह जो सुविधाभोगी वर्ग है। देश में भुखमरी है। कुपोषण है। गरीबी है। बेरोजगारी है। लेकिन, उन दिनों में भी वह उत्सव जैसा माहौल रखते हैं। क्योंकि, उनके पास समृद्धि के सभी साधन मौजूद हैं। यानी, सब कुछ ठीक नहीं है। देश में हालात अच्छे नहीं है। फिर भी, जो सुविधाभोगी वर्ग है।

[12] प्रो. आशीष त्रिपाठी का 13 अप्रैल 2022 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में लिए गए साक्षात्कार का अंश

उच्च वर्ग है। वह मौज से रहता है। उत्सव लगातार मनाए चला जाता है। छोटी-छोटी उपलब्धियां पर ढिंढोरा पीटता है। इस चीज को अलखनन्दन गहराई तक समझते थे। अपने रंगमंच में इसको प्रदर्शित करते थे। लोकतंत्र की बागडोर जो है सामंतो, पुरोहितों, समाज के ऊंचे पायदानों पर बैठे शक्तिशाली लोगों के हाथ में चली गयी है, जिससे समस्याएं हल होने की बजाय उलझतीं जा रहे हैं और बढ़ती ही जा रहीं हैं। लोकतंत्र की मलाई कोई और खा रहा है और कहने के लिए है, यह आम लोगों का तंत्र है। अलखनन्दन की वैचारिक खुराक जो है,जो मानसिक-वैचारिक मजबूती प्रदान करती थी; वह मिलती थी उन्हें अपने समय के पहले और उनके समकालीन जो प्रगतिशील, समाजवादी लेखक ,साहित्यकार, कवि और उनकी कविताएं, कहानियां और उपन्यासों से वह अपने को मजबूत करते हैं। वह इन विचारों के अनुकूल अपने को गढ़ते भी हैं। अलखनन्दन मानते हैं कि स्त्री, दलित ,श्रमिक अथवा शूद्र संगठित होकर ही मुक्त हो सकते हैं। यही मुक्ति वास्तविक मुक्ति कहलाएगी। अलखनन्दन मूलतः आमूलचूल परिवर्तन के हिमायती नाटककार हैं। राजसत्ता, धर्मसत्ता, सामंतसत्ता को अलखनन्दनअपने नाटकों में, लेखन में और अपने रंगकर्म में लताड़ते हैं। इन तीनों अवधारणाओं का भंडाफोड़ अलखनन्दन करते हैं। उनकी हकीकत को श्रोताओं,दर्शकों तथा पाठकों और आम नागरिकों तक पहुंचाना चाहते हैं। अलखनन्दन इसकी तह तक जाकर इनके ऊपर से पर्दा गिरा देते हैं।

सुप्रसिद्ध कहानीकार शशांक हमें अलख के रंगमंच से अवगत कराते हुई बताते हैं कि'निश्चित रूप से उनके नाटकों में यह बात आती है। जैसे उन्होंने मेरे ही 'जैसे हम लोग' को किया। 1975 में उस पर उनका एक वाम विचारधारा को लेकर एकदम स्पष्ट रूप दिखाई पड़ता है। बातचीत में भी वह काफी स्पष्ट वामपंथी थे। मगर धीरे-धीरे उनके नाटकों में यह चीज जो है थोड़ी कम हुई। समाजवादी विचारधारा भी उनकी थोड़ी कम हुई। नाटक जो हुए उनमें प्रयोगशीलता और मंच सज्जा यह दो चीजें उनकी मुझे हावी दिखाई पड़ती हैं। एक खास किस्म का खुलापन, निश्चिंतता और अपने ही लोगों के बीच में उन चीजों को अलग ढंग से देखना सोचना जिसमें यह चीजें दिखाई पड़ती हैं।'[13]

विचारधाराओं का असर अलखनन्दन के शुरुआती रंगकर्म का एक प्रमुख हिस्सा रहा है। इससे इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन, जैसे-जैसे समझ बढ़ती गई तो उन्होंने वाम और समाजवादी विचारधारा को भी अपने रंगकर्म में कम कर दिया। बाद के दिनों में अलखनन्दन ज्यादा प्रयोगधर्मी होते चले गए। आधुनिक जो मंच विधान तथा समकालीन रंगमंच चल रहा था,उसके साथ आगे बढ़े और विचारों के बहुत ज्यादा आग्रही नहीं रहे। भले ही

[13] शशांक का 19 मई 2023 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

अप्रत्यक्ष तौर पर आ गए हों। उनमें एक समावेशन स्वीकारता, वैचारिक खुलापन, निश्चिंतता दूसरों के प्रति सहिष्णुता का स्तर भी बढ़ता चला गया जो कि उनके रंगकर्म में भी आगे दिखाई दिया।

सीताराम सोनी अलखनन्दन के नाटकों के अभिनेता रहे हैं। वह अलख के रंग मंच में धर्म, राजनीति और सामाजिकता के संबंध में निम्न विचार रखते हैं– 'सबसे पहली चीज तो यह है कि उनकी एक सोच थी। मनुष्य कभी पूर्ण नहीं होता। मनुष्य की यही सबसे बड़ी विशेषता है कि वह कभी पूर्ण नहीं होता। चाहे वह राम हो। कृष्ण हो। मनुष्य के जितने भी अवतार हैं, वह कभी पूर्ण नहीं हुए। लेकिन, मनुष्य ही सबसे महान होता है, जिस भगवान की हम कल्पना करते हैं। उन्होंने उन्हें कभी देखा नहीं। उसको पाषाण रूप में हमने देखा। लेकिन, मनुष्य कितना बेहतर हो सकता है। इसकी परिकल्पना वह करते थे। उसको बेहतर बनाने के लिए, प्रदर्शनकारी कला मतलब नाटक जो है दृश्य काव्य जो है, उस के माध्यम से पात्र, तो नाटक करवाया ही जाए लेकिन, उसके अंदर व्यक्तिगत जीवन में वह आदमी कितना परिवर्तित हो सकता है? यह भी काम अलखनन्दन करते थे। वह बहुत वैज्ञानिक थे। '[14]

मानव की अपूर्णता का गहरा एहसास अलखनन्दन के रंग कर्म की एक अन्य विशेषता है। मनुष्य का जीवन कैसे बेहतर बने इसकी ओर उनका ध्यान बराबर जाता था। यानी सामाजिक सरोकारों से बद्ध नाट्य शैली उनकी कही जा सकती है। इंसान की फितरत में बदलाव हो सिर्फ मनोरंजन के लिए नाटक न हो।

गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा, अलखनन्दन के साथ शुरू से ही रंगकर्म में जुड़े थे और नाटकों ,रंगमंच ,फिल्मों से गहरे रूप से जुड़े हैं। वह अलखनन्दन के रंग कर्म में समाज, धर्म, राजनीति की जो भूमिका है, इसकी पड़ताल कुछ इस प्रकार करते हैं–'अलख जी जो हमारे समाज का शोषित,कुंठित, सत्ता से प्रताड़ित समाज है। जो कह सकते हैं, जो मध्यमवर्ग है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से, अपने किरदारों के माध्यम से, उच्च मध्यम वर्ग के संघर्ष को बहुत उभारा है। उन्होंने मतलब जो वह एक मध्यम वर्ग की जो पीड़ा है। हमारा जो सरकारी तंत्र है। राजतंत्र है। हमारी व्यवस्था है। कहीं न कहीं मैंने पाया है कि अलख जी क्योंकि स्वयं एक, जबलपुर की हमारे यहां ऑर्डिनेंस फैक्ट्री है, उसमें वह काम किया करते थे, तो कहीं न कहीं एक मजदूर तपके से वह आते थे। उनका जीवन, उनके संघर्ष जो हैं तो उसके खिलाफ कहीं न कहीं उनके भीतर एक आग थी। जो उनकी कविताओं में, उनकी रचनाओं में, उनके व्यवहार में, उनके नाटकों में, उनके नाटकों के चयन में ,उनके प्रदर्शनों में हमेशा निकल के आती थी और वह दिखाई देती थी। क्योंकि, कहते हैं न कि कहीं न कहीं जब एक मध्यमवर्गीय आदमी क्योंकि पहले भी मैं कई बार कह चुका हूं। यह बात कि मैंने नहीं देखी है। कोई अरबपति-खरबपति परिवार का कोई लड़का नाटकों

[14] सीताराम सोनी का 3 मार्च 2022 को जबलपुर में लिए गए साक्षात्कार का अंश

में आता है। हमेशा मध्यमवर्गीय लोग ही नाटकों में आते हैं। आगे तक नाटकों में वही लोग सरवाइव कर पाते हैं, जो लोग किसी बैंक में या किसी इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड में या कहीं सरकारी नौकरी में लग जाते हैं। फिर वह अपनी इनकम भी चलाते हैं। नाटक भी करते रहते हैं या बांकी लोग जो हैं। वह सरकारी ग्रांट पर ले लेते हैं। एक संस्था बना लेते हैं और उससे नाटक कर लेते हैं। लेकिन, मैंने नहीं देखा कि कोई आदमी, कोई अमीर घराने का कोई लड़का आए। हां! वह व्यवस्थापक बन जाता है। हां! वह कुछ ऐड कुछ नाटक करने के लिए, वैसे वह करता है। लेकिन, मैंने नहीं देखा कि लंबे समय तक कोई रह पाता है। अलख जी ने अपने जीवन को पूरा का पूरा ,जब से वह जुड़े जबलपुर से भोपाल तक, नाटक को दिया। नाटकों में यह तो निसंदेह में बात कह सकता हूं कि कहीं न कहीं वह हमारे मध्यम वर्ग की यातना को, किसी न किसी तरह से अपने नाटकों में हमेशा उभारते रहे। दिखाते रहे। जताते रहे। कहते हैं न कि नाटक असल में एक समाज का आईना है। हमेशा बड़े से बड़े, भारतेंदु ने भी कहा है, नाटक जो है समाज का आईना है। अब कितने लोग हैं? वह सचमुच आइना दर्शक को दिखाते हैं? अब जैसे मैं मुंबई में हूं। जब नया नया आया था। मैंने भी देखा। बहुत कोशिश की। बट, यहां वह नाटक नहीं चलते जिन्हें की नाटक कहा जा सकता, जो वाकई समाज का दर्पण हो। नाटक यहां वह हास्य, मनोरंजन, मजाक, फूहड़ कॉमेडी करते हैं। लोग जो कहते हैं। अलख जी ने जो नाटक किया, उसमें एक समाज जिसके भीतर एक व्यथा है। वह विद्रोह करना चाहता है। लेकिन, नहीं कर पाता है। वह सारी भावनाएं नाटकों के भीतर की कहीं न कहीं दर्शक तक पहुंचाते थे, कि यह तुम हो। तुम्हें यह बनना है। तुम विद्रोह करना चाहते हो, लेकिन तुम खामोश हो, करते क्यों नहीं? विद्रोह करो तो। यह सब चीजें निकल कर आती थीं।

नहीं! धार्मिक तो अलख जी हैं ही नहीं। हां! कोई चीज कैसे होती है? हम ब्राह्मण हैं। अब ब्राह्मण होने के नाते हम जब किसी तीर्थ स्थान में जाते हैं। हमसे कोई पंडित कहता है कि भैया एक बछिया खरीद लो। उसकी पूंछ पकड़कर हम तर्पण कर देते हैं। जब मरोगे तो यह बैतरणी पार कराएगी। यह जो कुरीतियां हैं। इन कुरीतियों पर तो अलख जी चिढ़ते थे। खेलते थे तो इस पर वह व्यंग करते थे। समाज का यह हिस्सा है। देख लो! है न? वह चीजें थीं और जहां तक बात आई विचारधारा की तो चूंकी मुझे यह कहने में कोई संदेह नहीं है कि हमारा जो 'विवेचना' ग्रुप था। वह कहीं न कहीं विचारधारा से जुड़ा हुआ ग्रुप था, जिसमें हरिशंकर परसाई जी, ज्ञानरंजन जी, मदनमोहन पटेल साहब, पटेरिया साहब, प्रभात मिश्रा जी यह सब लोग थे। कहीं न कहीं एक विचारधारा से जुड़े हुए लोग थे और जो नाटक होते थे और नाटकों में उस विचारधारा की मात्रा का महत्व रहता था। जैसे हमने भी वहां जब मुझे 'विवेचना' में मुझे पहली बार डायरेक्ट करने का मौका दिया गया। 25वें अंतर्राष्ट्रीय लेखक संघ का था। मैंने उसमें

मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'पूस की रात' को जबलपुर में डायरेक्ट किया था। उसके बहुत शोज हुए और उसमें अरुण पांडे था। अजय घोष था। सब लोग थे। यह तो हमें था कि समाज के उस हिस्से को अलख जी रखते थे कि भाई यहां इसमें विचारधारा जो है, वही विचारधारा है। देखिए! क्या होता है कि एक्चुअली, एक डिवीजन बना दिया गया है कि भाई यह सोशलिस्ट हैं। यह कम्युनिस्ट हैं। यह अपना कांग्रेसी है। यह ,यह है लेकिन सच्चाई यह है, जो एक गरीब आदमी होता है। जो सुबह से शाम तक मजदूरी करता है और जो चार पैसे कमाता है। किस तरह से अपना जीवन यापन करता है? अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा को कैसे पाई-पाई को लेकर तरसता है? वह कहीं न कहीं उसके भीतर एक विद्रोह जन्म लेने लगता है। जब वह दिन भर काम करने के बाद उसको बुखार आ जाता है। दवाई के लिए उसके पास पैसे नहीं, यह तकलीफ, यह सारी चीजें। अब हम यह कहें कि यह तो यार नाराज हो रहा है। अपने मालिक को गालियां दे रहा है। लेकिन, दरअसल वह उसके भीतर का क्रोध है। वही क्रोध कहीं न कहीं एक दिन एक विचारधारा में बदल जाता है। इसमें कोई वह नहीं है। अलख जी मान लीजिए कि अगर एक मध्यमवर्गीय परिवार से निकलकर एक फैक्ट्री में काम करते। वहां से परसाई जी, ज्ञान जी की संगत में आकर और इस तरह से 'विवेचना' के साथ काम करते रहे। एक विचारधारा तो आहिस्ता-आहिस्ता बन ही गई थी। वह विचारधारा उनकी रचनाओं में भी दिखती है। उनके नाटकों में भी दिखती है और दिखनी भी चाहिए। अगर आप नाटक करते हैं और मान लीजिए आप तुलसीदास कर रहे हैं। कबीरदास कर रहे हैं या पृथ्वीराज कर रहे हैं या आप शेक्सपियर कर रहे हैं, तो यह तो आपका दिमाग उस चीज को एक्सेप्ट करता है न? आप क्या कर रहे हैं? आप जो चीज कर रहे हैं। उस के माध्यम से क्या जताना चाहते हैं? मान लीजिए अगर कोई एक ऐसा नाटक करते हैं, जिसमें की साधुओं की क्रांति हो और उस नाटक का मंचन हो और उसमें कोई प्रेम कथा निकल कर आ जाए। इसका मतलब है कि कहीं न कहीं आप बिगड़े हुए हैं। आपने उस कहानी को सही पढ़ा नहीं या कहानी को सही समझा नहीं या फिर या आपका दृष्टिकोण था कि उस क्रांति को न दिखा कर, हम इसमें एक नई कहानी दिखाएं। यह तो है अलख जी का। उनकी थी तो विचारधारा, क्योंकि फजल साहब(फजल ताबिश) के जो नाटक हैं 'अखाड़े से बाहर' और 'डरा हुआ आदमी' तो यह क्या है? अब जैसे फिल्म बनी थी 'सतह से उठता हुआ आदमी' या निर्मल वर्मा की कहानी 'डेढ़ इंच ऊपर'। अब अगर कोई आदमी सोचता है। शराब पीकर आदमी डेढ़ इंच ऊपर हो जाता है। ऐसा नहीं है। बहुत से लोग अपनी सफलता से डेढ़ इंच ऊपर हो जाते हैं। यह तो अलख जी का था। उनके सब नाटकों में एक विचार दिखता था। और

जो बिल्कुल सशक्त दिखता था और दिखना भी चाहिए। जिस तरह की उनकी छवि थी और छवि के हिसाब से उस विचार को दिखाना बहुत आवश्यक है।'[15]

शोषित ,कुंठित और सत्ता से सताए हुए समाज का असली और वास्तविक रेखांकन अलख के नाटकों की बहुत बड़ी ताकत है। उनके रंगमंच में निम्न मध्यम वर्ग तथा उच्च मध्य वर्ग को खासी जगह मिली है। अलख के रंगमंच में व्यवस्था, राजशाही, मध्यम वर्ग का दर्द एकाकार हो गया है। उन्होंने मजदूर की पीड़ा का भी वर्णन अपने रंगमंच में किया था(सुपनवा का सपना)। अलखनन्दन के यहां मजदूरों का संघर्ष, मजदूरों का बिचौलियों-मालिकों द्वारा शोषण की कथा-व्यथा भी आपको मिलेगी। उनके अंदर क्रोध का संचार भी होता था। वह भी मंच पर स्पष्ट दिखाया गया है। अलख की कविता, नाटक व्यक्तिगत व्यवहार में यह दिखाई देता था। नाटक का चुनाव और मंचन ही यह बता देंगे कि किस प्रकार उन्होंने आम आदमी को मंच पर दिखाया है। नाटक में मध्यमवर्गीय लोग ही ज्यादा टिकाऊ होते हैं। यह अलखनन्दन के जीवन से भी सीखा और देखा जा सकता है। उन्होंने छोटे-छोटे काम करके रंगमंच की आग को ठंडा नहीं होने दिया। बड़े लोग हुकुम चलाने का रंगमंच करते हैं। अलख का रंगमंच हुकुम देने में विश्वास नहीं करता है। अलख जमीनी कलाकार लाते थे तथा जमीन से जुड़ा रंग नाट्य करते थे। उनका सामूहिकता में विश्वास था। अलखनन्दन पूरा जीवन ही नाटक को समर्पित करने वाले नाटककार थे। अलखनन्दन मध्यवर्ग के यातनापूर्ण जीवन की आवाज वाला रंगकर्म करते थे। बहुत कम लोग हैं, जो नाटक को समाज का आईना बना पाते हैं। अलखनन्दन ने इस आईने में अनेकों रंग चेहरे दर्शाए हैं। अलख का नाटक व्यवस्था, दुःख, पीड़ा को उभारने वाला नाटक है। उसमें हसोड़पन नहीं। हल्कापन नहीं है। अलख गंभीर नाट्य चिंतक थे। विद्रोह का समर्थन, प्रतिकार का समर्थन उनके रंगकर्म की पहचान है। बिना प्रतिकार के, प्रतिशोध से यह व्यवस्था हिलने वाली नहीं है। मौन का रंगमंच अलख का रंगमंच नहीं है। कुरीतियों पाखंड से अलख को बौखलाहट होती थी। वह उनके पक्ष में नहीं थे। अलख का रंगचिंतन, विचारधारापरक नाटक का आधिक्य ही निशानी है। अलख की विचारधारा आम मजदूरवर्ग, किसान, दलित, आदिवासी, पिछड़ों ,अल्पसंख्यकों की सुरक्षा की है। क्रोध की आग की तीव्रता का आकलन अलख कर सकते थे। क्योंकि, यही विचार के रूप में फूट पड़ता है।

मुकेश शर्मा अलखनन्दन के रंगकर्म को आलोचकीय दृष्टि से देखते हैं। वह उनके रंग कर्म में उपस्थित समाज, धर्म, राजनीति को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–'उनका सामाजिक पक्ष जनता से जुड़ाव। वह आम आदमी के लिए नाटक कर रहे थे। लिख रहे थे। आम आदमी से जुड़ा था। उनका कोई विशिष्ट उसमें नहीं, लेकिन उनकी अपनी

[15] गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा का 16 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

राजनीतिक दृष्टि बड़ी साफ थी। , इसलिए वह भी उनके नाटकों में दिखाई देती थी। जैसा कि मैंने कहा कि अपनी यंग एज में मूलतः वह समाजवादी पार्टी से जुड़े थे। समाजवादी, यूं जनसभा में भी थे। एक बार जब आप की विचारधारा जो बन जाती है। वह बहुत जल्दी बदलती नहीं है। वह लोकपरक रहती है। फॉर द पीपल होती है। आप उसको इतनी जल्दी बदल नहीं पाते । यानी, आज वर्तमान संदर्भ में देखें तो आज के संदर्भ में हम सब बेमानी लोग हैं। क्योंकि, उनका लोक से कोई लेना देना नहीं है। जनता से कोई लेना देना नहीं है। तमाम तरीके के जो फॉर्म हैं। फार्मूले इनके चलते हैं। उससे हम सब लोग भी और वह भी सब दूर रहते थे। राष्ट्रवादी हुए, सब बात से दूर रहते। यह कोई मानता ही नहीं है तो फिर क्या है? हम तो लोक के पक्षधर हैं। जनता के पक्षधर हैं। उनको और हर रंगकर्मी को होना चाहिए। अगर वह यह नहीं कर रहा है तो वह कहीं न कहीं रंगकर्म से गद्दारी कर रहा है। लेकिन, आज एक कौन रहा है? आज सब कुछ जो वह चाह रहे हैं, इस पूरे, एक पूरे बड़े इतिहास को गायब कर दो। जिसमें किसी का कोई योगदान ही नहीं है। योगदान तो सिर्फ वही है जो पहले होता था। भगवान जाने उसमें कितने मिथ थे। कितनी सच्चाई थी? कई कहानियों को गढ़ कर सच्चा बताने की कोशिश, इतिहास को नकारने की कोशिश। यह सब जो हो रही हैं । यह तो नहीं होती थी। कभी भी किसी भी ने नहीं की थी। चाहे वैचारिक मतभेद रहे हों, कांग्रेसी, सीपीआई ,सीपीएम जो भी हों। किसी में भी वैचारिक मतभेद समय रहे थे, लेकिन इस तरह के इतिहास को और कर्मों को, उनकी लोक पक्षधरता, उनकी पहले से थी। जैसा मैंने कहा हर रंगकर्मी, अच्छे रंगकर्मी को यह होना भी चाहिए। वह लोक से, जनता से अलग होकर के, कोई रचना नहीं हो सकती। कोई कलाकारी नहीं हो सकती। कोई कर्म, रंगकर्म नहीं हो सकता। इस लोक के पक्षधर थे। लाते थे। यही तो इंपॉर्टेंट है। किस तरह क्या? जैसी सिचुएशन बनती थी नाटकों में, नाटक की जरूरत के अनुसार वह लाते थे। इसी पाखंड को उजागर करना यही तो एक नाटककार का काम होता है। वह तो करते थे। जैसे 'भगवदज्जुकम' में भी उन्होंने किया। पाखंड को दूर करते हैं न? जैसे कि 'महानिर्वाण' में वह तो व्यंग इसी पर था न? जब आप नाटक का चुनाव करते हैं। उसी से समझ में आ जाता है कि आप में कितनी लोक पक्षधरता है? उसके हिसाब से कभी आपस में व्यंग करते हैं। कभी गंभीरता से उसमें बात कहते हैं। किसी नाटक में गंभीरता से कहते हैं। किसी में व्यंग से कह देते हैं। उसमें हास्य भी आ जाता है।'[16]

अलख का सामाजिक पक्ष, उनका आम जनता से गहरा वास्ता, आम आदमी की टीस, वेदना का सघन इस्तेमाल रंग शैली, रंगप्रतिबद्धता में दिखाई देता है। राजनीतिक रूप से स्वतंत्र थे। खुली राजनीतिक विचारधारा उनके नाटकों में प्रमुखता से मुखरित हुई है। समाजवादी विचारों के धनी अलखनन्दन शुरुआती दौर में समाजवाद

[16] मुकेश शर्मा का 15 जनवरी 2022 को भारत भवन भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

से प्रेरित नाटकों का मंचन-निर्देशन कर रहे थे। समाजवाद से उनका गहरा संबंध युवा अवस्था से ही बनने लगा था। यह उनके रंगमंच में भी उतर आया। अलख की राजनीतिक, सामाजिक विचारधारा लोगों की भलाई के लिए थी। आम जनता के साथ थी। अलख का रंगमंच जनता से सीधा संवाद करता था। सूत्र और सिद्धांत आधारित अलख का रंगमंच नहीं है। इसका आशय कतई यह नहीं लिया जाना चाहिए कि अलखनन्दन ने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों का अध्ययन नहीं किया था। उन्हें जानकारी इन सभी नाट्य रूपों, सिद्धांतों की थी। जरूरत पड़ने पर वह इनका बखूबी इस्तेमाल भी कर लेते थे। राष्ट्रवाद का सर्वाधिक दुरुपयोग होता है। लोग राष्ट्रवाद की आंधी में उड़ जाते हैं। लेकिन, कई बार राजनेता इसका इस्तेमाल अपनी राजनीति चमकाने में कर लेते हैं। इससे जनता की भलाई नहीं होती है। जनपक्षधर्ता ही बड़ी चीज थी अलखनन्दन के रंगमंच के लिए। मिथकीय मंगढ़ंत काल्पनिक इतिहास आधारित रंग नाट्य अलख की पहचान नहीं है। अलखनन्दन का लोक पक्षधर, लोकजीवन, आम नागरिकों का रंगमंच है। अलखनन्दन का लोक से सीधा जुड़ा रंगमंच है । हास्य, व्यंग्य और गंभीरता के साथ वह सामाजिक, राजनीतिक, कुचेष्टाओं, पाखंड, कुरीतियों का भंडाफोड़ अपने रंगमंच में करते हैं।

आमोद भट्ट ने भी अलखनन्दन के नाटकों में संगीत दिया था । वह अलखनन्दन के नाटकों में, उनके रंगकर्म में, उनके लेखन, प्रदर्शन, चित्रण, वर्णन में उनकी सोच विचारधारा में, समाज, धर्म ,राजनीति का जो समावेशन है। उसको कुछ इस तरह से बताते हैं—-'इसका कुछ आधार नहीं। वह कभी भी भूलते नहीं थे। उनका एक तरीके से जो समाज के प्रति जो जवाबदारी थी। जिम्मेदारी थी। वह उनके लेखन में और उनके निर्देशन में आती है। मतलब कोई अगर बुराई है तो उस बुराई को उजागर करते थे। एक तरीके का उनकी एक राजनीतिक सोच तो कुछ ऐसी नहीं थी। किसी बड़ी विचारधारा को ही फॉलो करते थे। लेकिन , वह पाखंड को बर्दाश्त नहीं करते थे । वह झूठी चीजों को नहीं बर्दाश्त करते थे । उन को उजागर करने में मजा आता था । मतलब आप 'महानिर्वाण' में बहुत सारे डायलॉग ऐसे थे जिसमें काफी कुछ व्यंग्यात्मक लहजे में वह बातें करते थे। बड़ा ह्यूमर्स व्यंग से वह उसको कुठाराघात करते थे। एक तरीके से उनकी तो अदायगी कहें, उनकी लिखावट कहें ,लेकिन वह कभी कंप्रोमाइज नहीं करते थे। वह अगर समाज में किसी चीज की बुराई है तो बुराई को उजागर करते थे। वह एक मैंने यहां पर नाटक का नाम लेना भूल गया। जो गैस ट्रेजेडी हुई थी। भोपाल गैस त्रासदी के ऊपर उन्होंने बहुत ही बड़ी एक उनकी जो भूमिका रही कि उन्होंने उस फैक्ट्री में जो घटना घटी उस दिन और जितनी वहां तबाही मची। जो एक त्रासदी हुई। उसको उन्होंने एक नाटक के जरिए करवाया। नाटक के लिए उन्होंने त्रिपुरारी शर्मा जी को बुलाया। उन्होंने पूरी रिसर्च करके एक नाटक लिखा। उस नाटक को अब आप, इससे अंदाजा लगाओ कि समाज के प्रति उनका सरोकार क्या था? वह

'बांझ घाटी' नामक नाटक था। जो कि भोपाल गैस त्रासदी के ऊपर था। उसमें बहुत मेहनत हुई। बहुत इंप्रोवाइजेशन हुए। इतने इंप्रोवाइजेशन हुए क्योंकि वह नाटक एक रियल इंसीडेंट के ऊपर था। उसको फिर एक नाटक भी बनाना था। अगर आप रियल इंसीडेंट को वैसी की वैसी कह देते हैं तो न्यूज़पेपर की रिपोर्टिंग हो जाता है। न्यूज़पेपर की रिपोर्टिंग न हो करके, एक वीडियो रिपोर्टिंग न हो करके, एक कहानी के धागे में उसको पिरोया गया। उसमें बहुत असर पैदा हुआ। उस विभीषिका को उन्होंने एक नाटक के जरिए निकाला। उसमें भी कारंत जी का म्यूजिक था और मैंने भी उसमें कुछ गाने बनाए। यह सिर्फ एक समाज के प्रति जिम्मेदारी और एक समाज में जो घटनाएं घटीं, उसमें हमारी एक रंगकर्मी की, एक रंग लेखक की और एक नाटक की क्या भूमिका हो सकती है? उन्होंने उसको उजागर किया।'[17]

आमोद भट्ट की माने तो कुछ बातें तो जरूर साफ हो जाती हैं कि समाज के प्रति उनका दायित्वबोध, उनके लेखन मंचन और निर्देशन में दिखाई देता है। अगर कहीं भी उन्हें धर्म, समाज, राजनीति में कुछ खटकता था, तो वह उसको अपने नाटकों, कविताओं का विषय बनाते थे। वर्तमान के जो विषय ज्यादा होते थे। राजनीति का ढिंढोरा नहीं पीटते थे। पाखंड, दिखावा, झूठ उनके लिए असहनीय होता था, जिसका कि उन्होंने बहुत बार प्रदर्शन भी किया है। इनका पर्दाफाश करने में उनको अत्यधिक आनंद की अनुभूति होती थी। काफी चुटीले, हास्य, व्यंग्यपरक भाषा में अलख विद्रूपताओं का मजाक उड़ाते थे। समझौता के लिए अलखनन्दन का रंग निर्देशन, लेखन तैयार न था। 'बांझ घाटी' जैसा नाटक उनके तत्कालीन सामाजिक घटनाओं के केंद्र का नाटक ही है। घटनाओं की तह तक जाना और विश्लेषण, अन्वेषण करना अलख के ही बस की बात थी। यही उनके सामाजिक सरोकारों को उजागर करता है। नाट्य अभ्यास से भी बहुत कुछ बातें निकालते थे क्योंकि, कोरी घटनाओं के प्रदर्शन को शायद ही कोई रंगमंच कहेगा। रंगमंच के लिए तो विचार, कला, संगीत, मंच, कलाकार सब कुछ चाहिए होता है। इसमें अलखनन्दन की संवेदनशीलता ,भावनात्मकता का प्रकर्ष दिखाई देता है।

देवेन्द्र राज अंकुर प्रसिद्ध कहानी के रंगमंच के जनक हैं और उन्होंने बहुत सारा काम अलखनन्दन का देखा है। वह अलखनन्दन के नाटकों में, उनके रंग व्यक्तित्व में, जो समाज, धर्म, राजनीति की जगह है ,उसको कुछ इस तरह से हमारे सामने रखते हैं—' अब देखिए न 'चारपाई' जैसा नाटक तो पारिवारिक रिश्तों का नाटक है। वह प्रोडक्शन मुझे बहुत अच्छा लगा था क्योंकि, बहुत ही इमेजनेटिव ढंग से उसने उस प्रोडक्शन को तैयार किया था। अलखनंदन ने दिल्ली में किया था। सबसे पहले एनएसडी के रंगमंडल में 1976 में उसमें भी बहुत बड़े-बड़े लोग

[17] आमोद भट्ट का 21 दिसंबर 2022 को हैदराबाद विश्वविद्यालय में लिए गए साक्षात्कार का अंश

काम कर रहे थे। सुरेखा सीकरी, उत्तरा बावकर, राजेश बैग, मनोहर सिंह ने डायरेक्ट किया था। लेकिन आज मैं याद करता हूं तो, फिर दोनों प्रोडक्शन में देखता हूं तो, बेशक इसमें इतने बड़े स्ट्रेचर के अभिनेता नहीं थे। लेकिन, अलखनंदन का प्रोडक्शन अपने सीमित संसाधनों के बीच ज्यादा इमेजीनेटिव था। उस वजह से उसके राजनीतिक नाटक तो नहीं दिखाई पड़ते। मतलब एक 'सुप्रीमो' नाटक है, जो एक रामेश्वर प्रेम जी का नाटक है। जो सत्ता में बैठ जाते हैं और फिर लोगों को कंट्रोल करना शुरू करते हैं। वह एक ढंग से मतलब थोड़ा सा राजनीतिक अंदाज में लिखा गया है और उसको अब जब लिखा ही उसमें है लेकिन, वह भी एक तरह का व्यंग नाटक ज्यादा था ।"[18]

पारिवारिक रिश्तों विडंबनाओं का रंगमंच आपको अलख के यहां मिल जाएगा। अलखनन्दन के पास भले ही राजधानी सरीखे अभिनय करने वाले न रहे हों। किंतु, उनके छोटे शहरों से आए अभिनय करने वालों ने, बड़े शहर के अभिनय करने वालों के भी कान काट दिए। पारिवारिक रिश्तों के किरदार शायद ग्रामीण परिवेश के कलाकार ज्यादा बेहतर ढंग से निभा पाते होंगे। अलखनन्दन ने अपने सीमित संसाधनों से भारतीय रंग परंपरा में अपना नाम कमाया और मुकाम हासिल किया। राजनीति जो खुद तो स्वच्छंद और आजाद है लेकिन, दूसरों के जीवन को नर्क में बदल रही है। अलखनन्दन के निर्देशीय कौशल के लिए राजनीति के दांव पेंच के बीच व्यंग सहायक की भूमिका में था। यह एक अलख का अपना अंदाज है।

महेश आनंद प्रसिद्ध रंग समीक्षक आलोचक हैं। वह अलखनन्दन के नाटकों में चित्रित, अभिव्यक्त, प्रदर्शित समाज, धर्म, राजनीति को निम्नलिखित तरीके से समझाने की कोशिश करते हैं—' नहीं! नहीं! क्या बताऊं इस तरह से मतलब मुझे क्या बताना है? जो नाटक आलेख हैं, वह आलेख हैं। वह न तो मैं कर सकता हूं न कोई कह सकता है। वह आलेख हैं। हालांकि, इस आलेख में से कौन सा अर्थ चुनता है। उसका कौन सा अर्थ को रेखांकित करता है। यह ज्यादा इंपॉर्टेंट है। उन्होंने पूरे समाज का जो भ्रष्ट रूप है। समाज की विडंबनाएं जो हैं और व्यक्ति का जो , व्यक्ति की भी जो विडंबना है, जो है उन्होंने उन दोनों को मिलाकर देखा है। समाज को वह अलग-अलग करके नहीं देखते थे। मतलब वह अगर वह 'आधे अधूरे' में थे तो आधे अधूरे में यह नहीं था कि महेंद्र नाथ ही इंपॉर्टेंट था कि महेंद्र नाथ के कारण ही सारा घर टूटा है या बिखरा है। ना! वह सावित्री भी जिम्मेदार है लेकिन, केवल सावित्री ही जिम्मेदार नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि सावित्री ही जिम्मेदार हैं। नहीं! महेंद्र नाथ भी उतना ही जिम्मेदार है। एक पुरुष भी उतना ही जिम्मेदार है। अगर एक पुरुष के द्वारा लिखा गया नाटक है तो वह पुरुष को महत्वपूर्ण सिद्ध करता है लेकिन, औरत है तो गड़बड़ है। लेकिन, नहीं औरत भी गड़बड़ नहीं है। औरत को तो बल्कि शोषित किया

[18] देवेन्द्र राज अंकुर का 26 अक्टूबर 2022 राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली में लिए गए साक्षात्कार का अंश

गया है। उसको तो हर एक आदमी छल रहा है। उसको तो हर एक आदमी धोखा दे रहा है। वह तो कहीं एक सहारा ढूंढती है, अस्तित्व ढूंढती है या चीजों को ढूंढती है तो वह है। तो, वह इस तरह से वह समाज के मूल सवाल जो इस व्यवस्था ने पैदा किए और लेखक ने जिस रूप में लिया तो वह उसकी अपने ढंग से व्याख्या करते हैं कि यह व्यवस्था में है और इसके कारण यह है। मतलब ब्लैक एंड वाइट में भी नहीं कहते। वह भाई एक ही पक्ष है। बिल्कुल ना! पक्ष दोनों होते हैं जिम्मेदार या जहां जैसे 'वेटिंग फॉर गोदो' है, वेटिंग फॉर गोदो में भी यही है कि वह व्यवस्था है। इस पूरी व्यवस्था में कभी भी गोदो नहीं आता। आता ही नहीं है। हम इंतजार ही करते है। अच्छे दिन आएंगे। विकास होगा। न विकास हो रहा है न अच्छे दिन आ रहे हैं तो क्या कहें व्यवस्था जिम्मेदार है? नहीं! वह तो है। गोदो आता नहीं पर कभी गोदो को आना चाहिए क्योंकि आएगा गोदो लेकिन वह तो अपने आप नहीं आता। आपको कोशिश करनी पड़ती है। आपको वहां से हिलना पड़ता है। एक ही जगह पर टिके हुए बातचीत से भी नहीं आता। सिर्फ व्यवस्था ही जिम्मेदार नहीं होती। व्यक्ति का एक्शन में होना, क्रिएटिव होना बहुत जरूरी होता है। यह भी है एक मीनिंग।

उनकी अच्छी समझ थी। अलख समझौता नहीं करते थे। और, वह समझौते के लिए अपने फायदे तलाश नहीं करते थे कभी या यूं कह सकते हैं कि वह अपने फायदों से समझौता नहीं कर सकते थे। तो समाज में जिस व्यवस्था में हम रह रहे हैं और जिस व्यवस्था में हमारे कर्तव्य भी जो निश्चित होते हैं। फर्ज भी जो निश्चित होते हैं। हक नहीं हक तो बहुत सारे होते हैं हमारे और उन दोनों के बीच में से वह तलाश करते थे कि क्या, कौन से कारण हैं? अगर हम ऐसे हैं तो उसको बनाने के कौन से कारण ? अगर 'गोडाला देखत हन' में है तो वह दोनों करेक्टर्स क्या कर रहे हैं या सावित्री या महेंद्र नाथ कैसा था? ऐसा क्यों था तो उसकी तलाश करना भी बहुत जरूरी है कि घर ऐसा है तो ऐसा क्यों है? घर उसके क्या कारण है? उनकी वो तलाश करते थे। कितने सफल हुए और कितने सफल नहीं हुए अलग बात है। मुद्दा है लेकिन, यह उनका ऐसा था उनका। हालांकि 'आधे अधूरे' मुझे बहुत अच्छा नहीं लगा लेकिन एक नोवेल्टी तो उसके अंदर थी। उसके अंदर नयापन तो था। उस नएपन की तलाश तो थी उनके अंदर और ढेर सारे प्रदर्शनों के बीच में एक नया प्रदर्शन करना वह भी बहुत मुश्किल होता है। यही था उनका बस।'[19]

रंगकर्मी के पास नाट्य रचना होती थी। उसमें वह कौन सा प्रभाव ग्रहण करता है और किस रूप में धरातल पर घटित करवाता है। यही महत्व का है। व्यक्ति ,समाज की जो नियति है, धोखा है, परिवार के टूटन के लिए पूरा परिवार जिम्मेदार है। किसी एक के सिर पर जिम्मेदारी नहीं मानी जा सकती। स्त्री की वेदना को प्रमुखता से दिखाना

[19] महेश आनंद का 27 अक्टूबर 2022 को दिल्ली में लिए गए साक्षात्कार का अंश

भी , अलखनन्दन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। सामाजिक संरचना ऐसी बनी हुई है कि स्त्री विवश है। कई तरह की शक्तियां उसे बाहर आने नहीं देना चाहती हैं। व्यवस्था को लोग एक-दूसरे के हाथ में सौंपते हैं और उम्मीद करते हैं कि सब कुछ ठीक हो जाएगा ,जबकि यह सारा काम उन्हें अपने हाथ में लेना चाहिए। यही अलख का रंगमंच है। यही उनका संदेश है। सिर्फ तंत्र ही जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए, बल्कि लोग भी उतने ही जिम्मेदार हैं। अलखनन्दन ,यह जिम्मेदारी अपने रंगकर्मियों, श्रोताओं, पाठकों और आम जनों को सौंपना चाहते हैं। लोगों को हाथ पैर चलाने पड़ेंगे। अलखनन्दन का, लेखन रंगमंच कोई समझौतापरक नहीं है। उनके सिद्धांत अटल हैं। हमारे अपने भी दायित्व हैं। हमें उन्हें समझना पड़ेगा। कुछ यूं ही नहीं होता। कारण की तलाश, अलख के रंगमंच की तलाश है। उनके रंगमंच में नई-नई चीजों की तलाश ही है। इतने सारे नाटककारों, रंगकर्मियों के बीच अपनी जगह बना लेना कोई मामूली बात नहीं है।

3.3 सामाजिक विमर्श और अलखनन्दन की दृष्टियां

देवीलाल पाटीदार अलखनन्दन के नाटकों और रंग कर्म के संदर्भ में, उनकी समाज, धर्म और राजनीति पर जो समझ थी, उस पर बताते हैं कि 'यार जो मनुष्य है। जाहिर है , समाज में रहता है। समाज भी आ जाता है। पर, अलख जी की अपनी चिंताओं में मनुष्य केंद्रीय चीज है। उसकी अपनी जो छोटी-बड़ी आकांक्षाएं हैं। उसकी अपनी जो जद्दोजहद है, ईविन कुछ हद तक जो स्त्री और पुरुष के संबंध हैं। उस उलटबांसी को भी अपनी तरह से देखने और दिखाने और जहां तक संभव हो सके हल, तो खैर किसी के पास उसका नहीं है। अलख जी भी उसका क्या हल निकालते? पर, वह उनके कंसर्न का विषय रहा है। उन्होंने ऐसे नाटक जैसे 'आधे अधूरे' या इस तरह के नाटकों को किया भी है। उस विषय को उन्होंने अपनी तरह से डील किया है। मेरे ख्याल से सामाजिकता के संदर्भ के बजाय जो मनुष्य के अपने स्वभावगत और प्रवृत्तिगत तौर पर वह जो सारी चीजें होती हैं। उस पर उन्होंने ज्यादा काम किया। यार हमने शुरू में ही कहा था कि वह व्यवस्था विरोधी थे। क्या होता है कि व्यवस्था विरोध से मतलब यह था, लोग उसको बहुत बार तात्कालिक राजनीति के संदर्भ में देखना और समझना चाहते हैं। वह तो कभी कांग्रेस तो कभी बीजेपी और कभी अंग्रेज और कभी मुगल सब आते-जाते रहते हैं। है न? पर कोई एक व्यवस्था होती है, जो इन सब के आने-जाने से बदलती नहीं है। वह व्यवस्था बहुत गरीब के पक्ष में नहीं है। कमजोर के पक्ष में नहीं है। है न? उस अर्थ में व्यवस्था विरोधी होना। बाकी यह जो होता है पॉलिटिकल, उस सबका बहुत मतलब नहीं है। क्योंकि,

हम लोग जानते हैं कि हजारों साल से हमारी व्यवस्था में कोई चीज ऐसी है जिसमें कुछ लोगों को कुछ किए बिना सब कुछ मिल जाता है। कुछ लोगों को जीवन भर खटने के बाद भी दो वक्त की रोटी नहीं मिलती। उस सिस्टम को कहां से पंचर किया जा सकता है? कहां से तोड़ा जा सकता है? कहां से उसको अन्ह्युमन बताया जा सकता है? अलख जी उस तरह के डायरेक्टर हैं। है न? हम जो आपको बता रहे हैं न कि जिसे हम व्यवस्था कहते हैं। वह खुद ही मनुष्य विरोधी है। कभी-कभी सौभाग्य से सौ पचास साल नहीं, हजार पांच सौ साल में कोई एकाध आदमी व्यवस्था में ऐसा आता है, जो उसको थोड़ा सा मानवीय करने की जुर्रत या जरूरतमंद तक मदद का हाथ बढ़ाने की कोशिश करता है। पर, व्यवस्था का मूल चरित्र यह नहीं है। वह खुद पलती है दूसरे के पसीने पर और जो उसको सपोर्ट करते हैं या व्यवस्था को चलाने में मदद करते हैं। उनको उस लूट का हिस्सा देती है। जैसे जो गवर्नमेंट एंप्लाइज हैं, जिनकी सैलरी इतनी बढ़ाई सरकार ने और यह। प्रोफेसर को ढाई तीन देने लगे। अब यह देखो न सैलरी बढ़ाने के पहले तक, सारे आंदोलनों में हमारे सारे लेक्चरर्स प्रोफेसर शामिल होते थे। जब से यह सेंटर पे स्केल और यह 14वां वेतनमान फलाना-ढिमकाना लगा। फिर यह क्लास-क्लास खेलने लगे। सब ने बड़ी कार खरीद ली। बड़ा डुप्लेक्स खरीद लिया। फिर वह दारू भी और आजकल हजार रुपए से कम वाली बोतल नहीं लेते। यह तो इनको दिया ही इसलिए गया कि आप जो वह गरीब आदमी है। वंचित आदमी है। उसको छोड़ो। मरने दो। जीने दो। जो भी है इधर आओ न। हमारे साथ पार्टनरशिप करो।'[20]

देवीलाल पाटीदार, अलखनन्दन की सामाजिक-राजनीतिक चेतना के केंद्र में या कह सकते हैं कि मनुष्य उनकी चेतना का केंद्र बिंदु मानते हैं। अलखनन्दन आम लोगों की जो आकांक्षाएं, जद्दोजहद है, स्त्री-पुरुष संबंध हैं , उनका स्वभावगत और प्रवृत्तिगत जो द्वंद्व है, जो नैराश्य है, उसको चित्रित करने वाले, उसको दिखाने वाले नाटक निर्देशक रंगकर्मी और कवि हैं। राजनीतिक तौर पर देखा जाए तो अलखनन्दन व्यवस्था विरोधी नाटककार रंगकर्मी हैं। व्यवस्था मतलब कुव्यवस्था, जो कभी बदलती नहीं है। स्त्री ,दलित, आदिवासी, पिछड़े के पक्ष में न्याय नहीं करती। उनके साथ भेदभाव करती है। उन्हें समावेशी अवसर नहीं उपलब्ध कराती है। ऐसी व्यवस्था में जो निम्न वर्ग है , पिस्ता जाता है। उसकी कोई सुनने वाला नहीं होता है। वह सड़के, घर, मंदिर, मकान, संस्थान सब कुछ बनाता है। खेती करता है। लेकिन खुद सड़क पर सोता है। झोपड़पट्टी में रहता है। इस बात से अलखनन्दन को चिड़ थी कि कब कोई इनके लिए पक्षधर होगा। यह मनुष्य विरोधी जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था है; अलखनन्दन उसके खिलाफ थे। उनके नाटकों में भी इस चेतना बिंदु के कई सूत्र आपको खोजने से मिल जाएंगे। अलखनन्दन

[20] देवीलाल पाटीदार का 12 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

को इस बात से भी दिक्कत है कि जो सुविधाभोगी वर्ग है। तथाकथित जो आंदोलनकर्मियों का दल है। उस पर भी जब रुपए पैसों की बरसात हुई, तो उसने भी जो कि समाज के सजक नागरिक कहे जाते हैं। उसने भी आम जनों का गरीबों का पक्ष लेना बंद कर दिया है।

भारतेन्दु नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ अलख के रंगमंच को हमें इस प्रकार समझाते हैं- 'जिसको कहना चाहिए कि एक जो राजनीतिक सोच का हो, न किसी पर्टिकुलर पार्टी का विश्लेषण या पार्टी के पक्ष या विपक्ष में खड़े होना। यह तो राजनीति मुझे समझ में नहीं आता। मुझे लगता। वही सोच कमजोर के पक्ष में खड़े हैं। आप नई चीजों की, नई समझ के, नई सोच के विकसित होने के पक्ष में खड़े हैं । या आप पुनरुत्थानवादी हैं। सिर्फ खाली जो प्राचीन हमारा जो घटित हुआ, वही महान है। यह उनकी अप्रोच नहीं थी। उसको वह ग्लोरिफाई नहीं करते थे। बल्कि वह हमेशा कुछ हमारी सोच बेहतर बने। यह उनका रहता था। कमजोर के पक्ष में हमारी सोच खड़ी हो। उनके प्रति लोगों के मन में, लोगों की संवेदनाओं को जागृत करना का उनका मकसद रहता था। संवेदनाएं को सुलाने का मतलब नहीं रहता था। ठीक है। आप नाटक का तो खूब आनंद लें। आप संवेदनहीन बने रहें। यह नहीं होता था। इस मामले में हम जैसे रंगकर्मियों के ऊपर जो है, बर्टोल्ट ब्रेख्त का काफी प्रभाव रहता था। मैं भी अपने काम में कहां ब्रेख्त थे, यह तो नहीं समझ में आता। अब ऐसा वह जज्ब हो गया है कि नाटक में कहां फर्क है, कहां ब्रेख्त है ,कहां स्टनस्लावस्की हैं, कहां कौन है? यह अब समझ में नहीं आता। अब थोड़ा सा ब्रेख्त डाल दो। थोड़ा सा यह डाल दो। वह अपने आप में चीजें क्रिएट होती थीं। यही अलख जी के साथ भी था। ब्रेख्त का प्रभाव भी काफी हद तक उनके नाटकों में था।'[21]

इसमें सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ यह बताने की कोशिश करते हैं कि अलखनन्दन किसी पार्टी विशेष के झंडावरदार नहीं थे। उनकी जो सामाजिक प्रतिबद्धता थी कि कमजोर के साथ खड़ा होना है। बलहीन के साथ चलना है। शक्तिशाली को धता बता देना है। यही उनकी राजनीतिक-सामाजिक सोच थी। किसान ,मजदूर, दलित वर्ग के उत्थान के सपने उनकी राजनीतिक सोच थी। उनका रवैया पुनरुत्थानवादी नहीं था। रूढ़िवादी परंपरा, श्रेष्ठताबोध के साथ वह नहीं थे। बल्कि, सभी वर्गों की समानता स्थापित हो। एक दूसरे से मिलकर रहें। प्राचीनता को लेकर बहुत आग्रही नहीं थे। बल्कि, वह बदलाव के पक्षधर थे। सबको बराबर अधिकार मिले। किसी को इसलिए वंचित न होना पड़े कि फलाने-फलाने धर्म ग्रंथ में ऐसा-ऐसा लिखा है। महिमामंडन से हमेशा बचते थे। नवीनता को सदैव स्वीकार करते थे। एक और बात जो अपने रंगमंच से अलखनन्दन प्रदर्शित करने की कोशिश करते थे कि संभ्रांत वर्ग

[21] सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ का 6 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

में कमजोर के प्रति संवेदना का विस्तार हो। अलखनन्दन के रंगमंच पर कहीं न कहीं ब्रेख्त की सोच, नाट्य चिंतन, सिद्धांत का असर दिखाई देता है। ब्रेख्त, अलखनन्दन के रंग व्यक्तित्व के निर्माण में काफी सहायक सिद्ध हुए हैं।

प्रसिद्ध रंग निर्देशक और अलखनन्दन के साथ काम कर चुके संजय मेहता, हमें उनकी धर्म, राजनीति और समाज की बहुत सारी जानकारी से समृद्ध करते हुए कहते हैं कि 'देखिए! हर आदमी की कोई न कोई राजनीतिक लीनिंग होती है। लेकिन, जहां तक मैंने देखा है बतौर रंगकर्मी वह अपनी लीनिंग को महत्व नहीं देते थे। कंटेंट क्या कह रहा है? किस विचार की बात कर रहा है या क्या विचार होना चाहिए? उसकी वकालत ज्यादा करते थे। उनकी अपनी पर्सनल लीनिंग से उसका लेना देना नहीं था। न ही उनकी जो पर्सनल लीनिंग थी, किसी भी विचारधारा को लेकर, उस पर आधारित ऐसे कोई नाटक कर रहे हों , ऐसा भी नहीं था। नाटक करना है। समाज के लिए करना है। जैसे 'बिट्ठल' है। उनका बिट्ठल में यह है कि भाई आज के समय में भी भगवान अगर अवतरित होगा तो उससे भी हम मांग ही रहे हैं। यह जो विचार था एक जो कि आज भी बहुत ही कंटेंपरेरी विचार है। भगवान आ जाए तो मांग रहे हैं। उस पर विश्वास तब कर रहे हैं कि जब वह कह दे कि भाई तुम मुझे दो करोड़ रुपए दे दो। वह भगवान है। यह विचार आज भी कांस्टेंट है। यह तो बहुत ही रेलीवेंट विचार है। यह किसी राजनीति से प्रेरित नहीं होता। या 'आधे अधूरे' किया तो वह एक मध्यमवर्गीय कहानी है। जहां पर मध्यमवर्ग किस तरह से पिस रहा है। अब तो खैर चीजों के और ज्यादा ही अर्थ बदल गए। वहां मध्यमवर्ग किस तरह से पिस रहा है। सावित्री को पूरे समाज से फाइट करना पड़ रहा है। अपने परिवार के लिए यह बहुत ही ऐसे मुद्दे थे। इसके अलावा जो 'महानिर्वाण' है, तो 'महानिर्वाण' में भी हमारी जो एक पूरे समाज की जो विद्रूपता है। आदमी के जीने और उसके मरने से लेकर जब हम किस-किस तरह से झूंठ बोलकर रहते हैं। आज भी जैसे होता ही है। एक बहुत बुरा आदमी था। तब भी आप उसकी शोक सभा में जा रहे हैं और कह रहे हैं कि बहुत बड़ा विद्वान आदमी था। बहुत ही मिलनसार था। जबकि है नहीं है। बगल में गाली दे रहे हो आप। यह जो विद्रूपता है। यह भी सामाजिक एक तरह से प्ले था। कोई ऐसे प्ले बहुत ज्यादा कहीं-कहीं पंच जरूर आते हैं। लेकिन, इटसेल्फ कोई की राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित होकर किया हो, उसमें कहीं न कहीं जो धर्म की विकृतियां हैं। हमारी सामाजिक कुरीतियां हैं या जो राजनीतिक कुरीतियां हैं। उस पर आधारित उनके तमाम प्लेज लगभग हैं। मैंने देखा है ।'[22]

संजय मेहता ने अलखनन्दन के कई नाटकों से धर्म, समाज और राजनीति की गुत्थी को समझाया। प्रायः यह देखा गया है कि राजनीतिक विचार तो सबके होते हैं लेकिन अलखनन्दन की विशेषता है कि अपने राजनीतिक

[22] संजय मेहता का 4 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

विचारों तले वह दबे नहीं थे। उनमें रंगकर्मी के स्तर पर, राजनीतिक विचारों में काफी खुलापन था। जबरदस्ती वह विचार, राजनीतिक, सामाजिक अपने रंगकर्म में थोपते नहीं थे। व्यक्तिगत चीजों को वह पीछे छोड़ देते थे। कथ्य को लेकर उनका एक जबरिया रवैया नहीं था। एक ही विचारधारा के नाटकों को उन्होंने तरजीह नहीं दी। उन्होंने अलग-अलग विविधता भरे नाटक किये। समाज के लिए नाटक हो यही उनका प्रमुख उद्देश्य था। अलखनन्दन मध्यवर्गीय जीवन को चित्रित करने वाले नाट्य निर्देशक थे। सामाजिक विडंबनाओं का चित्रण उनके नाटकों में मिलता है। धार्मिक दिखावे को केंद्र बनाकर भी अनेक नाटक उनके द्वारा मंचित हुए हैं।

आनंद मिश्रा अलखनन्दन के आखिरी समय तक साथ रहे। उन्होंने उनके साथ रंगमंच में हिस्सा लिया। वह अलखनन्दन के रंगकर्म में उपस्थित समाज, धर्म ,राजनीति को इस तरह से अंकित करते हैं–'धर्म का तो उनका इतना वह नहीं था। वह एक तरह से नास्तिक थे। उनके जो मित्र थे, वह भी ज्यादातर नास्तिक थे। चाहे मुस्लिम हों, हिंदू हों या किसी भी संप्रदाय के हों, तो वह सामाजिक दृश्य को देखते थे। देखते थे कि समाज में जो घटनाएं हो रही हैं। उसे कैसे उतारा जाए और लोगों के सामने कलात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाए? यह नहीं कि हम कोई क्राइम फिल्मी तरीके से दिखाएं। उसको कलात्मक ढंग से दिखाएं कि वह पब्लिक के मन को छू भी जाए और वह दृश्य भी माना जाए और आगे बढ़ाया जाए। उनका राजनीति का ऐसा कुछ नहीं था। वह एक तरह से प्रगतिशील थे। लेकिन, जैसे-जैसे परिवर्तन आता गया। वह अपने आप को परिवर्तित करते गए। मतलब,वह एक चीज से बंधे नहीं। दरअसल, वह राजनीतिक रूप से कम कलात्मक रूप से ज्यादा बंधे रहे।'[23]

अलखनन्दन का मन पोंगा-पंथ, कर्मकांड में रमता नहीं था। न उनके नाटक पारंपरिक धार्मिक स्वरूप अर्थात लीला नाटक ढंग के होते थे, कि भाई चलो भजन-पूजन कर लिया जाए। अलखनन्दन का रंगमंच धर्म, राजनीति, समाज में पिस रहे लोगों की समस्याओं का कारण व निदान ढूंढने की कोशिश ही है। उनके रंगमंच में सामाजिक समस्याओं का चित्रण है। लेकिन, इनके चित्रण में कोई कोरी कहानी नहीं। बल्कि कलात्मक रंग परिकल्पनाओं,रंगयुक्तियों से, सृजनात्मकता के साथ इनका प्रदर्शन हुआ। राजनीतिक पिछलग्गुपन उनके रंगमंच में नहीं था। उनके रंगकर्म में प्रगतिशीलता झलकती है। लेकिन साथ ही वैचारिक बदलावों के आयाम देखने को भी पर्याप्त मिलते रहे हैं। वैचारिक और रंगमंचीय शैलिबद्धता में ठहराव,अलखनन्दन के रंगमंच की विशेषता कभी नहीं रही। वह हमेशा गतिमान रहे। अलग-अलग प्रयोग करते हैं अर्थात अलखनन्दन एक प्रयोगधर्मी, अपनी ही रंग शैली का अतिक्रमण करने वाले नाटककार और रंग निर्देशक थे।

---

[23] आनंद मिश्रा का 2 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

तपन बनर्जी ने भी ने भी अलख के कुछ नाटकों में शुरुआती दिनों में काम किया था। वह अलखनन्दन की समाज, धर्म, राजनीति किस प्रकार उनके रंग कर्म में व्यक्त हुई है। इसको लेकर बताते हैं कि–'एक विचार लेकर तो चलते थे। वह उनके विचारों में अंडर करंट रहता था , जो कि उनके सारे नाटकों में दिखाई देता था। अगर वह 'दुलारी बाई' जैसे नाटक हुए, जिसमें बहुत ही हल्का नाटक है। मजे के लिए ही है। वह उसकी बात छोड़ दें। अगर उसमें से कुछ निकालें, निकालना चाहे कोई विद्वान तो क्या निकालेगा ? मुझे समझ में नहीं आता। बांकी सारे नाटकों में दो नाटक मुझे याद हैं। 'डरा हुआ आदमी', जिसमें अरुण ने काम किया था। 'इक तारे की आंख', वह पूरा सांप्रदायिकता के खिलाफ था। मतलब पूरा उसके अंडर करंट में सांप्रदायिकता की खिलाफत-मुखालिफत थी। मैंने जिसमें लीड रोल किया था। मुझे, जो मैं इतना ही कह सकता हूं कि उसमें ऐसा है कि दूसरों ,मैं उसके बारे में ज्यादा क्या कहूं। ? मुझे यह समझ में आता है कि किसी का इस्तेमाल करना, अपने लिए। यह कुछ उसमें दिखता था। 'गिनी पिग' मैंने देखा नहीं। 'वेटिंग फॉर गोदो' भी वैसा ही था कि मतलब किसी उम्मीद में लोग बैठे रहते हैं। कोई आएगा। हमारा उद्धार करेगा। मैंने जो देखा, इसको इसके बारे में, मैं कहता था कि इस संस्था के नाटक मैं कभी नहीं देखूंगा। एक सामाजिक विचार भी चलता था। राजनीति का ,वामपंथ का, एक अंडर करंट उनके कामों में रहा करता था। इसके बाद भी मैंने उनके प्लेज देखे हैं। जैसे मैंने 'महानिर्वाण' देखा। उसके पहले 'क्लर्क की मौत' देखा। उन्होंने जो भारत भवन में किया था। यहां से जाने के बाद(जबलपुर से) पहला प्ले मैंने वही देखा था। अभी कुछ साल पहले वह रामेश्वर प्रेम का 'विवेचना' के समारोह में 'चारपाई' लेकर आए थे। यह सब नाटक देखे। बहुत कुछ सामाजिक विसंगतियों पर आ गए थे। सीधे-सीधे राजनीति से हटकर, सीधी-सीधी राजनीति कभी नहीं करते थे। लेकिन, थोड़ा अंडर करंट रहता था। बाद में वह विसंगतियों पर आ गए थे। विद्रूपता के ऊपर अपने ढंग से बात करना, व्यंग करते हुए, वह कभी-कभी सीधे-सीधे इस तरह से बात करते थे।'[24]

अलखनंदन ने रंगमंच में वैचारिक आंतरिक नदी प्रवाहित रहती थी। उनके द्वारा रचित, मंचित सभी नाटकों में वैचारिक धारा सतत प्रवाहित है। आंतरिक वैचारिक श्रेणी से नाटक की गतिशीलता में कहीं कोई अंतर देखने को नहीं मिलता है। सामाजिक, विसंगतियों पर भी वह नाटक किया करते थे। धार्मिक वैमनष्य जो समाज के ताने-वाने को ढीला करता है, अलखनंदन का रंगमंच इस पर वार करता है। उनका रंगमंच सांप्रदायिक सौहार्द, आपसी भाईचारे के साथ खड़ा है और भ्रातत्व का संदेश देने वाला है। धार्मिक उन्माद, पाखंड से कुछ अर्जित होने वाला नहीं है, जो मिलना है, आपसे अमन-चैन से ही संभव होगा? दूसरे लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए सांप्रदायिकता को

[24] तपन बनर्जी का 6 मार्च 2022 को जबलपुर में लिए गए साक्षात्कार का अंश

बढ़ाते हैं लेकिन पिसता आम जनमानस है। सामाजिक संदेश और विपक्ष की भूमिका की सोच, उनके नाटकों का आंतरिक प्रवाह है।

रंजना तिवारी अलखनन्दन की प्रिय अभिनेत्रियों में से एक हैं। वह अलखनन्दन के रंग कर्म में उनके नाटकों में प्रदर्शित समाज, धर्म, राजनीति को हमें इस तरह से बताती हैं–' देखो! समाज को तो वह एकरूपता के रूप में देखना चाहते थे। वह समरूपता चाहते थे। वह नहीं चाहते थे कि अमीर और अमीर होता जाए। गरीब और गरीब होता जाए। वह इसी के तहत 'मोटे राम शास्त्री का सत्याग्रह', जो मैंने प्ले का जिक्र किया था। वह प्ले बिल्कुल इसी बात को दर्शाता है। वह सोच क्या थी? वह समशीतोष्ण वाली सोच रखते थे। यह सब समान हो। किसी को आप क्यों छोटा मानो? किसी को क्यों बड़ा मानो? किसी का क्यों दुरुपयोग करो? किसी का उपयोग क्यों करो भाई? आप उसको क्यों गरीब मान रहे हैं? वह पंडित है तो आप मतलब उसका उपयोग-दुरुपयोग करोगे? उसको आप मतलब वहां खड़ा कर दोगे? आपका स्वार्थ वह जान ही नहीं रहा है। वह तो आपके लालच में आ चुका है। वह मर जाएगा और आप उसको मार दोगे। यह तो पाखंड है न? राजनीतिक व्यंग इसी में तो है, सारे पूरे पद, बड़े-बड़े पद वाले, इसका उपयोग कर रहे हैं। सारे पोस्ट हैं। उसमें वकील भी हैं तो उसमें जज भी हैं। उसमें एक क्लर्क भी है तो उसमें एक अधिकारी भी है। उसमें एक विजिटर भी विदेश से आएगा। यही उसमें दिखाया है। उन्होंने धार्मिक पाखंड का तो किया ही है। 'बिट्ठल आला रे आला', यह उनका पु ल देशपांडे का प्ले है। मूलतः मराठी प्ले है। उन्होंने वहां पर किया है। 'भए प्रकट कृपाला दीन दयाला' के नाम से किया है। भारत भवन रंगमंडल में किया है। उसमें यही पाखंड है। भगवान खुद आकर बताते हैं। साले! तुम मुझे दही के नाम पर चूने का पानी लगा देते हो। उसमें भगवान एक-एक की पोल खोलते हैं। क्यों? मास्टर की पोल खोलते हैं। व्यापारी से बताएं। तुम्हारी के कितना छुपा कर रखे हो पैसा? तो बोलता है। भगवान! पहले तो मानता ही नहीं है कि भगवान प्रकट भी हो सकते हैं। आप भगवान हो! भगवान ऐसे उठकर आते हैं क्या? उन्होंने यह सारा उसमें बताया है।'[25]

अलखनन्दन का रंगमंच और उनका लेखन सामाजिक सद्भाव, समानता का संदेश देता है। कोई छोटा-बड़ा न हो। मानवीय गरिमा सबकी है। सांप्रदायिक ताकतें क्यों जान-माल का नुकसान कर पाएं? क्यों इंसान धर्म-पाखंड से लुटता रहे? क्यों न इंसान बौद्धिक व तार्किक जीवन जिए। जो सरकारी तंत्र है। उसकी जो घूसखोरी ,लालच से समाज पर विपरीत असर पड़ता है। यह तंत्र आपको चैन से बैठने भी नहीं देता है। अपना रौब जमाए

[25] रंजना तिवारी का 4 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

रखता है। धर्म कैसे इंसान से खेलता है? लोग कैसे धर्म के जाल में उलझ जाते हैं? कहने के लिए नाम का सिर्फ धर्म है। पर धर्म के नाम पर खून की नदियां बह जाती हैं।

फिल्म निर्माता राजीव गोहिल अलख के रंगमंच पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि 'भाई! मेरा ऐसा मानना है कि प्रतिबद्धता वगैरह तो दोयम दर्जे की चीजें हैं। इसका कोई मतलब नहीं है। असली चीज है। कोई कलम मनुष्य विरोधी नहीं होती। मूल रूप से कोई भी कला जो भी संसार में उत्कृष्ट कला है, जिसको हम सचमुच कला मानते हैं। वह मनुष्य विरोधी नहीं हो सकती। कभी अगर मैं प्रतिबद्धता का आपका आग्रह मान भी लूं, तो जहां आदमी मनुष्य के पक्ष में खड़ा हो जाता है। मनुष्य की पक्षधरता में आ जाता है। वह अपने आप ही प्रतिबद्ध है। आप उसे प्रतिबद्ध कह लीजिए या फिर कोई विचार जोड़ लीजिए। अब यूं कहूं कि झंडा लेकर अलखनन्दन ने या किसी ने कभी नाटक नहीं किया और जिसने भी किया वह बहुत ही फूहड़ बना। उसमें न तो कोई कलात्मकता होती है, न कोई कौशल। वह तो प्रोपेगेंडा हो सकता है। वह तो नारा हो सकता है। नारा तो नारा ही होता है। नाटक और कविता का फर्क सभी जानते हैं। नारा एक चीज अलग है और कविता एक चीज। कविता गहरी संवेदना को पकड़ती है। गहरी संवेदना को छूती है। नारा जो है वह तो एक उत्तेजक-चमकाऊ चीज है, तो यही फर्क है। कई लोग प्रतिबद्धता के नाम पर जो नारेबाजी का जो मामला है। मैं इससे सहमत नहीं होता हूं। यह मेरी निजी धारणा है। लेकिन हां! जो गहरे अर्थों में ,सच्चे अर्थों में, मनुष्य के साथ हैं, जो प्रतिबद्ध हैं, किसके लिए? विचार के लिए नहीं, मनुष्य के लिए प्रतिबद्धता सबसे बड़ी चीज है।

तीनों में ही 'भए प्रगट कृपाला', 'माटीबुर्ज'(यह अलख ने नहीं किया), 'महानिर्वाण' इनमें समाज मौजूद है। समाज में जो विसंगतियां हैं, जो भी विद्रूप है। मानव है तो ही अमानव होगा। पशु तो मानव नहीं होगा। पशु, पशु हो सकता है। मानव, अमानव हो सकता है। एक मानवीकरण की प्रक्रिया होती है और एक अमानवीयकरण की भी प्रक्रिया होती है। अलख ने ऐसे नाटक चुने, ऐसी कहानियां चुनी जो मानवीयकरण की प्रक्रिया को अंडरलाइन करती हैं। न तो कोई कथा इतनी सामाजिक या व्यक्तिक होती है। न कोई कथा इतनी सामाजिक होती है कि वह व्यक्तिक न रहे। यह तो एक-दूसरे के पूरक होते हैं। कोई कथा पूरी तरह से व्यक्तिक नहीं है। कोई कथा पूरी तरह से सामाजिक नहीं है। क्योंकि, व्यक्ति के बिना समाज ही नहीं है तो निश्चित रूप से सारी साहित्यिक रचनाओं में व्यक्ति होगा। समाज निश्चित होगा और जो समाज निर्मित होगा। वही फिर व्यक्ति बनाएगा तो यह सारी चीजें तो हैं।'[26]

[26] राजीव गोहिल का 17 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

अलखनन्दन के नाटकों, प्रदर्शनों और उनके काव्य का दिखावे की सामाजिक प्रतिबद्धता हिस्सा नहीं थी। वह सामाजिक सरोकारों को जीते थे। सरोकारों से प्रेरित नाटक लिखते थे। मंचित करते थे। उन्होंने प्रगतिशीलता, समाजवाद का लेबेल लगाकर नाट्य मंचन नहीं किया। उन्होंने प्रोपेगेंडा नाटकों से बचकर कलात्मक ढंग से मौलिक नाटकों का प्रस्तुतीकरण अवश्य किया, जिसमें समाज, धर्म, राजनीति एकमेव हो जाते थे। अलखनन्दन के लिए राजनीतिक-वैचारिक प्रतिबद्धता से बड़ी चीज थी; मनुष्य, समाज के साथ खड़े होने की प्रतिबद्धता। यही उनका नाट्य चिंतन है। अलख का रंगमंच मानवीय करने की प्रक्रिया है। अलख का रंगमंचीय दृष्टिकोण व्यक्ति से शुरू हो समाजीकरण तक जाता है।

3.4 अलखनन्दन का राजनीतिक बोध

सुप्रसिद्ध वामपंथी पत्रकार और अलखनन्दन के कलाकार राकेश दीक्षित, हमें अलख की धर्म,राजनीति और समाज से संबंधित बहुत सारी महत्वपूर्ण बातें बताते हैं। 'सामाजिक सोच, चिंतन ऐसे नाटक चुनते थे, जिसमें दो तीन बातें तो साफ हैं। वह ऐसे नाटक चुनते थे जो जनवादी हों, जिसमें आम जनता के लिए, गरीब जनता के लिए या जनपक्षधरता साफ दिखे। दूसरा यह है कि अलख जी समाजवादी पृष्ठभूमि से थे। ऐसा कोई विषय तो चुन ही नहीं सकते थे, जिसमें सांप्रदायिकता हो। वह सांप्रदायिकता के घोर विरोधी थे । पर, साथ में वह कोई समाजवादी चिंतन को लेकर या क्रांतिकारिता को लेकर बातें भी नहीं करते थे कि सीधा क्रांति कर देंगे। वह उस तरह के नाटक चुनते थे, जिसमें संदेश कहने के लिए भी कुछ हो। लेकिन, उसके साथ में उसकी साहित्यिकता है या उसका जो कोमलपन है। वह नष्ट न हो। यह उनकी खासियत थी।

वह बाद में यहां जबलपुर में ज्ञानरंजन जी, हरिशंकर परसाई के संपर्क में आने के बाद से मार्क्सवाद से प्रभावित हुए। मार्क्सवाद से जुड़े। पहले वह लोहियावादी थे। फिर बाद में उन्होंने गहरे तक मार्क्सिस्ट आईडियोलॉजी के संपर्क में आए। उस पर भी उन्होंने चिंतन किया। पढ़ाई लिखाई की। पढ़ने लिखने में भी वह काफी प्रखर थे। बहुत पढ़ते-लिखते थे। लेकिन, उनका ओरियंटेशन शुरुआत से लोहियावाद से हुआ था। उनसे बहुत वर्षों से संपर्क रहा नहीं है। मैंने नाटक देखना भी छोड़ दिया था । ऐसे उनके बहुत नाटक निश्चित रूप से होंगे। ऐसे धार्मिक कुरीतियों

इसके बहुत ही खिलाफ थे। बहुत ही प्रखर रूप से उसका विरोध करते थे। निश्चित रूप से उनके ऐसे नाटक होंगे ,जिसमें उन्होंने इन सभी तरह की कुरीतियों पर प्रहार किया होगा।'[27]

शुरूआती तौर पर जनवाद अलखनन्दन के नाटकों का केंद्र बिंदु था। जनवादी रुझान वाले नाटकों का प्रदर्शन वह इसलिए करते थे, ताकि गरीब जनता की प्रत्यक्ष आवाज को सुनाया जा सके। समझाया जा सके और सुना जा सके। समाजवादी पृष्ठभूमि का प्रभाव भी अलखनन्दन के रंगमंच की एक खास पहचान है। सीधे-सीधे क्रांतिकारी नारों सरीखे नाटक अलखनन्दन कभी नहीं करते थे। समाज के लिए कुछ न कुछ संदेश जरूर हो। इस तरह के उनके नाटकों के चुनाव होते थे। इस तरह से इनका प्रदर्शन किया जाता था कि कलात्मक नाटकीयता बनी रहे। साहित्यि से खिलवाड़ नहीं करते थे। बल्कि, उनमें साहित्यिक चेतना की रक्षा भी करते थे। उनके रंगकर्म पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लोहिया के विचारों और मार्क्स के विचारों का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

गिरजा शंकर, अलखनन्दन के बहुत गहरे मित्र रहे, पत्रकारिता भी लगभग समानांतर की और उसके बाद में दोनों की राहें अलग हो गईं। वह अलख के रंग कर्म में समाज, धर्म, राजनीति की भूमिका इस प्रकार रेखांकित करते हैं–'सामाजिक सोच, सामाजिक चिंतन, सामाजिक चिंता, वह तो उनके नाटकों के मूल भाव में था। उनके केंद्र में था । हां! तो वह जो स्वांग वाला उनका नाटक है। वह जो मल्टीनेशनल पर वार करते हैं। 'उजबक राजा तीन डकैत' वह तमाम जो चीजें हैं। वह उसमें राजनीतिक व्यंग तो था ही । इसीलिए, जो है जो उनकी अलग जो पहचान बनती है, वह अपने कथ्य के कारण बनती है। वह नाटक लिखते भी थे। कविता भी लिखते थे। वह सारा कुछ जो है एक तरह से, समग्र रूप से, जो व्यंग के जरिए या किसी और जरिए जो समसामयिक सवाल थे, समाज के थे, चाहे राजनीति के हों या आर्थिक हों या चाहे सांस्कृतिक हों, उनसे वह बाकायदा रूबरू होते थे। उनसे मुकाबला करते थे। उन से पार पाने की कोशिश करते थे। उसको अलग-अलग नहीं देख सकते, कि सामाजिक पाखंड अलग है, धार्मिक पाखंड अलग है, राजनीतिक अलग है। नहीं! नहीं! समग्र रूप से समाज के जो सवाल थे। उन सवालों से वह रूबरू होते थे। उनको अभिव्यक्ति मिलती थी। उन पर व्यंग करते हुए, उन विसंगतियों को वह कटाक्ष करते हुए करते थे।'[28]

समाज के प्रति चिंता अलखनन्दन के रंग कर्म की एक पूंजी थी। अलखनन्दन सामाजिक सरोकारों से लैस थे । उनका रंगकर्म राजनीतिक, सामाजिक और समसामयिक प्रश्नों से जुड़े मुद्दों से टकराने वाला रंगकर्म था। वह

[27] राकेश दीक्षित का 30 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश
[28] गिरिजा शंकर का 14 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

अपने नाटकों,कविता की विषयवस्तु कथ्य ही इस प्रकार रखते थे कि उसमें धर्म,राजनीति और समाज साथ-साथ चित्रित होता जाता था। अलखनन्दन को जो भी समाज, धर्म, राजनीति के मुद्दे, प्रश्न परेशान करते थे, उनका रेखांकन, चित्रण, उनकी रंगशैली में, रंगमंच, निर्देशन में स्पष्ट झलक जाता है। धर्म, राजनीति और समाज की चीजों को अलग-अलग नहीं, एक साथ उठाते थे।

आलोक चटर्जी अलखनन्दन के प्रमुख शिष्यों में से एक हैं। अलखनन्दन के कई नाटकों में वह मुख्य भूमिका भी निभा चुके हैं। वह अलखनन्दन के रंग कर्म में समाज, धर्म, राजनीति को निम्न रूप में देखते हैं–'मैंने आपको पहले ही बताया वह स्क्रिप्ट ही ऐसी चुनते थे, जो समकालीन जीवन और समस्याओं पर आधारित होती थी। उनका ऐसा कोई नाटक नहीं है, जो इतिहास का हो। कल्पना का हो। भविष्य का हो। उनके सारे नाटक आज के ही हैं। चाहे उनका कोई भी नाटक उठाकर देख लो। 'गिनी पिग' देख लो। 'वेटिंग फॉर गोदो' देख लो। 'आधे अधूरे' देख लो। 'ताम्रपत्र' देख लो। 'चंदा बेड़नी' देख लो। वह समकालीन जीवन की ही समस्याएं हैं। धार्मिक नहीं थे और राजनीतिक रूप से वह पक्के कम्युनिस्ट थे। 'महानिर्वाण' उसका सबसे बड़ा उदाहरण है। 'महानिर्वाण' नाटक में उन्होंने हिंदू समाज में मृत्यु के बाद किए जाने वाले आडंबरों के ऊपर ही नाटक किया था। रूढ़ियों के ऊपर ही वह नाटक किया था, कि कैसे-कैसे ड्रामे होते हैं। पिंडदान से लेकर मुंडी मुड़ाने तक। 'भए प्रगट कृपाला' तो पु ल देशपांडे का एक मराठी नाटक है। वह कोई धार्मिक नाटक नहीं है। वह समकालीन नाटक ही है। आज के डॉक्टर को, आज के पुजारी को, आज के चोर को, किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। एक दर्जी को भी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। सब कृष्ण भगवान से उसकी समस्याओं का निदान पूछते हैं, तो कृष्ण भगवान खुद परेशान होकर, वापस मंदिर जाकर, मूर्ति बन जाते हैं। भैया रहने दो।'[29]

अलखनन्दन नाटक ही ऐसा उठाते थे, जिसका कथानक, कथावस्तु, कथ्य मूल रूप से आधुनिक समसामयिक जीवन मुद्दों व सामाजिक समस्याओं पर आधारित हो। इतिहास का महिमा मंडन, भविष्य का प्रारब्ध और कपोल कल्पना आधारित रंगमंच, अलखनन्दन ने नहीं किया और न ही उनका यह लक्ष्य था। उनके पांव वर्तमान की जमीन में टिके थे। वर्तमान जो जीवन है, किसान, मजदूर, विद्यार्थी, स्त्री दलित, आदिवासी का और अलखनन्दन उनकी समस्याओं के स्वरूप पर नाटक करते थे। उनके रंगमंच में समस्याओं के कारणों की तलाश मिलती है। अलखनन्दन धर्म से कोसों दूर थे किंतु, दूर होना अलग बात है। समाज में जो धार्मिक सांप्रदायिक उन्माद है, उस

[29] आलोक चटर्जी का 13 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

पर उनकी बारीक दृष्टि जाती थी। अलखनन्दन उनको अपनी भाषा, अपने रंगमंच में, अपने ढंग से निकालते हैं। उनके साम्यवाद की तरफ चटर्जी संकेत करते ही हैं।

राजकुमार कामले ने भी अलखनन्दन के कई नाटकों में अभिनय किया है। वह अलखनन्दन के निर्देशकीय कौशल में अभिव्यक्त समाज, धर्म, राजनीति पर यह टिप्पणी करते हैं–'देखिए! राम मनोहर लोहिया से प्रभावित है। उसके बाद में उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा से भी थोड़ा सा पढ़ाई लिखाई की। लेकिन, फिर मैं आपको बताऊं। अभी जो बातचीत हुई। बातचीत में आपको बताया कि दरअसल, उन्होंने जो नाटक किए हैं और नाटकों में आप उंगली उठाकर यह नहीं कह सकते कि यह तो फलानी विचारधारा का व्यक्ति है। यह तो इन्होंने फलानी विचारधारा को दिखाया। जैसे कि नुक्कड़ नाटक में क्या होता है? जिंदाबाद! मुर्दाबाद! नहीं चलेगा! नहीं चलेगा! शोषण नहीं चलेगा! इस टाइप के नुक्कड़ नाटकों में एक पर्टिकुलर विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया जाता है। उससे अलख जी ऊपर थे। उनकी कविताओं में, उनकी कहानियों में, उनके नाटकों में, जब आप देखेंगे तो उसमें विचारधारा या राजनीतिक विचारधारा सिर्फ यह मिलती है कि वह मनुष्य की बात करता है। वह व्यक्ति समाज की बात करता है। समाज और मनुष्य की बात करता है। जैसे कि और अगर उन्होंने 'विट्ठल आला रे आला' किया है। तो किसी विचारधारा के खिलाफ या किसी विचारधारा के सपोर्ट में ऐसा नहीं किया है। उन्होंने तो यह बताया है कि आज हम एक मंदिर को भी लेकर, भगवान को भी लेकर हम कितने बजे से हैं? समाज आज हमारा कहां जा चुका है? उसने तो समाज में जो चल रहा है ,उसको ज्यों का त्यों लिखा है। मतलब दिखाया है। लिखा तो पु ल देशपांडे ने है। उसकी सोच यह है कि आप यह दिखावा क्यों कर रहे हो? जैसे कण-कण में भगवान, कण-कण में राम अगर है। तो आप उस भगवान को रुटीन में क्यों बांधे रहे कि यह भगवान सुबह 7 से 3 मिलेंगे। 7 से 8 तक मिलेंगे। यह समय 5 से शाम को, 5 से 6 मिलेंगे। बाकी पर्दा बंद रहेगा। ऐसा थोड़ी कह रहा है। वह आदमी ईश्वर, भगवान या गॉड जिसको भी मानते हैं। वह तो कण-कण में है। फिर, उसको टाइम में क्यों बांध रहे हैं आप? जब आप दिखावा, जब जा रहे हो आप मंदिर या चर्च, गुरुद्वारा, मस्जिद में, उधर देखिए तो सही जहां आप जा रहे हैं। आप उस रूटीन में बंध जाओगे। उस भावना की बात है। यह क्यों उस भावना के कारण 'विट्ठल' नाटक में ,समाज में अभी क्या बन गया है, जिसका भगवान, गॉड जो भी मानते हैं। वह प्रकट भी हो गया तो उसको आप मान नहीं रहे। पहचान नहीं रहे। बोले क्या प्रूफ है? जादू करके दिखाओ! इसको गायब करके दिखाओ! इसको टच करो। सोने का बनाओ! इस तरह उसका एग्जाम ले रहे भगवान का। जितने भी भारत भवन में अलख जी के नाटक हैं। वह समाज की बात करते हैं। वह मानव की बात करते हैं। वह विज्ञान के क्या दुर्गुण हो रहे हैं? उसकी बात करते हैं। मनुष्य को किस तरह से बेहतर बनाया जा

सकता है? उन्होंने उसके लिए सारे नाटक लिखे हैं। है न? उनकी अगर परिभाषा में अगर बोला जाए, कोई भी कला जो क्लाइमैक्स है, सार्थकता है, उसमें है कि मनुष्य को और कैसे बेहतर मनुष्य बनाया जाए। इसके अलावा कुछ नहीं है। है न? उन्होंने 'मगध'किया। उन्होंने 'बांझ घाटी'किया। अभी जैसे क्या दुरुपयोग हो रहा है? क्या त्रासदी हो रही है, की बात कर रहे हैं। उसमें क्या राजनीतिक और वह क्या प्रश्नचिन्ह लगाकर छोड़ देते हैं? 'बांझ घाटी' जैसी इतनी बड़ी त्रासदी हुई है। उस पर आप सोचिए। क्यों और कैसे हुई है? है न? वह आदमी जो है 'आधे अधूरे' करता है। समाज की विडंबनाओं को, उन तमाम चीजों को दिखाता है। वहां कहां आप उसमें राजनीतिक विचारधारा ढूंढेंगे? ढूंढते हैं तो यह आपकी ग्रेटनेस है। लेकिन, वह कहीं अंडरलाइन नहीं करते। ठीक है। 'वेटिंग फॉर गोदो' में तो वर्ल्ड वार बाद कि जो त्रासदी है उसको बताया है। क्योंकि, क्लासिक नाटक है न? 'क्लर्क की मौत' में आज भी भ्रष्टाचार है। एक क्लर्क है। जो कोई नाटक चल रहा है। उसको देखने बैठा है। फिल्म देखने के लिए आता है। उसके ठीक सामने वाली सीट में उसका ऑफिसर बैठा है। ऑफिसर और क्लर्क के बीच में कितनी बड़ी खाई है कि कैसे वह गलतफहमी पैदा हो जाती है, जिससे उसकी मौत हो जाती है। गलतफहमी यह होती है, जो बैठा हुआ है सामने गंजा है, टकला सा है। पीछे दुबला पतला एक क्लर्क बैठा है। फिल्म पिक्चरवह भी देख रहा है। यह भी देख रहा है। उस क्लर्क को छींक आ जाती है। ठीक! खूब जोर से छींकता है। जो अफसर है, उसके सिर पर जो है टकले में वह चढ़ता है। वह ध्यान भी नहीं देता। वह ऐसा करके पोंछकर और फिर फिल्म देखने लगता है। लेकिन, क्लर्क का पर ,अफसर का क्लर्कों के प्रति कितना आतंक है। यह उसमें समझ में आता है। छींकने से वह क्लर्क समझता है कि अब तो मेरी नौकरी गई। मैंने उसके ऊपर छींक दिया। मेरी नौकरी तो गई। फिर फिल्म छूटती है, तो यह भी निकलता है कि, सर सॉरी मैंने जानबूझकर नहीं किया। बोला क्या बात करता है? अच्छी भली फिल्म थी। देख कर आते हैं और चला जाता है। इसको रात भर नींद नहीं आती। दूसरे दिन ऑफिस जैसे ही जाता है। दरवाजा खोलते हैं। सर मे आई कम इन? हां आइए! माफ कीजिए! मुझे माफ कर दिया आपने? बोलता है कि क्या बात कर रहा है? उसको गलतफहमी, मुझसे बात भी नहीं कर रहे हैं। इस चक्कर में उसकी मौत हो जाती है। वह मर जाता है। यह चेखव हैं। है न? याद है न आपको? चेखव कहना यह चाहते हैं मूल रूप से ,जो अफसर वर्ग बन गया है। सामान्य मनुष्यों के प्रति उसकी क्या संवेदना है? वह संवेदनाएं भी खत्म हो गई हैं। वह पूरे समय अफसर रहता है। यह पूरे समय क्लर्क रहता है। दोष दोनों का है। दोष एक का नहीं है। क्लर्क अपनी क्लर्क की मानसिकता से नहीं छूट रहा है। अफसर अपनी मानसिकता से नहीं छूट रहा है। लेकिन, चूंकी अफसर ज्यादा समझदार है। इसलिए उसको एक बार तो पूछना चाहिए, उस शख्स से तुम्हें क्या हो गया? किस बात की माफी मांग रहे हो? कभी नहीं पूछता और इसी त्रासदी में

सोचते हुए वह क्लर्क मर जाता है। है न? यह जो जितने नाटक किए हैं। फिर मैंने वही बताया कि वह कोई प्रचार के लिए वह नहीं है या उनकी विचारधारा जो है। इसमें आपको सहयोग मिलेगा। जब उनकी कविताएं और पढ़ोगे तो उसमें आप उनको, उनकी राजनीतिक दृष्टि ,आपको समझ में आएगी।'[30]

अलख की मानसिक बुनावट में कहीं न कहीं राममनोहर लोहिया, मार्क्सवाद, जयप्रकाश नारायण इत्यादि का उत्स दिखाई देता है। यद्यपि, यह उल्लेखनीय है कि यह रेखांकित नहीं किया जा सकता कि इस नाटक में राममनोहर लोहिया का प्रभाव है। दूसरे में मार्क्सवाद समाजवाद का प्रभाव है। तीसरे में जयप्रकाश नारायण विराजे हुए हैं। उनकी सामूहिक, मिश्रित विचारधारा की मिलावट, नाटकों, कविता तथा उनके मंचन में जरूर अनुमानित की जा सकती है। अलख के रंगमंच में विचारधारा बाहर से आरोपित नहीं लगती। उनकी कविता में, लेखो में, नाटकों में विचारधारा का सहज प्रवाह है। अलख के नाटकों के मंचनों की यह विशेषता है कि वह मनुष्यता की पक्षधरता का रंगमंच उठाते थे। उनके रंगमंच में, रंग-विधान में मनुष्य ही सबसे बड़ी शक्ति है। मनुष्य में भी जो संघर्षरत मानव है, जिसको मुश्किल से रोटी नसीब होती है, उसके साथ अलख का नाटककार का रूप खड़ा है। समाज की वास्तविकता से दो-चार होना, अलख की नाट्य शैलियों का हिस्सा है। धर्म को खत्म करना अलख का काम नहीं है। धर्म के नाम पर जो चल रहा है प्रत्यक्ष रूप से, अलख इन सब के विरोधी थे। मनुष्य, समाज और विज्ञान के बेवजह इस्तेमाल से अलख खिन्न हैं। मनुष्य का जीवन बेहतर बने, इसके लिए अलख का रंगमंच बेचैन दिखाई देता है। अलख के रंगमंच की, कला की सार्थकता ही मनुष्य की भलाई से जुड़ी है। सत्ता की मनमानी, त्रासदीपूर्ण स्थितियों को अलख प्रश्नांकित करते थे। अलख घटित दुर्घटनाओं के मूल कारणों को तलाश कर रंगमंच करते करते थे। समाज की विडंबनाएं उनके नाटकों के केंद्र में है।

अलख के शिष्य संजय गर्ग बड़ी बेबाकी से अपने गुरु के रंगमंच में समाज ,धर्म और राजनीति को समझाते हुए कहते हैं कि 'जैसे हर नाटक में जो बात रहती थी। जरूरी नहीं होता था कि किसी नाटक के संदर्भ में जोड़ा जाए कि इस नाटक में यह बात है। वह बहुत सारी बातें इशारों-इशारों में कहते थे। उनका इशारा नाटक के शुरू में होता था। नाटक के बाद में भी होता था। नाटक कहीं भी या कहीं गीतों में होता था। उनका जो विचार है, जो उनकी दृष्टि थी या उनकी जो राजनीतिक पृष्ठभूमि थी या वामपंथी जो सरोकार थे। वह उनके नाटकों में अपनी झलक दिखा कर चले जाते थे। वह इशारे में बोलते थे। यह नहीं बोलते थे कि हमको इस नाटक से यह शिक्षा मिलती है। कहीं ऐसा कुछ होता नहीं था। वह बड़े अपने तरीके से और दर्शक जो है, समझ भी जाता था। उनके अब आप 'राजा के स्वांग'

[30] राजकुमार कामले का 6 मार्च 2022 को जबलपुर में लिए गए साक्षात्कार का अंश

में एक नाटक है। उन्होंने डिवेलप किया था। एक जो समीर नाम का कैरेक्टर है। मैं करता था तो उसका पिता राजा था। उसको बोलता है कि भाई! तुम अब राजकाज करो तो उसका मन नहीं लगता था। फिर भी उसको राजा बना दिया जाता है। वह तो आखिरी में फिर भाग जाता है। फिर आता है तो देखता है। फिर देखता है कि यहां पूरी व्यवस्था हो गई है तो आता है। फिर बेमन से राजा बनता है। पर उसके जो स्वांगीय दोस्त हैं । आते थे। बताते थे। उसको इशारा करते थे कि राज्य में यह-यह गड़बड़ियां चल रही हैं। यह स्वांग की ताकत भी है। स्वांगिया, लोग बहुत सारी चीजें इशारों-इशारों में गांव, देहातों, चौपालों में अपनी बात कहते हैं। वह जो है, राजदंड जो होता है। राजदंड जो है एक गरीब आदमी, सबसे निचले आदमी के हाथ में दे देता है। गरीब के हाथ आप डेमोक्रेसी के साथ जोड़ रहे हैं। वह जब जोड़ रहे हैं तो यह जो है चुनाव चल रहा है। विकास के नाम पर तो कोई बात ही नहीं है कि विकास हुआ है। न हुआ है। उस पर भी कोई पक्ष-विपक्ष की कोई बात ही नहीं है। बात सिर्फ यह चल रही है। कौन किस जाति का है। जाट का कौन है? मुसलमान का कौन है या यादवों के कौन है? ब्राह्मणों के कौन हैं? यह चल रहा है तो वही चीज को, उन्होंने अपने नाटकों में 'राजा का स्वांग' में वह किया। उनके नाटकों में आता है। वह जो है, अपनी बात अपने नाटकों के माध्यम से कहते हैं। बिना किसी बहुत ज्यादा विस्तार के स्ट्रेस दिए। अपनी बात में झलक दिखा कर चले जाते हैं। उनके नाटकों में उनके विचार, उनकी राजनैतिक दृष्टि और उनका जो दर्शन है, जो उनका थोड़ा वामपंथ की तरफ लगाव या झुकाव वह उसमें दिखता है।'[31]

अलखनन्दन ने अपने रंगमंच में अपनी धर्म, राजनीति और सामाजिक सोच को संकेतों के माध्यम से रखा। उनके लेखन में, उनके नाटक, गीतों में, कविताओं में भी समाज, धर्म ,राजनीति एक अलग ही दृष्टि से आई है। उन्होंने अपनी दृष्टि का इस्तेमाल बड़ी सूझबूझ से किया है। सीधे तौर पर नहीं कहते थे कि इस नाटक से मेरा यह आशय है। इस फलाने गीत में यह विचार हैं। अलख के यहां दर्शकों के समझने के लिए गुंजाइश है। दर्शक खुद भी कुछ माथा-पच्ची करें। वह अपने लेखन, रंगमंच से, श्रोताओं-पाठकों को अभिभूत करने के साथ ही साथ सोचने-चिंतन करने पर विवश कर देते थे। जाति, धर्म, तुष्टिकरण की रोटियां किस प्रकार सेंकी जाती हैं। इसका मंचन अलख ने स्वांग शैली में किया था। वह बहुत विस्तार में नहीं, बल्कि छोटे-छोटे टुकड़ों में अपनी बात समझाते थे। उन्होंने अपनी बात को कह दिया। अब आप जानिए। अलख का चिंतन, वाम पंथ की तरफ झुकाव, उनके अनेक नाटकों में अप्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित हुआ है।

[31] संजय गर्ग का 26 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

विनय उपाध्याय सांस्कृतिक संवाददाता हैं और उन्होंने अलखनन्दन के अनेक नाटकों को प्रदर्शित होते हुए देखा है और उनमें काम भी किया है। वह अलखनन्दन के नाटकों के मंचन में अभिव्यक्त राजनीति ,धर्म और समाज को इस तरह से रेखांकित करते हैं—'देखिए ! सबसे पहली बात तो ये है कि अलख जी के नाटकों में जो वॉइस है। वह मैं ये जान पाया कि एक रंगकर्मी के रूप में कि सबसे पहली बात तो जो नाटक है। नाटक की जो विधा है। हमको सबसे पहले उसके मकसद को जानना जरूरी है। नाटक जो है, वह एक लोकतान्त्रिक विधा है। है न? जनता का ,जनता के लिए ,जनता के द्वारा। ठीक है? नाटक हमेशा यदि हम भारतेन्दु को प्रस्थान बिंदु माने, हिंदी के आधुनिक एक नाटककार के रूप में 'अंधेर नगरी चौपट राजा' तो दरअसल, आप देखें कि उस नाटक की शुरुआत, वह पहला नाटक, हमारा हिन्दी का क्या है? जो सबसे पहले सत्ता के प्रतिपक्ष में खड़ा होता है। उस पर व्यंग्य करता है। कटाक्ष करता है। वह कटाक्ष किसकी तरफ से करता है? वह जनता की तरफ से करता है। जब जनता ये सोच रही है। नाटककार ने इस नाटक को क्यों लिखा? उसने क्यों लिखा? ऐसा, इसलिए कि वह जनता की आवाज को जनता के बीच पहुंचाना चाहता है। अलख जी का यह मानना था कि नाटक जो है वह सोसाइटी की वॉइस है, वह एक सामाजिक संवाद है। वे मनुष्य की आवाज है तो मनुष्य की आवाज। यदि आप पूरी ऑनेस्टी के साथ नाटक में नहीं ले जाएंगे तो आपका जो रचनाकर्म है। आपका जो नाट्य कर्म है, उस पर सवालिया निशान लगेगा? इसलिए, हमेशा उन्होंने बहुत निर्भीक होकर रंगकर्म भी किया। उन चुनौतियों को हमेशा स्वीकार किया। जिनकी बात करें कि उसमें शायद सोशल डिस्कोर्स की बात हो, पोलिटिकल डिस्कोर्स की बात हो। कल्चरल डिस्कोर्स की बात हो, ये सारी की सारी चीजे बिल्कुल खुलकर वह नाटकों में ले जाते थे।'[32]

अलख का नाटक, रंगमंच की लोकतंत्रिकता को रंगमंच पर स्थापित करने वाला है। अलखनन्दन का रंगकर्म रूप और सामाजिक जिम्मेदारी, सत्ता की प्रतिपक्षता को रेखांकित करता है। अलखनन्दन का रंगकर्म व्यंग, कटाक्ष के माध्यम से, जनता की तरफदारी करता है । अलखनन्दन का नाटक करने, लिखने का उद्देश्य जनता की आवाज को बहरों तक पहुंचाना। अलख का विचार है कि जनता के असंतोष, उसके कष्ट, उसके संघर्ष, शोषण की आवाज रंगमंच बनकर उभरती है। अलख का रंगमंच समाज को आइना है। यदि कोई रंगकर्मी चापलूसी पर उतर आता है। चारण हो जाता है। फिर उसकी कोई पक्षधरता भी नहीं रह जाती है। इसलिए, निर्भयता, अलखनन्दन के नाट्य लेखन और प्रदर्शन की पहचान बनी। समाज, राजनीति, संस्कृति के सभी आयामों को अलखनन्दन ने अपने ढंग से रंगमंच पर उभारा है।

---

[32] विनय उपाध्याय का 9 मार्च 2022 को भारत भवन भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

रामेश्वर प्रेम प्रसिद्ध नाटककार हैं और अलखनन्दन के गहरे मित्र हैं। वह अलखनन्दन के नाटकों, उनके व्यक्तित्व, उनकी विचारधारा में, उनकी सोच में धर्म ,राजनीति और समाज की जो उपस्थिति है, उसको कुछ निम्न खूबसूरत शब्दों में बताते हैं—' देखिये! ये तो प्रोडक्शन में दिखाई देता है। कहने को तो मैं बहुत कुछ कह सकता हूँ। लेकिन, उसका कोई फायदा तो है नहीं उससे। वह तो उनसे ताल्लुक रखने वाली बातें हैं। लेकिन, वह इस सब के खिलाफ थे। वह विशेष धर्म के पक्ष में नहीं थे और न ही उनका कोई विशेष सिद्धांत था । प्रैक्टिकल थे। इसी को लेकर वह काफी काम करते थे। मैं यही कह सकता हूँ । मैंने उनके जो नाटक देखे हैं। कुछ तो विदेशी नाटक थे, जिनका देशीकरण किया गया था। 'जज' और क्या क्या? नाटक याद आ रहा है 'जज'। 'गिनीपिग' ओपेरा किया था। वह अपने काम में हबीब तनवीर से ज्यादा ताल्लुक रखते थे। कुछ ऐसा नहीं बता सकता जो प्रोडक्शन से अलग हो। जैसे प्रोडक्शन होता है और फिर उसपर बातचीत होती है। ऐसा कुछ वह नहीं कर रहे थे, जिससे बातचीत का मौका मिले। वह मौके की तलाश प्रोडक्शन में ही कर रहे थे। उनका सबसे बड़ा काम है नाटक की प्रस्तुति। उसी के तहत जो कुछ भी निकल कर आ जाय। कोई उनमें ऐसा बड़बोलापन नहीं था । वह एक प्रशिक्षु की तरह थे। रंग प्रशिक्षु जिसे कहते हैं। लगातार सीखना ही उनका लक्ष्य था। कारंत के बहुत सारे नाटकों से वह प्रभावित थे। नाटकों से नहीं तो प्रोडक्शन से,म्यूजिक से। यही सब था , जिस पर मैं एक छोटी-सी टिप्पणी कर चुका हूँ।'[33]

जब अलखनन्दन नाटकों का चयन और उनका लेखन कर चुकने के बाद, उनका प्रदर्शन अर्थात मंचन किया करते थे तो उसमें सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक जो भी तात्कालिक आधुनिक समस्याएं हैं, उन पर विशेष ध्यान, रंगमंच में दिया जाता था। एक खास तरह की वर्तमान की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक व्यवस्था जो तरह-तरह के कुकृत्य करती है और लोग समझ भी नहीं पाते हैं। उनसे सचेत, सजग बनाने में अलख हमारी मदद करते थे। किसी विशेष धर्म के रक्षक वह अपने रंगमंच में नजर नहीं आते हैं। न उन्होंने अपने रंगमंच में किसी धर्म की पक्षधरता की है। वे समाज को जागरूक करने वाला रंगमंच जरूर करते रहे हैं। उनके व्यावहारिक तरीके जरूर थे । सिद्धांत का अंबार वाला उनका रंगमंच नहीं था। पाश्चात्य नाटकों का भारतीयकरण करके, अपने स्वदेश अनुरूप बनाकर अलखनन्दन रंगमंच करते थे। उनके रंगमंच की एक अन्य विशेषता में नाटकों के स्वदेशीकरण की प्रक्रिया भी है। पाश्चात्य नाटक भी ऐसे लगते थे कि उनका लेखन भी यहीं भारत के किसी हिस्से में हुआ है। हबीब तनवीर की रंग शैलियों का अनुसरण अलख द्वारा यहां नज़र आता है अर्थात लोक का रंगमंच, लोकगीतों, लोकधुनों का, लोक जीवन का समावेश खास तौर से अलखनन्दन के यहां मिलता है। नाट्य प्रदर्शनों पर अलख का जोर ज्यादा था,

[33] रामेश्वर प्रेम का 1 नवंबर 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

बजाय किसी शैली सिद्धांत को गढ़ने की फुर्सत उन्हें नहीं थी। उनके प्रस्तुतीकरण में ही आप जितना कुछ खोज सकते हैं, खोजलें। इसके परे आपको कुछ सैद्धांतिक ऊहापोह मिलने वाली नहीं है। उनका काम ज्यादा बोलता था । वह कम बोलते थे। काम पर ही वह पूर्ण रूप से समर्पित थे। अभ्यास के दौरान कुछ ऐसा कर लेते थे कि कुछ अद्वितीय बन पड़ता था। देखने वाले देखते रह जाते थे। मुख्य रूप से उनका रंगमंच प्रदर्शन आधारित है । उन्होंने अनेक पीढ़ियां को प्रशिक्षित कर एक नाट्य पीढ़ी का सृजन किया है अर्थात वह प्रशिक्षु के तौर पर रंगकर्म करने वाले रंगकर्मी हैं।

आनंद सिन्हा, अलखनन्दन के मित्र से बातचीत के कुछ अंश। 'देखिए! कलाएं जो है न कोई हथोड़ा नहीं होती, जो चोट करें। कलाएं उन सब पाखंड राजनीतिक विद्रूपताओं के बारे में, अपनी तरह से अपनी बात कहती हैं। 'कहां काम आवे सुई कहा करे तलवार' यही उनका मतलब, अलख जी का सबसे बड़ा वह था। अपनी बात को वह किस तरह से कह देंगे! मान लीजिए। वह 'चंदा बेड़नी' का एक जो डायलॉग है। वह किस तरह से लिख रहे होंगे। वह जो रंजना बोल रहीं होंगी। अब अभिनेत्री के रूप में वह किस तरह से या उनका जो ढोलकिया जो उनका भावा है। बमबम करके। परंतु, मैंने उसके कई प्रदर्शन देखे हैं। वह जो उनका धार्मिक-पाखंड को उजागर करने का तरीका है। उसे सीधा-सीधा कह सकते हैं। उसे और थोड़ा कलात्मक भी कह सकते हैं।'[34]

धार्मिक-पाखंड और राजनीतिक विद्रूपताओं को अलखनन्दन बड़े कलात्मक मनोयोग से गढ़ते थे तथा उनका प्रदर्शन संकेत बहुत स्पष्ट रहता था। वार सीधे निशाने पर लगता था। अलख के यहां कोई दुराव -छुपाव की गुंजाइश आपको नहीं मिलेगी।

अलख के शागिर्द और भारत भवन रंगमंडल के कलाकार शरद सबल हमसे अपने अनुभव उनकी राजनीति ,धर्म और समाज पर साझा करते हुए कहते हैं कि 'राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एक प्रकार से एक कलाकार को जैसा कि होना चाहिए, उसके बारे में तटस्थ विचार ,विवेचन कलाकार का सपना होता है। होना चाहिए क्योंकि यदि वह नहीं होगा तो वह समाज को कुछ दे नहीं पाएगा। कुछ नया नहीं दे पाएगा या कुछ शुद्धतम नहीं दे पाएगा। निश्चित रूप से उनकी समाज वाली प्रगतिशील सोच थी। खुले विचारों के थे। किसी भी इस प्रकार के तथाकथित विचारों में बंधे हुए नहीं थे। जिसको कहना चाहिए कि परंपराओं में बंधे हुए कि एक परंपरा में चली आ रही। इसी को सत्य मानना है। ऐसा नहीं था। रुझान उनका प्रगतिवादी था। यही उनके नाटकों में दिखाई भी देता है । निश्चित रूप से

[34] आनंद सिन्हा का 17 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

आदमी की जैसी सोच होती है। वही उनके नाटकों में प्रतिबिंबित होगा तो ऑर्थोडॉक्स नहीं थे। कहने का मतलब बड़े खुले विचारों के थे। प्रगतिशील सोच थी और वैसा ही उन्होंने अपने नाटकों में किया।'[35]

शरद सबल का तटस्थ विचार, विवेचन से अभिप्राय उनका यानी अलख का पक्षपात रहित होना है। अलखनन्दन की जो सोच थी, वह बहुत ही कह सकते हैं, प्रगतिशील थी। विचारों में खुलापन मौजूद था। उनका विवेक सम्मत चिंतन था । परंपरा को ही आखरी सत्य मानकर नहीं चलते थे कि इसी का अनुपालन करना है। बौद्धिक और तार्किक चिंतन के उपरांत ही किसी निर्णय पर आते थे। उनका जो झुकाव था, जैसा कि स्पष्ट है कि वह प्रगतिवादी थे । यानी नवीन-विचारों, नवोन्मेष का सम्मान करते थे । वह रूढ़िवादिता के कट्टर विरोधी थे। उनके नाटकों में नाट्य प्रदर्शनों में सर्वत्र वैचारिक स्वतंत्रता के दर्शन होते हैं। उनकी कहीं भी वैचारिक कुंठा नहीं दिखाई देती।

तृतीय अध्याय में हमने अलखनन्दन के रंगकर्म में चित्रित धार्मिक-चिंतन, सामाजिक-विमर्श,जातीय-संघर्ष और जाति के प्रश्न तथा उनके राजनीतिक बोध के दर्शन विभिन्न साक्षात्कारों के माध्यम से किये।

[35] शरद सबल का 2 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

चतुर्थ अध्याय : अलखनन्दन के नाटकों का मूल्यांकन

4.1. नाट्य कृतियों का मूल्यांकन

4.1.1. राजा का स्वांग

4.1.2. स्वांग शकुंतला

4.1.3. उजबक राजा तीन डकैत

4.1.4. जगर मगर अंधेर नगर

4.1.5. सलोनी गौरैया

4.1.6. भेड़िया तंत्र

4.1.7. जादू का सूट

4.1.8. चंदा बेड़नी

4.2. मंचित नाटकों का मूल्यांकन

4.2.1. सुपनवा का सपना

4.2.2. अंडोरा

4.2.3. भगवदज्जुकम्

4.2.4. स्वांग मल्टीनेशनल

4.2.5. स्वांग शकुंतला

4.2.6. तांबे के कीड़े

4.2.7. चारपाई

4.2.8. चंदा बेड़नी

4.2.9. दौरा लाट साहब का (सत्याग्रह मोटेराम का)

4.2.10. जगर मगर अंधेर नगर

4.2.11. महानिर्वाण

4.2.12. राजा का स्वांग

चतुर्थ अध्याय : अलखनन्दन के नाटकों का मूल्यांकन

इस अध्याय के अंतर्गत यह विश्लेषित करने की कोशिश की जाएगी कि उनके प्रकाशित नाटक तथा अप्रकाशित नाटक तथा उनके नाटकों की प्रस्तुतियां जो कि दूसरे नाटककारों के लिखे हुए हो सकते हैं ,उनका अध्ययन करते हुए जो विचार शोधार्थी के समक्ष साक्षात्कारों के दौरान आए हैं, उनसे किस प्रकार घुले मिले हुए हैं और शोधार्थी की मौलिक समझ क्या बन पाई है? इसको ध्यान में रखकर इस अध्याय पर बात करने की कोशिश की जाएगी। इस अध्याय का उद्देश्य अलखनन्दन के नाटकों की वीडियोग्राफी देखकर तथा उनके प्रकाशित ,अप्रकाशित नाटक पढ़कर, मूल्यांकन किया जाएगा। लोगों को उनकी रंग शैलियां ,उसमें अभिव्यक्त सामाजिक ,धार्मिक ,राजनीतिक विचारधारा किस प्रकार अनुस्यूत है। इन सब का जायजा लिया जाएगा। देखने की कोशिश की जाएगी कि अलखनन्दन की रंग शैलियां ,उनका लेखन किस तरह से रहा है और कहां पर खड़ा हुआ है? मूल्यांकन उनके नाटकों का संपूर्णत: किए जाने की कोशिश की जाएगी, जिसमें उनकी रंग भाषा , उनकी मंच सज्जा ,वेशभूषा , चरित्रीकरण ,कविता , उनके गीत इत्यादि पर भी बराबर नजर रखने की कोशिश की जाएगी। उन बिंदुओं को विशेष रूप से रेखांकित किया जाएगा जिनका साहित्य की दृष्टि से महत्व होता। जो प्रश्न उभर कर आते हैं, उन पर भी ध्यान देने की कोशिश की जाएगी। इस मूल्यांकन से इस सत्य पर पहुंचने की कोशिश की जाएगी कि उनकी रचनाओं में क्या संदेश छुपा था? क्या वह दुनिया को बता रहे थे? क्या वह दुनिया को दिखा रहे थे? वह नाट्य साहित्य में क्या दर्ज करना चाह रहे थे? ऐसा क्या था, जो अलखनन्दन के नाटककर्म, रंगमंच को ,उनकी रंगमंच की शैली को विशिष्ट बना रहा था? इस अध्याय में वही चीजें उद्घाटित की जाएंगी जो शोधार्थी को गहरे रूप से महसूस हुई हैं। संदर्भ भी उनके नाटकों से , उनकी रंग प्रस्तुतियों की वीडियोग्राफी से , जांच पड़ताल की कोशिश की जाएगी और वही चीजें यहां पर रेखांकित करने की कोशिश रहेगी। अलखनन्दन के नाटकों पर मूल्यांकन से अभिप्राय यह है कि लगभग सभी पक्षों पर नाटक की समीक्षा ,आलोचना तथा उनके रंगमंच से गहरे रूप से रूबरू होना।

4.1 नाट्य कृतियों का मूल्यांकन

4.1.1 राजा का स्वांग

राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'वोल्गा से गंगा' में सुदास् एक कहानी है । इसी सुदास् कहानी का अलखनन्दन ने आधुनिक संदर्भों में, युगीन परिवेश स्थापित करके, इसका नाट्य रूपांतरण करने की चेष्टा की है। सुदास् कहानी लगभग 1500 ईसा पूर्व की है। बुंदेली की लोकनाट्य परंपरा में ही इस नाटक को समझना चाहिए। इसके पीछे इसकी बोली-बानी और इसके गीत, इसका परिवेश, बुंदेली-ठेठपन के नजदीक है। पात्रों का नामकरण जरूर अधुनातन लगता है। रंग गीत से इसकी शुरुआत होती है—

'हरियाली कनक भई पीरी चुनरिया।

दमके सोना खेलो उठाओ गुइंया'।[1]

यह बुंदेली धुन में ही गाया जाता है। इसमें सूत्रधार, जेठा, पूर्वा, युवक इत्यादि पात्र हैं। इसमें एक युवक थका हारा भूखा प्यासा ग्रामीण क्षेत्र में आता है और वहीं का होकर रह जाता है। उसे काम की तलाश है। वह जिस देश से आया है, वहां नौकर, गुलाम, मालिक होते है। लेकिन, जिस गांव में पहुंचा है; वहां कोई नौकर, गुलाम नहीं होता है। सब परिवार के सदस्य होते हैं। नगर से आए हुए आदमी को ग्रामीण क्षेत्र में शरण देना ही अपने आप में बड़ी बात है। भरोसा करना ही बड़ी बात है। युवा कहता है कि मैं काट, बो, जोत लेता हूं। नाचना-गाना वह जानता नहीं है। युवक का समीर नाम है । ग्रामीण जीवन का उल्लास, उत्साह देखते ही बनता है। अलखनन्दन द्वारा लिखित कुछ गीतों में यह स्पष्ट दिखाई देता है–

'सूरज को बंदौं, चंदा को बंदौं

बंदौं सुहानी बरसात री साथी मोती चुनो।

'गोरी का अंचरा हरा हरियाली

खेतों में मच रही राम दिवाली

ऐसी दीवाली में बलमा हमारे

हाथों पर धरियो हाथ रे।

साथी....

माटी है काली फसल उजियारी

भेटे अंधरिया आशा की लाली

कैसी अंधियारी हो गुइयां हमारा

---

[1] राज्य का स्वांग, अलखनन्दन, पांडुलिपि पृ.1

छूटे कभी न साथ रे

साथी....'[2]

अब जब ग्रामीण जीवन में आ ही गए हो तो स्वांग भी होंगे। नाच-गाने भी होंगे। सभी ग्रामीण मिलकर 'राजा उठा पटक का न्याय' का स्वांग करते हैं। गीत बुंदेली धुन के आधार पर होता है। यथा–

'बंट रओ है न्याय बजरिया में

घर ले आओ राजा

चार महीना धूप में झुलसे

सावन में भरके गगरिया रे

घर ले आओ राजा

बट रओ...'[3]

इस स्वांग में अलखनन्दन ने 'अंधेर नगरी' की नाटक पद्धति पर पहले फरियादी, दूसरा फरियादी इत्यादि ढंग से नाटक आगे बढ़ाया है। पहले फरियादी से नाम पूछा जाता है तो अपना नाम गोकुल दास बताता है। राजा अर्दली से पुष्टि करवाता है। वह कहता है कि यह पहला फरियादी है। राजा को इसी बात से तकलीफ है कि एक ही आदमी पहला फरियादी और गोकुलदास कैसे हो सकता है? इसलिए राजा का न्याय कहता है कि फरियादी को भी दस डंडे मारे जाएं और अर्दली को भी दस डंडे मारे जाएं। क्योंकि, इन्होंने गलत नाम बताने का काम किया है।

' राजा : साले, छः महीनों में एक बार राजा की अदालत लगती है और तूने अपने नाम का तमाशा बनाकर अदालत का दिन बर्बाद कर दिया। इस आदमी पर जुर्माना चढ़वाओ और अर्दली अपना कर्तव्य ठीक से नहीं निभा सका, इसलिए उसकी एक महीने की पगार काट ली जाए। छः महीने के लिए न्यायालय भंग। चलो।'[4]

तो किस तरह से न्याय व्यवस्था चलती है। इसका एक नमूना आपने यहां देखा। इसी तरह से उन्होंने एक ग्राम कवि के गीत को इस नाटक में दर्ज किया ,जिससे कहीं न कहीं हमें मुक्तिबोध की याद अचानक आ आती है।

'घूम घूम चक्कर बैठता है थक्कर

जगती के मेले में फंसता बुझक्कड़

[2] राजा का स्वांग, अलखनन्दन, पांडुलिपि पृ.6

[3] वही पृ.8

[4] वही पृ.12

बार-बार बाहर आ जाता रे, और जीवन जीता है।'[5]

पूर्वा और समीर में प्रेम हो जाता है। दरअसल समीर एक राजा का बेटा है। वह राजकाज से छुटकारा पाने के लिए बुद्ध के समान घर से भाग आया है। अपने मां-बाप कुटुम्ब सब कुछ छोड़ आया है। जेठा मरूत देश के बारे में जहां का समीर निवासी है, कुछ बताता है–

'जेठा : ग्राम कवि ने तो यही कहा। बड़ी रानी को भयानक बीमारी ने घेर लिया है। रानिवास में राजमाता और राज्यसभा में राजा की गद्दी पर लोगों की आंखें लगी हैं। इस खेल में पिस रही है प्रजा।'[6]

अब इस नाटक में मोड़ आता है। यह नाटक प्रजातांत्रिक मूल्यों और राजशाही, सामंतशाही के टकराव का केंद्र बनता है। दरअसल, जो समीर है, वह मरूत देश के राजा ईशान का पुत्र राजकुमार आयुष्मान है। दरअसल, सत्ता का खेल ही ऐसा है। इसे हर कोई पाना चाहता है। इसलिए, अलखनन्दन ने शासन व्यवस्था को, तंत्र को बालू का ताज कहा है अर्थात यह तो कभी भी गिर जाएगा। एक गीत के माध्यम से उन्होनें इसे बखूबी बयां किया है–

'उलट-पुलट है राजकाज
पहनो बालू का ताज
मेरे महाराज हो-हो... मेरे महाराज
शक शुबहों की चकरी घूमे
एक के पीछे दौड़ा दूजा
दो के पीछे तीन का पहिया
तीन को चौथा छुप कर देखे
चार के पीछे पांच की गाड़ी
झपट रहे हैं गिद्धराज
पहनो बालू का ताज
मेरे महाराज हो-हो .. मेरे महाराज'[7]

[5] राज्य का स्वांग, अलखनन्दन, पांडुलिपि पृ.12
[6] वही पृ.16
[7] वही पृ.21

तो यह अलखनन्दन हैं । यह उनकी रंग प्रतिभा है। समीर अर्थात आयुष्मान के पिता राजा ईशान वृद्ध हो चुके हैं। अब वह नहीं चाहते कि और राजकाज करें। समीर तो अपने पिता से यह भी कहता है कि आप अगर राजकाज प्रजापालन के लिए करते हैं, तो प्रजा को ही राज सौंप दीजिए। आयुष्मान का भाई गुणवर्धन जो कि छोटा है, उसे भी राजकाज दिया जा सकता है। लेकिन, आयुष्मान की माता देवसेना की अंतिम इच्छा यही है कि आयुष्मान ही राजा बने। राजा किसी-किसी को ही अपनी धर्मपत्नी स्वीकार करते हैं। बाकियों के साथ उनके संबंध मौज-मस्ती के नाम पर बनते हैं। जिससे, इन गैर धर्मपत्नियों के भाइयों को कुछ-कुछ पद राजा द्वारा दे दिए जाते हैं। समीर चाहता है कि प्रजा ही शासक हो, जिस पर ईशान का तर्क है कि प्रजा को एकाएक शासन नहीं सौंपा जा सकता क्योंकि राजा और प्रजा के बीच कई डाकू होते हैं। राजा ईशान जानता है कि यदि आयुष्मान राजा नहीं बना तो उसकी वंश परंपरा खत्म हो जाएगी। इस पर समीर बहुत अच्छा जवाब देता है। यदि हम वंश के बंधनों से मुक्त हो जाएं तो बाहर बहुत बड़ा संसार है। अर्थात हमें आम नागरिकों पर जुल्म ढाने का कोई हक नहीं है। समीर को उत्तराधिकार तो दिया जा रहा है, लेकिन वह यह अधिकार किसी और को भी तो सौंप सकता है? प्रजा समीर को राजदंड सौंपती है। जब प्रजा से समीर द्वारा हाल-चाल पूछा गया, तो हर सवाल का जवाब यही था कि सुखी हैं हम। दरअसल, यह एक परंपरा है।

'समीर: हर बात पर प्रजा का कंकाल कहता है सुखी हैं हम, सुखी हैं हम। इसलिए राजधर्म वही होगा जो राजधर्म होना चाहिए। क्योंकि देखना होगा कि प्रजा के सुख के विरुद्ध कौन-कौन दुखी है, इसलिए जो नहीं होना चाहिए वह राजधर्म नहीं होगा।'[8]

राजा के सिंहासन पर बैठकर आयुष्मान ऐसे-ऐसे प्रश्न अपने मंत्रियों से करते हैं कि मंत्री थर-थर कांपने लगते हैं। निरुत्तर हो जाते हैं। जैसे मंत्री कहते हैं कि अभी आपके पिता की मृत्यु को दस दिन पूरे नहीं हुए। अभी हम आपके आमोद-प्रमोद के लिए और गंभीर राजकाज की व्यवस्था नहीं कर सकते। इस पर राजा आयुष्मान कहता है कि महादंड नायक कितने दिनों से शौचालय नहीं गए? कितने दिनों से भोजन नहीं किया? कितने दिनों से राज्य के करोड़पतियों के साथ बैठकर शराब नहीं पी? राजकोष तो खाली पड़ा है। समीर कहता है। अपने घरों से स्वर्ण मुद्राएं लाकर राजकोष भर दीजिए। महामंत्री का हिसाब कौन रखता है? राजा! राजा का हिसाब कौन रखता है? ईश्वर! और ईश्वर का हिसाब कौन रखता है? राजा को यह भी मनाही है कि वह यूं ही सड़क पर किसी से नहीं मिल सकते हैं? नाचने गाने वालों से तो बिल्कुल नहीं? दरअसल स्वांग करने वाले सड़क पर आते हैं।

[8] राजा का स्वांग, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.27

‘समीर : जब इतने सारे गरिमामय राजा लोग भड़ुओं, दलालों और डकैतों के साथ हंस-हंसकर बातें कर सकते हैं, रात्रि भोज उड़ा सकते हैं तो एक राजा नीच नाचने वालों से क्यों नहीं मिल सकता। उन्हें यहीं बुलाओ। राजसभा में गणिकाएं आ सकती हैं, आप हो सकते हैं तो वे क्यों नहीं?’[9]

इससे पता चलता है कि अलखनन्दन आम जनता की तरफदारी करने वाले रंगकर्मी हैं। राजा आयुष्मान (समीर) यह बात अच्छे से जानता है कि स्वांग कौन करता है। वह जानता है कि मैं राजा हूं। मैं राजा का स्वांग करता हूं। यह महामंत्री हैं। महामंत्री का स्वांग करते हैं। जो महादंडनायक हैं, वह महादंडनायक का स्वांग करते हैं। स्वांग वाला राजा, जब राज्य की स्वास्थ्य व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था इत्यादि के बारे में सवाल पूछते हैं तो उनका मंत्री जवाब देता है —

‘मंत्री - चकाचक महाराज, इतने अस्पताल काम कर रहे हैं! इतने अस्पताल काम कर रहे हैं कि अस्पताल पर अस्पताल काम कर रहे हैं। एक सौ इक्यावन मुर्दाघर खुल गए हैं। महाराज मोड़ा-मोड़ी पढ़े जा रहे हैं, पढ़े जा रहे हैं! पढ़तई चले जा रहे हैं। इतना पढ़ गए कि सब साक्षर हो गए। आइए महाराज, यह पहला अस्पताल है। यहां रोगी से पैसा लिया जाता है। तब नाम लिखा जाता है फिर नाड़ी फाड़ी जाती है। हर रोगों के लिए अलग-अलग (अस्पताल)। उपरोगों के लिए अलग। सहायक रोगों के लिए अलग। खुले में इलाज की व्यवस्था है। राजन! इससे बड़ी जगह बचती है। और हम गरीबों के लिए प्लाट्स कटवा देते हैं। यह लीजिए पचास सोने की मोहरें। वैसे तो राजन हमारे राज्य में मंत्री से रोगी से लेकर पहलवान तक सभी निरोगी हैं। और जो रोगी हैं वो इतने भोगी हैं कि भोग भोग कर भ्रष्ट हो गए हैं। इसलिए हम उन्हें अस्पतालों के पास भटकने भी नहीं देते।’[10]

तो यह उस स्वांग के कुछ अंश थे, जो राजा समीर के सामने प्रदर्शित हुये। यह सब देखकर राजा समीर की आंखें खुली की खुली रह गईं। राजा का राजकोष खाली हो गया है। वह मंत्रियों को राजकोष भरने का आदेश देता है। राजा समीर ने स्वांगियों के माध्यम से राज्य की वस्तुस्थिति जान ली है। कितना भ्रष्टाचार है! कितनी लूट-खसोट मची हुई है! कथा को विस्तार देने के लिए कुछ अवांतर पारिवारिक प्रसंगों से नाटक को अलखनन्दन आगे बढ़ाते हैं। हम विस्तार भय से बचने के लिए इन सब को छोड़ रहे हैं। विरोध प्रदर्शन का रूप ‘उजबक राजा तीन डकैत’ में मिलता है और ‘राजा का स्वांग’ में भी। इसमें कुछ सांप्रदायिक सवाल भी अलखनन्दन ने उठाए हैं। जैसे

[9] राजा का स्वांग, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.30

[10] वही, पृ.32,33,34,35

कि ईश्वर के लिए अलग-अलग समुदाय, एक ही चिन्ह के लिए लड़े-मरे जा रहे हैं। समीर का छोटा भाई यह सब देखकर राज्य छोड़कर भाग जाता है।

जस राजा तस प्रजा राजतंत्र में यही चलता है। किसी में राज चलाने की योग्यता है कि नहीं, लेकिन जन्मजात और वंशानुगत आधार पर वह हैं। राज्य की व्यवस्था में बने हुए हैं। बने रहते हैं। किसी को चिकित्सा का ज्ञान है तो वह महादंड नायक बना बैठा है। राजा ईशान ने वैद्यराज को बंदी बनवाया, क्योंकि उसके बेटे उससे असहमत थे। राजा वैद्य की सहायता से उनके खाने में विष मिलाना चाहता था। ताकि ,उनका क्रोध ठंडा हो सकें। जो ज्यादा जागते हैं, वह ज्यादा सो सकें। जो ज्यादा बलशाली हैं, वह शक्तिहीन हो सकें। राजशाही चलाने के लिए जितने भी हथकंडे अपनाए जा सकते हैं, राजाओं द्वारा अपनाए जाते रहे हैं। उन्हें हर तरह के तरीके आते थे। मसलन सूत्रधार हमें सब कुछ समझा देता है—

'सूत्रधार : फिर राजा ने राज्य के असहमत और जागृत लोगों से दोस्ती का स्वांग किया। आश्वासन दिए कि राज्य की व्यवस्था बदली जाएगी। राजमहल में उनकी आवाजाही हुइ, वे राजमहल के सुगंधित भोजन का आनंद लेने लगे जिसमें मिलाया जाता था महाभ्रांति का विष। उनमें परिवर्तन हुआ, वे अधिक सोने लगे और अशक्त हो गए, फिर उनकी आदतें बदली, चरित्र बदला और शुरू हुआ नैतिक पतन का अंधेरा अध्याय उनका विवेक समाप्त होने लगा, वे लोभ लालच के भंवर में गिरते गए अपने घरों समाज से उनका मन उचटने लगा। भोर से सांझ फिर देर रात तक वे राजमहल की देहरियों पर माथा रगड़ते पागल हो गए। धीरे-धीरे पर गायब होने लगे। अकेले, समूहों में और एक दिन कोई नहीं बचा। उनके वियोग में रोते बिसूरते उनके परिजनों की आंखें पत्थर हो गईं। तीन पीढियों के नष्ट हो जाने के बाद राजा ने एक बार घर-घर मुआवजा बटवाया तभी से प्रजा कहने लगी सुखी हैं हम, जिससे कहीं फिर उनके बच्चे भाई पति पिता गायब न होने लगें और इस दस्यु को बना दिया गया महादंडनायक।'[11]

इस तरह से हम कह सकते हैं कि यह नाटक बहुत ही राजनीतिक चेतना से भरा हुआ है। एक तरह से कह सकते हैं कि अन्यायी राजा का पुत्र समीर था लेकिन, न्याय प्रिय। उसने न्याय की कसौटी पर अपने पूरे परिवार को परखा था। केवल शासन चलाने के लिए समीर के पिता ने प्रश्न करने वाले सचेत प्राणियों की तीन पीढ़ियों को जिंदा गड़वा दिया था। उनकी समाधियों पर ही कोषालय बना दिया गया। अब कोषालय पर ही ईश्वर प्रकट होते हैं और उसे मंदिर का रूप दे दिया गया है। इस नाटक में सामंती व्यवस्था की धज्जियां उड़ाई गई है। राजा समीर अपने बुद्धि

[11] राज्य का स्वांग, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.48-49

विवेक से राजतंत्र को गणतंत्र और प्रजातंत्र में बदलने के लिए तत्पर होता है। वह शासन की नई विधियां, प्रविधियां खोजता रहता है–

'सूत्रधार: नया प्रजाकोष बनेगा। राजसभा नहीं होगी प्रजा पंचायत होगी प्रजा पंचायत राजकाज देखेगी। महामंत्री नहीं होगा। प्रजा प्रधान होगा। प्रजा कोष चलाने के लिए प्रजा रक्षकों का चुनाव होगा। प्रजा रक्षक प्रजा प्रधान चुनेंगे। राजा समीर अपने हाथों प्रजा को राजदंड सौंपेंगे। राजा रहेगा पर नहीं रहेगा। रहेगा राजा को स्वांग सुने सुने...'[12]

नाटक का नायक समीर और नाटककार अलखनन्दन जनता को मजबूती देने के लिए तत्पर है। लेकिन, अनियंत्रित जनता का राजदंड चोरी हो जाता है। सभी प्रजा रक्षक अपने हाथ में राज दंड बना लेते हैं। हर कोई मुखिया होना चाहता है। अपने-अपने समुदायों के ,जातियों के, पंथों के सब के राजदंड हो जाते हैं। प्रजा कोष बंट जाता है। लूट लिया जाता है। प्रजा इतनी बिखरी हुई है, इतनी बंटी हुई है कि अलखनन्दन का नाटक का रूप खिन्न हो जाता है। प्रजा बहुत बड़ी संख्या में है। उसके दुख भी अनगिनत हैं। प्रजाकोष निरंतर खाली हो रहा है। अब या तो राजा को नोंच कर प्रजाकोष भर लो या प्रजा को नोंच कर ही प्रजाकोष भर लो। समीर सोचता है कि—

'बच्चों की पुस्तकें नोंच खाते हैं। राजा और प्रजा के नाम पर देवालय का चंदा नोंच खाते हैं। राजा और प्रजा के नाम पर असक्त वृद्धों का हिस्सा खा जाते हैं। निरीह पशुओं का आहार नोंच खाते हैं। राजा और प्रजा के नाम पर'[13]

इस नाटक में अलखनन्दन ने मुक्तिबोध की कविता 'ओ मेरे आदर्शवादी मन ओ मेरे सिद्धांतवादी मन' का प्रयोग किया है। अलखनन्दन ने एक गीत के माध्यम से इस व्यथा को व्यक्त किया है–

'देखो देखो देखो
जादू की डंडी का खेल देखो
नटनी का नाच देखो सोने की लंका देखो
माया की नगरी देखो
यह झंका मंका देखो।' [14]

[12] राज्य का स्वांग, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.53
[13] वही, पृ.58
[14] वही पृ. 64

एक बार फिर अलखनन्दन स्वांग के कलाकारों के माध्यम से जमूरे-उस्ताद का खेल दिखाते हैं। प्रजा पंचायत अर्थात प्रजा के व्यापार की मंडी अर्थात प्रजातंत्र। प्रजातंत्र में भी तो सबसे धनवान व्यक्ति चुनकर जाते हैं। गुंडे और पढ़े-लिखे गुंडे मिलकर प्रजातंत्र चलाते हैं। व्यवस्था वही रहती है केवल राजा बदलते हैं।

4.1.2 स्वांग शकुंतला

यह नाटक कालिदास के शाकुंतलम् की पैरोडी है और अलखनन्दन ने इसे अपने ढंग से युग अनुरूप युगीन परिस्थितियों और यथार्थ का तड़का लगाकर इसे तैयार किया है। उन्होंने खुद ही नटी के माध्यम से कहलवाया है कि "लगभग वही पुरानी स्टोरी है पर नए लेखक की नजर छिछोरी है"[15]

इसमें सूत्रधार नटी, ड्राइवर, दुष्यंत, युवक बैशाखनंदन, शकुंतला, अनसूया, कण्व प्रसाद, प्रियंवदा, गौतमी, माधो और मुन्ना इत्यादि पात्र हैं। यह मार्च 2005 में नटरंग पत्रिका के 73वें अंक में पृष्ठ 5 से 27 तक प्रकाशित है। पत्रिका का प्रारंभ इसी नाटक से होता है। बहुत ही व्यंग्यात्मक और राजनीतिक अंदाज में अलखनन्दन ने सूत्रधार से निम्न प्रार्थना करवाई है–

"जल जो आजकल
कहीं शुद्ध नहीं मिलता
अग्नि जो भगिनियों को
जलाने के काम आती है
यजमान
यानी सास, ससुर, देवर, ननदें
बहुओं की आहुति चढ़ाते हैं
समय के बारे में
भ्रांतियां पैदा करते
आधुनिक चंद्र सूर्य
विश्व पर छाया हाहाकार करता प्रदूषित आकाश

[15] स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, सं. नेमिचन्द जैन पृ.7

प्राणियों के प्राण हरतीं

गैस भरी हवाएं

अमेरिकी फार्मूले में

बनी खाद से

जहरीली होती धरती

काले पड़ते खेत

इस समस्त रूपों में उद्भासित

जो न्यूयॉर्क निवासी एक राक्षस जी हैं

वो हम सब की रक्षा करें

क्योंकि हे राक्षस जी

आप ही सुर हैं और

आप ही असुर

खुदा हैं आप ही

आप ही शैतान हैं"[16]

इसके बाद अलखनन्दन के लपेटे में मंत्री, तस्कर,सेठ सब आ जाते हैं, जो कहीं न कहीं भारत नाम के देश की सेवा तो करते हैं लेकिन सेवा के अलावा भी बहुत कुछ करते हैं। एक तरह से अलखनन्दन दर्शकों से संवाद करते हैं। इसे नाटक का पूर्वरंग कहा जा सकता है। नाट्य समूहों और सरकार की सांस्कृतिक संस्थाओं की आपसी साँठ -गांठ को अलखनन्दन ने उधेड़ के रख दिया है–

"जब तक इन सेठों की टोली

मंत्री, अफसर और हमजोली

खुश ना हों तब तक ओ भोली

चाहे कितनी करो ठिठोली

ग्रांट कहां से आएगी?"[17]

---

[16] स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, सं. नेमिचन्द जैन, पृ.6

[17] वही, पृ.6

यह नाटक हंसी-मजाक, व्यंग, हास्य इत्यादि भाव-भूमि पर आगे बढ़ता है और सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक विद्रूपताओं पर चोट करता चलता है। जैसे नटी एक गीत गाती है तो सामाजिक यथार्थ हमारे सामने प्रकट होता है–

"आई गर्मी की बहार
अब हम होंगे जार-जार
पिछले साल नहीं हुई वर्षा
अब किल्लत होगी पानी की
जनता की गगरी सूखेगी
छलकेगी राजा रानी की
लू से लोग मरेंगे छम-छम
चलेंगे बीयर बार
आई गर्मी की बहार
पावर कट से पंखे बंद
उखड़े देहों के पैबंद
खुजा-खुजा चटपटी घमौरी
भूल गए कभी लिखना छंद
आई गर्मी की बहार"[18]

अब नाटक शुरू होता है, दुष्यंत कुमार किसी आधुनिक सामंत, जमींदार, सामंती ठाट-बाट के साथ जीप पर सवार है और हाथ में बंदूक लिए कुत्ते के पीछे जीप दौड़ाता हुआ आता है। अलखनन्दन ने कण्व ऋषि को आधुनिक हेड मास्टर स्कूल मास्साब बनाकर चित्रित किया है। अलखनन्दन ने दुष्यंत को एक लंपट नायक के रूप में उभारने की कोशिश की है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था पर भी अलखनन्दन तंज करते हैं। वह इसका हृदय विदारक रूप उपस्थित करते हैं तथा वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर प्रश्न चिन्ह अंकित करते हैं। आधुनिक युगबोध, युगीन यथार्थ इस नाटक के केंद्र में है। यह नाटक वस्तुत: बहुत ही प्रासंगिक नाटक है।

"दुष्यंत: तो यह रहा स्कूल

[18] स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, सं. नेमिचन्द जैन, पृ.6-7

एक तरफ

भैंसिया बंधी है, गोबर का पर्वत है,

मच्छर आबाद हैं और दूसरी ओर

बिखरे हुए चारे के गट्ठों को

कुछ विद्यार्थी जमा कर रहे हैं

एक टूटी दीवार की आड़ में

दो विद्यार्थी

एक ही बीड़ी से

आपस में सुट्टे लगाते हैं

चटाइयां घेरकर बनाई गई आड़

स्कूल के मूत्रालय की

तरह जान पड़ती है

बरामदे में कुछ विद्यार्थी

कान पकड़कर खड़े हैं

कुछ घुटने टेके

कुछ मुर्गों का रूप लिए

बाकी जमीन पर बैठे हुए

एक ही शब्द

चीख चीख कर दुहराते हैं

और एक अधेड़ पुरुष

सबको धमकाता हुआ बार-बार

हवा में छड़ी को लहराता है

यह स्कूल नहीं तो और क्या है?"[19]

[19] स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, सं. नेमिचन्द जैन, पृ.9

कण्व ऋषि की छात्राएं शकुंतला, प्रियंवदा, अनसूया इत्यादि कामशास्त्र की पुस्तक चुपके-चुपके पढ़ती हैं। अलखनन्दन ने सहज और सरल भाषा में, चुटीले अंदाज में इस नाटक को लिखा है। जितनी चंचल शकुंतला है, उससे कहीं ज्यादा उतावलापन दुष्यंत के अंदर भरा हुआ है। पहली बार जब शकुंतला का सामना करता है तो वैद्य बनकर करता है।

"दुष्यंत: देखिए मैं एक वैद्य हूं किंतु मुझे दादा का रूप धारण करना पड़ता है क्योंकि नर्सों के चक्कर में लुच्चे-लफंगे हमारे औषधालय के आस-पास डेरा डाले रहते हैं। इसके अलावा कलेक्टर साब ने पंद्रह गांव के स्कूलों की देखभाल का काम भी मुझे सौंप रखा है। यह स्कूल भी मेरे क्षेत्र में आता है। सो इसका मुजरा लेने चला आया"[20]

दुष्यंत शकुंतला के प्रति अत्यंत आकर्षित हो जाता है । उसकी काम चेष्टाएं बढ़ती जाती हैं और यहां शकुंतला भी उस पर मुग्ध है। यह नाटक जबलपुरिया हिंदी और कहीं-कहीं बुंदेली शब्दों को लिए हुए है। जैसे इत्ता जादा,बहोतइ,पइसे। इसमें छात्र राजनीति, लोकसभा चुनाव तक की खबर ली गई है। स्कूलों में किस प्रकार धांधली होती है, इसकी ओर भी अलख का यह नाटक इशारा करता है। गांव में चुनाव के समय किस प्रकार राजनीति काम करती है। इसका भी अलखनन्दन ने जिक्र किया है। पार्टी-पार्टी खेलते खेलते लाठी-जूते तक चल जाते हैं । जो स्कूल की मांग कर रहे हैं, उन्हें पीटा जा रहा है। साक्षरता अभियान का नाटक करके, ठेकेदारी करके अपनी जेबें लोग भरे जा रहे हैं। नाटक का कथाक्रम बड़ा ही रसग्राही, आनंददाई ढंग से आगे बढ़ता है। प्रियंवदा और अनसूया दोनों मिलकर, दुष्यंत को पत्र लिखने के लिए, शकुंतला को मजबूर कर देती हैं–

"सजन तेरी अखियां
गड़ गई छतियों में
दिन भर तेरी याद सतावे
नींद न आए रतियों में
दिल धड़के, तन चटके
मन बन-बन में भटके
सांस गरम तपती सी
लगें खटाखट झटके
बातें न बने कौनो बतियों में

[20] स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, सं. नेमिचन्द जैन, पृ.11

सजन तेरी अखियां..."[21]

शकुंतला का गंधर्व विवाह आधुनिक रीति रिवाज से जरूर होता है। प्रियंवदा, अनसूया यह व्यवस्था कर देती हैं, जिससे विवाह की वीडियोग्राफी हो जाती है। ताकि, भविष्य में दुष्यंत शकुंतला को धोखा न दे सके। उधर गौतमी नाराज, इधर राजधानी से लौटकर कण्व प्रसाद नाराज। लेकिन, करते भी तो क्या करते बेचारे? बीड़ियां पीते रहे, भांग पीते रहे लेकिन शकुंतला तो गर्भस्थ हो गई थी। उन्हें इस विवाह को स्वीकृति तो देनी ही थी, सो दे दी। कण्व प्रसाद के आशीर्वाद में भी वर्तमान राजनीति अलखनन्दन ने घुसेड़ दी है।

"कण्व प्रसाद: बेटी ससुराल में तेरी वही अति मर्यादित स्थिति हो जो प्राय: मालगुजारों के घर स्त्रियों की होती है। और तेरा पुत्र ग्राम पंचायत की सीमाओं का अतिक्रमण कर विधानसभा तक पहुंचे"[22]

मास्टर जी सोचते हैं कि अच्छा हुआ दहेज से बच गए। उनका यह भी सोचना है कि अगर इस विद्यालय की ग्रांट बढ़ी तो दामाद जी को सूमो खरीद देंगे। शकुंतला को सौतगिरी और विनम्रता का पाठ देते हैं तथा सब कुछ सहन करने के लिए भी कहते हैं। दादा दुष्यंत कुमार के घर पहुंचाने के लिए शकुंतला को भेजते हैं। लेकिन, दुष्यंत इन सबको पहचानने से इनकार कर देता है। शकुंतला अंगूठी दिखाती है। मगर दुष्यंत सिंह को कोई फर्क नहीं पड़ता। शकुंतला के पास पर्याप्त साक्ष्य हैं, जिससे वह साबित कर सकती है कि विवाह दुष्यंत सिंह से हुआ। क्योंकि वह आधुनिक नारी है। अलखनन्दन ने इस नाटक को पूरा लोक का बना दिया है। इस नाटक में हिंदी को भी स्वदेशी ग्रामीण भाषा के नजदीक लाकर खड़ा कर दिया है। दुष्यंत जनपद अध्यक्ष भी है और बदमाशों का सरगना भी है। इस नाटक में अलखनन्दन ने ताहिर नामक पात्र सृजित किया है, जिससे दुष्यंत सांप्रदायिकता का रूप दे सकता है। अलखनन्दन ने इसका संकेत किया है।

"दुष्यंत: इसे कहते हैं तिरिया चरित्तर। तुम्हारी तो... ऐसी तो साली पचास अंगूठियां कोई भी सुनार सराफे में बना देगा और पचास बार खोद देगा मेरा नाम। मैंने कह दिया है मैं चूतिया नहीं बन सकता चाहे कितने छल-छंद करो। शकुंतला : सराफे के सुनार ऐसी पचास अंगूठियां बना सकते हैं, पचास बार खोद सकते हैं उनपे तेरा नाम लेकिन वीडियो कैमरे में सूअर-सूअर दिखता है और आदमी आदमी। लुच्चे, मैंने भी कच्ची गोलियां नहीं खेलीं। शादी का

[21] स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, सं. नेमिचन्द जैन, पृ.15
[22] वही, पृ.17

पूरा ड्रामा खींच लिया है गट्टू भैया ने अपने केमरे से। तुझे तो मैं जनपद, जिला, प्रदेस, देस, विदेस सबके सामने नंगा करूंगी। धोखेबाज, कमीने, कोढ़ी…"[23]

अच्छा जिसने वीडियोग्राफी की गट्टू यानी गणपत लाल। वह पहले दुष्यंत सिंह का ही सीईओ था। वह गांजा, चरस, हेरोइन नेपाल से मुंबई और मुंबई से नेपाल भेजता था। विधानसभा चुनाव की वजह से, दुष्यंत सिंह ने उसे मुंबई भागने पर मजबूर कर दिया। शकुंतला पर ही सब लोग थू-थू कर रहे हैं। इधर नाटक में क्लाइमेक्स आता है कि जो फोटोग्राफर है, वही महात्मा बाबा स्वामी अंतर्यामी बापू बनकर अपना आध्यात्मिक धंधा शुरू करता है और चमत्कार से जनता को अपना गुलाम बना लेता है।

"अंतर्यामी: बाबा पक्का अंतर्यामी

कौन है सज्जन

कौन कमीना

जानत कौन हरामी

बाबा पक्का अंतर्यामी

चोर कौन मन

मोर कौन है

को है विषयी-कामी

बाबा पक्का अंतर्यामी

कौन है कागा

कौन कोयलिया

पाप देश का गामी

बाबा पक्का अंतर्यामी।"[24]

आधुनिक समय में बाबाओं का धंधा बहुत फल-फूल रहा है। उनके बड़े-बड़े आश्रम देश में फैले हैं। हजारों एकड़ जमीन पर उनका कब्जा है और राजनीति में भी वह रसूखदार बन गए हैं। महिलाएं भी बड़ी संख्या में इन बाबाओं के चंगुल में फंस जाती हैं। उसको लेकर भी अलखनन्दन का यह नाटक तंज कसता है। यह नाटक बाबाओं

[23] स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, सं. नेमिचन्द जैन, पृ.19-20
[24] वही, पृ.22

के गोरखधंधे की बखिया उधेड़ता है। दूध, फलों का रस, छाछ कुछ भी नहीं पीना है। सिर्फ प्रभु रस पीना है और लुट जाना है। कैंसर, टीबी, डायबिटीज, ब्लड प्रेशर सबसे मुक्त हो जाओगे? बाबा अंतर्यामी शकुंतला को कन्वेंस कर लेता है, कि तेरे कोख में जो बच्चा पल रहा है, वह प्रभु का अवतार है और तू अंतर्यामिनी बन कर रह। गट्टू ने नोएडा से नाटक करने का प्रशिक्षण लिया था और उसने प्लास्टिक सर्जरी भी करवा ली थी, क्योंकि उसे पता था दाढ़ी और केश बढ़ाकर प्रवचन और बाबा गिरी से अच्छे धंधे कोई नहीं है। अंतर्यामिनी घोषित होते ही शकुंतला को पुत्र जन्म हुआ, जिसे बाल भगवान कहकर प्रचारित किया गया। कहा गया कि शकुंतला ने जनकल्याण के लिए समाधि ली है। बाल भगवान को देखने के लिए आश्रम में भीड़ लग गई। विधानसभा चुनाव आने वाले थे, तो दादा दुष्यंत सिंह भी दर्शन करने के निमित्त आए। दादा दुष्यंत सिंह अंतर्यामिनी के चरणों में गिर जाता है। अंतर्यामिनी दुष्यंत सिंह की नाक, कान ,जीब, आंख की मांग करके बाल भगवान को अर्पित करने को कहती है। कहती है कि तूने शकुंतला के साथ पाप किया। इसलिए, प्रायश्चित जरूरी है। तभी तेरी चुनाव में विजय होगी। इसके बाद कभी प्लास्टिक सर्जरी मत कराना, नहीं तो तेरे बाकी अंग भी कट के गिर जाएंगे। इस प्रकार दुष्यंत का धंधा बंद हुआ। शकुंतला का धंधा चालू हुआ। उसने कण्व प्रसाद के पास धन पहुंचा दिया ,जिसे उन्होंने भैंसे खरीद कर, डेरी फार्म खोले और साक्षरता मिशन की कमाई से, टाटा सुमो खरीदी। उधर ताहिर और बृजनंदन की मुंबई दंगों में हत्या हो जाती है। यह नाटक सांप्रदायिकता पर भी तीखे रूप से हमलावर रहा है। शकुंतला बाबा अंतर्यामी के साथ सेटल हो जाती है। नाटक ब्रेख्त की पद्धति का अनुसरण करता है। यह नाटक बुंदेली लोकनाट्य स्वांग के निकट है। अंत में एक गीत के माध्यम से नाटक खत्म होता है, जो संदेश सूचक और चेतावनी भरा है–

“गीत : खत्म हुआ नाटक अब तो

अपने-अपने घर जाओ

सोते-जगते

चलते -फिरते

धक्के-मुक्के खाओ

संभल के कोई जेब न काटे

चलते फिरते टांग न खींचे

देख के कोई मूंछ न काटे

बचा के कोई लांग न खींचे

बचे हुए ताहिरों-ब्रजों को

बढ़ो, बचाओ

खत्म हुआ नाट..”[25]

4.1.3 उजबक राजा तीन डकैत

यह नाटक सन 2016 में मेधा बुक्स द्वारा प्रकाशित है। ब व कारंत की याद में मंजूर एहतेशाम, एचएस शिवप्रकाश के लिए यह नाटक अलखनन्दन ने समर्पित किया था। नवोदय विद्यालय में ‘शिक्षा में रंगमंच’ परियोजना के अंतर्गत झारखंड में अलखनन्दन ने हैंस क्रिश्चियन एंडरसन की कहानी ‘दी एम्परर्स इन न्यू क्लॉथ्स’ का नाटक रूपांतरण किया। इसके अनेक नाम हैं जिसमें राजा रेशम लाल के नए कपड़े, जादू का सूट(वयस्कों द्वारा बच्चों के लिए),अड़हा राजा तीन डगरा(छत्तीसगढ़ी रूपांतरण), उजबक राजा तीन डकैत उर्फ स्वांग मल्टीनेशनल इत्यादि।

देश का सामंत वर्ग किस प्रकार से संसाधनों का दुरुपयोग करता है। स्वदेशी चीजें उसे नहीं चाहिए। उसे ऐसी चीज चाहिए होती हैं, जो किसी के पास न हों। सिर्फ उसके पास हों। उसे कुछ अलग दिखना चाहिए। इसलिए, ऐसे लोगों के घरों में विदेश की वस्तुओं का मूल्य ज्यादा होती है और स्वदेशी चीजों को यह लोग गवारों के लिए आवश्यक मानते हैं। वह हर समय नए कपड़े पहनना चाहते हैं। उन्हें धुलवा कर नहीं पहन सकते। उन्हें घबराहट होने लगती है। सामंत शाही कितना खौफ का माहौल रखती है। इसका एक उदाहरण यहां दिया जाता है–

“दूत: सावधान अरना खेड़ा के महाप्रतापी सम्राट, राजा रेशम लाल, प्रजा दरबार में दर्शन देने आते हैं। दर्शनाभिलाषी कतार में दाएं और बाएं हो जाएं। कोई अपनी तरफ से कुछ न बोले, न मुंह खोले। जब तक महाराज न पूछें, जवाब न दें, जब तक आज्ञा न हो, सवाल न करें। चीखना, चुप होना, छींकना, खंखारना, हंसना-रोना सब बंद…”[26]

देश की प्रजा का चाहे जो हाल हो, लेकिन देश को नेतृत्व देने वाले लोग अपने देश को चाक-चौबंद पेश करते हैं। उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि देश में सूखा हो, बाढ़ हो या चाहे अन्य समस्याएं। एक नाट्य गीत इस नाटक का देखिए–

“सुनो कहानी सुनो रे भैया

---

[25] स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, सं. नेमिचन्द जैन, पृ.27

[26] उजबक राजा तीन डकैत, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2016, पृ.15

राजा रेशमलाल की

जनता भूखों मरती,

इनके हाथ घोड़ा पालकी

दिनभर ओढ़ें, दिन भर पहनें

मौज मजे के क्या हैं कहने

कच्छा मोर पंख का पहने

जूती मृग के खाल की,

बाढ़ उठे या पड़े अकाल

नाच रहे हैं रेशम लाल

रैयत मुरझाए दिन दूनी

लाली उनके गाल की"[27]

जब हमारे देश में विदेशी शासक, कंपनियों के मालिक आते हैं तो हमारे देश के रहनुमा पानी की तरह पैसा बहाते हैं और हकीकत को छुपाते हैं। विदेशी शासक के सामने, स्वदेशी शासक के कपड़े कमतर नहीं होने चाहिए। नहीं तो जनता में क्या संदेश जाएगा? शासन यही सोचने में चिंता मगन है, कि सोने के कपड़े पहनें या चांदी के कपड़े पहनें या हीरे के कपड़े पहनें?

"मंत्री: चार ट्रक दारू, बीस दर्जन देसी मुर्गे, आठ दर्जन नाच पार्टी, चार दर्जन गायक कलाकार, सात स्टार नाईट, मिस कैपिटल कंपटीशन, मिसेज कैपिटल कंपटीशन, चौदह मॉडल शो, दस दर्जन डांसिंग आर्केस्ट्रा.."[28]

स्वदेशी,हथकरघा, छोटे और मध्यम लघु उद्योगों में, देश के शासकों का मन नहीं लगता। उनका मन करता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां आएं ,भारी टैक्स दें और हमारे देश को नीलाम करने का काम स्वदेशी शासक करते आ रहे हैं। यही इस नाटक की केंद्र में है। बहुराष्ट्रीय कंपनी हम लोगों को लूट लेती हैं। फिर भी, हमें पता भी नहीं चलता लेकिन बंगाल का माल, लखनऊ का, मद्रास का, पटना का, दिल्ली का, भोपाल का, मुंबई का शायद ही पसंद आए लेकिन जापान का, अमेरिका का, इंग्लैंड का तुरंत पसंद आ जाता है। हमारा गर्व से माथा चौड़ा हो जाता है। स्वदेशी के नाम पर नानी मर जाती है। स्वदेशी धंधा चौपट करके, विदेश की कंपनियों का एक छत्र राज्य कायम किया जाता

---

[27] उजबक राजा तीन डकैत, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2016, पृ.18-20

[28] वही, पृ.24

है। यह सब देश के अदूरदर्शी शासकों की वजह से होता है। देश का नेतृत्व करने वालों को अंतरराष्ट्रीय स्तर की चीजें नहीं, बल्कि बहुराष्ट्रीय स्तर की चीजें अपने जाल में फंसा लेती हैं। उन्हें स्वदेशी दर्जी नहीं चाहिए होते हैं। उन्हें अंतरराष्ट्रीय दर्जी नहीं चाहिए होते हैं। उन्हें तो बहुराष्ट्रीय होने की सनक सवार रहती है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की प्रकृति तो लुटेरी होती है। पर, नेताओं-राजाओं की मूर्खता भी कम जिम्मेदार नहीं है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की चालें और उनके भ्रामक प्रचार से हमारा तथाकथित थिंक-टैंक चकरा जाता है। उनकी बुद्धि काम नहीं करती। अगर बहुराष्ट्रीय कंपनियां पानी पीने के लिए मना करें, तो भी लगता है कि नेक सलाह दे रहे हैं। उन्हें सारी आवासीय और भूमि संबंधी सुविधाएं मिलनी चाहिए। कर के झंझटों से भी छुटकारा चाहिए।

"दूसरा ठग**:** पहली खासियत होगी, उसका रंग। पहनने के बाद हर घंटे उसका रंग बदल जाएगा और सामने वाले के कपड़ों का रंग भंग हो जाएगा।

तीसरा ठग : इससे आपको अपने डेली प्रोग्राम में बार-बार सूट बदलने की जरूरत नहीं पड़ेगी..

पहला ठग : हमारा बनाया सूट एयर कंडीशंड होगा।

दूसरा ठग : मतलब यह सूट गरमी में ठंडक और ठंड में गरमी देगा। आग से जलेगा न भीगेगा का पानी से।

पहला ठग : आज से आपको पानी का इस्तेमाल बंद करना होगा। न छुएंगे न पियेंगे। पेप्सी! नहाएंगे पेप्सी से, उबालेंगे पेप्सी से, बघारेंगे पेप्सी से!

दूसरा ठग : पियेंगे लिरेंडा, हेवन अप, कोकाकोला एटसेट्रा-एटसेट्रा, बस। नो वाटर।"[29]

बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऐसा जादू का सूट तैयार करेंगी, जो मूर्खों, गधों को दिखाई नहीं देगा। सिर्फ विद्वानों और खानदानी रईसों को ही नजर आएगा। इस तरह के भ्रामक प्रचार से हम गुमराह होते रहे हैं। इस पर तुर्रा यह कि इससे मूर्खों और गधों को पहचानने में आसानी होगी? भले ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों के स्वागत में राष्ट्र का खजाना खाली हो जाए ,लेकिन करेंगे मनमानी। इस नाटक के एक-एक वाक्य सुगठित व्यवस्थित हैं। सबको सामने रख पाना संभव नहीं है, क्योंकि इससे विस्तार भय का खतरा बहुत है। अलखनन्दन के स्वरचित नाट्य गीत, कथा को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। संपूर्ण नाटक को अलखनन्दन ने अंकों में नहीं बल्कि दस दृश्यों में विभाजित कर लिखा है। इससे यह नाटक ज्यादा प्रदर्शनीय बन पड़ा है। हास्य, व्यंग और कोतूहल को भी इस नाटक में पर्याप्त

[29] उजबक राजा तीन डकैत, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2016, पृ.37-38

स्थान मिला है। जनता की जागृति की चिंता अलखनन्दन के इस नाटक के केंद्र में है। "जो राजा देश का खजाना खाए, उसका राज भाड़ में जाए"[30]

राष्ट्रवाद की दुहाई देकर ,संस्कृति की दुहाई देकर, हमारे राजनेता हमारी जनता के सामने अपने किए गए कुकृत्यों को छुपाने के लिए कैसे-कैसे हथकंडे अपनाते हैं। यह इस नाटक में अलखनन्दन ने दर्शाने की कोशिश की। अपने गलत फैसलों को भी न्यायोचित ठहराने के लिए, ऐसे-ऐसे तथाकथित बुद्धिजीवियों को सरकार की बात रखने के लिए खड़ा कर दिया जाता है कि कहना ही क्या? विदेशी कंपनियां अपना कारोबार फैलाकर, स्वदेशी कारोबार को नष्ट करके, हमारे धन को लूट ले जाती हैं। अलखनन्दन का यह नाटक रंग गीत से शुरू होता है और रंग गीत से ही खत्म होता है जो कि हमें सोचने पर मजबूर करता है और संदेश भी देता जाता है–

"गीत: मल्टी ग्लोबल, ग्लोबल मल्टी

हो गई सबकी उल्टी पुल्टी

उड़ गई टोपी रह गई चड्डी

माल विदेशी मारे पल्टी

देशी महान है भाई

मंत्री सच को छिपा गया

दरबारी चुप्पी लगा गया

हिम्मत की देखो बच्चे ने

राजा जी की लाज बचाई

देसी महान है भाई

अपनी नीम है, अपनी हल्दी

अपना अदरक, अपना धनिया

लूट न ले अपनी दौलत को

देखो मल्टीनेशनल बनिया

देशी महान है भाई"[31]

---

[30] उजबक राजा तीन डकैत, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2016, पृ.51

[31] उजबक राजा तीन डकैत, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2016, पृ.72

4.1.4 जगर मगर अंधेर नगर

यह नाटक अलखनन्दन ने भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनेक छोटे प्रहसन, नाटकों की मदद से, छोटे-छोटे अंश लेकर संपादित करके तैयार किया है। लेकिन, यह कहीं भी मेरी जानकारी में प्रकाशित नहीं है। नाटक का पूर्व रंग 'प्रेम जोगनी' नाटक से ली गई पंक्तियों से ,नाट्यगीत से, शुरू होता है। उसके बाद 'बसंत पूजा' प्रहसन से उसके कुछ विदूषकों के संवादों से पूर्व रंग आगे बढ़ता है। संस्कृत अंग्रेजी के शब्दों को विकृत करके, अटपटे ढंग से, व्यंग्य और चुटीले अंदाज में पूर्व रंग आगे बढ़ता है। 'सबै जात गोपाल की' प्रहसन, बंदर सभा, भारत भिक्षा से भी कुछ अंश अलखनन्दन ने नाटक में लिए हैं।

"देखी तुमरी कासी लोगों, देखी तुमरी कासी
आधी कासी भाट भंडेरिया बाम्हन औ सन्यासी
आधी काशी रंडी मुंडी रांड खानगी खासी
लोग निकम्में भंगी गंजड़ लुच्चे बे-बिसवासी।"[32]

"विदूषक –1 –मूर्खता चमे कायरत्वमे धक्काचमे गर्दनियाचमे हंसीचमे
भ्रष्टताचमे आजादीचमे इंग्लिसाइजज्डत्वचमे बीएचमे एमएचमे।"[33]

इस नाटक का पहला दृश्य 'अंधेर नगरी' से शुरू होता है। जिसमें वह 'राम भजो राम भजो राम भजो भाई' गाते हुए आते हैं। महंत, गोवर्धनदास और नारायणदास मिलकर गाते हुए आते हैं। वही भिक्षा वाला प्रसंग।

महंत– बच्चा बहुत लोभ मत करना देखना हां…
'लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए या में नर्क निदान'। [34]

फिर आता है बाजार का दृश्य, इसमें घासीराम चना जोर गरम बेच रहा है। इस पूरे नाटक में गानों की एक विशिष्ट भूमिका है। यह एक संगीत प्रधान नाटक बन पड़ा है। नरंगीवाली नारंगी बेच रही है। इस बाजार में सब कुछ

[32] जगर मगर अंधेर नगर, अलखनन्दन, संपादित पांडुलिपि, पृ. 1

[33] जगर मगर अंधेर नगर, अलखनन्दन, संपादित पांडुलिपि, पृ. 2

[34] जगर मगर अंधेर नगर, अलखनन्दन, संपादित पांडुलिपि, पृ. 3

बिक रहा है। हलवाई मिठाई बेच रहा है। कुंजड़िन सब्जियां बेच रही है। मुगल सूखे बादाम बेच रहे हैं। पाचक वाला तरह-तरह के चूरन बेच रहा है। मछली वाली अपने अंदाज में मछली बेच रही है। जात वाला ब्राह्मण एकटके के लिए आपको ब्राह्मण से धोबी बना सकता है। धोबी को ब्राह्मण बना सकता है। ब्राह्मण से मुसलमान बना सकता है। हिंदू से क्रिश्चियन बना सकता है। पैसा फेंको तमाशा देखो। पाप को पुण्य बना देना। नीच को महान बना देना। धर्म और प्रतिष्ठा को दो कौड़ी के मूल्य बेंच देना, यह सब ब्राह्मणवाद के लक्षण हैं।

'ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तीस कौम हैं भाई।

जैसे काजी वैसे पाजी।

रैयत राजी टके सेर भाजी'।[35]

पुष्ट प्रमाणों के आधार पर कायस्थ जाति को क्षत्रिय बताई जा सकती है । वह चमार को पद्म पुराण के आधार पर, रामायण-महाभारत चारों वेद के तहत, ब्राह्मण सिद्ध कर सकते हैं। डोम को विश्वामित्र और वशिष्ठ, हरिश्चंद्र के उदाहरण देकर क्षत्रिय बताए जा सकते हैं। रही बात मुसलमानों की तो वह चारों वर्णों में हैं। ईशावासोपनिषद में लिखा है कि सब जगत ईसाई है। उनके अनुसार तो जैन और बौद्ध भी ब्राह्मण हैं। धोबी भी ब्राह्मण। कलवार क्षत्रिय और कुम्हार ब्राह्मण। सब अंधेर नगरी है। सब टेक सेर है। अंधेर नगरी में ही यह सब संभव है। ऐसी नगरी में रहने से न रहना अच्छा है?

'पंडित– हिंदुओं का शास्त्र पंसारी की दुकान है और अक्षर कल्प वृक्ष है। इसमें तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है। पर दक्षिणा आपको बाएं हाथ से रख देनी पड़ेगी फिर क्या है फिर तो सबै जात गोपाल की'। [36]

राजा अपनी प्रजा को किसी भी तरह से प्रताड़ित कर सकता है। वह निरंकुश है। वह षड्यंत्र से या केवल मजे के लिए भी ऐसा कर सकता है। उसे कोई नहीं रोक सकता। अपराध कोई करेगा और सजा वह किसी और को भी दे सकता है। उसकी ही मनमानी चलती है। मतलब शासन-प्रशासन जनता को मजाक समझता है। उसको कोई फर्क नहीं पड़ता की क्या हो रहा है? चूंकि, फंदे में आपकी गर्दन फिट बैठती है, इसलिए आपको ही फांसी होगी? किसी कमजोर को फांसी चढ़वाना, जेल भिजवाना, उस पर कोड़े बरसाना यह तो आम बात है। गोवर्धन दास से पहला प्यादा कहता है कि—

---

[35] जगर मगर अंधेर नगर, अलखनन्दन, संपादित पांडुलिपि, पृ.5

[36] जगर मगर अंधेर नगर, अलखनन्दन, संपादित पांडुलिपि, पृ. 7

"बात यह है कि कल कोतवाल को फांसी का हुक्म हुआ था। जब फांसी देने को उसको ले गये, तो फांसी का फंदा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया इस पर हुक्म हुआ कि मोटा आदमी पकड़ कर फांसी दे दो, क्योंकि बकरी मरने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी है, नहीं तो न्याय न होगा। इसी वास्ते हम तुमको ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फांसी दें"[37]

इस देश में कोई न्याय नहीं। कोई व्यवस्था नहीं है। जो सच्चा है, उसी को लोग उंगली दिखाते हैं। बेईमानों से लोगों को डर लगता है।

"सांचे मारे मारे डोलैं।
छली दुष्ट सिर चढ़ि-चढ़ि बोलैं।।
प्रगट सभ्य अंतर छलधारी
सोई राजसभा बलभारी
सांच कहै ते पनही खावैं
झूठे बहु विधि पदवी, पावैं।।"[38]

इसी तरह नाटक के अंत में दूध का दूध पानी का पानी। यथार्थ–

"घाट जाओ तो गंगापुत्तर नौचैं दे गल फांसी।
राह चलत भिखमंगे नौंचें बात करैं दाता सी।
मंदिर बीच भंड़ेरिया नौंचैं करें धरम की गांसी।।
सौदा लेत दलालो नौचें करैं लासालासी।
माल लिये पर दुकानदार नौंचैं कपड़ा दे रासी।।
चोरी भए पर पूलिस नौचैं हाथ गले बिच ढांसी"[39]

4.1.5 सलोनी गौरैया

[37] जगर मगर अंधेर नगर, अलखनन्दन, संपादित पांडुलिपि, पृ. 20
[38] जगर मगर अंधेर नगर, अलखनन्दन, संपादित पांडुलिपि, पृ. 21
[39] जगर मगर अंधेर नगर, अलखनन्दन, संपादित पांडुलिपि, पृ. 24

मेरी जानकारी में यह नाटक अप्रकाशित है। यह टंकित अवस्था में मुझे प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी से प्राप्त हुआ जो कि काशी हिंदू विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं। यह नाटक एक बालनाटक है। इस नाटक में सलोनी गौरैया, बंदर, पेड़, रामू, खरगोश, शेर, बड़ा बंदर, सियार, गधा, गाय, भैंस, नेवला इत्यादि पात्र हैं। नाटक की शुरुआत एक गीत से होती है, जिसे गाने वाले गाते हैं।

'एक थी चिड़िया मूरख भोली

चक बम चक बम

नाम सलोनी था उसका बहना भइया

चूं चूं करती जंगल जंगल

उड़ती चकमक

सीधी पर अभिमानी जिद्दी

करती बकबक

रानी सी मानी चिड़िया बहन भइया।'[40]

सलोनी गौरैया बेचारी दाना लाती है। उसका दाना पेड़ की नाक में चला जाता है। बंदर पेड़ की नाक से दाना निकालने की तरकीब सलोनी गौरैया को बताता है। बोलता है कि पेड़ की नाक में लकड़ी डालो, ताकि छींक आ सके और सावधान भी करता है कि पेड़ों की यूनियन है। इस नाटक में अलखनन्दन ने बाल मनोविज्ञान को पकड़ा है। समाज, धर्म, राजनीति की बारीक चीजों को छोटे-छोटे उदाहरण देकर प्रतीकों, संकेतों के माध्यम से सरल-सहज भाषा में, इन जीवित-अजीवित पात्रों के माध्यम से, बच्चों को हंसा-हंसा कर, गुदगुदी पैदा करके समझाने की कोशिश की गई है। सलोनी गौरैया की जिद है कि उसका दाना पेड़ की नाक में फिसल गया है। अब चाहे उसे बंदर की सहायता लेनी पड़े। चाहे जंगल के राजा खरगोश सिंह की सहायता लेना पड़े। चाहे लकड़ी काटने वाले रामू की सहायता लेनी पड़े। लेकिन, वह हार नहीं मानेंगी। उसी की जीवटता का चित्रण इस नाटक में आदि अंत में मिलता है। बच्चों के हंसने-मुस्कुराने के लिए पर्याप्त अवकाश नाटक में है। गीत-संगीत के साथ-साथ लयात्मक तुकबंदीपूर्ण संवादों की रचना भी अलखनन्दन ने इस नाटक में की है। एक तरह से इस नाटक की नायिका सलोनी गौरैया ही है। हम विस्तार भय से अधिक उदाहरण नहीं दे पा रहे हैं।

'सलोनी– छोटी हूं पर खोटी हूं

[40] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.1

दुबली पतली सोटी हूं

छोटी सी कजरौटी हूं

मैं आफत की चोटी हूं।'[41]

जब राजा खरगोश के दरबार में अपनी फरियाद लेकर सलोनी गौरैया जाती है। तब अपना परिचय गर्व से देती है–

'रानी, महारानी

दीवानी कल्यानी

मुझसे अच्छी-अच्छी

रानी थर्रानी।'[42]

सलोनी गौरैया उसी दाल के दाने पर अड़ी है। उसके सामने चाहे दाल के सौ दाने, दो सौ दाने लाओ लेकिन वह छुएगी तक नहीं ,उसको वही दाना चाहिए। सलोनी सबकी नाकों में दम कर देती है। अगर उसकी कोई नहीं सुनता, तो वह उनको भी परेशान कर देती है।

'सलोनी गौरैया–मुझे नहीं खाना खाजा

मैं बजवा दूं सबका बाजा

मेरा दाना गटक रहा

तू कैसा जंगल का राजा

और सुन। अब मैं हो रही हूं गुस्सा। तू संभल, तेरा दरबार संभल'[43]

सलोनी गौरैया को सब कहीं से निराशा मिलती है। अब उसका सलाहकार बंदर उसको सलाह देता है, कि क्यों न इस विषय पर रानी से बात की जाए? क्योंकि राजा के दरबार में तो बाहर देश से भी लोग मंत्री बने हैं ,जो अब उसके जमाई बन गए हैं। सलोनी गौरैया ने चिल्ला-चिल्ला कर राजा खरगोश सिंह और सुरक्षा अधिकारी शेर के कान बंद कर दिए ,जो कि अब गुलाब जल डालकर काम चला रहे हैं।

'बंदर– कहते हैं रानियों का राजाओं पर बड़ा दाब रहता है। बड़े-बड़े राजा-रानियां के आगे थर्र-थर्र कांपते हैं।

रानी की सखियां सारी

---

[41] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.7

[42] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.12

[43] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.16

हिरनी बकरी गैया री

रानी सबको प्यार बांटती

चखतीं सब बारी-बारी

चलो…’[44]

रानी शेरनी जंगल के महागायक सरताज गधानंदन सिंह को गाने के लिए आमंत्रित करती है। शेरनी सिंह खुशनसीब ने भैंसों को चौकीदारिनी नियुक्त किया है।

‘भैंस–गलती माफ करो जादू परी। मेरे सींग मत काटना नहीं तो मुझसे कोई शादी नहीं करेगा। बोलो क्या सेवा करूं?

सलोनी–जा अपनी रानी से

बोल जरा पानी से

रानियों की रानी की

सलोनी महारानी जी

आई हैं द्वार पर

बैठी हैं कार पर।’[45]

सलोनी रानी शेरनी का भी मजाक उड़ाती है और उसको राजा को छोड़ने की सलाह देती है। सलोनी और रानी शेरनी की काफी तकरार होती है। जैसे दो स्त्रियों लड़ रही हूं। लड़ते-लड़ते सांप का जिक्र हो जाता है, जिससे शेरनी डर जाती है और बेहोश हो जाती है। बंदर और सलोनी सांप के घर जाते हैं। वहां उनको नेवला दिख जाता है।

‘सलोनी– संभल मैं अभी जाती हूं

सांप को लेकर आती हूं

समझ गई मैं तेरा राज

सांप के नाम से गिरती गाज’[46]

कथा, बुंदेली परिवेश और बुंदेलखंड में कथा कहने की जो परंपरा है, उसका अनुसरण यह नाटक करता हुआ दिखाई देता है। क्योंकि, इसमें पुनरावृत्ति की बात है। बुंदेली लोक कथाओं, किस्सों में यह पुनरावृत्ति बार-बार

[44] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.17-18

[45] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.21

[46] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.25

देखने को मिलती है। सांप और नेवला की दोस्ती इसमें दिखाई गई है। दोनों गुरु चेला की भूमिका में हैं। जिस सांप से गुजारिश करने सलोनी घर गई है। उसके यहां रानी शेरनी की चिट्ठी और रिश्वत रूप से असंख्य सामग्री देने का वचन भी पहुंच गया है। इस पर सलोनी को गुस्सा ही आता है। इस के बाद वे निराश होकर, लाठी के पास जाते हैं जिसके पास समय ही नहीं है। लाठी किराए पर चलती है। क्योंकि, लाठी को कॉलेज के चुनाव में जाना होता है। दंगों, लफंगों के बीच में जाना होता है और धार्मिक जुलूसों में तो लाठी अग्रणी भूमिका निभाती है।

'नेवला– (चिट्ठी पढ़ता है) परम पूजनीय नाग देवता जी,

चरण स्पर्श

भगवान आपका खूब भला करे

अभी-अभी एक गौरइया

मुझे सांप से डसवाने की धमकी देकर

गई है, तो आपके कुनबे के लिए

पचास लीटर ताजा दूध और पचास डिब्बे पाउडर

यदि आप मुझे डसे जाने से बचा लें और कृपा बनाए रखें तो इतना सामान रोज आपकी सेवा में आएगा। आपकी बेटी

महारानी शेरनी सिंह खुशनसीब।'[47]

अब वह लाठी के बाद आग के पास जाती है। उसका जवाब भी कोई गौरैया के पक्ष में नहीं है। वह कहती है। मैं प्रतिशोध की आग नहीं हूं। मैं आगी की रानी हूं। यानी सब कहीं से निराशा ही निराशा। अब सलोनी गौरैया सबको सबक सिखाने जा रही है। सलोनी आग को नदी में डूबाएगी । अब समुद्र से सहायता हेतु निवेदन करेंगे । समुद्र और आग की दुश्मनी नहीं है। बल्कि, विपरीत स्वभाव है। इसलिए, वह भी सलोनी की कोई सहायता नहीं करेंगे। अब वह हाथी और हथिनी से बात करेंगे, जो सालगिरह मना रहे हैं। हाथी ने हथिनी को सिल्क का एक सौ अस्सी गज वाला लहंगा, नब्बे गज का ब्लाउज, पैंतालीस गज का दुपट्टा बतौर तोहफा दिया है। हाथी भला समुद्र को क्यों सोखने लगा? उसने सलोनी के निवेदन को कल पर टाल दिया। क्योंकि, समुद्र का अपना अलग महत्व है। अब चींटी की बारी आती है । चींटी कहती है कि मुझे हाथी ने सालगिरह के रात्रि भोज के लिए आमंत्रित किया है।

[47] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.29

उसकी नाक में घुस के उसको मार दूंगी। इस आमंत्रण में चींटी, अपने साथ बंदर और सलोनी को भी ले जाना चाहती है। मगर, वस्तुस्थिति कुछ और है—

'गानेवाले–हाथी की शादी

की सालगिरह में

आए सभी जने

पेड़ नहीं आया

रामू आया

राजा आया

रानी आई

बाजा आया

नाग भी आया

लाठी आई

आई आगी रानी

पेड़ नहीं आया

सागर आया

गागर आया

आए नाना नानी

पेड़ नहीं आया

सब करते हैं मस्ती हिलमिल हिलमिल हिलमिल

पहुंच गई चींटी डिलमिल

चींटी सबको मन भाए

सब स्वागत करने आए।'[48]

अब अगर चींटी हाथी की नाक में घुस के उसको मार देगी, तो वह समुद्र कैसे सोखेगा। यदि समुद्र सूख गया, तो आग कैसे ठंडी होगी और आग ठंडी हो गई, तो फिर खाना कैसे पकेगा? लाठी ने नाग को नहीं मारा। नाग

[48] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.40

शेरनी रानी को नहीं काटता। रानी जब खरगोश राजा से कुट्टी करती है, तो वह कहता है, मैं रामू को सजा दूंगा। रामू को सजा क्यों दी जा रही थी? क्योंकि, उसने पेड़ की नाक चीरने से मना कर दिया था। क्योंकि, दाना तो पेड़ की नाक में ही था। बंदर, रामू का शीशा और कंघा लौटाने के लिए तैयार है। पेड़ जब छींकेगा तभी तो सलोनी गौरैया का दाना वापस आएगा। सलोनी की जिद है कि वह पेड़ को छींकने के लिए मजबूर कर देगी। वह भी सुबह पांच बजे से पहले। पेड़ को छींक भी आ गई। सलोनी गौरैया का दाल का दाना भी वापस आ गया। लेकिन जिद है सलोनी की, वह मान ही नहीं रही किसी की—

'चींटी–मैं बताती हूं। इसको जिद्द का रोग लगा है इसकी जिद थी पांच के पहले छींके पेड़ या रामू चीरे पेड़ की नाक, राजा डंडे रामू को, रानी छोड़ें राजा को या रानी को नाग डसे, लाठी मारे नाग को, आग जला दे लाठी को, सागर धोबे आग को, हाथी सोखे सागर को और मैं मारूं हाथी को'[49]

चूंकि दाना सलोनी गौरैया ने बहुत मेहनत से अर्जित किया था। वह दाना पेड़ की नाक में चला गया। पेड़ की जिद थी कि वह पांच बजे बजे सुबह से पहले नहीं छींकेगा और चिड़िया की जिद थी कि वह पेड़ को पांच बजे से पहले छींकने पर मजबूर कर देगी। पेड़ बूढ़ा भी था। नाटक जिद न करने की सीख बच्चों को देता है। एक जिद से न जाने कितनी जिदें तैयार हो जाती हैं और मामला बिगड़ता जाता है। यह पंचतंत्र सरीखी घटनाओं व पात्रों से सुसज्जित नाटक है, लेकिन यह लोक साहित्य खासतौर से बुंदेली में जो कहावतें, किस्सा चलते हैं। उसको भी ध्यान में रखकर कहीं न कहीं नाटक आगे बढ़ता है। बाल मनोविज्ञान, जिज्ञासा, बच्चों की उत्सुकता इस नाटक में बनी रहती है। इस नाटक का घटनाक्रम माला की लड़ियों की तरह है। कथा विन्यास एक अनुक्रम का पालन करता है। इसमें कहीं भी अंकों के आधार पर विभाजन या दृश्य के आधार पर विभाजन नहीं किया गया है। जबलपुरी बुंदेली के शब्द कहीं-कहीं देखने को मिल जाते हैं। इसमें बुंदेलखंड की कुछ कहावतें देखने को मिली हैं। जैसे ओनामासी धम, बाप पढ़े न हम। जिस प्रकार नाटक की शुरुआत गीत से होती है। इसी प्रकार से इसका समापन भी संदेशपरक गीत से होती है।

'गाने वाले–जिद

जिद ना करना जिद ना

बेमतलब की जिद ना

साहस है गौरैया में पर

---

[49] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.47

साहस व्यर्थ गंवाया

इतनी मेहनत भाग दौड़

ज्यादा खोया कम पाया

जिद ना करना जिद ना

एक जिद को अगली जिदने

कैसे और बढ़ाया

अस्त-व्यस्त हो उठे

उत्तर जीरो आया

जिद ना करना जिद ना

छोटा जिद्दी है लेकिन क्यों

बड़ों में दर्प दिखाया

थोड़ी थोड़ी सबकी गलती

इस घटना ने बतलाया

जिद ना करना जिद ना...'[50]

4.1.6 भेड़िया तंत्र

यह नाटक हरिशंकर परसाई जी की कहानी का नाट्य रूपांतरण है। अलखनन्दन जी ही इसके नाट्य रूपांतरण कर्ता हैं। इसका प्रकाशन मेरी जानकारी में नहीं हुआ है। यह टंकित अवस्था में मुझे काशी हिंदू विश्वविद्यालय के आचार्य आशीष त्रिपाठी जी ने प्रदान किया है, जिसका मैं शोध की दृष्टि से अध्ययन व उपयोग कर रहा हूं। लेकिन, इसके प्रदर्शन बहुतेरे हुए हैं। इसको लोकतांत्रिक व्यवस्था को लेकर गढ़ा गया है। गायक वृन्द गाता है–

'दर्शक गण को नमस्कार है

नमस्कार में चमत्कार है

[50] सलौनी गौरैया, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.51

कथा कहें हम वन प्रदेश पर

लागू होती देश देश पर

हम खोलें पाखंड का बाना

इसको तुमसे बड़ा प्यार है

दर्शन गण को नमस्कार है।'[51]

इस गीत से ही काफी कुछ स्पष्ट हो गया है। इसमें दो सूत्रधार हैं, जो कथा को समझाते हुए कहते हैं कि जंगल के पशु यह महसूस करने लगे थे और उन्होंने सर्वसम्मति से यह राय भी कायम की कि क्यों न प्रजातांत्रिक प्रणाली अपनायी जाए। इस प्रजातंत्र में गुप्त रूप से मतदान होता है और यह जनता का शासन,जनता के द्वारा, जनता के कल्याण के लिए होता है। पशु सामुदाय खासा उत्साहित है और इसको स्वर्ण युग की तरह देखता है। क्योंकि, हिंसक पशु कम संख्या में होने पर भी ज्यादा गुंडागर्दी करते थे। अहिंसक जानवरों का खुलेआम शोषण करते थे। लेकिन, जिस वन प्रदेश की बात यहां हो रही है, वहां भेड़े थीं और वह बहुत दयालु कोमल, स्वभाव की, विनयी, ईमानदार, निर्दोष थीं । इतना अच्छा उनका चाल-चलन था कि घास भी फूंक-फूंक के खाती थीं। तो भी उनका खुलेआम शोषण होता था। बड़ी भेड़ कहती है–

'अब हमारा भय दूर हो जाएगा । हम अपने प्रतिनिधियों से कानून बनवाएंगे कि कोई जीवधारी किसी को न सताए, न मारे। सब जिएं और जीने दें। शांति, स्नेह, बंधुत्व और सहयोग पर समाज आधारित हो।'[52]

मगर यह तो पीड़ित समुदाय की सोच थी। दूसरा भेड़िए थे जिनमें तानाशाही प्रवृत्तियां भरपूर थीं ,लेकिन फिर भी डरे हुए थे कि, सारे कमजोर मिलकर कहीं हमारी ताकत को कम न कर दें।

'सूत्रधार: इधर भेड़िए डरे हुए हैं

जैसे डरते तानाशाह

सीधी-सादी जनता के जग जाने पर

जैसे कुटिल, धूर्त डरते हैं

मनमानी ना कर पाने पर

चले आ रहे वही भेड़िए

---

[51] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.1

[52] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.2

वन में भी हैं

और मोहल्लों गली गली

देशों समाज में

रूप बदलकर घूमा करते

पशुओं में

मनुष्यों में भी

चले आ रहे हैं।'[53]

इसी गीत से कह सकते हैं कि नाटक की पूरी विषयवस्तु का पता चल जाता है। यह पूरा नाटक ही राजनीतिक है। एक-एक पंक्ति राजनीति को समझाने के लिए लिखी गई है। यदि अहिंसक कानून बन गया तो भेड़ियों को चिंता है कि वह खाएंगे क्या? उन्हें भी घास खानी पड़ेगी। क्योंकि, बहुमत तो भेड़ों के पास है। भेड़ों में उत्साह है। जैसे हर भेड़िए के पास सियार होते हैं। वैसे ही आधुनिक लोकतंत्र में सत्ता के पास चाटुकार, भ्रष्ट नेता, छुट-भइये, शोषक, जमींदार, लठैत गुंडे, अफसर होते हैं।

'सूत्रधार 1: जब भेड़िया अपना शिकार खा लेता है, तब ये सियार हड्डियों में लगे मांस को कुतरकर खाते हैं, और हड्डियां चूसते रहते हैं। ये भेड़िए के आसपास दुम हिलाते चलते हैं, उसकी सेवा करते हैं और मौके- बेमौके 'हुआं-हुआं' चिल्लाकर उसकी जय बोलते हैं।'[54]

यह है- भारतीय लोकतंत्र व राजनीति की हकीकत, जिसे अलखनन्दन अपने नाटक के माध्यम से चित्रित करते हैं। नई सरकार के आने से भेड़िए चिंतित हैं । एक तरह से राजतंत्र वालों को यह डर है कि कहीं भारत के दबे-कुचले समाज से अगर नेतृत्व उभर कर आता है, तो यह हमारे लिए मुसीबत हो जाएगा। क्योंकि, राजतंत्र वालों को नियम कानून से रहना अच्छा नहीं लगता है। उन्हें सारी चीजों को लाठी से हांकना अच्छा लगता है। भेड़िए यानी उच्च वर्ग को सर्कस और अजायब घर में भी नहीं रखा जा सकता। क्योंकि, इनको वह कलाकारी भी तो नहीं आती।

भेड़ियों अर्थात उच्च वर्ग को यह बात अच्छी तरह मालूम है कि उनकी आबादी मात्र दस प्रतिशत है और नब्बे प्रतिशत अन्य पशु अर्थात दलित, पिछड़े, आदिवासी और अल्पसंख्यक वर्ग है, जिन्हें नाटककार ने भेड़ों की संज्ञा दी है। लेकिन, भेड़िये हार माने तो माने कैसे? उन्हें चापलूसों की जरूरत पड़ेगी। यही चापलूस दलितों, पिछड़ों,

---

[53] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.2

[54] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.3

आदिवासियों, अल्पसंख्यकों (भेड़ों) को भ्रमित करते रहते हैं। असली मुद्दों से भटकाते रहते हैं और सत्ता पर भेड़िए बैठते रहते हैं। चापलूस यानी रंगे सियार यानी षडयंत्रों का महाजाल–

'गायक वृन्द: पीले, नीले, हरे सियार

धूर्त, कुटिल ये रंगे सियार

चाटुकारता भरे सियार

कवि लेखक भी बने सियार

नेता हुए बन गए पत्रकार

धरम गुरु भी बने सियार

पीले नीले हरे सियार'[55]

यह कभी माला पहन लेते हैं। कभी तिलक लगा लेते हैं। कभी टाई पहन लेते हैं। कोई न कोई बहरूपिया खेल खेलते रहते हैं और आम जनता को बेवकूफ बनाते रहते हैं। इस तरह से आम जनता का शासन अर्थात लोकतंत्र सफल ही नहीं हो पाता और उच्च वर्ग के लोग अर्थात पूंजी, बल और बुद्धि तीनों मिलकर शासन चलाते रहते हैं। यही लोग सरकारी दूल्हे बने घूमते रहते हैं और अपना चाबुक जनता पर चलाते रहते हैं। सरकार का मुक्त में प्रचार-प्रसार इन्हीं के कंधों पर है। ज्यादातर कई विद्वान, विचारक, पत्रकार, धर्मगुरु, लेखक सब के सब शासन का प्रचार करने वाले होते हैं। जनता से उन्हें क्या लेना देना? बस इनका रवैया दोहरा होता है। बड़े दोगले चरित्र के होते हैं। गान जनता का करेंगे और चापलूसी शासन की।

'बूढ़ा सियार**:** बस। आप पूरे संत हो गए। अब भेड़ों की सभा में चलेंगे। मगर तीन बातों का ख्याल रखना– अपनी हिंसक आंखों को ऊपर मत उठाना, हमेशा जमीन की ओर देखना और कुछ बोलना मत, नहीं तो सब पोल खुल जाएगी। और वहां बहुत सी भेड़े आएंगी, सुंदर-सुंदर, मुलायम-मुलायम, तो कहीं किसी को तोड़ मत खाना।'[56]

भेड़िए जनता के बीच जाते हैं, तो इतनी सावधानी तो बनती है? अब भेड़िए प्रचार के लिए जाते हैं, तो रंगे सियारों से घिरे रहते हैं। प्रचारित किया जाता है कि बहुत बड़े संत शिरोमणि हैं क्योंकि निम्न वर्ग से तो कोई संत शिरोमणि हो नहीं सकता? एक लंबा संवाद बूढ़ा सियार बोलता है, जिससे उच्च वर्ग के षड्यंत्र का पर्दा फाश होता है–

---

[55] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.5-6

[56] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.7

'बूढ़ा सियार : डरने की कोई बात नहीं है। भाइयों और बहनों। अब भय मत करो। भेड़िया राजा संत हो गए हैं। उन्होंने हिंसा बिलकुल छोड़ दी है। उनका हृदय परिवर्तन हो गया है। वे आज सात दिनों से घास खा रहे हैं। रात दिन भगवान के भजन और परोपकार में लगे रहते हैं। उन्होंने अपना जीवन जीव-मात्र की सेवा में अर्पित कर दिया है। अब किसी का दिल नहीं दुखाते, किसी का रोम तक नहीं छूते। भेड़ों से उन्हें विशेष प्रेम है। इस जाति ने जो कष्ट सहे हैं, उनको याद करके कभी-कभी भेड़िया संत की आंखों में आंसू आ जाते हैं। उनकी अपनी भेड़िया जाति ने जो अत्याचार आप पर किए हैं उनके कारण भेड़िया संत का माथा लज्जा से झुका है, तो झुका ही हुआ है। परंतु अब वे शेष जीवन आपकी सेवा में लगाकर तमाम पापों का प्रायश्चित करेंगे। आज सवेरे की बात है कि एक मासूम भेड़ के बच्चे के पांव में कांटा लग गया, तो भेड़िया संत ने उसे अपने दांतों से निकाला, दांतों से। पर जब वह बेचारा कष्ट से चल बसा, तो भेड़िया संत ने सम्मानपूर्वक उसकी अंत्येष्टि-क्रिया की। उनके घर के पास जो हड्डियों का ढेर लगा है उसके दान की घोषणा उन्होंने आज ही सवेरे की। अब वो भी सर्वस्व त्याग चुके हैं। अब आप उनसे भय मत करें। उन्हें अपना भाई समझें। बोलो, सब मिलकर संत भेड़िया जी की जय।'[57]

आखिरकार जो लोग रंगे सियार होते हैं। वह एक न एक दिन पकड़ में आ ही जाते हैं। उनकी कलई खुल जाती है। नेता और पत्रकार नीला सियार अपने तर्कों से भेड़ों को बस में कर लेना चाहता है। वह कहता है। निर्बलों की रक्षा बलवान ही कर सकते हैं। यह व्यर्थ ही लोगों को बताया गया कि भेड़िया भेड़ खाते हैं? क्योंकि, भेड़े कमजोर होती हैं। इसलिए, वह अपनी बात नहीं रख सकती और अपने साथ हुए अन्याय को भी बर्दाश्त कर लेती हैं। इन तर्कों से वह बलवानों को ही सत्ता देने के पक्ष में हैं। अर्थात देश की पत्रकारिता भी राजनीति की चाटुकारता में तल्लीन है। आज भी हम देखते हैं कि उच्च वर्ग के तिवारी, मिश्रा, पांडे तीनों अलग-अलग पार्टियों से अपनी राय रखते हैं। यह हम टीवी में भी देखते हैं। रेडियो में भी सुनते हैं। जैसे लगता है। इन जातियों के अलावा दूसरी जातियां टीवी-रेडियो पर बोल ही नहीं सकती हैं? इसी तरह से एक अन्य प्रतिनिधि **हरा सियार** जो कि एक ही जाति के हैं। वह भी सत्ता भेड़ियों की चाहता है। अपने तर्क-कुतर्कों के माध्यम से आम जनता में भेड़िया को राजा बनाकर बैठा देना चाहता है।

'हरा सियार: जो यहां त्याग करेगा, वह उस लोक में पायेगा। जो यहां राजा बनाएगा, वह वहां राजा बनेगा। जो यहां वोट देगा, वह वहां वोट पाएगा।'[58]

---

[57] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.8-9

[58] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.11

अर्थात जो राजतंत्र में राजशाही चला रहे थे। वही लोकतंत्र में भी बड़े-बड़े पदधारी बने बैठे हैं। वे नहीं चाहते कि आम जनमानस को भी सत्ता में प्रतिनिधित्व, भागीदारी मिले। इसलिए, देश का तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग भी हमेशा तथाकथित उच्च वर्ग को ही सत्ता के योग्य समझता है। जनता भी इतनी भोली-भाली है, कि उसे यही निर्णय लेने में मशक्कत करनी पड़ती है कि कौन हमारा भला कर सकता है और कौन हमारा अहित? इसलिए, निम्न वर्ग की जनता भी कई बार अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारती है और प्रचार के आगे झुक जाती है। भेड़िए को अपना राजा रहनुमा बना बैठती है। इक्का-दुक्का लोग विरोध में हाथ भी उठाते हैं तो भी यह लोग संभलने का नाम नहीं लेते। भेड़ों के तो प्रतिनिधि भी भेड़िए बनते हैं। यह एक विडंबना है? यह कैसी त्रासदी है कि जिनके लिए योजनाएं बनानी है, वही योजना आयोग से बाहर हो जाते हैं, और उनकी योजनाएं वही बनाते हैं, जो उनकी बस्तियों में झांकते तक नहीं? जिस तरह की योजनाएं दलित, पिछड़े, आदिवासियों, अल्पसंख्यक समुदाय के लिए बनाई जाती हैं। उनकी आवंटित राशि से राष्ट्रमंडल खेलों इत्यादि में खर्च कर दी जाती है। कहीं का पैसा कहीं लगा दिया जाता है? देखिए! भेड़िया प्रजातंत्र में जीतने के बाद भेड़ों के लिए कैसे फैसला लेता है—

'आज से हर भेड़िए को सबेरे नाश्ते के लिए भेड़ का एक मुलायम बच्चा दिया जाए, दोपहर के भोजन में एक पूरी भेड़ तथा शाम को स्वास्थ्य के ख्याल से कम खाना चाहिए इसलिए आधी भेड़ दी जाए।'[59]

अलखनन्दन इस देश के मजदूर, किसानों, पीड़ित, दमित, शोषित जनता के साथ न सिर्फ खड़े हैं, बल्कि उन्हें आगाह भी कर रहे हैं। ऐसे भेड़िए आपके आसपास ही नजर आ जाएंगे। बहुत ज्यादा मशक्कत करने की जरूरत नहीं है। गायक दल नाट्य गीत से नाटक समाप्त करते हैं –

'पहचानो दर्शक आसपास इनको
मानुष का रूप धरे कहां-कहां पैठे
कुर्सी पर सत्ता में कहाँ-कहाँ बैठे
रात को तो डाकू ये साधु हैं दिन को
धर्म जाति, संप्रदाय सबको लड़ाएं
भाई-भाई को आपस में भिढ़ाएं
नष्ट किसे करते हैं लूटते हैं किन को

[59] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.12

पहचानो…’[60]

4.1.7 जादू का सूट

यह नाटक अप्रकाशित है। यद्यपि इसका परिमार्जित रूप ‘उजबक राजा तीन डकैत’ प्रकाशित है। लेकिन, यह शुरुआती पांडुलिपि मुझे प्रोफेसर आशीष त्रिपाठी के कर कमलों द्वारा मिली । कहानी वही है। विषय वस्तु वही है। बस यह लघु रूप में है। यह भी संभव है कि उन्होंने यह बच्चों के मनोरंजनार्थ प्रदर्शन के लिए तैयार की हो। जैसा कि विदित है- हेंस क्रिश्चियन एंडरसन की प्रसिद्ध कहानी फेयरी टेल ‘दी इंपरर्स न्यू क्लॉथ्स’ से यह नाटक प्रभावित है। अलखनन्दन ने एक तरह से इसका नाट्य रूपांतरण किया है। अलखनन्दन अपने नाटकों में परिमार्जन, परिष्करण, संशोधन करते रहते थे। इसलिए, यह प्रयास उनका शुरुआती माना जा सकता है। जैसे, उन्होंने परिमार्जित संस्करण में कुर्ता और गाउन की जगह, चोंगा वस्त्र का इस्तेमाल किया है। इस नाटक के गाने में रेशम लाल शब्द का इस्तेमाल है जो कि बाद में खुद राजा का नाम अलखनन्दन ने कर दिया है। इसी तरह एक दूसरे राजा का नाम महाराज श्री सुंदर नारायण प्रताप का नाम कुकुर देव से होता हुआ, देशबंधु तक पहुंच जाता है। परिमार्जित संस्करण में कुकुर खेड़ा का नाम बदलकर एरना खेड़ा कर दिया है। इस नाटक में जो बंगाली दर्जी है, वह हिंदी में संवाद बोलता है। जबकि, परिमार्जित संस्करण में बांग्ला भाषा का उपयोग करता है।

‘नं.एक– कलकत्ते का मैं हूं छैला, मेरे दादा, परदादा के हाथों से सजे सिराजुद्दौला, बंगाले का जादू जानूं, हाथ लगा दूं कपड़े को तो कपड़ा बने कनक का गहना, जिसे पहना…’[61]

कहने का अभिप्राय है कि जितने भी अलग-अलग प्रदेश के दर्जी आते हैं। वह परिमार्जित संस्करण में कुछ ज्यादा स्पेस पाते हैं। अलग-अलग क्षेत्र की बोलियों, भाषाओं के दर्शन भी संशोधित प्रकाशित संस्करण में देखने को मिलते हैं। जैसा की पता है कि यह कहानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा स्वदेशी रोजगार को उजाड़ कर दूसरे देश में औपनिवेशिकता को स्थापित करना है। इसलिए, वह देशी कपड़ों को हटाकर, राजा को सूट पहनाना चाहते हैं। राजा को कई तरह से प्रलोभन देते हैं। कभी न होने वाली विशेषताओं(जादू का सूट) को भी राजा के सामने रखते हैं। ताकि, राजा बेवकूफ बन जाए। बहुराष्ट्रीय कंपनियां हमारे देश में स्थाई रूप से बस जाती हैं, जिससे देश के मूल

[60] भेड़िया तंत्र, हरिशंकर परसाई, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पांडुलिपि, पृ.13

[61] जादू का सूट, हेंस क्रिश्चन अंडर्सन, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पृ.7

निवासियों के हाथ से काम, रोजगार, हुनर और धन सब कुछ चला जाता है और मानसिक गुलामी ऊपर लाद दी जाती है। स्वदेशी मालकी उपेक्षा होने लगती है। अपने ही देश का माल घटिया लगने लगता है। विदेशी वस्त्र पहनकर भारतीयों का सीना गर्व से तन जाता है। स्वदेशी राजा, नेता उनके स्वागत में देश का सारा धन बर्बाद कर देते हैं। लुटा देते हैं। उनके सहयोगी मंत्री हां में हां मिलाते हैं। इनको शर्म भी नहीं आती कि राजा को सही मंत्रणा दे सकें। इसी विडंबना को अलखनन्दन ने अपने इस नाटक में दर्शाया है।

'गायक वृन्द और ठग– एक है गदहा तीन कलंदर

नाच दिखाए गदहा सुंदर

राजकोष में माला

रोए उसकी खाला

माला किसने डाला

दांत निपोरे लाला।'[62]

राजा को लाखों का चूना लगाकर, बहुराष्ट्रीय कंपनियां मूर्ख बनाकर चली जाती हैं। इस नाटक में राजा देशबंधु वाला फैंसी ड्रेस कंपटीशन नहीं रखा गया है। संक्षेप में ही नाटक खत्म कर दिया गया है। गायक नाटक का अंत वृंद गायन से करते हैं —

'एक बच्चे की सीख से

राजा रेशम लाल सुधर गए

बच्चा महान है भाई

मंत्री सच को छुपा गया

दरबारी चुप लगा गया

हिम्मत की बच्चे ने

राजा जी की साख बचाई

बच्चा महान है भाई

छोटा बड़ा नहीं है कोई

जो सच बोले सच है सोई

[62] जादू का सूट, हेंस क्रिश्चन अंडर्सन, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पृ.15

राजा रइयत की झूठी दीवारें जिसने ढहाई

बच्चा महान...'[63]

4.1.8 चंदा बेड़नी

चंदा बेड़नी नाटक का प्रकाशन 2005 में मेधा बुक्स से हुआ है। इस नाटक की भूमिका में अलखनन्दन लिखते हैं कि "यह नाटक बुंदेलखंड में प्रचलित लोकश्रुति तथा एक आधुनिक कविता की अंतः क्रिया का परिणाम है। लोकश्रुति कुछ इस तरह है– एक बेड़नी की सुंदरता और कला पर रीझा हुआ राजा बेड़नी से वायदा करता है कि यदि वह किले से महल तक तनी रस्सी को नाचते हुए पार कर ले तो वह उसे पुरस्कार स्वरूप अकूत संपत्ति देगा। इस वायदे से रानी को ईर्ष्या होती है तथा जब बेड़नी इस कमाल को संपन्न करने ही वाली होती है ,रानी रस्सी कटवा देती है। बेड़नी का अंत हो जाता है। इस कथा को लेकर बुंदेलखंड के उत्साही संस्कृतिकर्मी जब-तब मुझसे नाटक करने का अनुरोध करते। कुछ एक ने तो ओपेरानुमा कुछ आलेख भी पढ़ने को दिए। पर उन सब की दिलचस्पी का विषय एक था ,ऊंची तनी रस्सी पर बेड़नी को नाचते दिखाने का रंगमंचीय कमाल। मुझे इसमें कोई रुचि नहीं थी। उनकी फरमाइश पर मुझे हमेशा ब्रेख्त की युक्ति ,चित्रांकन का चित्रांकन याद आती थी। पर कथा मेरे मन में जामी थी और उसकी नाटकीय गति को लेकर अनिश्चितता भी उतनी ही। इस बीच अज्ञेय की कविता नाच पढ़ी तो अचानक मुझे रास्ता सूझ गया। नाच कविता तथा इस नाटक का क्या संबंध है ,मुझे नहीं मालूम पर इस नाटक को रच पाने का विश्वास और रास्ता मुझे उस कविता से ही मिला। नाटक पहले हिंदी में लिखा गया। फिर सहरंगकर्मियों सर्वश्री सावित्री रायकवार ,अशोक पाठक ,सोनी लाल अहिरवार और राजेश लिटोरिया ने मिलकर इसे बुंदेली बोली में अनूदित किया। कभी बैठकर कभी पूर्व अभ्यास के दौरान ही। बुंदेलखंड के सुख-दुख सपनों जीवन दर्शन बोली की छवियां बुंदेली अदाओं कोमलता ठसक मस्ती चालाकी सीधापन गरीबी सामंती आचरण आदि को समझने के लिए मैं प्रमुख कलाकारों के साथ प्रसिद्ध राई नर्तक पंडित राम सहाय पांडे के गांव कनेरादेव में रहा और उनके साथ कई अन्य गांव में जाना हुआ। कलाकारों ने वहीं रहकर राई लोक नृत्य सीखा , स्वांग देखे ,स्वांग के कलाकारों से विचारों

[63] जादू का सूट, हैंस क्रिश्चन अंडर्सन, नाट्य रूपांतरण, अलखनन्दन, पृ.22

का आदान-प्रदान किया और उनमें रचे बसे। इस तरह हम उनमें से ही एक हुए और प्रामाणिक प्रस्तुति का प्रश्न कर पाए"[64]

अलखनन्दन ने बुंदेलखंड के बुंदेली शब्द और बुंदेलखंड की स्वांग परंपरा में इस नाटक को अनुस्यूत किया है। कई बेहद रोचक दमदार ग्रामीण पात्रों को लेकर नाटक का ताना-बाना बुना। इस नाटक में पूर्वरंग भी है जिसमें साधु, ग्रामीण बालकों, नवयुवतियों, युवकों को कथा समझा देता है और उसके अनुसार नाटक खेला जाता है। इस नाटक में बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा का चरम उत्कर्ष दिखाई देता है। पूर्व रंग में ही स्वांग की एक झलक देखिए–

"साधू: हां तो बेटा बेटी चेंटी-पेंटा, आज कौन सी कथा सुनाऊं?

लखन : गुरु महाराज आप तो कहीं से शुरू हो जाओ। आपके पास बातों की कमी है क्या? गुरूट पुरान भुरूट पुरान आग देवता नाग देवता राग देवता झाग देवता जाग देवता भाग देवता बालकांड लंका कांड अयोध्या कांड भैंस कांड गैस कांड श्याम सलौने मुरली बजैया राधाजी की छूम छनन छन डम डम डिगा डिगा संतोस देव संतोसी की सादी ,सादी से पहले और सादी के बाद की बर्बादी और झूठा साबित करने वाले को हजार नगद इनाम ,इत्यादि आदि आदि कहीं से सुरू हो जाओ। भंडार भरा है आपकी पुटरिया में[65]।"

बेड़नियां बुंदेलखंड में राई नृत्य करती हैं और उसी से अपनी अजीविका चलाती हैं और खाली समय में बीड़ी बनाती हैं। यह बेड़िया मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में एक जनजाति है। बेड़ियों की पत्नियों-महिलाओं को बेड़नी कहते हैं और नृत्य करने वालियों को भी बेड़नी कहा जाता है। यह नाटक मूलतः उच्च वर्ग, सामंत वर्ग, पुरोहित वर्ग, निम्न वर्ग के संघर्ष, जातीय वर्गीय द्वंद्व के आधार पर लिखा गया है। लखन प्रसाद तिवारी जो की ब्राह्मण युवक है, चंदा बेड़नी पर मोहित हो जाता है। लेकिन, बेड़नी उसको अच्छा खासा सुना देती है— "तो पंडित हो! पंडित जी के घर जाओ ,मूड़ मुड़ाओ ,कासी जा के रामानजी को पाठ करो और महतारी बाप की आज्ञा से एक पंडिताइन घर ले आओ। हमारी रंगीली दुनिया में तुम्हारी चुटैया झड़ जाएगी"[66]

इस नाटक में बुंदेलखंड के लोकगीत, फाग इत्यादि का खूब इस्तेमाल किया गया है। इससे बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा समृद्ध होती है और बुंदेली का रस पाठकों तक पहुंचता है–

---

[64] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.7

[65] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.15

[66] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.25

"सखी मोहे समझ नहीं आने

जी क्यों उचटाने

जैसई नींद में झपकें अखियां

ऊसई खुल-खुल जाने

सखी मोहे समझ नहीं आने

जित्तई चुनरी दबाओ जतन से

उत्तई ऊ लहराने

सखी मोहे समझ नहीं आने"[67]

चंदा बेड़नी अपनी कथा कह देती है। वह अपने हालात को बयां कर देती है। तब भी अगर लखन प्रसाद तिवारी आना चाहे तो आए। अगर बेड़नी के साथ ब्राह्मण समाज को रहना है तो रहे। लेकिन ,उसके स्वांग उसका खान-पान, पीना, गाना ,बजाना सब समानता के आधार पर होगा। चंदा की यह शर्तें हैं। तभी वह लखन की बनने के लिए तैयार है। जनेऊ काट के फेंकना पड़ता है। अपने ऊंचे होने का लबादा पहले फेंको फिर हम गले लगाने के लिए तैयार हैं।

"चंदा: अपने संग रखूं तो खिलाऊं क्या? हमारा नाच ,स्वांग देखकर तुझे हरा-भरा सूझता है। यहां तो खुद हाड़ बजा-बजाकर पेट भर रहे। साल में छः महीना नाच बंद ,तब बिड़ी बनाओ कलेजा सड़ाओ फिर पेट भर पाओ।"[68]

इसके नाट्य गीत भी बुंदेलखंड की लोक संस्कृति की विशेष छठा बिखरते हैं और यह अद्भुत समा बांधते हैं। तभी यह संगीत प्रधान नाटक बुंदेली लोकनाट्य के शिखर पर पहुंच जाता है। यह अलखनन्दन की एक विशिष्ट कृति थी, जिसने अलखनन्दन को अलखनन्दन बनाया—

"गायक: अरे फंस गई बिड़निया माया में

बाम्हन को जनेऊ फिसल गो

प्रेम की निंदिया झूला झूलें

दुनिया सपना ,सपना दुनिया

राह चलत में रस्ता भूलें

---

[67] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.27

[68] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.30

कूके रह-रह मन की मुनिया

अरे ऐसो है जादू काया में

बाम्हन को जनेऊ फिसल गो"[69]

इसी प्रकार बुंदेलखंड में 'हर गंगा हर गोपाल हर के वचन सुनो दो चार' इस धुन को लेकर भी अलखनन्दन ने एक कथात्मक बुंदेली लोकगीत इस नाटक में जोड़ा है, जो कि कहीं न कहीं बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा को आगे बढ़ाता है। इसमें आल्हा गायन की परंपरा भी दृष्टिगोचर होती है–

"गायक: एक जनेऊ फिसले तो

हजार जनेऊ कसकस जांय

आगे चंदा चली लखन फिर

पीछे सारे बाम्हन धाय

सीताराम सीताराम

एक बिड़निया ने कर दी है

सारी जात जुगत बदनाम

नाक फुला बाम्हन चिल्लाए

कर दो उसका काम तमाम

रक्षा करना उनकी राम

सीता राम सीता राम"[70]

पंडित छैल बिहारी तिवारी जिसका बेटा लखन प्रसाद तिवारी है ,जो ब्राह्मणवाद का प्रतीक है। वह राजा के दरबार में गुहार लगाता है कि बेड़नी ने मेरे लड़के को अपने वश में कर लिया है। यद्यपि राजा भी बेड़नी पर मोहित है। उधर राजा की रानी को एक पुत्र भी जन्म होता है। रानी तरह-तरह के चंदा के विरुद्ध षड्यंत्र रचती है । चंदा के विरुद्ध सारा राजतंत्र-पुरोहित तंत्र खड़ा हो जाता है। यही दलित, आदिवासी और पिछड़ों के खिलाफ सदियों से होता आया है।

---

[69] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.33

[70] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.34

इस नाटक में अनेक स्वांग हैं। बुंदेली शब्दों , मुहावरों और लोकोक्तियां की भी भरमार है। इसमें राई, फाग ,ढिमरयाई इत्यादि बुंदेली लोकगीत हैं। बंसी में फंस गई बाम ,बरौनी घरे चलो। घर में नहीं दाने ,अम्मा चली भुनाने। भइया राजी खुशी दो जने झक मार सौ जने। विरोध केवल सत्ता पक्ष और पुरोहित पक्ष का नहीं है। बेड़नी जाति के अंदर भी विरोध है, लेकिन वह उतना प्रबल नहीं है। बल्कि ,यदि ब्राह्मण युवक आदिवासी बनने के लिए तैयार है। वह उनकी लोक संस्कृति ,उनके खान-पान , उनके नाच गान का यदि हिस्सा बन जाए तो आदिवासियों को ज्यादा परेशानी नहीं है। इसका अर्थ हुआ कि उच्च वर्ग, समानतशाही, पुरोहितवाद के गठजोड़ से स्थितियां समाज में ज्यादा खराब होती चली जाती हैं। यही इस नाटक के केंद्र में है। आदिवासी अपने ढंग से, पुरोहितवाद और सामंतवाद के खिलाफ लामबंद होते हैं। आखिरकार वह इस प्रेम को अपनी जाति की बदनामी के तौर पर भी देखते हैं। इज्जत के दाव लगने के तौर पर देखते हैं। नाटक की पात्र काकी कुछ इस प्रकार कहती है–

"काकी: ऊ से कओ कि हमारे संग बैठकर दारू पिए, मांस खाए और जनेऊ उतार के फेंक दें। बस हम मान लेंगे कि हमारी बिरादरी में सामिल हो गया। और जादइ परखना हो तो जब चंदा लंबरदार के यहां नाचने जाए तो भड़ुवा बना के भेज दो। सारी रात हवेली के दरवाजे बैठकर भी राजी रहा तो मान लेंगे हो गया अपनी बिरादरी का"[71]

यह पंडित लखन प्रसाद तिवारी के लिए कहा गया है, जो कि चंदा से प्रेम कर बैठता है। आदिवासी समाज इस प्रेम को स्वीकार कर लेता है। लेकिन, ब्राह्मण समाज और सामंती समाज इस प्रेम को कैसे स्वीकार करता? वह एक दंभी समाज है। इस नाटक में एक लोकगीत की धुन है- 'बाबा की मढ़िया दूर बनी रे दरसन करने जाने, आए हाये रे दर्शन कर बे जानें...यह एक ठेठ बुंदेली धुन है जो प्रायः बुंदेलखंड में सुनाई दे जाती है। रानी चंदा बेड़नी को बुलावा भेजती है। लेकिन, चंदा महलों में जाने से इनकार कर देती है। इस पर राजा आदेश देकर, प्रेमी लखन प्रसाद तिवारी और चंदा को जंगल से अलग करवा देते हैं तथा लखन को गिरफ्तार करके राजा चंदा पर डोरे डालने लगता है। राजा जो गाना गाता है, वह दरअसल महाकवि ईसुरी की बुन्देली फाग है, जो कि बुंदेलखंड में अत्यंत लोकप्रिय है—

"राजा: पतरे सोने कैसे डोरा रजऊ तुम्हारे पोरा

बड़े मुलाम पकरतन धरतन लगा न जाए मरोरा

पैरावत में दइया मइया दाबत परें दरोरा

रति भर से भारी हो गए पैरत कंचन बोरा

[71] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.46

ईसुर कऊं का देखे ऐसे नर नारी के जोरा।"[72]

षड्यंत्र शुरू होता है और बढ़ते-बढ़ते चंदा की जान पर बन आता है। राजा के घर में राज लला का जन्म हुआ। उसका जीवन खतरे में है। न वह हंस रहा है। न वह रो रहा है। न दूध पी रहा है। उसकी आंखें बूढ़ों की तरह हो गई हैं। ज्योतिषों ने कहा है कि इसके जन्म पर राई लोक नृत्य का आयोजन नहीं हुआ है। इसीलिए, सब गड़बड़ी हुई है। दरअसल बुंदेलखंड में बच्चों के जन्म के अवसर पर बधाइयां बजती हैं और राई लोकनाट्य भी सदियों से होता आया है। अब या तो उस सुंदर बालक को मरना होगा या सुंदर स्त्री को बली पर चढ़ना होगा। लेकिन, इन सब का उपाय भी सुझाया जाता है। यही सबसे बड़ा षड्यंत्र भी इस नाटक में साबित होता है, जिससे चंदा बेड़नी मर जाती है और लोक जीवन में अमरता को प्राप्त करती है। क्योंकि, रानी की दुश्मन चंदा बेड़नी है। उसको पता है। राजा रानी पर कम ध्यान देकर एक बेड़नी पर ज्यादा मेहरबान है। शर्तें क्या हैं—-

"कुटना: अगर कोई बेड़नी नदी बीच नाचे या नाचते-नाचते बार-बार आग में कूदे और बेदाग बाहर आ जाए, या तलवार की धार पर नाचे और पांव न कटें या धरती से हजार गज ऊपर आकाश में तनी एक मील लंबी रस्सी पे नाच जाए और गिरे नईं, तभी कुछ हो सकता है"[73]

राजा है, तो चंदा को इसके एवज में राष्ट्रीय कलाकार भी बना सकता है। उसे इनाम भी दे सकता है। उसे सुख-सुविधा, बंगले, नौकर-चाकर उपलब्ध करा सकता है। मगर षड्यंत्र से जान भी तो ले सकता है? चूंकि, यह लोक गाथा पर आधारित नाटक है। इसलिए मिथक और काल्पनिकता , लोक विश्वासों का पुट इस नाटक में दिया गया है। जब चंदा रस्सी पर नाचती है, तो राज्य भर के बल्लम, बर्छे, चाकू-छुरियां सब पेड़ों में गड़ जाते हैं। आसमान में लटक जाते हैं। पहलवानों से ताकत चली जाती है। तलवारें म्यान से नहीं निकलती। सारे औजार हथियार, यंत्र-संयंत्र सब बंद हो जाते हैं। क्योंकि, चंदा पिछले तीन दिन से लगातार भूखी-प्यासी रस्सी पर वह भी आसमान में नाचे जा रही है। सिर्फ एक सुखिया मोची है, जिसकी रांपी चल रही है, क्योंकि वह सच्चा और ईमानदार है और चंदा उसका बेहद सम्मान करती है। यानी राज्य में सभी अकर्मण्य और बेईमान किस्म के लोग हैं। सिर्फ सुखिया मोची सच्चा है।

"राजा: मंत्री जी, इतने समझदार होकर भी कैसी उजड़ी बातें करते हैं आप। सुखिया मोची नहीं देवता है, देवता! हम तो ऐलानियां कहते हैं कि इस समय हमारे राज्य में दो ही महान हस्तियां हैं— सुखिया मोची और चंदा बेड़नी। एक

[72] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.56
[73] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.60

मेहनतकश, एक कलाकार। पूरनमासी को चंदा का नाच है। वह रनिवास से लड़ाई के किले तक आकाश में तनी रस्सी पर नाचेगी। नाच के बाद उसका राज-सम्मान होगा और साथ साथ सुखिया मोची का भी! हमारा हुक्म है कि चंदा के नाच के पहले सुखिया मोची के औजारों और चंदा के घुंघरूओं की सार्वजनिक पूजा की जाए। पूजा करवाएंगे राजपुरोहित और शामिल होगी समूची रइयत। इस जलसे के मुख्य अतिथि होंगे सुखिया बाबा। आज से चंदा और सुखिया बाबा के पूरे जीवन की जिम्मेदारी हमारे शासन की। चलिए उनके दर्शन करें और तर जाएं।"[74]

सुखिया मोची आता जरूर है, लेकिन उसकी ही रांपी से जिस पर चंदा नाच रही होती है, षड्यंत्र के चलते रस्सी कटवाने पर मजबूर कर दिया जाता है। इस प्रकार सुखिया मोची और चंदा की भी मौत हो जाती है। चंदा की मौत के बाद सुखिया मोची की हत्या सामंती व्यवस्था द्वारा करवाई जाती है। इस प्रकार दो कमजोर वर्ग से आए हुए पात्र अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं। सामंती मूल्य और ब्राह्मणवादी व्यवस्था फलती-फूलती है।

"सब: काले मन के उजले चेहरे

चोर लुटेरे धन से दोहरे

ताकत ने यूं प्रेम को मारा

जान ना पाया कोई बेचारा"[75]

4.2 मंचित नाटकों का मूल्यांकन

4.2.1 सुपनवा का सपना

'सुपनवा का सपना' शाहिद अनवर का एक नाटक है, जिसको अलखनन्दन ने 4 अगस्त 2010 को भारत भवन भोपाल में भोजपुरी लोकनाट्य शैली और भोजपुरी लोकनाट्य भाषा व परिवेश में इसका प्रदर्शन किया था। यह नाटक आरंभ होता है। लगभग आरती की धुन लेकर गीत के बोल इस प्रकार चलते हैं– महिमा है अपरंपार प्रभु जी बेड़ा लगाना पार प्रभुजी…. बहुत ही सुरीला और अद्भुत रंग संगीत के साथ यह दर्शकों को अपने आप में समेट लेता है।

---

[74] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.68

[75] चंदा बेड़नी, अलखनन्दन, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली, पृ.72

अब इसमें उपस्थित पात्रों की वेशभूषा, रंग संगीत और विषय वस्तु को लेकर हम बात करेंगे। सबसे पहली बात तो यह ग्रामीण वेशभूषा में पात्रों का प्रवेश होता है। मंच पर चबूतरानुमा कुछ रखा है, जिसके पास ग्रामीण खुदाई कर रहे होते हैं। भोजपुरी लोक भाषा में संवाद शुरू होते हैं। पृष्ठभूमि में वही आरती जैसा गीत मध्यम स्वरों में गूंजता रहता है। पात्र एक दूसरे से पूछते हैं कि खुदाई क्यों की जा रही है? कालकोष को गाड़ने के लिए दरअसल यह खुदाई की जा रही थी। ग्रामीण खासतौर से निम्न मध्य वर्ग, गरीब, किसान ,वंचित इन बातों से अनभिज्ञ होते हैं। उन्हें कई बार पता नहीं चलता कि उनके साथ सत्ता तंत्र किस तरह चालबाजी करके अपना उल्लू सीधा करता है। यहां कालकोष से अभिप्राय उच्च वर्गीय लोगों को इतिहास में संरक्षण मिले। खुदाई से केवल उनका इतिहास आने वाली पीढ़ियों को पता चले। बक्से में भरकर उनकी वंशावली, बर्तन, कपड़े-लत्ते, वीरता के किस्से इत्यादि गाड़े जा रहे हैं। ताकि, पुरातत्वविद् यह जान सके कि इस गांव की कितनी अनोखी, अदभुत, संस्कृति का इतिहास है । इसी को कालकोष कहा गया है। पूरे नाटक में उच्च वर्गीय और निम्न मध्यवर्ग बीच के द्वंद्व ,संघर्ष को दिखाया गया है। युवक रंग बिरंगी पोशाकों में , निर्धन अर्धनग्न अवस्था में तथा उच्च वर्ग को बढ़िया कुर्तों में दिखाया गया हैं। पिछड़े , वंचित वर्ग और उच्च वर्ग के बीच की कड़ी अर्थात मुंशी को ज्यादा धौंस दिखाते हुए दिखाया गया है। वह जमींदार से भी बढ़कर है। एक बक्से में गांव के जमींदारों का इतिहास भरा गया है। अलखनन्दन लोकनाट्य की प्रविधियों को बखूबी जानते थे। समझते थे। इसलिए उन्होंने कालकोष को समझने की खातिर एक कोस ,दो कोस, तीन कोस शब्द का इस्तेमाल कर अपने हास्य बोध का परिचय दिया। संगीत मंडली लोकनाट्य के अनुरूप ही सबको दृश्यमान थी। कालकोष मतलब जमीदारों की वंशावली। भोजपुरी के हंसी मजाक के अंदाज से, यह नाटक लोकनाट्य की शैली के उत्स तक पहुंच जाता है। दरअसल, अलखनन्दन अपनी इस रंग प्रस्तुति से यह समझाने की कोशिश आम जनता को कर रहे थे कि किस तरह से उच्च वर्ग का रंगीन इतिहास लिखा जाता है। उनकी विलासिता, ठाट-बाट , वीरता का बढ़ा चढ़ा कर बखान किया जाता है। जबकि, आम जनता को इतिहास में जगह नहीं मिलती है। एक पात्र है सुपनवा, जो बात-बात पर जमींदार की खिल्ली उड़ाता है। उसकी बातों को तर्कों से खंडन करता है तथा उच्च वर्ग का मजाक बनाकर हास्य उत्पन्न करता है। अपने चुटीले संवादों के माध्यम से उच्च वर्ग की कलई खोलता जाता है, जिससे जमींदार की नाक में दम हो जाता है। मुंशी सलहिया ग्रामीण पात्र को दौड़ा लेता है। जमींदार बताता है। इस कालकोष में हमारे बाप दादाओ के कपड़े , बर्तन उनके कारनामों का लेखा-जोखा है। सारे ग्रामीणों में जमींदार से सवाल-जवाब की हिम्मत नहीं । एक निम्न मध्यम वर्गीय नायक सुपनवा पूछता है तो सारा तंत्र उसके खिलाफ खड़ा हो जाता है। सत्ता के वर्चस्व को सवालों से दिक्कत होती है। यह अलखनन्दन बखूबी जानते थे। खुदाई होगी

तो बाबू साहब लोगों का इतिहास ही पता चलेगा न? उससे आम जनता के बारे में कुछ भी नहीं मिलेगा? सारा नाटक इस द्वंद्व की उपज है, कि उच्च वर्ग का जो नीचतापूर्ण व्यवहार निम्न वर्ग, वंचित वर्ग के प्रति होता है। उसी को रेखांकित करने में अलखनन्दन सफल हुए हैं। यह नाटक हास्य भी पैदा करता है, तो सोचने पर विवश भी कर जाता है। निम्न वर्ग अर्थात दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्ग में चेतना भरने का काम भी इस रंग प्रस्तुति से अलखनन्दन करते हैं। जमींदार मुंशी समझाते हैं या बरगलाने की कोशिश करते हैं कि इससे पूरे गांव का इतिहास पता चल जाएगा? चेतनशील पात्र सुपनवा पूछता है कि जब इतिहास आपका गाड़ा जाएगा तो हमारा इतिहास कैसे निकलेगा? हमतो इतिहास में जगह पाने से रहे? जमींदारों का स्वर्णिम युग होगा न? बीच-बीच में लोकनाट्य की तरह संगीत की झलक भी अलखनन्दन देते हैं। सुपनवा इस बात पर अड़ा है कि इतिहास में हमारा जब तक नाम दर्ज नहीं होगा, तब तक बक्सा गाड़ा नहीं जाएगा। इस युग में सिर्फ बाबू साहब लोग रहते हैं क्या? जमींदार कहता है कि खेत जोतने वालों के साथ हमारे खानदान के लोगों का नाम आएगा क्या? इस पर सुपनवा का तर्क है कि इस सूची में बर्तन बनाने वाले का नाम भी जाए। बाल काटने वाले का भी नाम जाए। ऐसा अलख भी चाहते हैं, अपने नाटकों के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। जमींदार उस चेतनशील सुपनवा पर जूते से मार-पिटाई करता है। आप सुपनवा को प्रेमचंद के पात्र गोबर से उसकी तुलना कर सकते हैं। गोबर की तरह अलखनन्दन अपने पात्र सुपनवा में विद्रोह के स्वर भरते हैं या अपने नाट्य कौशल से सुपनवा का विद्रोही रूप उभारते हैं।

अब नाटक के दूसरे दृश्य में आते हैं, जो कि मार्मिक गीत से शुरू होता है। अब ग्रामीण विद्रोही सुपनवा का साथ न देकर, जमींदार से सवाल न करके, वह सुपनवा को ही समझाने में लग जाते हैं कि जमींदार से दूर रहने की जरूरत है। इससे अलख बताने की कोशिश हैं कि हमारा आंदोलन उच्च वर्ग के खिलाफ कैसे टांय -टांय फिश हो जाता है। लोग विरोध नहीं कर पाते हैं। ग्रामीणों की भी चेतना एकदम शून्य है। उसको जगाने के लिए अलख सुपनवा सरीखा पात्र पैदा करते हैं। नाटक में कुत्ता लेकर भी बाबू साहब आते हैं। जो ग्रामीणों पर रौब और डर पैदा करने के लिए है। सामंती परिवेश की समझ अलख को थी। इस नाटक में, इस प्रस्तुति से, नाटक में सामंती परिवेश जीवंत हो उठता है। कुत्ते का नाम टाइगर है। उसे गधा भला कैसे कहा जा सकता है? वह जमीदार का कुत्ता है न? इसलिए वह बर्दाश्त नहीं कर पाएंगे कि उनकी कुत्ते को कोई गधा कहे? हास्य का पुट नाटक को लोकनाट्य की तरह पुष्ट करता है। बाबू साहब का कुत्ता भी निम्न वर्ग का नाच देखकर खुश होता है। उसको नाच देखकर भूख लगती है। तीसरे दृश्य में भी गीत से शुरुआत होती है। ताड़ी पीने का दृश्य! सुपनवा का विद्रोही स्वर बढ़ने की ओर जाता है। वह गुस्से से आग बबूला हो जाता है। वह ग्रामीणों में विद्रोही चेतना का प्रसार और स्वाभिमान जगाता है। सतरंगी

के प्रेम प्रसंग का भी चित्रण यहां मिलता है। ताड़ी से ताकत का अर्जन क्या वह कर पता है? व्यसन पर भी व्यंग्य किया गया है। ठाकुर का कुत्ता भी चेतना(सुपनवा) पर मूत के चला जाता है। यह सामंतशाही होती है? सुपनवा शादी करके वंशावली तैयार करवाएगा। उसे भी इतिहास में जगह चाहिए? सुपनवा सब के बारे में सोचता है। वह चाहता है कि वंचित, किसान, मजदूर का भी इतिहास में नाम हो। उसकी भी जगह सुनिश्चित हो। तर्कशील का साथ अधिकांश लोग छोड़ देते हैं? अलख यही बताने की कोशिश करते हैं। इसमें एक गीत आता है जो बड़ा मार्मिक है। सुगना के सुनरा पुकारे हो… कन्हैया जी मेहरी की आशा

बहुत ही मधुर संगीत चलता है। नाटक का संगीत पक्ष बहुत जोरदार है। अगले दृश्य में जमींदार की फसल कटनी है। फसल को घर लाना है। लेकिन, किसी मजदूर की हिम्मत है जो जमीदार के यहां काम करने की मनाही कर सके? मजदूर काम करने से मना करता है, तो जमींदार को ऐसा लगता है कि वह नक्सलाइट हो गया है? जमींदार को डर है। लाल क्रांति से वह डरता है, कि कहीं मजदूर इकट्ठे हो गए तो लाल हंसिया के नीचे फसल जमींदार की नहीं रहेगी, किसानों की हो जाएगी। मजदूरों की एकता जमींदार बर्दाश्त नहीं कर सकता। इसलिए उन पर वह हर तरह के शिकंजा कसने के लिए तैयार है। वह मजदूरों का जायज सवाल भी बर्दाश्त नहीं कर सकता है कि उन्हें मजदूरी कम मिलती है? ऐसा कहने का साहस मजदूरों का हुआ कैसे? इसी से जमींदार परेशान हो जाता है। मजदूर शहर में तरह-तरह के काम कर सकते हैं, लेकिन जमींदार से कहेंगे कि यहां पैसा कम मिलता है? जमींदार को इन्ही बातों से चिढ़ होती है। जमीदार का मुंशी हां मैं हां करता है। वह यह तक नहीं जमींदार से कह सकता कि साहब आप मजदूरों को बहुत कम मजदूरी देते हैं। नाटक में भोजपुरी क्षेत्र के लोकगीतों ने समां बांधने का काम किया। सुपनवा के विवाह के अवसर पर तरह-तरह के गीत बज रहे हैं। ऐसा लगता है। मानो निर्देशक अलखनन्दन ने पूरे ग्रामीण परिवेश को मंच पर जीवंत बना दिया है। एक पुरुष को स्त्री(भाग्यजोगनी) बनाकर सुपनवा को प्रणय निवेदन के लिए भेजा जाता है। इससे घूंघट उठाने पर भयंकर हास्य उत्पन्न होता है। जब घूंघट उठाता है तो उसमें लंगोट ब्लाउज पहना हुआ एक पात्र पाता है। इससे ग्रामीण भदेसपन की मिठास देखने को मिलती है। दृश्यांतर पर अलखनन्दन ने अपने इस नाटक में लोकगीतों की धुनों की बौछार की है। इससे नाटक सुगठित व सुरुचि संपन्न हो गया है। उनके इस नाटक में आठ से दस लोग नाट्य संगीत मंडली में थे। जमींदार के व्यभिचार(माया मास्टरनी) का भी पर्दाफाश किया गया है। बिरिछिया काहे न लगउलू…जैसे लोकगीतों से यह नाटक लोक नाटक के काफी नजदीक है। जब सुपनवा की पिटाई हुई तो पूरा गांव देखता रहा। किसी ने उसका साथ नहीं दिया। ठाकुर के आदमी आए और लाठियां वर्षा कर चले गए। गांव में सुपनवा का हुक्का पानी बंद हो जाता है। क्योंकि, उसने जमींदार के खिलाफ

आवाज जो उठाई है। कोई भी व्यक्ति उसको काम देने के लिए तैयार नहीं। ऐसी परिस्थितियों की समझ अलखनन्दन के नाटककार और रंगनिर्देशक व्यक्तित्व को थी। तभी उन्होंने इसकी सशक्त रचना मंच पर कर पाई। ग्रामीणों में से कुछ तो सीधे अपने ही लोगों के साथ धोखा करके जमींदार को सारी खबर दे देते हैं। जबकि, चुगलखोर और गांव के अन्य सदस्य एक जैसा जीवन जीते हैं, लेकिन कुछ लोग स्वार्थवस बिक जाते हैं और कुछ स्वाभिमान के साथ जीते हैं। सुपनवा विवश होकर के गांव छोड़ देता है और शहर जाता है या उसको जाने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। यही क्रूर व्यवस्थाएं गांवों में काम करती हैं, जो दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों को उनके हकों से मरहूम रखती हैं। जिन परिस्थितियों को अलखनन्दन पात्रों के माध्यम से व्यक्त नहीं दे पाते हैं। उन्हें रंग गीतों के माध्यम से नाट्य प्रदर्शन में दिखाते हैं। शहर जाकर सुपनवा वापस आता है। जमींदार ने उसको बुला भेजा है। सुपनवा का रंग-ढंग चाल-चलन बदल गया है। अब वह बॉस बन गया है। जमींदार की पत्नी को उसके द्वारा लाए हुए चूड़ी, पाउडर चाहिए। जमींदार को भरोसा है कि जब मैंने इतना जूते से मारा है तो आएगा क्यों नहीं? आएगी तो उसकी बला भी। साला क्या जमाना आ गया है, सलामी भेजने का रिवाज खत्म हुआ तो इन ससुरों का संस्कार भी खत्म। सामंती मूल्य कैसे काम करते हैं, इस नाटक में इसका बखूबी चित्रण हुआ है। जमींदार को इस बात से ठेस पहुंची है कि सुपनवा खुद सलाम दुआ करने उसके घर नहीं आया। न्योता भेजना पड़ा। तब सुपनवा के दर्शन हुए? उसने खूब पैसा कमाया शहर में जाकर लेकिन, उसका सपना है कि कालकोष हम आम लोगों का भी गढ़ना चाहिए। इसलिए, वह शहर से वापस आता है। जमींदार को झल्लाहट होती है। सुपनवा बाबू साहब की पत्नी को नाड़ा देकर विदा ले लेता है। इससे बाबू साहब का गुस्सा और बढ़ जाता है। सुपनवा के घर में पुत्र जन्म हुआ, बधाइयां बज रही हैं। सोहर गाए जा रहे हैं। (ललना आज अवध भए धनधान हो)इतने में ठाकुर का कुत्ता आ जाता है। जमीदार का कुत्ता आ जाता है, जिससे वह अपना पुराना हिसाब चुकाता है। कुत्ते को परेशान कर दिया जाता है। इससे ठाकुर को और भी परेशानी होती है। कुत्ता ने पिछली बार सुपनवा के हाथ से खाने से इनकार कर दिया था। उसमें भी सामंती मूल्य आ गए थे। जमींदार साहब पहले कभी भी निम्न जातियों के घर छठी में नहीं गए, लेकिन आज अपना रुतबा जमाने जाएंगे। समय तेजी से बदल रहा है। कुत्ते के मुंह में और शरीर में जूंठन लगा हुआ देख और उसकी आंखों में चश्मा देख, जमींदार आपे से बाहर हो जाता है। जमीदार साहब को इस बात से ठेस पहुंचती है कि सब भाई-भाई हैं। चलो मान लिया, लेकिन ये किसी के सर पर बैठकर मूते यह उन्हें बर्दाश्त नहीं होता। कोई स्वाभिमान पूर्वक जिंदगी यापन शुरू कर दे, यह सामंतों को रास नहीं आता। गांव में ठाकुर साहबी चलती रहे। यही तो सत्ता तंत्र चाहता है। कोई चूं चपड़ न करे, यही तो सामंत चाहते हैं। एक दिन मुंशी भी ठाकुर की मानहानि कर देता है। गलत को गलत तो

सही को सही कह देता है। पुलिस से साँठ-गांठ और षड्यंत्र करके जमीदार सुपनवा से बदला लेता है। डकैती का इल्जाम लगाकर न जाने कितने दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों, किसानों को उच्च वर्ग जेल में भिजवाकर राज करता है। कालकोष गड़ेगा, इस बाबत पुलिस अफसर सुपनवा से अंगूठा ले लेता है। सुपनवा को यह भी पता नहीं की उस कागज में क्या लिखा है और सुपनवा के जेल जाने का यही आधार बनता है।

ज़ुलुम के रामा जांता चलेना…

ज़िन्गी भईलवा बेहाल…जुलुम …

कहां गए इंसाफ की बतिया कहां गए भगवान

झूठ भइल इंसाफ की बतिया झूठा है भगवान

झूठे हस्ताक्षर करा कर के किसी से झूठे एनकाउंटर करा कर जेल में सड़ा देने की प्रथा बहुत पुरानी है। सीधे-साधे इंसान को नक्सलाइट बताकर मारने की प्रथा भी बहुत पुरानी है। लेकिन, इंसान को मारा जा सकता है। सपना और विचार को मारना फिर भी कठिन है। यही अलखनन्दन इस नाटक के माध्यम से दिखाते हैं। अंत में निर्देशक अलखनन्दन ने सभी कलाकारों के हाथ में डंडे पकड़ाकर कदमताल करते हुए उनके सशक्त होते चले जाने का संदेश दिया है। उनकी एकता के लिए संदेश दिया है। साथ में मिलजुल कर रहने से बुराइयों का मुकाबला किया जा सकता है। गीत-संगीत से ही नाटक की शुरुआत होती है और गीत-संगीत से ही नाटक का अंत होता है।

कईसे गोलिया चलईबा सपना पर

कौन तोपवा दईगबा सपना पर

सपना म दीदी सपना माई भैया चढ़े आकाश

दिन रात अखवा म सपना में बसा गए

कर अंधिया उजास है…

कौन घोड़वा दौड़ईवा सपना पर

सपना में पग पग पुतना मराए

कंस माराए मैदान हो….

सपना में जुल्मी कुकर अइस तड़पे

बाबा के बढ़ल सान हो…

कौन पलटन चढ़ईबा सपना पर

इस नाटक के पात्र घसीटा, मंगलू, दरोगा, सलाहीराम, शनिचरा, सुपनवा बाबू साहब, प्रसादी, बुधना ,नमकीनवाला इत्यादि थे। इसमें प्रयुक्त गीतों का चुनाव अलखनंदन ने किया था। शारदा सिन्हा और रवि लाल सांगड़े ने इसका संगीत दिया था और सुरेंद्र वानखेड़े ने सहयोग किया था। [76]

4.2.2 अंडोरा

यह नाटक 'नट बुंदेले' के बैनर तले खेला गया था तथा इसके लेखक मैक्स फ्रिश्च हैं। इस नाटक को अलखनन्दन ने निर्देशित किया था। इसमें जिन्होंने अभिनय किया था, उनमें विश्ना चौहान, अजय सिंह पाल, राजीव यादव ,दीपक तिवारी ,रवि भूषण भारतीय, दीपक नेमा , मुकुल त्रिपाठी, शेख आरिफ इत्यादि प्रमुख थे। अलखनन्दन ने ही इसका संगीत और मंच तैयार किया था। इस नाटक की वस्त्र सज्जा सरोज शर्मा जी ने की थी। प्रकाश परिकल्पना इरफान सौरभ और सौंदर्य का प्रबंध अनूप जोशी बंटी ने किया था। इस नाटक के अनुवादक महेश दत्त थे। पाश्चात्य संगीत गिटार से नाटक की शुरुआत की। इसका अर्थ यह लिया जाना चाहिए की अलखनन्दन को नाटकों की पूर्व और पश्चिम परंपरा का अच्छा खासा ज्ञान था और वह इनका इस्तेमाल अपने नाटकों में समय-समय पर करते थे। एक उदास सा संगीत, धुंधला सा दृश्य मंच पर दृष्टिगोचर होता है। इस नाटक का मंच यथार्थवादी है। इसमें सीढ़ियां हैं। महलनुमा या हवेलीनुमा इसका मंच बनाया गया है। सफेद संगमरमर सा एक विशाल घर दिखाई देता है। रही बात वस्त्र-विधान की तो पाश्चात्य वस्त्रों को प्रमुखता दी गई है। नायिका और एक फौजी लफंगे के संबंधों से नाटक की शुरुआत होती है। फादर लंबा गाउन पहना हुआ है। फौजी नाटक की नायिका को छेड़ता है। इस नाटक की मंच सज्जा पश्चिम में बने हुए घरों जैसी है। नाटक का पात्र फौजी काले कपड़े पहना है, जिससे उसकी क्रूरता झलक रही है। उसी पादरी को अलखनन्दन ने सफेद गाउन पहनाया हुआ है। दरअसल, अंडोरा एक फंतासी से भरा हुआ देश है, जिसे शांति सौहार्द के निमित्त बनाया गया है। लेकिन, जो आततई शक्तियां होती हैं, वह यहूदियों से नफरत करती हैं। एक शांति के देश में खून खराबा करती हैं। किसी देश की न्यायप्रियता, धर्मपरायणता

[76] https://youtu.be/99qqrKlUIDY?si=j95u0sKQODKGGanu [02/03/2024]

https://youtu.be/XSU3qBcElbI?si=vETci9vEeYXajCs6

https://youtu.be/x_Hkvkwm0rw?si=Zg0pIdMsfmWxdBT-

https://youtu.be/8jLKdw-_jN4?si=eZSx_PUdFOz0jIs1

और शांति, आक्रमणकारियों के लिए बुजदिली और कायरता के अलावा और क्या हो सकती है? पाश्चात संगीत के जिंगल्स का प्रयोग भी अलखनन्दन ने इस नाटक में किया है। इस नाटक के कुछ पात्र सूटबूट में हुक्का पीते भी नजर आते हैं। दरअसल, यह एक जर्मन नाटक है। यहूदियों पर जो नफरत का जाल बुना जाता है। यहूदियों और ईसाइयों के बीच में जो द्वंद्व और संघर्ष की स्थिति बनती है। इस नाटक के केंद्र में यहूदियों की दुर्दशा , उन्हें कमजोर और बुजदिल समझा , जाना उनका शोषण और उन्हें संदेह की नजर से देखा जाना, उनके साथ नश्लीय भेदभाव दिखाया गया है। यहूदियों को पैसों का लालची और दुनिया भर के विश्वविद्यालय में प्रोफेसरों के पद हड़पने के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है। यद्यपि, इस कौम ने न जाने कितने बड़े बुद्धिजीवियों को जन्म दिया है। यहूदियों के लिए खंभे गड़वाए गए। असंख्य यहूदियों को मौत के घाट उतार दिया गया। नाटक हंसी मजाक की शैली में प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि बहुत ही जटिल ,गंभीर और गहरे प्रश्न, मानव सभ्यता को लेकर इस नाटक में उठाए गए हैं। नाटक शोर शराबे में नहीं, एक मौन में चलता है। नाटक में रिकॉर्डिड संगीत का भी इस्तेमाल किया गया है। 'अंडोरा के लोग मनमौजी हैं लेकिन जब बात पैसे की हो तो किसी यहूदी से काम नहीं' इस बात को रेखांकित इसलिए किया गया है, क्योंकि यह स्वयं यहूदियों के बारे में लोगों की सोच को स्पष्ट कर देता है। मोमबत्ती लिए हुए पात्र मंच पर सेंट जॉन्स डे मना रहे हैं। यहूदी होकर कोई बढ़ई भला क्यों नहीं बन सकता? क्या इसके लिए बढ़ईगिरी खून में होना जरूरी है? क्या बढ़ईगिरी सीखने के लिए मोटी रकम देनी पड़ती है? यहूदी होने की सजा फौजी, आंद्री को देता चाहता है। वह, उसकी प्रेमिका बार्बलिन को छीन लेना चाहता है, जिसे वह उसकी बहन तक कहता है। यहूदी होकर हंसा भी नहीं जा सकता? यहूदी होने को इन्होंने कायरता और डर का पर्याय बना दिया है। यहूदियों को ऐसा महसूस कराया जाता है कि उनमें संवेदना नाम की चीज नहीं होती। जबकि, आंद्री तो कर्तव्यनिष्ठ पात्र है। अलखनन्दन ने नाटक के नायक-नायिका का प्रगाढ़ आलिंगन मंच पर उपस्थित किया है और पाश्चात्य नाटकों के चुंबन इत्यादि को भी प्रदर्शित किया है। आंद्री को उसके यहूदीपन, उसकी भिन्नता का एहसास पल-पल पर कराया जाता है। अलखनन्दन ने ऐसी आवाजों की रचना, मंच और नेपथ्य में की कि नाटक के नायक को जैसे हर जगह ताने मारे जा रहे हैं। यहूदी-यहूदी उसको चिल्लाया जा रहा है। ऐसा प्रदर्शित किया। यहूदी होना जैसे कोई जुर्म होता है? इस प्रविधि का इस्तेमाल निर्देशक ने ईजाद किया है। दरअसल, यहूदियों को यह एहसास कराया जाता है कि वह यह काम कर सकते हैं और यह-यह काम नहीं कर सकते हैं। उन्हें बंधन में रखने की नियति समाज के उच्च वर्ग में देखी गई है। यहूदी फुटबॉल भी खेलेगा तो उसके पास जूते न होने पर, उसे पुराने जूते भी खरीद कर खेलना पड़ेगा? यह नाटक यथार्थवादी रंग शैली में अलखनन्दन ने खेला है। उसी तरह से जिस जिस वस्तु की जरूरत पड़ती गई, अलखनन्दन

ने उन सभी आवश्यक वस्तुओं का इस्तेमाल मंच पर किया है। मसलन, कुर्सी, टेबल ,सीढ़ियां ,घर-महल ,सिगरेट, एप्रिन इत्यादि। अगर आंद्री कुर्सी बना भी दे, चाहे वह जितनी मजबूत हो, तो भी उसके बनाने पर यकीन नहीं होने वाला? आंद्री की बेचैनी, ऊहापोह , आंतरिक द्वंद्व ,आंतरिक संघर्ष को रेखांकित करने में अलखनन्दन सफल हुए हैं। आंद्री से कुर्सी बनाने का काम छुड़वाकर, उसके मालिक उससे वह काम लिए जाने पर विवश करते हैं, जो वह करना नहीं चाहता है अर्थात उससे क्लर्कों की तरह के काम लेना चाहते हैं। गलतियां चाहे कोई करे, मत्थे तो यहूदियों के ही मढ़ी जाती हैं? यहूदियों को जमीन में धंस जाना चाहिए? कितना नफरत भरा वाक्य है? मैं जानता हूं इन यहूदियों को जहां भी जाओ पहले से ही मौजूद होते हैं? यहूदियों की सबसे बुरी बात उनकी बेहद महत्वाकांक्षा है? यहूदियों को बदला नहीं जा सकता? यह लोग (यहूदी) तो मजाक भी नहीं समझते? किसी ने कभी ऐसा यहूदी देखा है जो मजाक समझता हो मैंने तो कभी नहीं देखा? जैसे संवाद हमें सोचने पर विवश करते हैं। कैन ,बार्बलिन की शादी आंद्री से इसलिए नहीं करना चाहता क्योंकि वह यहूदी है? कोई दिन नहीं गुजरता, हर दूसरा शब्द। यहूदी! यहूदी! बिना यहूदी कोई दिन नहीं। कोई रात नहीं। जब कोई खर्राटे भी भरता है तो यहूदी सुनाई देता है। यहूदी बिना कोई खरीद फरोख्त नहीं। यहूदी बिना कोई मजाक नहीं। जहां कोई भी नहीं होता है, वहां भी मुझे यहूदी सुनाई देता है। बच्चे भी यहूदी का खेल खेलते हैं और घोड़े भी हिनहिनाते हैं तो यहूदी-यहूदी। बहुत बड़ा नाटक होने की वजह से अलखनन्दन ने इसको दो भागों में विभाजित करके प्रदर्शित किया था अर्थात अंतराल का भी प्रबंध किया था। घृणा को व्यक्त करने में अलखनन्दन सफल हुए हैं। घृणा की टीस क्या होती है उसको अलखनन्दन चित्रित कर पाए हैं। बेचैनी, संत्रास, तकलीफ हर एक पहलू से नाटक आगे बढ़ता है। नाटक लंबा होने से थोड़ा ऊब का माहौल जरूर होता है। क्योंकि, इसमें हंसी-मजाक का उतना स्थान नहीं है। गीत-संगीत का स्थान नहीं है। नाटक सुगठित रूप से प्रदर्शित हुआ। नाटक के पात्र परेशान हैं। बेचैन हैं। वे पूछते हैं। चिल्लाते हैं। सवाल पूछते हैं। आखिरकार हम ऐसे क्यों हैं? जो लोग अपनी बेटी तक को यहूदी लड़के से ब्याह नहीं सकते, वे लोग भी स्पिनोजा और आइंस्टीन का उदाहरण देते हैं। कई बार लोगों को राष्ट्रवाद का पाठ इसलिए भी पढ़ाया जाता है; ताकि वे दूसरे राष्ट्रों से घृणा कर सकें। व्यवस्थाओं में किस तरह की अफरा-तफ़री अराजकता है, इसका चित्रण करने में प्रदर्शित करने में अलखनन्दन बेजोड़ ठहरते हैं। स्तब्धता का चित्रण इस नाटक में अलखनन्दन प्रदर्शित करते हैं। विदेशियों की नजर में स्वदेशी लोग हमेशा ही बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं, जबकि कई बार स्वदेश के हालात अच्छे नहीं होते। यहूदियों के साथ कैसा बर्ताव होता है, यह सारी दुनिया जानती है। लेकिन इन सब बातों को छुपाया भी जाता है। जिस अध्यापक ने उसे यहूदी कहकर बचाया था और यही उसके शोषण का कारण बन गया अर्थात आंद्री के खिलाफ पूरा समाज

खड़ा है। तो कैन का बेटा ही आंद्री है ,जो उसकी प्रेमिका से जन्मा है, बार्बलिन ,केन की दूसरी पत्नी से जन्मी है । एक पिता ने ही अपने पुत्र के खिलाफ यहूदी होने का झूठ फैलाया, जिसका दंस वह अपने आजीवन झेलता है। इस नाटक के प्रदर्शन को लेकर शायद अलखनन्दन के मन में यह इच्छा रही होगी कि वह समाज में फैले द्वेष-घृणा को चित्रित कर लोगों की आंखें खोलें। इस यथार्थवादी नाटक में अलखनन्दन ने मुनादी करता एक पात्र प्रवेश करके निश्चित रूप से लोकनाट्य की एक प्रविधि का इस्तेमाल तो किया ही है। नाटक में इस तरह की अराजकता, वैमनस्य चित्रित किया गया है कि नायक यहूदी न होने पर भी यहूदियों के लिए, उनके स्वाभिमान के लिए, लड़ रहा है। उसे विवश कर दिया जाता है। दंगाई किसी भी घर में आग लगा देते हैं। वह तब तक इंतजार करते हैं, जब तक कोई यहूदी खिड़की से बाहर न आए। नाटक के हर दृश्य की शुरुआत से पहले जिम्मेदार पात्र खुद को जिम्मेदारी से दूर करने के लिए अपनी सफाई पेश कर देता है। यहूदियों को तो देखकर पहचाना जा सकता है, सूघकर पहचाना जा सकता है और तो और उनकी चाल से पहचाना जा सकता है? यह है घृणा का चरम उत्कर्ष? जनता जो है केवल हुक्मरानों की भीड़ तंत्र का हिस्सा है, और जो आदेश मिलता है, उसे आंख मूंद कर पालन करती है। आदेश का पालन न करने पर गोली मार दी जाती है? सर झुकाने से कोई यहूदी हो जाता है क्या? धर्म तंत्र का जो नायक नैतिकता का लबादा पहने रहता है, वह भी दंगाइयों को रोकने में विफल रहता है।[77]

4.2.3 भगवदज्जुकम्

यह नाटक भी 'नट बुंदेले' द्वारा प्रस्तुत किया गया। इसको निर्देशित अलखनन्दन ने किया था। यह बुंदेली लोक बोली में किया गया है। वस्तुतः यह नाटक संस्कृत भाषा का है। यह बौधायन द्वारा लिखा गया है। इसमें भाग लेने वाले कलाकारों में विश्ना चौहान, हेमंत देवलेकर, राजेश गोस्वामी इत्यादि प्रमुख थे। इस नाटक की शुरुआत भगवान शंकर की आरती, भजन से होती है। सभी कलाकार मंच पर हाथ जोड़कर खड़े है। लोक संगीत में ही इस भजन आरती को गाया जाता है, जो कि एक मधुर संगीत लय में सुनाई देती है।

'शिव शंकर तुम्हरे चरण सदा, रहें कृपालु करें रक्षा।

[77] [04/03/2024], https://youtu.be/CzNp0Z-dM5Q?si=hmZU-AmYJU08n9X3

https://youtu.be/4NL_FTaSV74?si=C2VfIMbxyGwT8aDT

यह चरण जिन्हें झुक चूमत है मणि शोभित सुंदर इंद्र मुकुट।

शिव शंकर तुम्हरे चरण सदा…

यह चरण देख नत होबत है, घन घमंड सिर रावण को…

शिव शंकर तुम्हरे चरण सदा…'

एक तरह से जिस तरह से संस्कृत नाटकों में अभिनय से, प्रस्तुति से पहले जिस तरह से पूजा विधान होता है। इस तरह से इस परिपाटी का यहां पर निर्वहन किया गया है। कुछ स्तंभाकार स्तंभ तीन चार हैं। पूरा नाटक संगीत प्रधान है। संगीत मंडली इन स्तंभों के बीच में और मंच के बीच में थोड़ा पीछे की ओर बैठी हुई है । यह प्रहसन है। इसमें गजब का हास्य देखने को मिलता है। स्तंभों में पेड़नुमा कुछ चित्रकारी दिखाई गई है। शांडिल्य के पीछे गुरु दौड़ रहे हैं। इसके ज्यादातर गीत, ऐसा लगता है कि अलखनन्दन द्वारा ही रचित हैं, क्योंकि इसकी पांडुलिपि हमें प्राप्त नहीं हुई है। केवल प्रस्तुति के आधार पर, इस पर कुछ विचार करेंगे।

'अज्ञान भरो मन न समझे

यह चार दिना की मस्ती है।

है मौत तेरी कंधे बैठी

तू इते उते क्या करती है

अज्ञान भरो मन न समझे'

इंसान विषय वासनाओं में घिरा रहता है। कर्मकांड की असलियत खोलकर रख दी गई है। ब्राह्मणवाद का छल कपट इसमें चित्रित किया गया है। कर्म फूट गए जैसे बुंदेली लोकगीत का भी इसमें प्रयोग किया गया है। कलाकार प्राचीन काल की वेशभूषा में नजर आते हैं। अलखनन्दन ने भोजपुरी, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी का रंग मंच किया था। उनके मन में इच्छा थी कि क्यों न संस्कृत का भी रंगमंच किया जाए। इसलिए, उन्होंने इस नाटक को प्रस्तुति हेतु चुना। बड़े मजे से राखियो बाबन को जोरी झंडा। कुछ यही इस नाटक में दिखाया गया है। शास्त्रार्थ की बातों से, आत्मा-परमात्मा के संबंध पर, अंतरात्मा, कर्मात्मा, दर्शन की बातों से आम नागरिकों का पेट नहीं भरता। गुरु-शिष्य की बातों में जो विरोधाभास है, वह यहां चित्रित है। आदर्श बड़े-बड़े होते हैं, लेकिन यथार्थ कुछ और होता है। क्षिति जल पावक गगन समीरा, कम से कम खिलवादो खीरा। जैसे संवाद दर्शकों में हंसी पैदा करते हैं। गुरु-शिष्य लाठी, दंड-कमंडल लिए हुए, विचरण कर रहे हैं। मोर एक स्त्री बनकर आती है। बुंदेली स्वांग की परंपरा का यह नाटक बन जाता है। स्त्रियां सूपा ,दोरियां लेकर प्रवेश करती हैं ,जिससे बुंदेली वातावरण जीवंत हो उठता है।

‘बसंत छा रओ है, मजा आ रओ है।

भंवरे गुनगुन कर रए हैं, बिरहन बन कोयलनी पुकार।

बसंत छा रओ है मजा आ रओ है’।

वसंत ऋतु में स्त्रियों की वेशभूषा लाल-पीली हो गई है। गुरु के सुंदर उपदेश शिष्य के पल्ले नहीं पड़ते बल्कि, वह विषय वासनाओं की तरफ भागता है। सावन के अंधे को सदैव हरा-हरा दिखाई देता है। हाथ पांव के काहले और मूं में मूंछें जाएं। मूंछ बिचारी का करै जब हाथ न पौंचे जाएं। जैसी बुंदेली लोक युक्ति का प्रयोग इस नाटक में अलखनन्दन करते हैं। नियम, संयम, योग इनका पालन तो कोई-कोई ही कर पाता है। संस्कृत की शब्दावली की अपनी सीमाएं हैं। लोक में आकर उनका बस नहीं चलता। सिद्धांत, सिद्धांत हैं और व्यावहारिकता, व्यवहारिकता। सब अपनी-अपनी जगह सही लगते हैं। धर्मचर्या का पालन करना सबके बस की बात नहीं है। कुल मिलाकर बात यह है कि ‘भूखे भजन न होए गोपाला’। सबसे तपस्या, साधना नहीं हो पाती, कुछ लोग दिखावा जरूर करते हैं। स्त्री के प्रेम से दूर होना या उससे विरत होना सबके बस की बात नहीं है।

सखी रुक्मणी बन में आई बहार। जैसे गीत की शास्त्रीय ध्वनि भी हमें सुनाई पड़ती है। संगीत नृत्य बहुत जोरदार है और जगह-जगह हास्य बिखरा हुआ है। आओ बसंत रजऊ की चितवन सोहै, राम जी बचाओ काम देवता से। जैसे गीत से महाकवि ईसुरी की याद आ जाती है। यमराज इस नाटक में प्राणों की अदला-बदली कर देता है। इसमें एक गणिका(अज्जुका) के प्राण साधु में स्थानांतरित कर दिए जाते हैं। एक सर्प अज्जुका को डंस लेता है। तनक हंस बोल ले चलती बिरियां। जैसे राई लोक गीत को प्रस्तुत करके बुंदेली लोकनाट्य परंपरा को और भी समृद्ध बनाया गया है। योग और आयुर्वेद मृत्यु के आगे असफल हो जाते हैं। कोई तंत्र-मंत्र, कोई विद्या मृत्यु के आगे टिक नहीं पाती। साधु अपने जीवन को गणिका में स्थानांतरित कर देता है। बुंदेली के कुछ ऐसे लोक संवाद बोलकर शांडिल्य समा बांध देता है। दोई चीज से गए पाड़े, हलुवा मिले न माड़े। जैसी लोक कहावतों ,लोकोक्तियां से यह बुंदेलखंड की स्वांग परंपरा में वृद्धि करता है। वैद्यगिरी इत्यादि का गजब मजाक उड़ाया गया है। **‘पदे बेर’** पदावली जैसा अद्भुत प्रयोग किया गया है। ऐसा सिर्फ आपको बुंदेलखंड में ही देखने- सुनने को मिलेगा। गणिका के प्राण तो यम लेकर गया था, लेकिन जब वापस प्राण लेकर आता है, तो देखता है कि इसमें तो साधु के प्राण पहले से ही हैं। क्योंकि, साधु ने अपने प्राण वसंत सेना नाम की गणिका को चमत्कार प्रदर्शन के लिए दे दिए थे । इसलिए यमदूत, वसंत सेना के प्राण साधु के शरीर में प्रवेश कराकर चले जाते हैं। यह नाटक प्राणों की अदला-बदली का खेल ही है । इसलिए, साधु वसंत सेना से प्रेम करके मंच पर प्रदर्शित करता है। यानी गणिका और साधु दोनों ही

गजब के स्वांग रचते हैं। लग गओ काम रजऊ की बउ को अब कैसें पेट भरै पिटऊ को। जैसी बुंदेली फागों जैसा तड़का देने की कोशिश अलखनन्दन ने इस प्रस्तुति में की है। वैद्य भी ऐसे-ऐसे की सदैव पुस्तकें लेकर इलाज करते फिरते हैं। व्याकरण के विद्वान को सांप ने काटा हुआ लगता है। सखी उपवन वन में आई बहार। बरसे प्यार फुहार।

जैसा कि अधिकांश नाटकों में अलखनन्दन गीत से शुरुआत करते हैं और गीत से ही खत्म करते हैं। इस नाटक में भी गीत से सबके कल्याण की कामना की गई है—

'सबका हो कल्याण प्रभुवर, सबका हो कल्याण
संसार के जीव सुखी हों, परहित धर्म न कोई दुखी हो
हर एक का हो कल्याण प्रभुवर सबका हो कल्याण।
दुख दोषों का चक्र मिटाओ, निर्मल ज्ञान की राह दिखाओ।
गूंजे सुमधुर तान, प्रभुवर सबका हो कल्याण'[78]

4.2.4 स्वांग मल्टीनेशनल

यह नाटक भी 'नट बुंदेले' समूह के तहत खेला गया। लेखन और निर्देशन अलखनन्दन का था। इसमें भूमिका निभाने वालों में सुनील सिंह, आनंद मिश्रा, संतोष पांडे, विश्ना चौहान, पंकज पवार, अंश पायन सिन्हा, राजेश तिवारी, अजय पाल सिंह और स्वाति चक्रवर्ती इत्यादि प्रमुख थे। इसमें संगीत अवनींद्र सिंह का था और संगीत में सहयोग सूरज तिवारी, सुरेंद्र वानखेड़े, रंजीत सिंह ने दिया था। इस नाटक की प्रकाश परिकल्पना अनूप जोशी बंटी ने। इसमें जो लोक नृत्य और लोकनाट्य बुंदेली का प्रयोग हुआ, उसको तैयार किया था संतोष पांडे जी ने। 'प्ले वे हाई स्कूल' में इसका प्रदर्शन हुआ था। मंच पर चार-पांच कलाकार इकट्ठे हैं और शोर शराबे से नाटक की शुरुआत होती है। दो प्रकाशवृत्तों में अलग-अलग कलाकार समूह खड़े दिखाई देते हैं और राजकीय ध्वनि बजती है। राई लोक नृत्य में जो ध्वनि बजती है। उसका इसमें बहुत ही सुंदर इस्तेमाल किया गया है। मंच पर चबूतरानुमा एक चौकी रखी हुई है। मुनादी वाले और राजा का प्रवेश नाचते हुए, संगीत ध्वनि के साथ होता है। पूरा नाटक गीत-संगीत धूमधाम से संगीतमय हो गया है। अलग-अलग क्षेत्र के ग्रामीणों और राजा की वेशभूषा एकदम अलग है।

---

[78] [26/07/2024, https://youtu.be/8U-HKJVIcSM?si=tfa7n3Do4gp_ugF3

राजा अपना चोगा पल-पल में बदलवाता है, जबकि रैयत के कपड़े फटे चिथड़े हैं और वह राजा के चरणों में गिर पड़ते हैं। बुंदेली संगीत से इस नाटक में चार चांद लग जाते हैं। राई नृत्य की पद गतियों का इसमें भरपूर इस्तेमाल किया गया है। बुंदेली लोक भाषा से यह नाटक और ज्यादा रसग्राही और स्वीकार्य हो गया है। हास्य और व्यंग्य से दर्शक सराबोर और हो जाते हैं। संगीत मंडली को अलखनन्दन ने एक किनारे पर दिखाया। न कि नेपथ्य में अदृश्य। जितने भी दर्जी थे, अलग-अलग क्षेत्र के जैसे पंजाब के दर्जी को पंजाबी वेशभूषा में, बिहार के दर्जी को बिहारी वेशभूषा में ,मद्रासी को मद्रास की वेशभूषा में, बंगाली को बंगाली वेशभूषा में और मुंबई के दर्जी को बंबईया वेशभूषा में दिखाया गया है। इसमें एक बंगाली गीत का प्रयोग भी किया गया है। पंजाबी दर्जी के प्रवेश पर पंजाबी गीत बजता है। इसी प्रकार मुंबईया दर्जी के आने पर गीत गाया जाता है। मद्रासी दर्जी के आने पर 'एक चतुर नार बड़ी होशियार' गाना संगीत मंडली गाती है। अगले दर्जी के आने पर 'ढलता सूरज धीरे-धीरे ढलता है। ढल जाएगा। ' ,गाने के साथ प्रवेश होता है। जिन-जिन क्षेत्रों से दर्जी आए, वह अपनी लोक भाषा भी साथ में लेकर आए। इससे नाटक रोचक हो गया है। 'मुटकी पतरकी हो मारे नजरिया जियरा उड़ी-उड़ी जाए' गाने से बिहार का दर्जी प्रवेश लेता है। इन गीतों का उपयोग अलखनन्दन ने नाटक में नहीं किया है अर्थात लिखित पाठ में नहीं है, बल्कि प्रस्तुति के दौरान तैयार किया है। ऐसे बाग न लगाओ कौनू मलिनिया के लाने, नैना बंध लागे कहियो न चोली बंध लागे कहियो न जैसी धुनों से नाटक अत्यंत कर्ण प्रिय लगता है और समां बंधा रहता है। इंटरनेशनल-मल्टीनेशनल दर्जियों का, फैशन डिजाइनर्स का प्रवेश ऊट-पटांग भाषा के साथ होता है। इससे हास्य उत्पन्न होता है। अब राजा की पोशाक में चोगा नहीं सूट होगा। इसका अर्थ है बहुराष्ट्रीय कंपनियों का अपने देश में स्थाई निवास। इस पर भी राजा गर्व से कहता है–

'जादू का सूट? हाय दइया
चिक पहना चिकन पहना
रेशम और सिल्क पहना
सलमा सितारा पहना
सोने और चांदी पहना
अब पहनूंगा जादू का सूट!'

साइकिल के रिम से बहुराष्ट्रीय कंपनियों का चरखा तैयार किया गया है। इस नाटक के सभी पात्र नाचते गाते हैं। नाटक की प्रस्तुति इस प्रकार दी गई है कि दर्शन लोटपोट हो जाते हैं। इसमें मुनादी करने वाला पात्र कथा

को आगे बढ़ाने में सहायक हुआ है। वह एक पुल का काम करता है। यह नाटक दस दृश्यों में बंटा हुआ है। इसको जोड़ने का काम ढिंढोरची करता है। अर्थात वही इस नाटक का नट है। नाटक की अवधि अधिक होने से बीच-बीच में दर्शकों का शोरगुल भी झेलना पड़ता है। राजा का राष्ट्र के नाम संबोधन एकदम बोरियत भरा और बोझिल दर्शकों को महसूस होता है। यह पूरा नाटक संगीत प्रधान नाटक है। इसमें बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा का भी अंश है।

'जादू का सूट पहने, राजा की चली सवारी
देखके शरमा जाती बेचारी प्रजा दुखारी
कच्छे के ऊपर देखो जादू का सूट है
कच्छे के नीचे राजा पूरा रंग रूट है
जादू का सूट पहने राजा की चली सवारी'

इस नाट्य गीत का प्रयोग नाटक में हुआ, लेकिन लिखित पाठ में नहीं हुआ। तो भी यह बहुत सुंदर बन पड़ा है। साथ ही साथ इसमें जो मूल पाठ में कवि और कविता का प्रसंग था। वह भी प्रस्तुति के दौरान अलखनन्दन ने हटा दिया है। जो राजा देश का खजाना खाए ,उसका राज भाड़ में जाए' इस नारे को तीन काले झंडों को दिखाते हुए मंच पर प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्र का पूरा खजाना तो बहुराष्ट्रीय कंपनियां इन मूर्ख राजाओं, नेताओं की वजह से लूट ले जाती हैं। इस प्रकार नाटक के अंत में सभी कलाकार कुछ संदेश दर्शकों के लिए छोड़ जाते हैं–

'देशी में शान है भाई
देशी महान है भाई'[79]

4.2.5 स्वांग शकुंतला

इसकी प्रस्तुति 'नट बुंदेले' नाट्य समूह के झंडे तले हुई थी। इसके लेखक और निर्देशक अलखनन्दन स्वयं थे। इसमें भाग लेने वाले कलाकारों में अंश पायन सिंहा, लता सांगडे, रविंद्र तिवारी, अजय पाल सिंह, विनोद मिश्रा, विश्ना चौहान इत्यादि प्रमुख थे। इस प्रस्तुति का जिसका मैं जिक्र कर रहा हूं, इसमें ओमप्रकाश चौरसिया संगीत निर्देशक थे। अनूप जोशी बंटी की प्रकाश परिकल्पना थी। नाटक की शुरुआत में सभी कलाकार नाचते हुए,

[79] [19/03/2024], https://youtu.be/EWDylY-Q-zo?si=mqptQ9tRIWAC9lgz
https://youtu.be/bg7xPqc20-8?si=sBfLd-a1zUx52k3E

संगीतमय धुन पर प्रवेश करते हैं। सूत्रधार असुर की वंदना करता है, जिसमें वह कई देशों को अपने लपेटे में ले लेता है। सभी कलाकार रंग-बिरंगे कपड़ों में दर्शाए गए हैं। इस नाटक का संगीत अद्भुत है। आपको नाचने-झूमने पर विवश कर देगा। अलखनन्दन ने इसमें नृत्य का भी अद्भुत प्रयोग किया है। नट-नटी की भूमिका के बाद यानी पूर्वरंग के बाद, कुत्ता का पीछा करते हुए दादा दुष्यंत सिंह, उनकी जीप, अपनी बंदूक लिए हुए, दौड़ते हुए, प्रवेश करते हैं। कुत्ता, आदमी ही बना हुआ है। मंच पर केवल एक तकतनुमा चबूतरा है। उसी से सारा नाटक व्यापार हो रहा है। जीप को प्रतीक रूप से हाथ में स्टेरिंग लेकर चलाया जा रहा है। प्रकाश हिलता-दुलता रहता है। अलखनन्दन ने विद्यार्थियों को गांधी टोपी, हाफ पैंट, हाफ शर्ट में दिखाया है। प्रस्तुति में वैशाखनंदन पात्र को हिंदी अध्यापक के रूप में दिखाया गया है। 'अधिकारी जी हैं काट खाएंगे' कुत्ता, दादा दुष्यंत सिंह और कंपनी के लोगों पर बार-बार भोंक्ता है। इस पर यह संवाद निकलकर आया है। इससे हास्य उत्पन्न होता है। इसमें अलखनन्दन ने संवादों को इतना हास्यपूर्ण बनाया है कि दर्शकों का मनोरंजन बराबर होता रहता है। 'एक तरफ भैंसिया बंधी है और गोबर का पर्वत। कुछ विद्यार्थी एक ही बीड़ी से सूंटे लगा रहे हैं।' नाटक में पद-गतियां बुंदेली लोकनाट्य की है। इसमें नगड़िया बजाते हुए पद गतिया होती हैं। कुछ कुछ राई नृत्य और राई की गायन की पद्धति का अनुसरण भी इसमें मिलता है। भैंस की आवाज एक पुरुष निकालता है। दादा दुष्यंत सिंह शकुंतला को देखकर गाना गाता है, जिससे हास्य उत्पन्न होता है–

'आलू खाना छोड़ दो
पियो मूंग की दाल
जिससे लोच बनी रहे
चलो हिरन की चाल
जय कामदेव जी की!'

अलखनन्दन कि इस प्रस्तुति में कुछ पात्रों में जड़त्व की प्रवृत्ति देखी गई है, जिसे इंग्लिश में फ्रीज करना या सीज करना कहते हैं। नाटक लोकनाट्य पद्धति का पूर्णतया अनुसरण करता है। पूरी प्रस्तुति ग्रामीण लोकांचल सरीखे की तैयार की गई है। तभी तो दुष्यंत कुमार का स्वागत भी 'पीड़ी' पर बिठाकर किया जाता है, जिसे बुंदेलखंडी में 'मचिया' कहते हैं। पूरे मंच पर प्रकाश ही प्रकाश रहता है। प्रकाश वृत नहीं। बीच-बीच में नट कथा को आगे बढ़ाने का काम और सचेत करने का काम, मुनादी देने का काम करता है। इसी पद्धति पर यह नाटक खेला गया है। बुंदेली स्वांग की धुन और प्रविधि का इस्तेमाल नाटक में हुआ है। बुंदेली के कुछ शब्दों की आवृतियां भी यहां

सुनाई दे जाती हैं। जैसे दादा दुष्यंत सिंह को 'बड्डे' कहकर बुलाया जाता है। दादा दुष्यंत सिंह बुंदेलखंडी डाकू की तरह दिखते हैं। उनके हाथ में दो नाली बंदूक भी है। रंगीला रे क्यों रंगा है मेरा मन...जैसे फिल्मी गीत का इस्तेमाल भी किया गया है। दादा दुष्यंत सिंह का भाई एकदम विश्वविद्यालयी छात्र के रूप में प्रवेश लेता है और वह विश्वविद्यालय में छात्र संघ का चुनाव भी लड़ रहा है। इस नाटक में अलखनन्दन ने एक रंग पट्टिका का भी इस्तेमाल किया है। तीन-तीन प्रकाशवृत्तों में– एक में शकुंतला, एक में सखियां और एक में दादा दुष्यंत सिंह अलग-अलग संवाद की पद्धति अपनाई गई है। रंग पट्टिका में ही दुष्यंत और शकुंतला का मिलन, अलखनन्दन ने मंच पर करवाया है। अलखनन्दन ने कन्व प्रसाद हेड मास्टर को धोती कुर्ता में दिखाया है, न की बाबाओं, ऋषि, मुनियों के भेष में। ऐनक भी मास्टरों वाला। दादा दुष्यंत सिंह और उसके एक लठेत साथी को बियर पीते हुए दिखाया गया है। प्रस्तुति में कहीं-कहीं दर्शकों को थोड़ी ऊब का भी सामना करना पड़ा। कन्व प्रसाद पात्र थोड़ा जमा नहीं ,उसकी ऊर्जा थोड़ी कम नजर आई। बाबा अंतर्यामी का दरबार दिखाने के लिए, अलखनन्दन ने छोटी-छोटी झंडियों से गुंथी एक रस्सी टांग दी थी। बाबा अंतर्यामी बापू की वेशभूषा बिल्कुल आसाराम बापू की तरह श्वेत, स्वच्छ, धवलवर्णी दिखाई गई है । बाबा अंतर्यामी के दरबार में खूब भजन, कीर्तन ,पाखंड सब कुछ दिखता है। बाबा रामदेव की तरह बाबा अंतर्यामी की हंसी दिखाई गई है। लेकिन, बाबा अंतर्यामी बापू की दाढ़ी बड़ी ढीली थी प्रस्तुति के दौरान बार-बार संभालते रहे। नाटक में शकुंतला के गर्भ में बाल भगवान को बताना, कहीं न कहीं स्वदेश दीपक के नाटक 'नाटक बाल भगवान' की छाया का भान होता है। नाटक बाल भगवान की टोकरी में मंच पर जो उपस्थित हुई। उसमें साष्टांग करते हुए भक्त दिखते हैं, जो कहीं न कहीं बुंदेलखंड के लोक जीवन को जीवंत कर देते हैं। 'नटखट बालक रूप धर आए देवा हो। ललना झूला झूलें हो, ललना पलना डोलें हो। चंदा आए, सूरज आए ,तारे आए हो। नदिया नाचे-गाए, बनवा पपीहा बोले हो'। यह गीत गाते हुए भक्तगण आते हैं। यह मूल पाठ में नहीं है। यह भोजपुरी की गायन शैली का अनुकरण है। बुंदेलखंड में जिस तरह नवरात्रि के दौरान महिलाओं और पुरुषों पर देवता-देवियां सवार होती हैं। इस तरह का कुछ मंचन यहां दिखाई देता है। मुझे कहने में कोई दिक्कत नहीं है कि इस समय बुंदेलखंड में इस नाटक का भविष्य बाबा बागेश्वर धाम उज्जवल कर रहे हैं और अपनी पाखंड लीला चारों दिशाओं में फैला रहे हैं। उनमें राजनीतिक रसूखता है और सांप्रदायिकता उनके रोम-रोम में में भरी है। एक नाट्य गीत से नाटक की शुरुआत और अंत हो जाता है।[80]

---

[80] [20/03/2024], https://youtu.be/MCHwc79GUkw?si=Fw_ouddiSWQ7klLr

https://youtu.be/z7xmM08w_Rg?si=j8KULCOe_TetLPhy

4.2.6 तांबे के कीड़े

यह नाटक भुवनेश्वर जी के जन्म शताब्दी वर्ष के अवसर पर अलखनन्दन द्वारा निर्देशित व प्रदर्शित किया गया। यह नाटक 'नट बुंदेले' नाट्य समूह के कलाकारों द्वारा मंचित किया गया। जो प्रस्तुति मुझे यूट्यूब द्वारा देखने को मिली, वह 23 मार्च 2011 की है। यह भारत भवन भोपाल में प्रदर्शन हुआ था। इसमें भाग लेने वाले कलाकार बिशना चौहान, आनंद मिश्रा, शिल्पा शुक्ला, हेमंत पंजाबी, सिद्धार्थ पांडे, दर्शित लहाने, नवेंद्र मिश्रा, देवेंद्र अहिरवार, गौरव सराठे, विजय त्रिपाठी इत्यादि प्रमुख थे। आनंद मिश्रा ने इसका मंच तैयार किया था। संगीत में अलखनन्दन का सहयोग हेमंत देवलेकर जी ने किया। इस नाटक की प्रकाश परिकल्पना में सादात भारती और रामबाबू का योगदान अतुलनीय है। इस नाटक की वस्त्र सज्जा पर बिश्ना चौहान ने काम किया।

चूंकि यह नाटक विसंगत नाटक है, तो मंच पर अजीब सा बारीक संगीत और सारे कलाकार अपना मुंह जमीन पर गोल गेंद की तरह बैठे हैं। मंच पर एक थोड़ा सा ऊंचा छोटा चबूतरा बना है और ज्यादा ताम-झाम नहीं है। ऐसा लगता है, जैसे सभी कलाकार नवाज अदा कर रहे हों। सभी कलाकारों के चेहरों पर मुखोटे लगे हुए हैं। लंबे-लंबे कुर्ते पहने हुए हैं। बैठकर शी-शी की आवाज निकाल रहे हैं, जो एक रहस्य भाव बोध पैदा करता है। विसंगति बोध के नाटक सदैव से अटपटे ढंग से चलते हैं। उनसे आपको लगातार जूझना पड़ता है। एक पात्र जब अपना संवाद पूरा करता है तो जरूरत पड़ने पर बाकी बचे लोग भी उस संवाद को दोहराते हैं। एक पत्थर, एक पत्ती, एक शब्द की आवाज बराबर सुनाई देती है। सभी कलाकार निम्नलिखित पंक्तियों को दोहराते हैं तथा तबले की ध्वनि उसके साथ चलती है।

'अना.: जीवन का संगमरमर
जीवन का हसीन संगमरमर
जीवन का घायल संगमरमर
खून बहता हुआ संगमरमर।'

इस नाटक में आंगिक चेष्टाओं का ज्यादा महत्व है। ऐसे नाटकों में दर्शकों की सिट्टी-पिट्टी गुम रहती है। न बेचारे हंस पाते हैं, न चिल्ला पाते हैं। दिमागी कसरत करनी पड़ती है। सभी कलाकारों की वस्त्र सज्जा एक समान है अर्थात कुर्ता पजामा, मुखौटा और दुपट्टानुमा वस्त्र और सब की कमर में कपड़ा बंधा हुआ है। इसमें रोना, भय,

वेदना, संत्रास सब कुछ है। इसी का चित्रण है। क्योंकि, विसंगत नाटकों की सीधी-सादी कथा नहीं होती है। इसका कथानक सपाट नहीं होता है। इसमें कुछ ऊटपटांग सा सारांशहीन देखने को मिलता है। किसी के मुखौटे पूरे तो किसी के अधूरे इसमें दिखाए गए हैं। बहुत ही बारिक रंग पट्टिका का इस्तेमाल झिलमिलाते हुए दिखाया गया है। इससे अलखनन्दन ने बादलों और वर्षा को दिखाया है। सारे बीज सड़ जाएंगे। इस पर खूब अव्यवस्था हंगामा जैसा होता है। कांच के बीजों को झिलमिलाते गुलदस्तों जैसा दिखाया गया है। इसका संगीत तो रिकॉर्डिड ही लगता है। उसी संगीत पर नाचत- झूमते कलाकार। अवसाद, थकान, चिड़चिड़ापन का चित्रण और प्रदर्शन है। एक और काली चादर नुमा रंगपट्टिका का इस्तेमाल और फिर दृश्यांतर। सृजन और मथने की साधना का उल्लेख। कहीं-कहीं संवादों को एक पात्र पूरा न करके, उसी संवाद को दूसरा पात्र पूरा करता है। कुछ अटपटापन अंत तक बना रहता है। रिक्शा का प्रदर्शन बड़ा ही अद्भुत ढंग से किया गया है। बैठने वाले पात्र हिलते हैं और चलाने वाला रिक्शा चलाने का अभिनय करता है। पूरे प्रदर्शन में मंच कलाकार मंच से नहीं हटते। भय, डर, संसार का डर, संसार का नाश इत्यादि इत्यादि। बेईमानी के खिलाफ एक जंग लड़नी होगी। बिना नाश किये कुछ समझाया ही नहीं जा सकता। इंसान को घोड़ा या बेल से भी बदतर बना दिया जाता है। उनके लिए भी तो कोई आंदोलन हो। तांबे के शूटर तांबे के कीड़े जो बुलाने से बोलते हैं और हंसने से हंसते हैं। नाटक न्यूरोटिक समस्या को केंद्र में रखता है। अंत में निर्देशक अलखनन्दन ने रिक्शे वाले गीत को हटा दिया है।[81]

4.2.7 चारपाई

इसका प्रदर्शन अलखनन्दन ने आठवें भारत रंग महोत्सव में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में किया था। यह नाटक रामेश्वर प्रेम द्वारा लिखित है। इसके प्रमुख पात्रों की भूमिका निभाने वालों में अर्चना शैलेंद्र, अजय सिंह पाल, बिशना चौहान, लता सांगड़े, अमित शर्मा, जावेद जैदी और मनोज मिश्रा इत्यादि प्रमुख थे। इसकी मंच सज्जा अलखनन्दन द्वारा और संगीत संयोजन भी अलखनन्दन ने किया था। गायक रवि लाल सांगडे, प्रकाश परिकल्पना इरफान सौरभ और वस्त्र सजा बिशना चौहान जी की थी। यह प्रस्तुति 2006 की है। सतीश आलेकर ने अलखनन्दन

[81] [25/03/2024], https://youtu.be/6YBToDm4IZ8?si=14aDOjoji0nEVn9I

https://youtu.be/H8e6GBKrOtA?si=kIDDAZQpsm2NhJw4

https://youtu.be/tpGWArlyQRs?si=It34AyNdick1O3XU

को इस मंच पर सम्मानित किया था। इस नाटक के संगीत को पंडित रवि शंकर भास्कर चंद्रावरकर से अलखनन्दन ने संगीत की रिकॉर्डिंग ली, जिसे उन्होंने विनम्रता पूर्वक कहा कि मैंने चुराया। ढोलक की ताल से नाटक की शुरुआत और जय बजरंगी, जोर लगा के हईशा जैसा कुछ सुनाई पड़ता है। घर का शोरगुल चहल-पहल का वातावरण। मंच पर बस कुछ रस्सियां लटका कर मंच सज्जा की गई है। बिस्तर पर पति-पत्नी और दो बच्चे और संवाद चल रहे हैं। पति चिढ़ा हुआ है। बात-बात पर गुस्सा जाता है। यह नाटक वृद्ध विमर्श केंद्रित है। निम्न मध्यम वर्ग की दूहता भरी जिंदगी इसमें दर्शायी गई है। अभाव की जिंदगी, आदमी को क्या से क्या बना देती है? इसकी सघनता इस नाटक में दर्शायी गई है। चिड़चिड़ापन भी ऐसा कि दर्शकों की हंसी छूट जाए। घर में बुढ़िया है और दादा नौकरी से रिटायर होकर घर आ रहे हैं। उनके रहने तक के लिए घर में जगह नहीं है। पति-पत्नी के बीच छोटी-बड़ी मामूली बातों पर झगड़ा, झगड़ा ,झगड़ा। परिवार में कोई तालमेल नहीं। 'चारपाई' इसी का यथार्थ प्रस्तुतीकरण है। समाज में कितना किच-किच है, परिवार में कितनी अव्यवस्था है, कितना दुख, कितनी वेदना भरी है। लोग कैसे घुट-घुट के जीते हैं? इस नाटक में यह सब कुछ है। इसको पूरी शिद्दत से चित्रण करने में अलख सफल है। घर में इतना कलह, अशांति कि सोना दूभर हो जाए। पुरुष लेटा रहे, लेकिन पत्नि, बच्चे, बुढ़िया सब अपने-अपने में लगे हुए हैं। पुरुष बस हुकुम चलाता है। इस नाटक को अलखनन्दन ने यथार्थवादी रंग शैली में प्रस्तुत किया है। मनुष्य के जीवन में कितनी दुश्वारियां हैं , कपड़ा सिला हुआ खरीदो तो जल्दी खराब हो जाता है, सिलवाओ तो नाप का नहीं बनता है। बाबूजी बहुत दिनों बाद गांव आए हैं। उन्हें पीपल का पेड़ न देखाई देने से उनका मन उदास हो जाता है। मोहल्ले का शोर, पानी के भारीपन की दिक्कत, खदानों में रात भर काम से उठता शोर आदमी को और मार डाल रहा है। सभी की बड़बड़ाहट से नाटक कुछ-कुछ हास्य उत्पन्न करता है, लेकिन बड़ी छटपटाहट है। कोई भी पात्र सीधे मुंह बात नहीं कर रहा। यह है आम जनमानस की हकीकत, जिसे अलखनन्दन ने अपने प्रदर्शन से जीवंत बना दिया है। बाबूजी नॉस्टैल्जिक हो गए हैं। ट्रेन के जाने की ध्वनि का इस्तेमाल भी नाटक में हुआ है। दो कमरों में पूरा नाटक है। एक में बाबूजी और उनकी बुढ़िया पत्नी और एक में बेटा पत्नी तथा दो बच्चे, दो प्रकाशवृतों के माध्यम से नाटक आगे बढ़ रहा है। कुछ ज्यादा ही खींचतान मची हुई है। पूरे परिवार में चिल्ल-पों मची हुई है। एक वृद्धावस्था की बेचैनी सोने नहीं देती और दूसरी जवानी की अभाव भरी जिंदगी। अलखनन्दन ने नाटक में, रात्रि में एकदम डरावने संगीत का इस्तेमाल किया है। बाबा बाबूजी और माता जी का दखल कमरे में न हो, इसलिए उनके लिए एक अलग दरवाजा उनका बेटा बनवाना चाहता है। बुड्ढा बुढ़िया का रोमांस भी। अनुमान, संदेह, गुस्सा, शोर, कोहराम, कच-कच, किच-किच लगातार चल रही है। सपनों में बड़बड़ाना। खटमल अलग से परेशान कर रहे हैं।

लगभग पूरी रात्रि का क्रियाकलाप नाटक का विषय बना है। बाबूजी के साथ बाबूजी की चारपाई भी आ गई। सब अपने-अपने ढंग से जीने में लगे हुए हैं। कोई किसी की नहीं सुनना चाहता। जिस वृद्ध ने इस घर को बनाया। उसी घर में उनकी ऐसी हालत है। वृद्धों को ऐसा महसूस कराया जाता है कि वह इस घर पर बोझ हैं। वह इस घर में न रहे। यह बहुत ही गंभीर किस्म का नाटक है। यह कोई मनोरंजन प्रधान नाटक नहीं है। वृद्धों के मन में रह रहकर उनकी स्मृतियां कोंध जाती हैं। बड़ी विवशता है। चारपाई के नीचे पूर्वजों की वंशावली और जमीन के कागजात। बुजुर्गों को महसूस होता है कि बहुत लापरवाही है। उनका मन करता है कि घर छोड़कर चले जाएं। वृद्धों को चिंताएं मथे डाल रही हैं। चिंताएं उनको पीसकर खा जाएंगी। किसी व्यक्ति के इंतजार की चिंता। ट्रेन में जगह मिलने की चिंता! शादी की चिंता! बच्चे घर बार अपनी बीमारी -तीमारी की चिंता! चिंता! चिंता! क्या हम आजाद हैं? बच्चों को भी तो एक दिन वृद्ध होना ही होता है? एक प्रतीकनुमा खिड़की और एक गट्ठर टंगा हुआ है। चारपाई! यही मंच पर है। एक गीत सुनाई देता है जो कि व्यथा भरा है। व्यथित करता है–

'बातों में बीत गई, धोखे में बीत गई

उमरिया बातों में बीत गई'…….

पिताजी का देहावसान और भयानक संगीत और गहराता जाता है। केवल चारपाई रह जाती है।[82]

4.2.8 चंदा बेड़नी

यह नाटक भी 'नट बुंदेल' रंग समूह के तहत प्रदर्शित किया गया। इसका लेखन अलखनन्दन द्वारा किया गया और निर्देशन भी किया गया। इसमें भूमिका निभाने वाले कलाकारों में संजय गर्ग, राजीव यादव, राजेश तिवारी, बालेंद्र सिंह कुशवाह, संजय शर्मा ,रंजना श्रोत्रिय, ममता शर्मा, सुरेंद्र वानखेड़े, संतोष पांडे, इरफान सौरभ, प्रवीण गौतम, रंजना तिवारी, सावित्री रैकवार, नरेंद्र सिंह राजपूत, सुधीर नेमा इत्यादि प्रमुख थे। इसका संगीत निर्देशन ओम प्रकाश चौरसिया जी ने और इसकी नृत्य प्रस्तुति रामसहाय पांडे द्वारा तैयार की गई। इस नाटक की वस्त्र सज्जा स्वयं अलखनन्दन ने तैयार की थी। उमाकांत गुंदेचा ने भी संगीत में सहयोग किया।

[82] [20/03/2024], https://youtu.be/YUxdKkioQBk?si=viGv_T8FCBeUyR3B

https://youtu.be/ImdusPjgGdQ?si=u6OpP8Vmyt9j_Qmt

ग्रामीण इकट्ठे हैं। साधु चिलम पी रहे हैं। मंच पर सन्नाटा है। पात्रों के रंग-बिरंगे वस्त्र। बुंदेली शब्दों के यत्र-तत्र प्रयोग हैं। मंच पर एक बांस के ऊपर कुछ लगा है और आधा चांद भी चित्रित किया गया है। स्वांगिए स्वांग की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं,फिर पात्रों का चयन शुरू करते हैं और ऐसा प्राय: बुंदेलखंड के स्वांगों में देखा गया है। फिर गायन शुरू होता है। सभी कलाकार मंच पर हारमोनियम इत्यादि वाद्य यंत्रों के साथ गायन करते हैं। कुछ बाल कलाकार भी इस गायन में सम्मिलित थे। मुख्य कलाकार संवाद बोलता है और उसके कहे हुए संवाद को उसके सहायक अभिनेता दोहराता है। गायन के बीच-बीच में व्याख्यात्मक-कथात्मक संवाद हैं । बहुत ही तीव्र संगीत नहीं है बल्कि, बहुत ही दुःख और पीड़ा पहुंचाने वाले संगीत से नाटक शुरू होता है। राई लोक नृत्य की पद-गतियों का इस्तेमाल करते हुए, चंदा बेड़नी का प्रवेश होता है। मूल पाठ से कुछ गीतों को प्रस्तुति के दौरान हटा दिया है। ढिंढोरची नगड़िया को गले में लटका कर मुनादी करता है। मंच पर एक लंबा सा चबूतरा बनाया गया है, जो कि साधारण सा मंचविधान है। यह अलखनन्दन का एक हस्ताक्षर नाटक था। इससे उन्हें देशव्यापी ख्याति अर्जित हुई। अम्मा देख तेरा मुंडा बिगड़ा जाए। जैसे पंजाबी गीत को भी मनोरंजन के लिए इस्तेमाल किया गया है। बुंदेली लोकनाट्य के संगीत और बुंदेलखंड की स्वांग शैली का अद्भुत इस्तेमाल अलखनन्दन ने इसके प्रदर्शन में किया है। नाचना, गाना, बजाना सब कुछ बुंदेलखंड की नाट्य परंपरा से गहरे रूप से जुड़ा और प्रभावित है। चंदा बेड़नी का राई नृत्य ढोलक टिमकी(नगड़िया) के साथ होता है। फूले रहियो गुलाब (राई गीत) इसमें अलखनन्दन ने एक झालरदार झिलमिली एक रंगपट्टिका का भी इस्तेमाल किया है, जिसमें नृत्य करते हुए चंदा बेड़नी चली जाती है। रहस्यमई संगीत ध्वनि रात्रि का समय, बुंदेली वेशभूषा में कलाकार हैं। रथ और घोड़े का परिचालन मनुष्य के शरीर से किस तरह से किया जा सकता है। इसका भी प्रदर्शन इस नाटक में हुआ है। ‘ सखी मोहे समझ नहीं आने। जी क्यों उचटाने’ जैसी बुंदेली ईसुरी फाग को, उन्होंने शास्त्रीय रूप से अभिनेत्री रंजना तिवारी द्वारा गवाया है। बुंदेली सूपा लिए हुए अभिनेत्री चंदा बेड़नी बुंदेली वातावरण को बीड़ी बनाते हुए जीवंत करती है। यह एक अभ्यास प्रस्तुति की रिकॉर्डिंग थी। इसलिए इसमें दर्शकों का उत्साह देखने को नहीं मिला। यह मुख्यतः एक संगीत प्रधान नाटक है जिसमें, बुंदेली गीत धुनों का बेजोड़ इस्तेमाल किया गया है। अरे फंस गई बिड़िनियां माया में, बाम्हन को जनेऊ फिसल गओ। अलखनंदन ने चंदा बेड़नी और लखन प्रसाद तिवारी को ब्राह्मणों से घिरा हुआ मंच पर दिखाया है, जिससे पता चलता है, कि ब्राह्मणवाद प्रेम के खिलाफ किस तरह की साजिशें करता है। यदि मंच पर पात्रों को दौड़ना प्रदर्शित करना है, तो उन्होंने ढोलक की गति ज्यादा तेज कर दी और जमीन पर पैर पटकने की गति भी तेज होती गई। ‘आल्हा की धुन’ और सुबह प्रभात के समय ‘राम की धुन’ का बहुत ही सुंदर इस्तेमाल, अलखनन्दन

ने अपने इस नाटक में किया है। यही बुंदेलखंड की खास पहचान है, जो इसे बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा से जोड़ता है। अलखनन्दन ने इस नाटक के चौथे प्रसंग के एक गीत को 'राजा जी अंचरा छोड़ो हम ऊंसई लाजों के मारे' को भी शास्त्रीय रूप दिया तथा मुजरा शैली में, ख्याल गायन की शैली में इसे मंच पर प्रदर्शित किया। ऐसे और भी गीतों में उन्होंने शास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय नृत्य को बुंदेली स्वांग के अंतर्गत प्रस्तुत करने का एक अनूठा प्रयास किया। एक उदाहरण तो ऐसा लगता है, मानो फिल्मी गीत की पैरोडी अलखनन्दन ने इस नाटक में लिख दी हो। जैसे–'राजा के मन में जलन पड़ गई सुनके प्रेम की बातें। वो भीगी रातें'।

इस नाटक में बुंदेली कहावतों का प्रयोग हुआ है। जैसे –सौदिया सोदत रये और बरतिया ब्याह ले गए। मतलब आप दूसरे काम में उलझे रहे और काम करने वाले काम कर गए। दूसरी कहावत है-होरी में जाए ऐसो प्रेम। मतलब भाड़ में जाए। इसमें एक सोहर का इस्तेमाल भी प्रस्तुति में हुआ है, जो बुंदेलखंड में लगभग हर क्षेत्र में गया जाता है। आज दिन सोने के महाराज। सोने के सब दिन, सोने की रात। सोने के दियरा बरे रे दिन रात। आज दिन सोने के महाराज। यही बुंदेलखंड की संस्कृति में रचा बसा है ,जिसको इस नाटक ने अच्छे से आत्मसात किया है।

'अंग में पैरवे को चाहिए कमीज हाफ। एड़ी के लिए रईस जूता मंगाते हैं। आपसे लंबे-लंबे बालों को संवारते...पूरी मूंछ रखने में बाबू शर्माते हैं'। लोक और शास्त्र का यहां संयोग दिखाई देता है लेकिन कहना न होगा कि लोक यहां शास्त्र पर भारी हो जाता है। अब बुंदेली का भी एक रूप देखिए, ढिमरियाई जिसका इस्तेमाल इस नाटक में बुंदेली लोकनाट्य की प्रमाणिकता स्वतः सिद्ध करता है–

बंसी में बिद गई बाम बरौनी घरै चलौ
मौड़ी मौड़ा किलपत हुईएं, दद्दा बाई को टेरत हुईएं।
सुबह से हो गई शाम बरौनी घरै चलौ।

चंदा बेड़नी और लखन प्रसाद तिवारी के प्रेम को लेकर, पूरे गांव भर के लोग पंचायत पर बैठे हैं। आदिवासी अपने ढंग से इस पर चर्चा कर रहे हैं। 'बाबा की मढ़िया दूर बनी रे, दर्शन करबे जाने। आय हाय रे दर्शन करबे जाने'। जैसे बुंदेली लोकगीत इस नाटक को बुंदेली लोकनाट्य की परंपरा से तारतम्य स्थापित करने में पूर्णतः सफल हुए हैं। इससे बुंदेलखंड की संस्कृति सीधे-सीधे नजर आती है। दस से बारह सैनिक चंदा बेड़नी को जंगल में घेर लेते हैं और राजा का प्रवेश होता है। एक विशेष बात यहां यह भी कहनी है कि, जहां भी बुंदेलखंड के महाकवि ईसुरी की फागों का इस्तेमाल हुआ है। वहां उन्होंने बुंदेली लोक शैली में उसका गायन न करके, उसे कहीं न कहीं शास्त्रीय रूप दिया है। एक दूसरा गीत जो इसमें इस्तेमाल हुआ, उसको मुजरा और दादरा शैली में चंदा बेड़नी का जो रंजन तिवारी

अभिनय कर रही थीं, उन्होंने मंच पर इसको चरितार्थ किया है। यह बुंदेली लोक गायन के नजदीक नहीं लगता लेकिन गीत बुंदेली का है। इस तरह से यह गीत ज्यादा जम नहीं पाया। उनसे अच्छा तो कोई बुंदेली लोक कलाकार इसे गा सकता था। गीत के बोल थे–मोरो हिरना हिरा गओ है बन में, राजा कमान झुका लो। जब राई नृत्य के लिए चंदा बेड़नी अपने को तैयार करती है तो, वह रंग पट्टिका के माध्यम से मंच पर आती है। इस नृत्य की तैयारी के लिए अलखनन्दन ने शास्त्रीय नृत्य की धुनें, ताल, छंद, लय, पद गतियां, आंगिक चेष्टाएं , तांडव नृत्य,सब शास्त्रीय लिए हैं। जब चंदा बेड़नी अपने राई नृत्य कौशल का प्रदर्शन रस्सी पर करती है, तो वह वास्तव में रस्सी पर नहीं करती है। चबूतरे पर नाचती है, लेकिन दर्शकों को यह प्रतीत होता है कि वह सचमुच रस्सी पर नाच रही है। यह अलखनन्दन का नाट्य कौशल था। इस नवीन अधुनातन रंग युक्ति से उन्होंने बड़ी बारीकी से काम लिया है। इसमें एक चर्मकार सुखिया बाबा के लिए जो भजन मंडली भजन गाती है या ग्रामीण गाते हैं। उससे आपको बुंदेलखंड में नवरात्रि के समय जो जवारे निकलते हैं और सर पर खप्पर रख के महिलाएं जवारे निकालती हैं। वह दृश्य साक्षात आपको मंच पर दिखाई देता है। वह भजन था–चर्मकार बाबा तोरे द्वार हो, भीख के मंगइया पुकारे हो।

सुखिया मोची द्वारा जब जबरन रस्सी कटवाई जाती है। तब चंदा रस्सी पर नाच रही होती है तो, वह भी एक षड्यंत्र के तहत तो, अलखनन्दन एक मौन सृजित करने में मंच पर सफल हुए। वह नाचते हुए जमीन पर गिरती है। इधर सुखिया मोची को मौत के घाट उतार दिया जाता है। नाटक का अंत हो जाता है। एक निर्वात,एक शांति सब ओर बिखर जाती है। विषाद, दुख, वेदना सब ओर पसर जाती है। अंत में एक संदेशपरक गीत से नाटक का अंत होता है।[83]

4.2.9 दौरा लाट साहब का (सत्याग्रह मोटेराम का)

'नट बुंदेले' के झंडे तले ही 'दौरा लाट साहब का सत्याग्रह मोटे राम' का नाटक प्रदर्शित हुआ। यह कहानी का नाट्य रूपांतरण है, जो कि प्रेमचंद की कहानी है। इसका नाट्य रूपांतरण सफदर हाशमी और हबीब तनवीर ने किया था। नाटक का निर्देशन अलखनन्दन ने किया है। इस नाटक में संगीत निर्देशन ओम प्रकाश चौरसिया जी ने किया है। प्रकाश परिकल्पना संजय मेहता जी ने की। वेशभूषा मुख्यतः अलखनन्दन ने ही तैयार की। इसका पहला

[83] [30/03/2024], https://youtu.be/YUxdKkioQBk?si=zO7Bg4q4cRjdcze-

https://youtu.be/PO89otr7Pfk?si=w_CFIlCoAzK6zRuF

प्रदर्शन 25 जुलाई 1993 भारत भवन भोपाल में हुआ था। इसकी रिकॉर्डिंग की तारीख जनवरी 1995 है। इसमें जिन कलाकारों ने भाग लिया उनमें प्रवीण गौतम, इरफान सौरभ, कनत कौशर, रंजना तिवारी इत्यादि प्रमुख थे। मंच की परिकल्पना संजय पाठक, राकेश रैकवार, नरेंद्र सिंह राजपूत ने की थी। नाटक का प्रारंभ गीत-संगीत से होता है। अलखनन्दन ने इसको आल्हा गायन की तर्ज लेकर बनाया है। 'कथा लिखी थी प्रेमचंद ने नाटक हमने दिया बनाय। काम बड़ा दुस्साहस का था…अनदेखी कर देना भाई गलती अगर कोई हो जाए। कथा लिखी थी प्रेमचंद ने'…मंच पर एक हवलदार, तीन-चार कुर्सियां मेज हैं और देखने से थाने का कार्यालय लगता है । नाटक संगीत प्रधान बन गया है। पात्रों की बहुलता नाटक में शुरू से ही दिखाई देती है। नाटक के ग्रामीण पात्र अवधीनुमा-भोजपुरीनुमा बोली बोलते हैं।

'अरे भाई तगड़ी खबर है। अरे कोई तगड़ी खबर है। खबर ऐसी जिसे सुनकर मेरे होश उड़ जाए। अरे भाई तगड़ी खबर है ,अरे कोई तगड़ी खबर है। वरना शहर बनारस है ये, बड़े सेठ काहे घबराए। भोर भए सब अफसरान को बंगले पर काहे बुलवाएं। यही सोच कर सारे आला अफसर सब दौड़े आए। जाने क्या आफत आई है, सुबह-सुबह क्यों लिया बुलाए। अरे कोई तगड़ी खबर है। अरे कोई तगड़ी खबर है'।…(रंग गीत)

नाटक का परिवेश आजादी के पूर्व का भारत है। ब्रिटिश सरकार के अफसर और भारत में उनके सहयोगी अफसर कारिंदों के कारनामों को आधार बनाकर इस नाटक में चित्रण हुआ है। वायसराय का बनारस दौरा होने वाला है, तो अंग्रेज अफसर अपने मातहत-कारिंदों को टाइट करने में लगा हुआ है। ताकि, उसकी नौकरी बची रहे। वायसराय को किसी प्रकार का ढीलापन देखने को ना मिले। सब कुछ चुस्त दुरुस्त नजर आना चाहिए। चाहे जमीनी हकीकत जो भी हो। सभी अधीनस्थ कर्मचारी खबर सुनकर परेशान हो जाते हैं। उनकी नींद उड़ जाती है। उनका चैन खो जाता है। डर का, आतंक का माहौल छा जाता है। तरह-तरह के सुझाव अधीनस्थों द्वारा पेश किए जाने लगे। मसलन चौड़ी सड़कों को पतला किया जाए और पतली सड़कों को चौड़ा किया जाए। तमाम गंदी बस्तियों को हटा दिया जाए। दुकानदारों से कहा जाना चाहिए कि वह पिछले दरवाजे से सौदेबाजी न करें। ताकि दुकानों के सामने कुछ चहल-पहल नजर आए। झंडा, भीड़, फूल-मालाओं का इंतजाम किया जाए। देशद्रोही और विद्रोहियों पर नजर रखी जाए। तमाम भिखारी ,कोढ़ियों और बेरोजगारों को शहर बदल करनी चाहिए। चोरों ,डकैतों ,जेब कतरों से नारे लगवाए जा सकते हैं। वायसराय के दौरे को उत्सव की तरह मनाया जाए। बनारस शहर को सात जोंस में बांट दिया जाए और तो और लोकल-फोकल और ट्राईबल्स के डांस किए जाएं। देश का कोई स्वदेशी शासक जब उनसे मिले तो ऐसा न लगे कि अजनबी है। वायसरॉय जिस भी मोहल्ले से गुजरें उस संस्कृति

और माहौल के मुताबिक उनके वस्त्र भी बदल दिए जाएं। बाभन टोले से गुजरें तो रेशम की धोती और खड़ाऊ नजर आएं। क्षत्रिय टोली से गुजरे तो सर पर पगड़ी और हाथ पर तलवार। मुसलमान टोली में शेरवानी और तुर्की टोपी पहन के नजर आए। रंडी बस्ती में पहुंचे तो भीगे बदन पर मलमल का कुर्ता गले में लाल रुमाल हो और कलाई में गजरा और मुंह में पान की गिलोरी। कसाई मोहल्ले में जालीदार बनियान और चारखानेदार तहमद हो सर। सर भंगी बस्ती में काला जांघिया और सफेदधोती। सर पंजाबी बस्ती में पट्टेदार कच्छा और भांगड़ा का प्रोग्राम। विधवा आश्रम में सफेद धोती में लिपटे हुए। सर हिजड़े मोहल्ले में...मंजूर किया जाता है। रात को रंगारंग महफिल सजाई जाए। सारे पात्र शहर की सफाई, रंग-रोगन में लग गए हैं। किसी भी तरह की गड़बड़ी माफ नहीं की जाएगी। मंच पर झाड़ू-कूड़ा करकट, नशेनी सब कुछ दिखाई देता है। साफ हो रहा है। पात्र हाफ पैंट, टाई, वेल सूट बूटेड दिखाई दे रहे हैं। कुछ अर्धनग्न भी पात्र हैं। बीच-बीच में आल्हा छंद लेकर नाटक गीत तैयार किए गए हैं, जो कि दृश्य परिवर्तन में सहायक सिद्ध हो रहे हैं और नाटक की कथा आगे बढ़ाने में भी। सरकारी जुल्म की महिमा कहां तक बखानी जाए। चाहे लोगों की बस्तियां उजाड़नी पड़े, लेकिन वह सड़के चौड़ी करके ही रहते हैं। लोग भी चौड़ी सड़कों को सकरी बनाने में कोई कमी नहीं छोड़ते। धोबी ने एक संवाद बोला पंडित को कि पूजा न हुई नौटंकी हो गई। इसी पर पंडिताइन कहने लगी कि यह लोग भी छुआछूत की सीमा भूल गए। पंडित कहता है कि यह तो गांधी जी का उपक्रम है। वह लोग तो इन लोगों(धोबी) के हमसे कपड़े धुलवाने पर अड़े हैं। पात्रों में गजब की ऊर्जा अलखनन्दन ने अपने निर्देशकीय कौशल से भर दी है। संवाद ,गीत, गायन सब कुछ दमदार बन गया है। नाटक में जगह-जगह हास्य-व्यंग्य का पुट मौजूद है। नाटक में एक भोले भाले पंडित का इस्तेमाल ब्रिटिश सेनानायक खान बहादुर, राय बहादुर, राजा सब मिलकर करते हैं ताकि, विद्रोह को रोका जा सके। सत्याग्रह को रोकने के लिए ब्राह्मण का इस्तेमाल किया गया।

'शासन और पुजारी में जब गहरा गठबंधन हो जाए।
मजहब और सियासत का जब एक जगह संगम हो जाए।
बादल गरजे बिजली कौंधे प्रबल एक शक्ति जन्माय
सत्ता के हाथों में जैसे ब्रह्मास्त्र कोई आ जाय।....'

दृश्य परिवर्तनों में बार-बार पर्दा नहीं गिराया जा रहा है। पात्र चले जाते हैं। पात्र आ जाते हैं। वस्तुतः यह नाटक लोकनाट्यों की परपारटी पर ही खेला गया है। बुंदेली लोक गायन की शैली अर्थात आल्हा और भोजपुरी

लोक बोली और हिंदी के मधुर मिलन से यह नाटक अलखनन्दन ने उत्कृष्ट ढंग से तैयार किया है। सेठ, महाजन ,सौदागर सब के सब अंग्रेजों के गुलाम साबित हुए। उन्होंने देश को तार-तार कर दिया।

'इधर पड़े थे पंडित जी सुनसान चौक में पेड़े खाय

उधर नगर में इसी विषय पर पंचायत भी गई जमाय। सेठ महाजन देशभक्त मेहतर पंडित मुल्ला महिलाएं।.....प्रोफेसर टीचर नाई वकील सबरे आएं।

एक पक्ष था सेठों का और दूजे में बाकी समुदाय

रात तलक पंचायत बैठी समझ न आया कोई उपाय'।

मजहब और सियासत जब साथ हो जाएं, धर्म और राजनीति जब घाल-मेल हो जाए तो, फिर देश की अवनति को कोई नहीं रोक सकता। यही संदेश यह नाटक देता है, जो कि अलखनन्दन ने अपने इस प्रदर्शन से उभारा भी है।

'कहां हो मोटे राम तुम्हें इतिहास पुकारे

आज तलक हम भुगत रहे हैं करम तुम्हारे।

राजनीति और धर्म के मिलने लगे सितारे

कहां हो मोटे राम तुम्हें इतिहास पुकारे...

एक बार हम बाजी हारे तो क्या हारे

लगे रहे तो कल तक अपने पौवारे

कहां हो मोटे राम तुम्हें इतिहास पुकारे

धर्म लगा देगा सत्ता की नाव किनारे

राम लखन सीता हनुमान हैं साथ हमारे

कहां हो मोटे राम तुम्हें इतिहास पुकारे

आज तलक हम भुगत रहे हैं करम तुम्हारे'।[84]

4.2.10 जगर मगर अंधेर नगर

[84] [05/03/2024], https://youtu.be/p0cJ1_TnB0M?si=lHFWnZC-s2a9DMsj

https://youtu.be/-H4lzDqGcgM?si=6Oq1TJmH0Byr5m7S

इस नाटक का प्रदर्शन अलखनन्दन ने 'नट बुंदेले' रंग समूह के तहत किया। जैसा कि विदित है भारतेंदु हरिश्चंद्र के कई नाटकों को मिलाकर या उसके कुछ चुनिंदा हिस्सों को लेकर इस नाटक का संपादन अलखनन्दन ने किया है। इसका नामकरण भी किया है। एक तरह से पुनः सृजन करके अलखनन्दन ने इस नाटक को खेला है। इसकी धुने रंजना तिवारी और राजीव सिंह ने तैयार की थी। इसका संगीत संपादन का काम ओम प्रकाश चौरसिया जी ने किया था। अलखनन्दन ने इस नाटक की मंच सज्जा और वस्त्र सज्जा की थी। इसका पहला प्रदर्शन 28 फरवरी 1993 को इंदिरा गांधी नेशनल म्यूजियम भोपाल के खुले आसमान के तले हुआ था। मुझे जो रिकॉर्डिंग देखने का अवसर मिला, वह जनवरी 1995 की है। मध्य प्रदेश कला परिषद भोपाल में इसकी रिकॉर्डिंग हुई थी। इसकी गायक मंडली में रंजना तिवारी, राजीव सिंह, सुधीर नेमा, अजय श्रीवास्तव और डीके दुबे थे। नाटक के संगीत में सहयोग लक्ष्मी नारायण शर्मा, सुरेंद्र वानखेड़े ने किया था। जिन कलाकारों ने इसमें भूमिका निभाई थी, वह हैं– संजय पाठक, सुधीर नेमा, सेवाराम पुर्विया, प्रेम प्रकाश अस्थाना, संजय शर्मा ,केबी पाटिल, राजीव सिंह, डीके चौबे, संजय गर्ग इत्यादि। इस प्रस्तुति की खासियत यह है कि इसमें अलखनन्दन ने एक नवीन प्रयोग यह किया कि दर्शकों को मध्य में बैठाया। कलाकार उनके चारों ओर प्रस्तुति देते हैं।

सभी कलाकार हारमोनियम, ढोलक और अपनी तरह-तरह की वेशभूषा के साथ, कबीर दास का भजन 'साधु देखो जग बौराना' गाते हुए, प्रवेश करते हैं। यह एक तरह से यह अनुष्ठानिक ढंग से शुरू होता है। कलाकार देवता शब्द बार-बार दोहराते हैं। मंत्रियों, संतरियों, थानेदार, डॉक्टर, माता-पिता, सखा सब के सब देवता। ऐसा लगता है कि हाथ में अक्षत लिए स्वाहा-स्वाहा की ध्वनि होती है। इनके कलाकार रुकते नहीं बल्कि दर्शकों का चक्कर लगाते हैं। यह सब संगीतबद्ध होता है। संस्कृत के कुछ श्लोक भी चलते हैं। एक तरह से यह नाटक का पूर्व रंग है।

'माला पहने टोपी पहने, छाप तिलक माला
साखी सब यह गावत भूले'

लिखित पाठ और प्रस्तुति में अंतर है। लिखित पाठ के कुछ अंश प्रस्तुति में हटा दिए गए हैं। इस नाटक में पात्रों की संख्या काफी अधिक है। कुछ फिल्मी धुनों पर संस्कृत संवादों की पैरोडी तैयार की गई है। 'साधु देखो जग बौराना की पुनरावृत्ति अनेक बार होती है। यह पूरा नाटक संगीत विधान पर आधारित है। अलखनन्दन इस प्रस्तुति के दौरान स्वयं एक ऊंचे आसन पर विराजमान थे। ऐसा लगता है कि इसमें ज्यादा दर्शकों के लिए जगह नहीं थी। कुछ चुनिंदा लोग ही इसमें आए थे। दर्शकों के घेराव में कई जगह मेजों पर कपड़े, सफेद कपड़ो से

सुसज्जित हैं। यही मंच विधान है। कहीं-कहीं कुछ-कुछ गायन नौटंकी की शैली में किया गया है। लेकिन, वादन नौटंकी का नहीं है। 'चना जोर गरम बाबू में लाया ,जोरदार चना जोर गरम'...फिल्मी धुन जैसा ही गाया गया है। एक तरह से मंच पर कलाकार बिखरे हुए हैं और अपनी-अपनी भूमिका में मेला सा लगा हुआ है। नारंगी वाली ने एक अलग ही गाना गाया है, जो मूल पाठ में नहीं है– 'मैं तो पीके रंग न रंगी। मैं तो फूल लेकर संगी।' संवादों के साथ-साथ नाचते गाते अभिनय अलखनन्दन ने इसमें दिखाया है। हलवाई की पूरी की पूरी दुकान और कुंजड़िन की सब्जी की दुकान, सब्जियां, सब कुछ मंच पर उपस्थित था। कुंजड़िन के लिए अलग से गीत अलखनन्दन ने बनाया है। 'तरकारी ले ले हाटे में आई गिरजापूर से।' गा-गाकर सब्जी बेंचती है। पाचक वाले के गीत को संगीतबद्ध किया गया है। कहीं-कहीं एक साथ दो-दो, तीन-तीन जगह अलग-अलग संवाद चल रहे हैं। दर्शक चाहे वहां सुने, चाहे यहां सुने। बुंदेलखंड में जिस प्रकार बहरूपिया कलाकार जगह-जगह घूम-घूम कर अपने स्वांग करते हैं। उसी प्रकार से इस नाटक में घूम-घूम कर स्वांग हुए हैं। संगीत की धुन पर भक्त, कलाकार, दर्शक नाचने पर विवश हैं। इस नाटक में राजा के प्रवेश को अलखनन्दन ने चारपाई पर बैठाकर ,चार लोगों के कांधों पर सवार करके दिखाया है। जो कि सर्वथा नवीन प्रयोग समझ में आता है। जो शासन करने वाले हैं। वह एक नंबर के पागलपन के शिकार लोग हैं। उनका उजबकपन इसमें दिखाया गया है। फरियादी को रोता हुआ देख, राजा स्वयं रोने लगता है। फरियादी और राजा दोनों लिपटकर रोते हैं। बीच-बीच में नृत्य और गायन की नाट्य प्रविधि अलखनन्दन ने नाटक में अपनायी है। चूने वाले को और राजा को कदमताल करते हुए अलखनन्दन ने संवाद बुलवाए हैं। भिश्ती और राजा के संवाद को काव्यात्मक रूप दे दिया है। कसाई के प्रवेश से सारे लोग डर जाते हैं। यहां तक की राजा भी। उसका भयंकर रूप अलखनन्दन ने बनाकर पेश किया है। वह पूरे राज दरबार को दौड़ा लेता है। नृत्य को बीच में शास्त्रीय रूप भी दिया है। गड़रिया को अलखनन्दन ने बहरा(बधिर) दिखाया है। जब पूरा राज दरबार एक ही वाक्य को दोहराता है। तब वह सुन पाता है। गड़रिया कूद-कूद कर अपने संवाद बोलता हैं। एक तरह से यात्रा नाटक पद्धति को इसमें आद्यंत अपनाया गया है। इसके पात्र कलाकार चलते रहते हैं। दर्शकों के चारों ओर कई चबूतरेनुमा बैठकी बनाई गई है। गोवर्धन दास को विशेष रूप से मिठाइयां खाते हुए अलखनन्दन ने मंच पर उतारा है। लगभग प्रत्येक नाटक में यह देखा गया है कि कुछ दृश्यों के मंचन में दर्शक ऊब को महसूस करते हैं। इस नाटक में भी यह दृष्टिगोचर होता है। कुछ चीजें अनावश्यक रूप से खिंच जाती हैं। नाटक की प्रस्तुति के समय अवधि भी ज्यादा हो जाने से शायद यह ऊब महसूस होती है। पूरे नाटक में धमा-चौकड़ी मची हुई है। अव्यवस्था चारों तरफ फैली है। बड़ा ही शोर-शराबे से भरा हुआ नाटक है। अंतिम दृश्य में अलखनन्दन ने इस नाटक में फांसी वाले दृश्य में रंगपट्टिका का इस्तेमाल

किया है, जिसमें होड़ मची हुई है। राजा, मंत्री और अन्य पात्र सभी चाहते हैं कि उन्हें स्वर्ग मिले। बैकुंठ मिले। सब फांसी पर चढ़ना चाहते हैं। इस नाटक का अंत जिस गीत से होता है। उसमें अलखनन्दन के पूरे कलाकार अंतिम गीत में और शुरुआत के गीत में सभी कलाकार मिलकर गाते हैं। यह उनकी एक विशिष्ट शैली है। वह अलखनन्दन द्वारा स्वयं लिखित है। धर्म, मंदिर, दलाल, व्यापारी, पाखंड, पुलिस सब नोचने पर लगे हुए हैं।

'जगर मगर अंधेर नगर के...अंधेरे गहरे पानी

गाते हैं हम जैसे कवि हरिश्चंद्र बखाने'[85]

4.2.11 महानिर्वाण

इस नाटक का प्रदर्शन अलखनन्दन ने राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली में छठवें भारतीय रंग महोत्सव में किया। मुझे जो प्रस्तुति यूट्यूब से देखने को मिली, वह 2004 की है। यह प्रदर्शन 'नट बुंदेले' रंग समूह के तहत ही किया गया है। यह मूल रूप से मराठी नाटक है। इसके लेखक यानी नाटककार सतीश आलेकर हैं। इसका प्रदर्शन कमानी प्रेक्षागृह में हुआ था। पहले इसमें मुख्य भूमिका (भाऊराव) की ब व कारंत जी निभाते थे। उनके देहावसान के उपरांत मेरे ख्याल से इरफान सौरभ भाऊराव की भूमिका निभाने लगे थे।

इस नाटक की शुरुआत में एक आरती बजती है। 'जय शिव ओम तारा स्वामी जय शिव ओम तारा'। दूसरा 'श्री रामचंद्र कृपालु भजमन' गाती हुई, एक स्त्री पात्र प्रवेश करती है। एक ठठरी पड़ी हुई है। उसके ऊपर सफेद चादर पड़ी है। मंच के ऊपर एक चबूतरा बना हुआ है। यही मंच सज्जा है। यह एक हास्य नाटक है। इसको आप ब्लैक कॉमेडी कह सकते हैं। मरने के उपरांत लोग किस-किस तरह से व्यवहार करते हैं। यह इस नाटक में दिखाया गया है। रमा ,भाऊराव की पत्नी है। मृत शरीर ही पूरा अभिनय करता है। समाज की विडंबनाओं को हमारे समक्ष रखता है। भाऊराव की मृत्यु हो चुकी है। पूरा गांव इकट्ठा हो गया है। कुछ लोग सच में इकट्ठा हुए हैं। कुछ लोग मजबूरी में। कुछ लोग सच में रो रहे हैं। कुछ लोग बस यूं ही मजबूरी में। परिस्थितियों को हास्यात्मक रूप से दिखने में अलखनन्दन का कोई जवाब नहीं। 'हरे वृक्ष पर मधुर फल जैसे लटका होए। वैसही लौंदा मांस का इस हाड़ से चिपका होए'। मृत्यु के प्रश्न को यहां उठाया गया है। 'तो बोलो राम राम राम, सीता राम सीता राम। तो

---

[85] [21/03/2024], https://youtu.be/ADqQ6PdND1Q?si=8uniliaPh2Sl0lGi

https://youtu.be/kzHCtlmVi0k?si=_xVrjkLKnV5klXRb

बोलो राजाधिराज महाराज रामचंद्र की…जय। अरे सनातन वैदिक हिंदू धर्म की…जय। तो बोलो राम राम राम सीता राम सीता राम'। इस तरह के गीतों से नाटक की कथा आगे बढ़ती है। ज्यादातर संवाद गेय शैली में, लयात्मक शैली में कह गए हैं। कुछकुछ बुंदेली लोक नाट्य गायन की शैली भी आपको देखने को इसमें मिल जाएगी। हालांकि, पूरा नाटक हिंदी भाषा में ही है। 'जो घी पीना जाने! प्रभु उसको पिलाना जाने! बे भी जलना जाने! जब लोग उसको जलाना जाने!' इसमें कुछ-कुछ आपको ब्रजभाषा का लालित्यपूर्ण स्वर भी दिखाई देगा। 'पुत्र जो हो तो हो बरबंडा। तीनों लोक में गाड़े झंडा। आज कछु न पूछो हाल। गृहस्थ गृहस्थी का बेहाल। पुत्र जो हो तो हो बरबंडा। झूल रहा आधे पर झंडा। दूर गांव बेटा मुष्टंडा।…विट्ठल विट्ठल पांडुरंग विट्ठल!' अलखनन्दन ने एक रंग पट्टिका के माध्यम से संसदीय मोहल्ला कल्याण समिति के बैनर में लिखवा कर दिखाया है कि ,भाऊराव अमर रहें। 'हरि हरि आशा धारे, भाऊराव जी स्वर्ग सिधारे। भुनसारे भिनसारे, जम देवता पुकारे'। जो भी संवाद भाऊराव गाकर बोलते हैं। उसे सहायक पात्र दोहराते हैं। 'चौदहवीं का चांद हो या आफताब हो जो भी हो तुम लाजवाब हो'। जैसे फिल्मी गीत को भी नाटक में जगह दी गई है। 'ओम रमा बहन…जाग जाग ओ रमा बहन तेरे द्वार खड़े हम सज्जन। हम हैं पास पड़ोस के साधु, भाऊराव के भैया दादू'। मंत्र के उच्चारण जैसा गांव वाले करते हैं। इस नाटक में गीतों की संख्या काफी अधिक है। पड़ोस में औरत विधवा हुई है, तो कई लोग उम्मीद लगा कर बैठ जाते हैं। एक तरह से मृत भाऊराव ही सूत्रधार की भूमिका में कथा को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। 'मैया मैं तो चंद्र खिलौना लै हों। नातर जुग जुग बैठा रोऊं'…एक तरह से इस नाटक में मृत भाऊराव ही कथा वाचक हैं । राम की कथा सुनाने के बाद ,वह अश्वत्थामा की कथा सुनाते हैं। 'अश्वत्थामा महा दरिद्री, बोहतई छिद्री, बोहतई छिद्री। मैया जल में आटा देवे, पोंगा दूध समझ के पीवे'। कई कथा प्रसंगों की चर्चा इसमें है, जिसमें रामायण महाभारत का भी उल्लेख बीच-बीच में होता है। 'भारत पड़ा अकालू रामा.. मति कुंठित भई कछु न सूझे। जब मांगा एक जर्दालू। अपना पुत्र हठालू। रामा'..

इसका एक अन्य गीत देखें। 'काहे को भया विलंब.. हो पांडुरंग पांडुरंग। महाग्यानी महा ध्यान सभी विद्या बस में कींहीं'।...पांडुरंग विट्ठल की तो मृत्यु होती है, लेकिन लोग इसे महानिर्वाण कहते हैं। जब भाऊराव कथा कहते हैं तो बाकी कलाकारों को फ्रीज कर दिया जाता है। भाऊराव चल दिए, चल बसा। भाऊराव मर गया। 'अरे देखो देखो देखो हमारे पड़ोसियों को देखो देखो। सब मिल हमारी लुगाई को समझाए रहे हैं, धीरज बंधाय रहे हैं'। जितने भी अनुष्ठान के लिए जरूरी चीजें हैं, वह सब तांगे में आनी चाहिए, रिक्शे में नहीं। हंडिया सीमेंट की नहीं होनी चाहिए। मिट्टी की होनी चाहिए। ताकि, जल्दी फूट सके। लकड़ी गीली नहीं होनी चाहिए। मिट्टी का तेल

मिलावट का नहीं होना चाहिए। गंगाजल चाहे नाली का बदबूदार ही क्यों न हो? लेकिन, मुर्दे के मुंह में डाला ही जाएगा। इतने अधिक गीत हैं कि सब का उल्लेख कर पाना मुश्किल है। लेकिन इसमें गीत, संगीत, गायन बहुत ही अनोखा है। 'एक जिन था, जिसे सात जनों ने बांटा। एक मुर्दा था, उसे सात जनों ने फूंका'। एक दूसरा गीत 'दे दे राम दिला दे राम, देने वाला श्री भगवान'। भाऊराव का बेटा कबड्डी खेलने में व्यस्त है। घर में पिता की ठठरी पड़ी हुई है। 'माया महा ठगनी हम जानी। मंदिर में मूरत बन बैठी, तीरथ बैठे में हुई पानी। जोगी के घर जोगन बन गई, राजा के घर रानी'। मरे हुए को जलाने के लिए, जितने भी तरह की ड्रामेबाजी होती है, यहां सबकी बखिया उधेड़ी गई है। 'मुर्दे को अभी चलाओ, पुरमपुरा पुण्य पाओ। गरज हुए तो किरिसिन में झोंको, शांति से बस भस्म हो'। किसी के घर में कोई मरा है लेकिन, अंताक्षरी हो रही है। 'मैं तो आरती उतारू रे संतोषी माता की। मैं तो भूल चली बाबुल का देश, पिया का घर प्यारा लगे'। इसी तरह से एक फिल्मी धुन पर 'नाना आया रे कबड्डी मैच खेल के नाना आया रे' गीत अलखनन्दन ने रच दिया। कुछ समानांतर कथा की नाट्य प्रविधि भी अलखनन्दन ने इसमें अपनायी है। ज्यादातर समय मंच पर अंधेरा ही पसरा हुआ है। 'मरघटा बंद है'। इसको विशेष प्रकाश से दिखाया गया है। अब श्मशान में अग्नि नहीं है ,वह इलेक्ट्रिक श्मशान में बदल गया है। 'हम नहीं चलेंगे। हम यहीं जलेंगे'। पुराने आदमी नए संस्कारों में जल्दी नहीं ढलते हैं। वह विद्युत शवदाह गृहों में नहीं जलेंगे। पिंडदान का ढोंग अलग से। स्वर्ग जाने के लिए न जाने लोग क्या-क्या करवाते हैं ? स्वर्ग को दिखाने के लिए अलखनन्दन ने पतली सी विस्तृत रंग पट्टिकाओं से मंच तैयार किया है। स्वप्न को दिखाने के लिए अलखनन्दन ने एक विशेष रंग युक्ति का इस्तेमाल किया है। तीन-चार लोग पतली-पतली रंग पट्टिकाओं को पकड़े हुए हैं और नीला, आग जैसा प्रकाश उन पर पड़ रहा है। विधवा मरने के बाद भी मनचली है। काला चश्मा और काला सूट वाला इंसान उनको भा गया। काला चश्मा और काले सूट ने ही और मां ने मिलकर भाऊराव को निपटा दिया। फौजी वाले बैंड का भी इस्तेमाल नाटक के बीच में आया है। सवा घंटे के बाद नाटक में कुछ शिथिलता देखी गई। जिस तरह के हंसी मजाक थे, वह थोड़े कम हो गए। पाश्चात्य नृत्य की कुछ पद गतियां ली गई हैं। कुछ भाव-भंगिमाएं पाश्चात्य नाटक की देखने को मिल सकती हैं। पाश्चात्य संगीत का गजब ही इस्तेमाल हुआ है। इसमें एक कव्वाली का भी इस्तेमाल किया गया है। 'घर घर में अंधेरा है, घर-घर में दिवाली है। हंसता हुआ गुलशन है रोता हुआ माली है'। कबीरपंथी कुछ गीतों का इस्तेमाल भी निर्देशक अलखनन्दन ने किया है। 'यह दुनिया कागज की पुड़िया बूंद पड़े घुल जाना है। यह दुनिया कांटो की बाड़ी उलझ-उलझ रह जाना है'। अवधी, भोजपुरी, ब्रजभाषा तथा कुछ बुंदेली का संगम, इस नाटक की प्रस्तुति में देखने को मिलता है। 'सास चली जब पंढरपुर को। दो पग चली वह लौटी घर को। सुनरी बहुरानी तू

सुनरी, मत बेचे तू दूध दहीरी। ओखल मूसल चकिया जांता मेरा मन येही में राता। अगर भिखारी आए भीख को कहना सास गई पंढरपुर को'। पूरा नाटक कथात्मक संगीत से भरा हुआ है। इस नाटक का अंत एक गीत से होता है। 'पांडुरंग चरणों में मेरा मन बैठे और मुक्ति का फल लूटे'। इस नाटक में बीवी कारंत का ही संगीत इस्तेमाल हुआ है। इसमें इरफान सौरभ, बिशना चौहान, सादात भारती, अजय सिंह पाल, लता सांगडे, रवि लाल सांगडे, संजय गर्ग, महेंद्र पटेल, मोहन नामदेव, राजीव यादव इत्यादि कलाकारों ने भाग लिया।[86]

4.2.12 राजा का स्वांग

यह नाटक अलखनन्दन ने 'नट बुंदेले' रंग समूह के तहत प्रस्तुत किया था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि यह नाटक राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'वोल्गा से गंगा' में संकलित 'सुदास' कहानी का नाट्य रूपांतरण है। ओमप्रकाश चौरसिया जी ने इसका संगीत तैयार किया था। इस नाटक की वस्त्र सज्जा अलखनन्दन द्वारा ही की गई। इस नाटक के लिए प्रकाश परिकल्पना अभिषेक जैन और के जी त्रिवेदी ने की थी। इसमें नृत्य संयोजन बिशना चौहान जी ने किया था। इसका पहला प्रदर्शन 8 सितंबर 1998 में रविंद्र भवन में हुआ। मुझे जो प्रस्तुति यूट्यूब द्वारा देखने को मिली , वह सितंबर 1998 की है। इसमें भाग लेने वाले कलाकार दीपक तिवारी, इरफान सौरभ , संजय गर्ग, नेहा जोशी, जावेद अजीज, बंकिम बनर्जी, राजेश गोस्वामी इत्यादि प्रमुख थे। इस प्रस्तुति में मुख्य अतिथि रामेश्वर प्रेम जी थे। इस नाटक को पहले रामेश्वर प्रेम जी ही 'सुदास' नाम से लिखना चाहते थे। लेकिन, किसी कारणवश वह यह लिख नहीं सके।

ग्राम कवि के गायन से इस नाटक की शुरुआत हुई। मंच पर बस एक छोटा सा चबूतरा है। ऐसा लगता है कि उत्सव मनाया जा रहा है। कलाकारों की वेशभूषा रंग बिरंगी है। बासन और जुवान जैसे बुंदेली शब्द सुनाई देते हैं। सत्तू का सेवन समीर करता है। ग्रामीण जन समुदाय मंच पर नजर आता है। माता-पिता घर वार को छोड़कर समीर भटकता हुआ, काम की तलाश में ग्रामीणों से जा मिला है। गीत, गायन ,संगीत, नाटक तो ग्रामीण जीवन के प्रमुख सांस्कृतिक अंग रहे ही हैं। राई लोक नृत्य, राई गायन की तर्ज पर ही है। बुंदेली लोकगीत की धुनें बहुत प्यारे तरीके से प्रस्तुत की गई हैं। स्वांग उसी तरह किया गया जैसे अंधेर नगरी में चलता है। राजा तो न्याय करके ही

[86] [27/03/2024], https://youtu.be/vhRpicZm84I?si=rKoWUVaYn202pTiT

https://youtu.be/9hhBgCpRLuo?si=um_JfxeN6Ra9XO-

रहेगा, चाहे उसे किसी को भी दंडित करना पड़े। नाटक की रंग भाषा अत्यंत चुटीली है। बुंदेली और हिंदी का मिश्रित रूप है। पूरा नाटक लोकनाट्य रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। थोड़े-थोड़े अंतराल में रंग गीतों का इस्तेमाल किया गया है। इससे कथा अबाध गति से आगे बढ़ती है। बड़ी ही शांत प्रकृति से नाटक आगे बढ़ता है। नाटक काफी बड़ा है। इसकी समय अवधि काफी है। यह कोई हास्य नाटक नहीं है। बल्कि, गंभीर राजनीतिक प्रश्नों को उभारने वाला नाटक है। राजनीति, धर्म, समाज, राजतंत्र,गणतंत्र सब एकमेव हो गए हैं। कुछ गीत और कविताएं प्रदर्शन में अलखनन्दन ने हटाने का फैसला किया है। समीर को राजकाज में कोई दिलचस्पी नहीं। इसलिए, वह पिता के फलते-फूलते साम्राज्य का उत्तराधिकारी नहीं बनना चाहता। मगर समीर की माता श्री चाहती हैं कि राजा बने तो समीर ही बने।

‘गाओ बधाई राम राजा पधारे
आशीषो जिए सब काल
मोर मुकुट पर सूरज दमके
चंदा चमके राजा जी के भाल
अंगने उतरा तारा मंडल
शोभा फैली कौशल्या के लाल
गाओ बधाई रामराजा पधारे’।

जैसे गीत समीर के राज्य अभिषेक पर बजते हैं। इसमें जो नृत्य इस्तेमाल हुआ, वह बुंदेलखंड के लोक जीवन से उठाया हुआ मालूम होता है। राज दरबारों का जिस तरह का वातावरण होता था, उसको जीवंत बनाने में अलखनन्दन सफल हुए हैं। उसको बेहतरीन तरीके से मंच पर उभारा है। जो राजतंत्र ,राजशाही, सामंतशाही है। वह लोग भी एक तरह का स्वांग ही करते हैं। उनके सामने तो बड़े-बड़े स्वांग करने वाले भी पीछे रह जाते हैं। यह अलखनन्दन इस नाट्य प्रस्तुति से स्थापित करते हैं।

‘दूर हटो बड्डा, हटो राजा आए
दूर हटो’।

स्वांग करने वाले ही राजा के सामने शासन तंत्र की पोल खोल कर रख देते हैं। राजा को यह समझने में देर नहीं लगती कि प्रजातंत्र एक खोखली व्यवस्था है। चारों तरफ लूट ही लूट है। शासन प्रशासन से जुड़े हुए कर्मचारी जब निरीक्षण पर आते हैं, तो उनका स्वागत सत्कार तो होता ही है। साथ-साथ धन की वर्षा भी उन पर खूब की

जाती है। अस्पतालों के लिए कोई भवन नहीं खुले में इलाज होता है। शिक्षा के नाम पर केवल साक्षर होना होता है। दवाऐं चोरी हो जाती हैं। कमिशन और हफ्ता तो आम बात है। समानांतर घटनाओं के लिए समानांतर दृश्य मंच पर उपस्थित किया गया है। सूत्रधार के माध्यम से भी कथा को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने में अलखनन्दन को मदद मिली। राजा की आज्ञा मान लेना ही न्याय को मान लिया जाता था। राजतंत्र में अनुभवहीन व्यक्ति भी बहुत बड़े ओहदों पर पहुंच सकता है। यह नाटक उतना सहज सरल नहीं है। इसमें कई गुथ्थियां काम करती हैं। इसको समझने के लिए धैर्य और विवेक परम आवश्यक है। इसमें एक बुंदेली फाग का भी समावेश अलखनन्दन ने किया है।

'भइया उठाओ रमतूला बजाओ
रइयत के जागे भाग रे
जुग जुग जिएं राजा हमारे
होरी मचे सब गैलों और हार
भइया उठाओ रमतूला बजाओ'

राजतंत्र यह शपथ लेता है कि हम पूरी रैयत को सुखी करेंगे। लेकिन, खुद राजसी वैभव विलास में डूब जाते हैं। जनता में त्राहीमाम-त्राहीमाम होता है। अलखनन्दन इसमें राजा के लिए नहीं प्रजा के लिए जय जयकार करवाते हैं। इस नाटक में भांगड़ा की धुन का इस्तेमाल किया गया है। अलखनन्दन प्रजा को जब सारी शक्ति सौंपते हैं, तो उन्हें गांधी टोपी में दिखाया गया है। लेकिन, प्रजा की शक्ति छीन कर कुछ शक्तिशाली लोग झूम उठते हैं। कई तरह के मुखौटे पहनकर ऐसे लोग नाचते हैं। प्रजा कोष को शक्तिशाली लोग लूट लेते हैं। आपस में बांट लेते हैं। जनता के पास कुछ नहीं रह जाता। इसलिए नई व्यवस्था में राजा तो केवल स्वांग है। उसके प्यादे ब्यूरोक्रेसी लूटते हैं। इस नाटक में तीन बार स्वांग का प्रदर्शन हुआ है। तीनों बार कुछ न कुछ संदेश इसमें निहित था। तीसरी बार मैं तो अलखनन्दन ने स्वांग के कलाकारों का चेहरा ढक कर ही स्वांग दिखाया है। दौलत के बाजीगर ही प्रजा रक्षक बनाते हैं। वह तो सिर्फ कठपुतलियां होते हैं। गुंडे ही प्रजा रक्षक हैं। पढ़े लिखे गुंडे, मुंडो, दलालों, भड़ुओं की सहायता से ही तथा कथित लोकतंत्र प्रजातंत्र चल रहा है। प्रजा प्रधान ही डाकू है। चौकीदार ही चोर है। स्वांग कलाकार 'बोना चोर' का उदाहरण देकर कहते हैं कि प्रधान जी रात को चौकीदारी करते हैं और दिन में व्यापार करते हैं। चाहे लोकतंत्र हो! चाहे राजशाही हो! सब षडयंत्रों, चापलूसी के बड़े-बड़े कारनामे करने वाले तंत्र हैं। इस नाटक में अलखनन्दन ने रंग पट्टिका का भी अनोखा प्रयोग किया है। राज करना मतलब षडयंत्रों से काम लेना है। 'मैं एक

साधारण पुरोहित हूं राजन। न मैं सूत्रधार को जानता हूं। न मैंने ईश्वर को देखा है। जैसा अद्भुत वाक्य अलखनन्दन ही लिख सकते थे। एक रंगपट्टिका के माध्यम से समीर की जल समाधि अलखनन्दन ने मंच पर प्रदर्शित की है। यह नाटक भारतीय स्वतंत्रता स्वर्ण जयंती के वर्ष में विशेष रूप से लिखा गया है।[87]

इस चतुर्थ अध्याय में हमने अलखनन्दन के नाटकों कि विषय वस्तु,कथ्य ,कथानक,नाट्य गीत,पात्र योजना, अभिनेताओं के साथ-साथ भाषाई पक्ष, प्रकाश परिकल्पना,मंच सज्जा,संगीत पक्ष,अभिनय,वस्त्र सज्जा के विषय में समीक्षात्मक, आलोचनात्मक अंदाज में एक अंतर्यात्रा की।

[87] https://youtu.be/R-mKb8NgBKs?si=FwqacndI4RIavqoW

https://youtu.be/j3fNHtkU7mk?si=B9TGy0XrcDrOkH3v

[समय 6:45 p.m. दिनांक 29/03/2024]

पंचम अध्याय : हिंदी नाटक और लोकनाट्य परंपरा में अलखनन्दन का योगदान

5.1. लेखकीय योगदान

5.2. प्रस्तुतीकरण का वैशिष्ट

5.3. सांस्थानिक एवं सामाजिक संबद्धता

5.4. रंगमंच का विस्तार एवं जनोन्मुखी प्रयास

5.5. रंगमंच में वैचारिक एवं शैलीगत नवाचार

पंचम अध्याय : हिंदी नाटक एवं लोकनाट्य परंपरा में अलखनन्दन का योगदान

अलखनन्दन का रंगकर्मी के रूप में उदय सन 74-75 में होता है और सन 2012 तक उनकी रंग यात्रा मृत्यु पर्यंत जारी रहती है। इस व्यक्ति में कुछ जीवंतता जरूर रही होगी , जिस कारण अपना पूरा जीवन नाटक, रंगमंच, नाट्य निर्देशन, कविता के लिए लगा दिया होगा। अलखनन्दन के पूरे जीवन संघर्ष को ,उनके रंगमंच के प्रति ,निर्देशन के प्रति अनुराग को ,उनकी छटपटाहट -बेचैनी को समझना बहुत जरूरी है। इस रंग यात्रा में उन्होंने किन-किन पड़ावों ,रंग शैलियों , रंग युक्तियों को, कैसे-कैसे परिवेश में ,अपने को रंग जीवन में बनाए रखा है और किस तरह की उनकी उपलब्धियां रही हैं। यह जानना भी परम आवश्यक हो जाता है। एक नाट्य लेखक, रंग चिंतक के बतौर उन्हें कौन-कौन सी चुनौतियां का सामना करना पड़ा? कहां? कैसे-कैसे मरना खपना पड़ा? क्या चीजें हैं जो वह भारतीय रंग परंपरा में जोड़ के गए हैं? क्या उन्होंने बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा में जोड़ा है? क्या बुंदेलखंड और बुन्देली से लिया ? क्या उसमें परिष्कार-परिवर्धन किया है? क्या-क्या तत्व हैं, जो उन्होंने बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा से लिए हैं और उनमें नवीनता दर्ज की है? यह दर्ज करना भी आवश्यक हो जाता है। एक नाटककार, रंग निर्देशक,कवि,अभिनेता के रूप में अलखनन्दन की क्या-क्या उपलब्धियां और योगदान रहा है? इसकी आवश्यकता एक लंबे समय से महसूस की जा रही थी। अलखनन्दन के इन सभी योगदानों ,उपलब्धियों को हम उनके सह-रंगकर्मियों , रंग साथियों ,कलाकारों तथा रंग आलोचकों ,समीक्षकों, पत्रकारों से ही जान सकते थे और हमारे पास कोई दूसरा आधार इसके लिए नजर नहीं आ रहा था। न ही हमें कहीं लिखित सामग्री, उस तरह से मिल पाई जिस तरह की जरूरत थी। एक युवा विद्यार्थी जो फुटबॉल का शौकीन है तथा पत्रकारिता और गन कैरिज फैक्ट्री में काम करता है। अचानक से इनको छोड़कर नाटक और रंगमंच की दुनिया में , नाटक लेखन, कविता लेखन की दुनिया में उतरता है तो इसके पीछे कोई दिलचस्प कारण, कुछ ऐसा परिवेश का असर जरूर रहा होगा, जिसकी पड़ताल करना भी खासा दिलचस्पी भरा होगा। इस रंग यात्रा में उन्होंने कई तरह की रंगनाट्य शैलियों को ईजाद किया। देर-सवेर अनेक पुरस्कारों को प्राप्त किया। तरह-तरह का रंगमंच किया, जिसमें लोकनाट्य, खास तौर से बुंदेलखंड का लोकनाट्य ,छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी इत्यादि का लोकनाट्य भी शामिल है, जिसमें यथार्थवादी रंगमंच ,असंगति-विसंगति बोध का रंगमंच , पाश्चात्य रंगमंच ,संस्कृत और कविता का रंगमंच भी शामिल है। एक तरह की इस रंग

यात्रा में एकाकीपन-एकरूपता नहीं है। बल्कि, शैलियों का विस्तार है और एक तरह से कह सकते हैं कि बहुलता भी है। एक शैली से दूसरी रंग शैली की एक छलांग भी है। कुछ एक नई छटपटाहट और कुछ नया करने की बेचैनी भी है। इन सबसे अलखनन्दन क्या अर्जित कर पाए? किस तरह का उनका योगदान है? इसकी पड़ताल हमने उनसे तथा उनके रंगमंच से जुड़े अनेक लोगों से बात करके की है।

5.1 लेखकीय योगदान

अलखनन्दन के बहुत अच्छे मित्र और उनकी रंग मंडली के एक बेहतरीन कलाकार, रंगमंच सज्जा और फिल्मों के जानकार जयंत देशमुख**,** अलख के योगदान को कुछ इस प्रकार से हमारे समक्ष रखते हैं। 'अभी हम यह तो नहीं कह सकते जो भी मामला गड़बड़ है। अपनी अपनी जगह पर अल्काजी, अपनी जगह पर हबीब तनवीर ,अपनी जगह पर बीवी कारंत ,के एन पणिक्कर अपनी जगह पर। एक जो पीढ़ी ही बड़ी पीढ़ी थी, यह सीनियर इसके बाद की जो पीढ़ी जिसमें बंसी कौल आते हैं, जिसमें अलखनन्दन भी उस में आते हैं। कुछ प्रशिक्षित लोग हैं। कुछ शिक्षित-प्रशिक्षित लोग नहीं है। ईवेन, अपने बलबूते पर थिएटर पैदा किया। थिएटर में काम किया। मुझे लगता है कि जो दूसरी पीढ़ी है जिसमें बंसी कौल वगैरह आते हैं। उसमें अलखनन्दन की जगह है। ऐसा मेरा मानना है और भारतीय रंगमंच में मुझे लगता है कि भारतीय रंगमंच की परिकल्पना की परिचर्चा या भारतीय रंगमंच की हम जो बात करते हैं। उसमें अलखनन्दन एक बहुत बड़ा नाम है। उसमें भारतीय रंगमंच की जो परिकल्पना है। लोगों के समाज की जैसे भोजपुरी में उन्होंने किया। बुंदेलखंडी में किया और छत्तीसगढ़ी में किया। मैं तो अभी भी मानता हूं कि जब तक बोलियों का रंगमंच पैदा नहीं होता। तब तक भारतीय रंगमंच नहीं होगा। केवल , हिंदी रंगमंच से भारतीय रंगमंच की परिकल्पना करना मूर्खता है। क्यों? जब तक कि रीजनल लेवल पर काम नहीं होगा। तब तक एक बड़ा परिपक्व भारतीय रंगमंच नहीं बन कर आएगा। भारतीय रंगमंच राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से पैदा नहीं होता है। क्योंकि, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय एक है। ऐसे राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय देश में जितने स्टेट हैं। उन सब में होना चाहिए। जैसे उन सब में जैसे मणिपुर में रतन थियम मणिपुरी में काम करते हैं। के एन पणिक्कर अपने तेलुगु या तमिल या मलयालम में काम करते हैं। बंगाल के लोग बंगाली में काम करते हैं। महाराष्ट्र के जो थिएटर के लोग हैं ,वह मराठी में काम करते हैं। गुजरात के लोग गुजराती में काम करते हैं। उसी तरह से बोलियों और अपनी भाषाओं में जब तक काम नहीं होगा। तब तक कोई भारतीय रंगमंच की परिकल्पना कैसे कर सकते हैं? आप के हिंदी में ही

काम करने वाला एक्टर ही बड़ा एक्टर है ? हिंदी में ही डायरेक्ट करने वाला बड़ा डायरेक्टर है? ऐसे कैसे हो सकता है? शंभू मित्रा भी बड़े एक्टर थे। जब भारतीय रंगमंच की हम बात करेंगे तो हम बादल सरकार की बात करेंगे। हम मोहन राकेश की बात करेंगे। हम विजय तेंदुलकर की बात करेंगे। तब भारतीय रंगमंच की परिकल्पना होगी। भारतीय रंगमंच के कौन बड़े राइटर हैं? विजय तेंदुलकर हैं। मोहन राकेश हैं। बादल सरकार हैं। ऐसा बोलना पड़ेगा हमको। वैसा ही अभिनेताओं में, वैसा ही निर्देशकों में ,यह कहना पड़ेगा कि निर्देशक हैं जो भारतीय निर्देशक हैं। यह इनके काम से एक परिपक्व और बड़े भारतीय रंगमंच की परिकल्पना की जा सकती है न? मुझे लगता है कि अलख जी को ऐसा देखा जाना चाहिए।'[1]

जयंत देशमुख समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि जो वरिष्ठ प्रबुद्ध रंगकर्मी थे। वह तो बहुत ही जिसे कहना चाहिए, विलक्षण प्रतिभा संपन्न और असाधारण थे। अपने फन के उस्ताद थे। उनका कोई तोड़ भारतीय रंग परंपरा में मौजूद भी नहीं है। उनका दूसरी पीढ़ी से अभिप्राय ही एमके रैना, अलखनन्दन और बंसी कौल, रतन थियम, रीता गांगुली, देवेंद्र राज अंकुर इत्यादि से है। यह ऐसी पीढ़ी है या इसमें अलखनन्दन ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने रंग परंपरा को अपनी सामर्थ्य से ज्ञात किया। उसमें अपनी जगह बनाई थी। अलख किसी प्रशिक्षण संस्था में नहीं गए थे। उन्होंने स्वाध्याय के दम पर तथा बुन्देलखण्ड के लोकनाट्य के अवलोकन-पर्यवेक्षण के दम पर अपनी जगह बतौर नाटककार, रंगकर्मी, रंगनिर्देशक और कवि बनाई थी। जब भी इस मामले में जिक्र किया जाएगा। लोग अलखनन्दन को श्रद्धापूर्वक याद किया करेंगे। क्योंकि, अलखनन्दन को रंगमंच कोई पारिवारिक विरासत में नहीं मिला था। लेकिन, यह स्वीकार किया जा सकता है कि बुंदेली परिवेश, बुंदेली संस्कृति, बुंदेली नाटक परंपरा, बुंदेलखंडी लोक जीवन से जरूर उन्होंने एक विरासत पाई थी। जयंत ने एकदम दो टूक बात कही है कि जब तक लोक बोलियों का रंगमंच तैयार नहीं होगा। तब तक कोई भारतीय नाटक की विकसित परंपरा भी नहीं बनेगी। केवल हिंदी रंगमंच का ढिंढोरा पीटने से बात नहीं होगी। हमें, भारतीय ग्रामीण लोकनाट्य परंपरा और क्षेत्रीय लोग बोलियों के भी रंगमंच को पर्याप्त स्थान मुहैया कराना पड़ेगा। अलखनन्दन का यह योगदान ही कहा जाएगा कि उन्होंने लोकनाट्य की उपेक्षा नहीं की। उन्होंने बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी में भी लोक रंगमंच किया। लोकनाट्य में उनका हबीब तनवीर जैसा विश्वास भी था। देश के प्रत्येक राज्य के कस्बे के रंगमंच को पहचान और सम्मान और स्थान देना होगा। तभी भारतीय नाट्य परंपरा का स्वरूप निर्धारित हो सकेगा। अलखनन्दन की पहुंच जहां तक थी, जितनी उनकी सामर्थ्य थी, उन्होंने अपने तईं स्तुत्य प्रयत्न किया। केवल राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय नहीं हर जिले, कस्बे, तहसील

[1] जयंत देशमुख से 17 मार्च 2022 को लिए टेलीफोनिक साक्षात्कार से अंश

स्तर पर नाटक संस्थाएं, सांस्कृतिक संस्थाएं बनानी होंगी। ताकि, भाषाई विविधता का रंगमंच बना रहे। उसमें लोक और भारतीय नाट्य की खुशबू बनी रहे। जैसे अलखनन्दन ने 'नट बुंदेले' जैसे रंगमंच के एक समूह की स्थापना कर बुंदेली लोकनाट्य के तत्वों को लेकर अखिल भारतीय स्तर पर ख्याति अर्जित की। हिंदी के दादागिरी भरे रंगमंच से ज्यादा आवश्यक है, क्षेत्रीय लोक बोलियों और भाषाओं में का रंगमंच। अलख के काम में यह सब दिखता भी है। हालांकि क्षेत्रीय लोक रंगमंच तक अलख के योगदान को संक्षिप्त अथवा सीमित नहीं किया जा सकता है। उनका विविध और विराट व्यक्तित्व तथा जिसमें कविता के रंगमंच, लोक रंगमंच(बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी) तथा यथार्थवादी, विसंगतिबोध का रंगमंच, पाश्चात्य रंगमंच के एक साथ दर्शन होते हैं। यही अलखनन्दन का महती योगदान है।

रंग समीक्षक विनय उपाध्याय अलखनन्दन के रंगमंच में किए गए योगदान को, कुछ इस तरह से हमारे सामने रखते हैं। 'देखिए ! मेरा तो ये मानना है कि अलख जी का जो पदार्पण है । अगर हम देखें तो आजादी के बाद सक्रिय हुए रंगकर्मियों में हम उनको देखते हैं। आजादी के बाद की जो चिंताएं थी, आजादी के बाद का जो बदलता परिदृश्य हमारे समाज का है, हमारी संस्कृति का है, है ना? ऐसे समय में इस पूरी की पूरी आजादी के बाद की जो नई हवाएं और आजादी की एक नई लौ और समाज बिल्कुल टेक्नोलॉजी का भी आक्रमण। औद्योगिक क्रांति भी हमारे सामने है। ठीक है? इन तमाम चुनौतियों के साथ भारत अपनी जड़ों में, अपने संस्कारों में, अपनी परंपराओं में जो है, वह कितना गहरा है? उनकी वैल्यू क्या है ? आज के समय में वह क्या सोच रहा है? इन सारी चीजों को शामिल करते हुए अलख , जिन्हें अपने रंगकर्म का एक रखते तो एक चेहरा तैयार किया। एक चरित्र तैयार किया । मैं ये मानकर चलता हूँ, कि अलखनंदन जी हमें हमारे इस पूरे बदलते आधुनिक परिदृश्य में, एक ऐसे भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति सजग रहकर, आधुनिक चिंताओं के साथ उसका सर्वश्रेष्ठ करने वाला, गठजोड़ करने वाला, संधि करने वाला रंगकर्मी है, जिसने की अपनी पूरा का पूरा एक पांव अपनी परंपरा पर रखा। दूसरा पांव उनका आधुनिकता के पास था । यानी परंपरा के ऊपर गहरा पांव रखते हुए, आधुनिकता की ओर कदम आगे बढ़ाना। उनका यह मानना था कि अचानक आधुनिक हो जाने से कुछ नहीं होगा। इसलिए, उन्होंने बुंदेली लोक शैली को कभी छोड़ा नहीं।'[2]

रंगनाट्य, कविता में जो सृजन यात्रा अलखनन्दन ने शुरू की। वह सन74-75 के आसपास का वर्ष था । लोकतंत्र की स्थापना के 25 वर्ष बीत चुके थे। देश लगभग अशिक्षित आंशिक शिक्षित था। भुखमरी के हालातों

[2] विनय उपाध्याय से 9 मार्च 2022 को भोपाल से लिए साक्षात्कार से अंश

से लड़ रहा था। कुपोषण के हालात चल रहे थे। कांग्रेस 25 वर्ष से अधिक वर्ष तक शासन कर चुकी थी। लेकिन, बुद्धिजीवियों में एक परिवर्तन की उम्मीद हताशा-निराशा के बादल घिरते रहते थे। आजादी के बाद देश का सामाजिक, सांस्कृतिक ,भौगोलिक, ऐतिहासिक ताना-बाना बनता-बिगड़ता जा रहा था। नवीन उत्साह ठंडा पड़ने लगा था तथा लोकतंत्र में तानाशाही की बू भी आने लगी थी। कृषि बैंकिंग में बदलाव हो रहे थे। तकनीक की दुनिया में हम प्रवेश करने जा रहे थे। मशीनीकरण, औद्योगिकरण में हमने हाथ आजमाना शुरू किया। भारतीय परिवेश में इतिहास के संस्कार, परिवेश, जाति की पुनर्व्याख्या, भारतीयता की व्याख्या, अस्मिता मूलक राजनीति का उदय होना बाकी था। कुछ सुगबुगाहट मिलने भी लगती है। अलख इन सब परिस्थितियों, देश के परिदृश्य पर नजर बारीक ढंग से बनाए हुए थे। अलख अपने रंग चिंतन में इन सब का समावेश करते हैं। पूरी जिम्मेदारी, दायित्व से भरकर रंगमंच , कविता में उतरते हैं। अपने अध्ययन से समकालीन भारतीय मानस के मन को टटोलते हैं और नवीन निष्कर्ष तक पहुंचने की कोशिश करते हैं। परिवर्तित होते सामाजिक, धार्मिक परिवेश से तथा लोकतंत्र के दोहरे अभिशाप से अलख आशंकित थे। धार्मिक उन्माद, कट्टर पंथ के बोलबाले से वह परेशान थे। आम आदमी को समावेशी वातावरण न मिल पाना भी अलख की बेचैनी की वजह बनी। भारतीय जीवन मूल्यों का आधुनिक समय में क्या औचित्य होगा? क्या जाति की सीमाएं टूटेगी? क्या ब्राह्मणवाद-पूंजीवाद धराशाई हो पाएगा? क्या सभी वर्गों को सामान समझा जाएगा? दिल्ली से बनी हुई योजनाएं गरीबों के हाथ पहुंचेगी कि देश का सामंत, पुरोहित, धनी वर्ग, नौकरशाही, राजनीति मिलकर आम आदमी को और पीस डालेंगे? परंपरा के ऐसे मूल्य जो धार्मिक, सामाजिक-समावेशिता में बाधक सिद्ध हुए। अलख उनकी तरफ अपने रंगमंच में इशारा करते हैं। वह आधुनिक समाज में तार्किकता-बौद्धिकता का तंत्र देखना चाहते थे। नारकीय जीवन से मुक्ति की उनकी आकांक्षा है। भारतीय समाज में काफी सड़ांध-गंदगी है। उसकी भी खबर अलखनन्दन को थी। उसको भी दूर करना हमारा दायित्व होना चाहिए। पाश्चात्य का रोना बंद करो। ब्राह्मणों की ग्रंथ आधारित ही भारतीय संस्कृति और मूल्य नहीं है। आदिवासियों, दलितों, पिछड़ो की अल्पसंख्यकों की भी अपनी अस्मिता, उनका रहन-सहन और उनका खान-पान अलग-अलग है। उनकी भी तो अपनी भारतीय संस्कृति है। लोक शैलियों का उनका आग्रह निश्चित रूप से भारतीयता की जड़ों का रंगमंच है। लोक रंग ,लोकमंच से ही हमारी पहचान बनेगी, न की हिंदी रंगमंच से। हिंदी रंगमंच के साथ-साथ लोक का रंग मंच भी विकसित होना चाहिए। वह हिंदी रंगमंच के विरोधी नहीं थे। लोक रंगमंच की जड़ों से भारतीय नाट्य समृद्ध होगा। अलखनन्दन बुंदेली लोकनाट्य की परंपरा को अखिल भारतीय स्तर पर लेकर गए।

कहानीकार शशांक अलखनन्दन के मित्र हैं तथा जबलपुर से लेकर भोपाल तक कि उनकी रंग यात्रा के साक्षी रहे हैं। वह अलख के योगदान को कुछ इस प्रकार अंकित करते हैं। ' देखिए ! मुझे ऐसा लगता है कि उस वक्त पर जबकि वह 'वेटिंग फॉर गोदो' नाटक खेल चुके थे। उसमें आप यह देखेंगे कि उनमें जिस तरह सबसे बड़ी रेखांकित करने वाली चीज है, कि उन्होंने बुंदेली लोकगीतों और बुंदेली नाटक परंपराओं का समावेश करते थे। ठीक वैसे ही जैसे बंसी कौल अपने नाटकों में, उनका भी समय काल यही है, जो एक विदूषक तत्वों का इस्तेमाल करते थे। एक ही समय के दो नाटककारों को यदि आप देखें , तो प्रस्तुतियों में आपको एक ताजापन दोनों में दिखेगा। मगर, मध्य प्रदेश की बुंदेली का एक तत्व उसमें आपको ज्यादा अलखनंदन में दिखाई पड़ता है। मगर, मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैंने तो कारंत जी के भी यह सब नाटक देखे हैं और उनके साथ यह रहे भी हैं। मैं यह पाता हूं कि जैसे आप एक किताब में एक कहानी पढ़ते हैं और उसको आप कुछ दिनों बाद विस्मृत होने लगते हैं। आपका मन करता है तो उस कहानी को आप पलट कर पढ़ लेते हैं। इस तरह से आप लेखक के साथ होते हैं। इस तरह से कहानीकार के साथ होते हैं। मगर नाटक के साथ अक्सर मुझे लगता है, कि दो-चार चुटीले संवादों के अलावा आपकी स्मृतियों में जो चीज बची रहती है, वह बहुत मोहक आवरण जैसा ही होता है। वह पूरी तरह से, समग्र रूप से, अब उस नाटक के बारे में यह मैं अपनी बात कहूंगा, दूसरों की नहीं। उस नाटक में चाहे कितने भी बड़े नाटककार का हो कोई याद नहीं रह पाते। ठीक वैसे ही जैसे अच्छी फिल्मों के कुछ चुनिंदा शॉर्ट्स आपको याद रह जाते हैं। अलखनन्दन की सबसे प्रमुख और विशिष्ट बात मुझे लगती है। अलखनन्दन एक कवि के रूप में बहुत सुदृढ़,तीक्ष्ण और उनके पास कहने को काफी कुछ था। मुझे कुछ ऐसा लगता है कि उनके कवि होने के कविताओं के बारे में बहुत कम बातचीत की गई है। जबकि ,उनकी समग्र कविताओं का अलख से वह होना चाहिए। मैं समझता हूं कि उनके नाटककार के समकक्ष, उनका कवि भी बहुत उच्च स्तर पर है। शिखर पर है।'[3]

अलखनन्दन ने सबसे पहले हिंदी नाटकों की परंपरा में बुंदेली की ठसक ,उसके चुटीले अंदाज उसकी विशद् शब्द संपदा को ,उसके गीत संगीत, उसकी धुनों को बुंदेली वातावरण व रहन-सहन तथा बुंदेली लोक जीवन को बहुत ही जिसे कहना चाहिए, सलीके से अपने नाटकों में पिरोया है। इन सब में आपको एक ताजगी और नयापन जरूर मिलेगा। बुंदेली लोक तत्वों का भरपूर उपयोग अलखनन्दन ने अपनी नाट्य प्रस्तुतियों में किया। उसके रूप में छेड़खानी नहीं की। बल्कि उसे ज्यादा तार्किक और बुद्धि संगत आधुनिक बनाकर पेश किया। बुंदेली के उन्हीं तत्वों को अलखनन्दन अपने नाटक और रंगमंच में चिन्हित करते हैं, जिनसे जमीदारों से, ब्राह्मणवाद से, सत्ता से

[3] कहानीकार शशांक से 19 मई 2023 को लिए टेलीफोनिक साक्षात्कार से अंश

सीधे टकरा सकते हैं। उनके साथ व्यंग्य की मुठभेड़ कर सकते हैं। उन्हें बुंदेली के लोक तत्वों की आवश्यकता महसूस हुई, जिसमें एक ग्रामीण परिवेश बनाने में, उसकी लोकधुन पकड़ने में ,उनका संगीत पकड़ने में मदद मिल सके। इसको वह लड़ाई के औजार, जिजीविषा के रूप में, शोषण के विरुद्ध तथा ग्रामीणों की सहानुभूति के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे। मनोरंजन के लिए नहीं। एक चिंतन की प्रधानता बनी रहे। एक क्रांतिकारी लहर, एक सामाजिक चेतना तैयार की जा सके। लोक रंगमंच से अलखनन्दन को ग्रामीणों को, निरक्षरों को संबोधित करने में मदद मिली होगी। यह बहुत बड़ा उनका योगदान माना जाएगा कि वह बोल केवल बुंदेली रहे थे, जिसमें वहां वह जन्मे नहीं थे। फिर उन्होंने बुंदेलखंड के रंगतत्वों का अध्ययन करके बुंदेली रंगमंच को आधुनिक परिवेश से जोड़ा। जो रंगमंच केवल बुंदेलखंड के गांवों तक सीमित था। उन्होंने उसका संस्थानीकरण कर उसे राष्ट्रव्यापी पहचान दी। नगर के वासियों को बुंदेली रंगमंच से पहली बार अवगत कराया। अलखनन्दन ने अपने बुंदेली तथा हिंदी रंगमंच से कुछ ऐसा छोड़ा है जो लोगों की स्मृतियों में बना हुआ है। यह उनके रंगमंच के लोक तत्वों के उपयोग की सार्थकता भी है। लोकगीतों का तो वह बहुत अच्छा उपयोग करते थे। नाटक उनकी शक्ति थी। लोकगीतों से वहां यानी बुंदेली लोक संस्कृति की जीवंतता आ जाती थी। यह उनका बहुत बड़ा योगदान था। कुछ ऐसे दृश्य उनके नाटकों के बन जाते थे, जिनसे उनके बुंदेली लोक चरित्रों की पहचान भी उजागर होती है। उनके अवलोकन की विलक्षण प्रतिभा का भी पता लग जाता है। अलखनन्दन के कवि होने के कारण उनका कल्पनाशील मन भी रंगमंच के लिए सर्वथा सहायक सिद्ध हुआ है। उनके पास बहुत कुछ कहने को था। लेकिन, काल ने उन्हें हमसे जल्द छीन लिया था। कवि होना कहीं अलखनन्दन का पीछे छूट गया था। जबकि, उनकी काव्य प्रतिभा भी तीक्ष्ण थी। उनके नाटककार ,रंगनिर्देशक रूप ने कहीं न कहीं उनके कवि रूप को पीछे धकेल दिया है। जो की अच्छी बात नहीं है। उनका कवि रूप भी उनके नाटककार-रंगकर्मी रूप से होड़ लेने में पूरी तरह से सक्षम है।

राजकुमार कामले जबलपुर में भी अलख के साथ काम करते थे। बाद में भारत भवन भोपाल में भी अलखनन्दन के अनेक नाटकों में भूमिका निभाई थीं। उनसे जब हमने बात की तो उन्होंने अलखनन्दन के योगदान को कुछ इस तरह से याद किया— 'अरे भाई! उनका योगदान जो है शायद आपको मालूम नहीं है। पूरे मध्यप्रदेश में अलख जी ने घूम-घूम कर काम किया है। आपको यह मालूम है? उन्होंने बिलासपुर ,रायपुर ,अंबिकापुर ,बस्तर ,सरगुजा ,भिलाई ,होशंगाबाद ,सिवनी , राजनांदगांव ,जबलपुर ,शिवपुरी व्यक्तिगत रूप से यहां पर काम करने के बाद भी बच्चों के लिए बहुत रंगकर्म रंगकार्य किया है। बच्चों के लिए नाटक लिखे हैं? बच्चों के लिए शो किए हैं। बच्चों के लिए इन जगहों में जाकर वर्कशॉप की है। यह एक और डिफरेंट पहलू है। यह अलखनन्दन की ही प्रेरणा

अगुवाई का कमाल था कि उन्होंने एक बाल नाट्य आंदोलन, एक नाट्य आंदोलन जैसे हिंदी रंगमंच का नाटक का आंदोलन चल रहा है न, उसमें जो बच्चों का नाटक चल रहा था, उसमें देश के नामचीन लेखकों, रंगकर्मियों और युवाओं की सहभागिता रहे। अलख जी ने बच्चों के लिए पचास से अधिक नाटक लिखे हैं। हिंदी रंगमंच के इतिहास में एक मौलिक और प्रखर रंग सज्जा के तौर पर हमेशा समर्थित होते रहेंगे।'[4]

अलखनन्दन स्थिरता के रंगमंच में विश्वास नहीं करते थे। उनका योगदान इससे बढ़ जाता है कि उन्होंने रंगमंच करने के लिए भौगोलिक सीमाओं का निर्धारण नहीं किया। अपने को किसी विशेष क्षेत्र, परिधि, भाषाई संक्रीणता में नहीं बांधा था। यद्यपि, मूल रूप से तो उन्होंने जबलपुर भोपाल में ही ज्यादा रंगमंच किया। लेकिन, अलख का योगदान नाटक कला और रंगमंच में इसलिए भी बढ़ जाता है कि उन्होंने नाटक रंगमंच के प्रचार प्रसार के लिए ,सामाजिक जागरूकता के लिए ,रंग चेतना के सही इस्तेमाल से, रंग आंदोलन खड़ा करने के लिए, घुमक्कड़ रंगमंच किया। इसका कारण एक तो अवसर और रोजी-रोटी से जुड़ा है। लेकिन, सिर्फ आजीविका ही नहीं, बल्कि उन्हें लोग नाटक और रंगमंच का काबिल और जानकार मानते थे। इसलिए भी अलखनन्दन रंगमंच की एक-एक नस से वाकिफ थे। उनको रंगमंच की सैद्धांतिकी की गहरी समझ थी। वह सिद्धांतों को सरल और सहज बनाकर नाटक-रंगमंच किया करते थे। अलखनन्दन ने रंगमंच में व्यावहारिक ,जमीनी संसाधनों के उपयोग वाला रंगमंच किया। बहुत तामझाम, कृत्रिमता उनके रंगमंच में नहीं आ पाई है। यह भी अलखनन्दन का एक विशिष्ट योगदान माना जाना चाहिए। उनकी आदत में हर चीज को बहुत सजा संवार कर पेश करना शुमार नहीं था। उन्होंने लोगों को साधारण से साधारण संसाधनों में बेहतर रंग मंच करके बतला दिया। कम पैसों में भी रंगमंच को हो सकता है। यही अलख की ताकत थी। अलख का जीवन ही रंगमंच में समाया हुआ था। उनके लिए उससे बाहर निकलना बड़ा मुश्किल और दुष्कर कार्य था। इसलिए जहां अवसर मिला, चाहे सरकारी तंत्र द्वारा ,लोगों या संस्थाओं या विशेष अवसरों, नाट्य समारोहों -महोत्सवों में अपनी नाट्य सेवा देने में, अलखनन्दन ने कभी हिचकिचाहट नहीं दिखाई।

दूसरा जो उनका महत्वपूर्ण योगदान है। वह बच्चों के रंगमंच को लेकर है। बच्चे कोई भी गतिविधियां जल्दी सीख जाते हैं तथा जीवन भर नहीं भूलते। नाटक कला को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण-स्थानांतरण में सुविधा होती है। अलख दादा बच्चों से स्नेह तथा बच्चों के रंगमंच के आग्रही रहे हैं। उनके सामने अलख स्वयं बच्चा बन जाते थे। बच्चों से घुल मिल जाते थे। उनके लिए नाटक लिखते थे। कहानियों का नाट्य रूपांतरण कर देते थे।

[4] रंगकर्मी राजकुमार कामले से 6 मार्च 2022 को जबलपुर से लिए साक्षात्कार से अंश

अलख के योगदान को नवोदय विद्यालय में तथा अनेक शहरों में जा जाकर बाल रंगमंच की कार्यशालाएं ,वयस्कों के साथ ही साथ विद्यार्थियों के रंगमंच में नकारा नहीं जा सकता है। अलख अध्ययन आधारित नाटक-रंगमंच के बहुत बड़े पैरोंकारों में से एक थे। अलख बाल रंगमंच के लिए तो एक आंदोलनकारी नाटककार-रंग निर्देशक थे। इसमें कोई संदेह नहीं है। वह बड़ों के लिए नाट्य आंदोलन के साथ ही साथ बच्चों, विद्यार्थियों के रंगमंच के एक तरह से बहुत बड़े प्रतिबद्ध-समर्पित व्यक्ति थे। इसके लिए उनको सदैव याद किया जाता रहेगा।

5.2 प्रस्तुतीकरण का वैशिष्ट

अलख के शिष्य विशाल आचार्य उनके योगदान को कुछ इस तरह बताते हैं—'देखिए! योगदान तो उनका बहुत है। हम उस योगदान को एडमिट कितना करते हैं। उनके योगदान को अलाइव कितना रख पाते हैं। या स्टैंड कितना कर पाते हैं। वह डिपेंड करता है। क्या है कि संसार में आना-जाना, जीवन-मृत्यु तो एक दैवीय व्यवस्था है। जो हर किसी के साथ जुड़ी है। निश्चित जीवन है, जिसको जितना जीना है। उस दौरान जो कर्म करता है। उसका कर्म रह जाता है। पर हम जब किसी सर्जन विचारधारा की बात करते हैं। मेरा ऐसा मानना है। आप किस सर्जन धारा का अनुकरण करते हुए। क्या सृजित करेंगे। इस चीज के लिए ईश्वर तय करता है और जब परमात्मा ने तय किया कि अलखनन्दन रंगकर्म करेंगे और इस तरह का रंगकर्म करेंगे तो हर कथा का एक अंत होता है। वह नाटक की भाषा में कहें तो वह सुखांत भी हो सकता है। दु:खांत भी हो सकता है। अलख दादा का जो योगदान नाट्य जगत या नाट्य संसार में जो उनकी तरफ से किया गया। उसको मैं दुखांत की श्रेणी में रखता हूं। क्योंकि, वह आगे नहीं बढ़ पाए, जिसको हम बोलते हैं न? लीगेसी! आज कहने के लिए तो उनके बहुत शिष्य हैं। जो उनके द्वारा सीखे अलग-अलग शहरों में कोई कर रहा है। पर, एक्चुअल में वह जो करते थे। उसको करने का प्रयास कितने लोग कर पाते हैं? प्रयास करके कितने लोग उस चीज को स्टाइलिश कर पाते हैं? उनका क्या कंट्रीब्यूशन रहा है? मैंने कहा न कंट्रीब्यूशन तो बहुत बड़ा था। पर, वह सस्टेंड कितना किए ? दिस इज द क्वेश्चन। जैसे अब उनके ग्रुप की बात करें। खत्म हो चुका है। उनके बेटे हैं तो 'नट बुंदेले' कि उन्होंने एक और उपशाखा बना ली है 'यूविन' करके। उसके अंतर्गत नाटक करते हैं। बहुत कम नाटक करते हैं। अलख दादा के किए हुए नाटक हो ही नहीं पा रहे हैं। जैसे आखरी 'काव्यरंग' था। मैंने उसको लेकर उनके बेटे से इच्छा जाहिर की थी। यार! इस नाटक के राइट्स मुझे दे दो! इस नाटक को जैसा दादा ने किया, एज इट इज , मैं करवाया करूंगा। उनकी तरफ से कोई उत्साहजनक उत्तर

नहीं आया। ऐसा उनके स्वयं के कुछ रिजर्वेशंस हैं। उनकी कुछ असुरक्षाएं हैं स्वयं की ,जिसकी वजह से वह चीजें नहीं हो पाई। नहीं हो पा रही हैं। बाकी जितना हो सकता है, उनकी परंपरा को। जो मंचशील की बात चलती है। सीमित संसाधनों में कैसे नाटक हो सकता है? उनकी बहुत बड़ी लीगेसी शिष्यों की लीगेसी एक वह है, जो थिएटर कर रहे हैं। एक शिष्यों की लीगेसी वह है ,जो एक्टिंग कर रहे हैं। जो एज एन एक्टर भी एक्टिव हैं तो वह भी हैं। वह लोग जो लेफ्ट एक्टिंग कर रहे हैं। वह अलग तरह की एक्टिंग कर रहे हैं। उनको देखकर आप यह नहीं कह सकते कि एनएसडी स्टाइल की एक्टिंग। एनएसडी का पढ़ा हुआ बंदा है। वह बताते हैं कि भोपाल में थिएटर कर रहा है, किसके साथ कर रहा है तो, वह बताते हैं, अलखनन्दन जी के साथ किया। इट इज वेरी डिफरेंट। कभी-कभी मुझे भी उसमें मिलते हैं। मतलब की सिखाए हुए एक्टर बच्चे हैं। शिष्य हैं। उनकी एक्टिंग भी आपको अलग दिखेगी। जो स्वाभाविकता है, जिसे जो डिमांड है उस समय की। उसको आप नाम दे दो बड़े बड़े बौद्धिक या बड़े-बड़े आलोचक समीक्षक होते हैं या जो बड़े-बड़े नाट्य विज्ञान के लेखक हैं। लिखें इसको कि आपको कौन सी श्रेणी के नाटक हैं? वह उनका टेंशन है। अलख जी का टेंशन नहीं है। उनको पता है कि मेरा मेरे हाथ में जो यह कथा है। स्क्रिप्ट है। उसको मुझे इस में डालना है। उस तरीके से मैं उसको प्रस्तुत करूंगा। अब उनका हेडेक है। पर यह ईश्वर से ऐसी प्रार्थना है और ऐसा मानना है। उनका जो कंट्रीब्यूशन है न और अच्छे से एस्टेब्लिश तब होगा। जब उनकी जनरेशन के बाद के हम लोग कुछ अच्छा काम कर पाएं। अलख जी का रंग संसार में जो कंट्रीब्यूशन है। वह बहुत बड़ा है। बट स्टिल, वह अंडररेटेड है या उसको वह स्वीकारोक्ति मिलना बांकी है। वह प्रतिष्ठा मिलना बांकी है। जो एक मेरा मानना है कि गुरुकुल को गुरु के न रहते हुए मिलना चाहिए और उस प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने का दायित्व सामूहिक रूप से उनके शिष्यों का है। क्योंकि, अगर हम कुनबा परस्ती के पॉइंट ऑफ व्यू से बात करें। उनकी फैमिली तो उसी वक्त एंड हो चुकी थी। उनका बेटा है। आज भी थिएटर करता है। बट, वह थिएटर नहीं करता है। उसके कुछ अपने पर्सनल सरकमस्टेंसस हों। चाहे उसकी जो भी रीजंस हों। बट, वह चीज वही है। उनका कंट्रीब्यूशन बहुत अलग तरह का रहा है।'[5]

विशाल आचार्य की बातों से स्पष्ट है कि उनका योगदान रंगमंच तथा नाटक, कविता इत्यादि में बहुत है। लेकिन, उस योगदान को कितने लोग ,संस्थान ,साहित्य ,नाटक ,रंगमंच का इतिहास कितना स्वीकारता है। सबसे अहम चीज यही होती है। उनसे कमतर लोगों पर लिखने वालों की कमी नहीं है। अलखनन्दन तो एक मौलिक हस्ती थे। उन पर भी कुछ बेहतर हो तो ज्यादा अच्छा रहेगा? चापलूसों तथा सरकार के पिछलग्गुओं को तो कोई भी

[5] विशाल आचार्य से 2 जनवरी 2022 को रीवा से लिए साक्षात्कार से अंश

मान्यता देता आया है। लेकिन, हमें जमीन से जुड़े हुए तथा फर्श से अर्श तक जिसने यात्रा की हो उसके योगदान को भुलाना नहीं चाहिए। यही अलखनन्दन के योगदान को याद रखना हुआ। यही उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि होगी। मृत्यु तो अटल सत्य होती है। लेकिन, आदमी ने जो काम करके, बल्कि विशिष्ट कार्य कर छोड़े हैं। वह तो बचे रहने चाहिए। उनको रंग जगत, इतिहास , विमर्श तथा दस्तावेजों में जरूर जगह मिलनी चाहिए। अलखनन्दन सिर्फ एक रंगकर्मी का नाम नहीं है। बल्कि, वह मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में एक रंग आंदोलन कर्ता भी तो है। अलखनन्दन को भुलाया नहीं जा सकता और न ही भुलाया जाना चाहिए। साधारण जीवन जीने में तथा सृजनात्मक कलात्मक जीवन जीने में जमीन आसमान का अंतर होता है। यह सही बात है कि हां! हर किसी को इतिहास में जगह नहीं मिलती। बड़ी ऊर्जा ,परिश्रम ,तप लगता है। तब हम किसी क्षेत्र में जगह बना पाते हैं। इसलिए सृजनधर्मी अलखनन्दन विशिष्ट थे। उनके सृजन क्षेत्र में किए गए योगदान को जगह देनी ही पड़ेगी। आप उनके किए गए रंगकर्म पर बहस कर सकते हैं। उनके काम की आलोचना कर सकते हैं। विश्लेषण कर सकते हैं। पर उन्हें नकारना मतलब उनके वजूद को चुनौती देने सरीखा है। उनका अंत दु:खद था। पर, क्या उनके योगदान को भी दु:खद होना चाहिए? कारण यह है कि उन्होंने जो भी रंगमंच करने के तरीके विकसित किये। उन्होंने जो भी प्रतिबद्धता नाटक रंगमंच के लिए छोड़ी है। उन्होंने जो भी बलिदान नाटक रंगमंच कविता में दिया है। उनको आगे बढ़ाने का काम शायद इक्का-दुक्का लोग ही कर रहे हैं। यह अत्यंत निराशाजनक है। इसकी जितनी भर्त्सना की जाए उतनी कम है। कम से कम अलखनन्दन ने ऐसे दिन के बारे में नहीं सोचा होगा। वह नाटक रंगमंच की पीढ़ियां तैयार करने वाले रंगकर्मी थे। अगर उनके रंगमंच को कहीं ठहरा दिया गया तो इस विशिष्ट रंगकर्मी का अपमान नहीं तो और क्या है? उनके काम को उनके शिष्य ही आगे ले जा सकते थे? लेकिन वह या उनमें से ज्यादातर किनारा कर गए हैं। यह अलखनन्दन के रंगमंच के साथ, उनकी विरासत के साथ, खुला विश्वास घात है? ऐसा नहीं है कि उनके बताए रास्ते पर रंगमंच कोई नहीं करता है। परंतु, यह भी सत्य है कि जितनी ईमानदारी, समर्पण बलिदान से अलखनन्दन रंगमंच करते थे। उतना शायद ही कोई करने को तैयार होगा या कर रहा होगा? पूरे दिलों दिमाग से काम को आगे बढ़ाने वाले शायद उंगली पर भी न गिने जा सके। जो उनका नाम लेकर करते भी हैं तो क्या वह उनके नाम और उनकी शैली को कहीं रेखांकित भी करते हैं? उनका योगदान निसंदेह रूप से बड़ा था। लेकिन, उनकी विरासत को कोई संभाल पा रहा है? कोई उस काम को आगे बढ़ाने, बनाए रखने के लिए ,जूझ रहा है? यही महत्वपूर्ण होता है। उनका बनाया हुआ नाट्य समूह ही ठीक से कोई चलाने वाला है ही नहीं? उसको धीरे-धीरे मिट्टी में लोग मिला रहे हैं? अलखनन्दन की आत्मा के लिए इससे बड़ा दु:ख शायद ही कोई रहा होगा? घर के सदस्य भी यदि दूसरे लोगों को

दस्तावेज देने में आनाकानी करेंगे, तो कौन दिलचस्पी लेकर अलख के काम का संपूर्ण मूल्यांकन तथा रेखांकन करेगा? घर के लोग ही अपने हाथ सिकोड़े बैठे हैं, तो फिर दूसरों की क्या कही जाए? उनको लगता है कि हमारे हाथ से सब कुछ निकल जाएगा। अरे भाई! सृजनधर्मी व्यक्ति की विरासत घर परिवार से निकलकर संसार की हो जाती है। उस पर घर परिवार वालों की भूमिका लगभग खत्म हो जाती है। उन्हें तो चाहिए की खुशी-खुशी सहयोग दें। ताकि, विरासत सही हाथों में जाए तथा संसार के सामने नए तथ्यों की झलक पहुंचे तथा लोगों का ज्ञानवर्धन हो। अलखनन्दन ने नाटक रंगमंच के लिए बहुत किया। वह सामने आना चाहिए तथा उनकी परंपरा का विस्तार, प्रचार व प्रसार होना चाहिए। जैसे वह बहुत ही नपे तुले तथा सीमित संसाधनों में काम करके रंगमंच किया करते थे। दो तरह के लोग उनके काम को आगे बढ़ा सकते हैं। एक तो वे हैं जिन्होंने अलख के कलाकार के रूप में काम किया अर्थात अभिनय ,नृत्य ,संगीत इत्यादि किया तथा दूसरे वे हैं जो मंच के पीछे नेपथ्य में काम करते हुए, उनके रंगमंच के तौर तरीकों से वाकिफ हैं। वह बहुत अच्छे अवलोकन करता हुए। यही मिलकर अलख की लोकनाट्य, यथार्थवादी रंग शैली ,कविता के रंगमंच, विसंगत नाटकों की परंपरा को समृद्ध बना सकते हैं। उनकी लोकनाट्य स्वदेशी रंगमंच के प्रति जो आस्था थी; जो भारतीय रंग मंच में उनका जो विश्वास था उस काम को आगे ले जा सकते हैं। अलखनन्दन का रंगमंच, दरअसल संस्थानिक रंगमंच नहीं है, बल्कि वह पुस्तकों तथा सैद्धांतिक विवेचन अध्ययन से निकला तथा ग्रामीण लोक जीवन का जो रंगमंच है तथा भारतीय रंगमंच की जितनी भी रंग शैलियों हैं, उनसे मिश्रित-विकसित रंगमंच है। इसलिए उनका नाटक और रंगमंच काफी विकसित प्रौढ़ तथा भिन्न है। अलखनन्दन अपना नाटक करते थे। लोग, समीक्षक ,नाट्य आलोचक क्या सोचेंगे? इससे उनको बहुत फर्क पड़ने वाला नहीं था। उनके शिष्य ही उनके रंग कर्म को उड़ान दे सकते हैं। अभी भी अलख के रंगमंच को लोग स्वीकारते नहीं है। अभी भी उनके लिए बहुत कुछ होना बाकी है। उनके शिष्य यह काम कर सकते हैं।

अलखनन्दन की शिष्या और कुशल अभिनेत्री रंजना तिवारी ने अलखनन्दन के योगदान को इस प्रकार बताया है। 'रंग जगत में अलख जी का बाप रे! बाप। योगदान ही योगदान है। इतना योगदान है कि वह सारे लोग अलखनन्दन जी के इतना वह करते हैं। भाई! उन्होंने इतने अच्छे-अच्छे नाटक किए हैं। अलख जी के साथ वह समय ,वह दौर चला गया। उनके प्ले जिंदा रहें। हम यही चाहते हैं। उन्होंने एक से एक नाटक किए हैं। जो रंगमंडल भारत भवन में भी किए हैं। 'नट बुंदेले' जो उन्होंने संस्था खोली खुली थी। उन्होंने उसके तहत भी एक से एक नाटक

किए हैं। ब व कारंत जी को अभिनय करवाना, लीड रोल करवाना यह भी एक उनकी मंच पर सार्थकता रही है। अलखनंदन जी ने ब व कारंत जी को मेन रोल करवाया महानिर्वाण में।'[6]

भारतीय रंग जगत, लोकनाट्य जगत में तथा संपूर्ण मध्य प्रदेश में अलखनन्दन के योगदान की लोग चर्चा करते हैं। भारत में अभी उनके अनेक मित्र फिल्म जगत, रेडियो, पत्रकारिता तथा रंगमंच, कविता के क्षेत्र में साथी कलाकार, शिष्य, सह-रंगकर्मी झंडा फहरा रहे हैं। इस समय जितने कलाकार मध्य प्रदेश देता है; इसकी प्रेरणा अप्रत्यक्ष रूप से अलख पर जाती है। इस अलखनन्दन नाम की हस्ती ने न जाने कितनों को रंगमंच की कलाकारी सिखाकर, ऊंचाइयों पर बैठा दिया है। अलख के बहुत सारे शिष्य, कलाकार, साथी फिल्मों में चले गए। आज वहां पर वह स्थापित नाम हैं। इश्तियाक, गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा, रंजना तिवारी स्वयं भी। पूरे मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में अलख ने नाटक की एक लौ जला के छोड़ी है। अब यह एक रंग आंदोलन बन गई है। अलखनन्दन ने जो रंगमंच किया, उससे उनकी पहचान बनी, किसी चाटुकारिता के कारण नहीं। अलखनन्दन ने रंगमंच में जो मानक स्थापित किए, वह आज तक प्रेरणा के केंद्र बने हुए हैं। उनका नाट्य आबाद रहेगा। ऐसी उम्मीद की जा सकती है। एक से बढ़कर एक रंग प्रस्तुतियों से अलख ने अपनी प्रतिभा का रंग बिखेरा था। अलखनन्दन के रंगमंच को तीन तरह से देखा जा सकता है। एक है उनका 'विवेचना' रंग संस्था जो कि जबलपुर में थी, उसके तहत उन्होंने अनेक नाटक, नुक्कड़ नाटक इत्यादि प्रदर्शित किये। दूसरा, उन्होंने भारत भवन भोपाल रंग मंडल में भी बी वी कारंत के साथ अनेक ऐतिहासिक प्रस्तुतियां दीं। बी वी कारंत से अपने एक नाटक में कई मर्तबा अभिनय भी करवाया। उन्होंने बाद में 'नट बुंदेल' नाम की एक रंग संस्था बनाकर ,जो धूम मचाई वह आज भी लोगों की जुबान पर हार बनी हुई है।

अलखनन्दन के एक विशिष्ट शिष्य और मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय में कार्यरत आनंद मिश्रा अपने गुरु अलखनन्दन के योगदान को रेखांकित करते हुए बहुत सारी बातें बताते हैं। 'रंग संसार में अलख जी का योगदान बहुत ही वृहद है। बड़ा है। लेकिन, उस हिसाब से उनको वह नहीं दी गई। क्योंकि, वह राजनीतिक पद्धति में नहीं थे। वे सिर्फ रंगकर्म करते रहे। सम्मान बहुत ही देरी से मिले। जैसे 'शिखर सम्मान', चाहे वह 'संगीत नाटक एकेडमी अवार्ड' हो आखरी समय में मिला। एक तरह से सरकार ने आकलन ही नहीं किया। मुझे नहीं मालूम लेकिन अगर

[6] अभिनेत्री रंजना तिवारी से 4 जनवरी 2022 को रीवा से लिए साक्षात्कार से अंश

आप गौर करेंगे तो देशभर में बहुत सारे शिष्य काम कर रहे हैं। उन्होंने कहीं न कहीं सीखा है। भले ही वह किसी और ग्रुप में काम कर रहे हैं। लेकिन, अलख जी के नाटकों से सीखा है। वही उदाहरण देकर करते हैं।'[7]

आनंद मिश्रा ने रंगमंच में अलखनन्दन के योगदान को बहुत बड़ा माना है। लेकिन, वह साथ ही साथ यह बताने से भी नहीं चूकते कि उनको जो सम्मान मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। अलखनन्दन रंगमंच में एक बड़े आसन और पुरस्कार के सर्वथा योग्य थे। यद्यपि उन्हें कई तरह के छोटे-बड़े पुरस्कार मिले हैं। लेकिन, बहुत देर से दिए गए हैं। अलखनन्दन ने पुरस्कारों की कभी चिंता नहीं की। अलखनन्दन को चिंता रंगमंच की थी। अलखनन्दन को चिंता अपने काम व नाम की थी। दुर्भाग्य से उनको जितना स्थान रंगमंच के इतिहास में मिलना चाहिए था। मिल नहीं पाया। इसके कई आंतरिक और बाह्य कारण मौजूद रहे हैं। सबसे पहले तो अलखनन्दन का व्यक्तित्व समझौतावादी नहीं था। अलखनन्दन चापलूसी नहीं करते थे। वह राजनेताओं, रंग आलोचकों ,नाट्य समीक्षकों के कभी तलवे नहीं चाटते थे। उनका व्यक्तित्व कठोर था। वह चाहते तो यह सब कर सकते थे। लेकिन, उनमें लिजलिजापन के लिए स्थान न था। उनकी आत्मा-हृदय इन सबके लिए तैयार नहीं था। अलखनन्दन राजनीतिक ताना-बाना ,पेंच ,सिफारिशें इत्यादि जानते थे। लेकिन ,इनका प्रयोग वह अपने भले के लिए नहीं करते थे। उन्हें जो मिल गया। उसी में संतोष कर लेते थे। वह अत्यंत स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी थे। अलख केवल और केवल रंगमंच करना चाहते थे। राजनीतिक चाटुकारता करके किसी को खुश करके अपना पेट नहीं भरना चाहते थे और न ही अपना नाम कमाना चाहते थे। बहुत सारे जानकारों ने उनका सही मूल्य नहीं आंका , जबकि अलखनन्दन जी का एक भारी रंग व्यक्तित्व तो था ही, योगदान भी वृहद था।

अलखनन्दन के मित्र और सांस्कृतिक पत्रकार, रंग समीक्षक गिरजा शंकर उनके योगदान को कुछ इस तरह रेखांकित करते हैं —'मैं तो उसी रूप में देखता हूं कि एक पूरी पीढ़ी उन्होंने रंग कर्मियों की तैयार की, जो आज बहुत सक्रिय रूप से काम कर रहे हैं। उन्होंने समाज में एक रंग चेतना जागृत करने की कोशिश की। उन्होंने बच्चों के साथ काम करके जो नई पीढ़ी तैयार की, उस योगदान को मैं बहुत महत्वपूर्ण मानता हैं।

उनके प्रयोग को मैं नाट्य प्रयोग के रूप में तो कम, लेकिन एक रंग कर्मियों की एक पूरी पीढ़ी उन्होंने तैयार की। मैं उस रूप में देखता हूं। आज जो लोग थिएटर में बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। बहुत सक्रिय रूप से काम कर रहे हैं। अलख जी के साथ उनकी शुरुआत हुई। अलख जी ने एक रंग चेतना विकसित करने का एक बहुत बड़ा काम किया। उन्होंने बच्चों के साथ वर्कशॉप लगाकर, बच्चों को तैयार करके और एक जो रंग कर्मियों को तैयार करना

[7] रंगकर्मी आनंद मिश्रा से 2 जनवरी 2022 को रीवा से लिए साक्षात्कार से अंश

,समाज के अंदर रंगमंच को लेकर एक रंग चेतना जागृत करने के बाद , जो है हम रंग आंदोलन की जो बात करते हैं। मैं उसमें उनका बहुत बड़ा योगदान मानता हूं।'[8]

रंग कर्मियों की पीढ़ी तैयार करना और बाल रंगमंच के क्षेत्र में योगदान देना। अलखनन्दन ने जबलपुर ,भोपाल ,छत्तीसगढ़ (रायपुर, बिलासपुर) में अनेक पीढ़ी के लोगों में रंग चेतना का प्रसार किया। उन्होंने बच्चों से लेकर हम उम्र तक में रंग परंपरा का बीजारोपण किया। उन्होंने सामाजिक लोक नाट्य, रंग चेतना को आधार बनाकर अनेक सफल प्रयोग किये। समाज में सजग प्रहरी के तौर पर रंग कलाकार तैयार रहें, जो जनता की पक्षधरता सुनिश्चित करते रहें। अलख की ऐसे रंग कर्मियों के तैयार करने की जिम्मेदारी थी। क्योंकि, आम नागरिकों को नेता, राजनेता, नौकरशाही, लोकतंत्र, धर्म वाले, व्यावसायिक सभी लूटने का काम करते हैं। जब सजग रंगकर्मी होंगे, तो वह जनता को जागरूक बना पाएंगे। अन्यथा प्रजा को छल-कपट से, अन्याय पूर्ण स्थितियों में मरना, सड़ना, गलना पड़ेगा। अलख के योगदान की सबसे बड़ी खासियत बच्चों को रंग संस्कार देना है। अलख जी-जान से बच्चों का रंगमंच करना चाहते थे। क्योंकि, बच्चों के माध्यम से ही कुशल रंगकर्मी तैयार किये जा सकते हैं। बच्चों की कार्यशालाएं, बड़ों की कार्यशालाओं को लेकर अलखनन्दन ने एक समर्पित रंग योगदान को दिया ही दिया। साथ ही साथ कौशलयुक्त रंग पीढ़ियां भी तैयार की।

प्रो आशीष त्रिपाठी, अलखनन्दन के शिष्यों में से एक हैं तथा नाटक और रंगमंच की गहरी समझ रखते हैं। वह अलखनन्दन के योगदान को कुछ इस प्रकार बताते हैं—'देखिए! चन्द्र पाल जी आप समझ लीजिए। इसको इस तरह देखिए। नेशनल हिस्ट्री के आने के बाद मैं ग्राम जमुनिया, सतना, मध्य प्रदेश में पैदा हुआ हूं। मैं जब स्कूल में जाता हूं, तो मुझे विश्व का इतिहास पढ़ाया जाता है। मैं उसमें यूनानी राजाओं की कहानियां पढ़ता हूं। सिकंदर की कहानी पढ़ता हूं। मैं भारत का इतिहास पढ़ता हूं और तमाम चीजें मुझे बताई जाती हैं। लेकिन, मुझे मेरे गांव का इतिहास नहीं बताया जाता। यह जो मॉडर्निटी है। उसकी एक विडंबना यह है कि वैश्विक और राष्ट्रीय पर इतना जोर है कि वह जो स्थानीय हैं या स्थानीय रहने के लिए विवश हुआ। उसकी चर्चा नहीं होती है। एक बात। दूसरी बात चर्चा सिर्फ उसकी होती है,जो सत्ता व्यवस्था के साथ बना रहता है। जैसे हिंदी के रंगमंच की विडंबना कह लीजिए। कहिए! हिंदी रंगमंच में उसी की चर्चा होगी, राजा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से जिसका संबंध रहेगा। यदि मैं इस बात को कहूं कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय एक जबरदस्त लॉबी है, तो राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के बाहर काम करने वाले निर्देशकों को किसी भी तरीके से, उन पर चर्चा नहीं होने देती। वह गाहे-बगाहे सिर्फ अपने ही लोगों को, माने राष्ट्रीय

[8] रंग समीक्षक गिरजा शंकर से 14 जनवरी 2022 को लिए साक्षात्कार से अंश

विद्यालय का तीसरे दर्जे का व्यक्ति भी, राष्ट्रीय नाट्य रंगमंडल में आएगा और नाटक करेगा। लेकिन ,अलखनन्दन जैसा आदमी राष्ट्रीय रंगमंडल की रेपर्टरी में काम करने के लिए नहीं बुलाया जाएगा। हबीब तनवीर सिर्फ एक बार बुलाए गए। दिल्ली में ही रहते थे। हबीब तनवीर इतने बड़े निर्देशक, पूरे भारत में 1940 के बाद के निर्देशकों में, उनसे बड़ा कोई निर्देशक बेशक कम से कम दो हजार तक नहीं है। लेकिन, वह नहीं बुलाए गए। तो एक जिसे कहते हैं कि रंग मंच के भीतर एक शक्ति संरचना है। ताकतवर कौन है? एनएसडी! एनएसडियन होना ताकतवर है। जैसे मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय बना । मेरे इलाके का है। उसके वहां तीन निर्देशक अब तक हो चुके हैं। पहले संजय उपाध्याय, वह राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से हैं। बिहार के हैं । मध्यप्रदेश के नहीं थे । भले अच्छे आदमी हैं। मैं किसी का विरोध नहीं कर रहा हूं। फिर आते हैं आलोक चटर्जी । अलखनन्दन के शिष्यों में से हैं। शुरुआती दिनों में आलोक चटर्जी ने 'विवेचना' में उनके साथ काम किया है। भारत भवन भोपाल रेपर्टरी में काम किया है। वह मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय के निदेशक हुए। वह भी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से हैं। उनसे कुर्सी खाली हुई। टीकम जोशी अभी हाल ही में बिल्कुल, नए, हमसे हमारी उम्र के शायद, हमसे भी एक दो साल छोटे होंगे, वह निर्देशक बने। दो हफ्ते पहले अभी-अभी अभी बने हैं । वह भी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के हैं। यानी, आप सोचिए कि नाट्य विद्यालय मध्य प्रदेश में है। मध्य प्रदेश में सैकड़ों रंगकर्मी काम करते हैं। ऐसे राजस्थान में भी करते हैं। छत्तीसगढ़ में भी करते हैं। 50-50 साल से लोग थिएटर कर रहे हैं। पर, मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय का डायरेक्टर कौन बनेगा? राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय का आदमी! यह जो है ,जैसे कि आप हैं। सेंट्रल यूनिवर्सिटी में पढ़ते हैं। मैं सेंट्रल यूनिवर्सिटी में पढ़ाता हूं। यदि मैं कहीं सिलेक्शन करने जाऊं, बिल्कुल यह ठान लूं कि छोटी जगह से आए हुए आदमी को नहीं होने देना है। या वह तो छोटी जगह का है। वह क्या जानता है? मैं सुने बगैर ही, उसकी बात किए बगैर ही, मैं बीएचयू से आया, उज्जैन से आया, अलीगढ़ से आया, डीयू से आया, हैदराबाद सेंट्रल यूनिवर्सिटी से आया तो बहुत जानकार है। सतना से आया है। रीवा से आया है। पन्ना से आया है। महोबा से आया है। इसको क्या मालूम होगा? यह धारणा हमारे मन में भ्रांत है। जैसे एकेडमिक जगत में यह शक्ति संरचना है। जेएनयू में, बीएचयू ,जामिया अलीगढ़, इलाहाबाद ताकतवर यूनिवर्सिटीज हैं। यहां पढ़ने वाला विद्यार्थी जिसने कुछ भी नहीं पढ़ा वह भी अपना कॉलर घुमा कर घूमता है। महोबा में एक आदमी दिन रात पढ़ रहा है। लेकिन, उसको हमको नहीं मालूम है। क्योंकि, खास तरह की शक्ति संरचना हमारे अंदर विकसित हो जाती है। मने, जो हिंदी में बोलेगा वही नेशनल लीडर है। इसलिए ,ज्यादातर प्रधानमंत्री उत्तर प्रदेश के होंगे? क्यों होंगे ? तमिलनाडु इस देश में नहीं है? कश्मीर नहीं है? असम का कोई आदमी प्रधानमंत्री नहीं बन सकता? अरुणाचल प्रदेश से वोट देने के लिए भारत में है। गुजराती को

प्रधानमंत्री बनना है ,तो उसको आना पड़ेगा। उत्तर प्रदेश से चुनाव लड़ना पड़ेगा। क्योंकि 80 सीटें और 40 सीटें ,यह जो सारा का सारा तंत्र है। यानी, जो जिस तरह से हमने राजनीतिक शक्तियों का ,सांस्कृतिक शक्तियों का, साहित्यिक शक्तियों का, सेंट्रलाइजेशन किया है। यानी केंद्रीकरण किया है। केंद्र से बाहर जो पढ़े हुए लोग हैं। अब भिखारी ठाकुर कोर्स में नहीं पढ़ाए जाते। हिंदी कविता पढ़ायी जाती है। हबीब तनवीर कोर्स में नहीं हैं। अलखनन्दन के बारे में भाई कह दीजिए कि 'चंदा बेड़नी' कोर्स में लगा दीजिए। कहेंगे ! कौन 'चंदा बेड़नी'? हम जानते ही नहीं 'चंदा बेड़नी' को। यह विडंबना है हमारे समाज की और इसका संबंध क्या है? इसका संबंध केंद्रीयकरण की प्रक्रिया से है। हमने कुछ चीजों को बड़ा और महत्वपूर्ण मान लिया है। इसलिए जो छोटी जगह पर काम करने वाले लोग हैं। वह छोटे लोग हैं। छोटी जगहों पर काम करने वाले जो रंगकर्मी हैं। वह कमतर काम करते हैं। तो जो एक खास तरह का मॉडल पेश कर दिया। जैसे कि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने या इस तरह तो वह श्रेष्ठ है। वहां से निकले हुए, आप देखिए, बीवी कारंत, रतन कुमार थियम, एमके रैना, बंसी कौल यह सारे के सारे, यह सब बड़े निर्देशक हैं। पर ऐसा नहीं कि उषा गांगुली, सतीश आनंद, अलखनन्दन यह कमतर लोग हैं। ये कम लोग नहीं है। एक पूरी राजनीति में जो समस्या है। आप इसका जवाब, ऐसे ढूंढिए आज तक कोई तमिल प्रधानमंत्री क्यों नहीं बन पाया? बस, अलखनन्दन के काम पर जवाब वही है । आप क्या जानते हैं एमजी रामचंद्रन के बारे में? असम के नेता जिन्हें भारत रत्न दिया गया? उनके बारे में आप क्या जानते हैं? युगबोध है ना? क्योंकि, आप महोबा से हैं। इसलिए, इसको समझ सकते हैं कि महोबा में जो, अब आप ही बताइए? लौटेंगे महोबा तो आप दो-दो सेंट्रल यूनिवर्सिटी में पढ़ चुके हैं। तो महोबा के कॉलेज में जो लड़का पढ़ता होगा। उसके बारे में आप की क्या धारणा होगी? यह है। हमारे सोचने का तरीका! इसलिए ,मेरे जैसा आदमी जो गांव से पढ़ कर आया है। मैं तो सेंट्रल यूनिवर्सिटी में पढ़ा नहीं। मेरी तो सारी पढ़ाई एक छोटे से कॉलेज में हुई है। जब मैं शुरू-शुरू में यहां आया था। तो, लोग पूछते थे कि आप जेएनयू से हैं? कोई ऐसे थोड़ा बोल रहा है। ठीक-ठाक पढ़ा रहा है। पढ़ रहा है तो वह जेएनयू का ही होगा? अरे भाई! वह सतना का क्यों नहीं हो सकता? वह रीवा-पन्ना का क्यों नहीं हो सकता? तो कंसर्न में ही नहीं है। हम चीजों की तरफ देख ही नहीं रहे हैं । तो, यदि आप नेशनल हिस्ट्री में सुंदरलाल बहुगुणा का नाम नहीं मिलता है। आपको यदि बाबा आम्टे का नाम नहीं मिलता है। कल को आपको यदि मेधा पाटकर का नाम नहीं मिलेगा । अरुणा रॉय का नाम भारत के इतिहास में नहीं मिलेगा । वैसे ही अलखनन्दन का नहीं मिलेगा। बहुत चर्चा रहेगी राजीव गांधी के काम की। श्री नरेंद्र मोदी जी के काम की। श्री नरसिम्हा राव जी के काम की। लेकिन, बहुगुणा के काम की कोई चर्चा नहीं। जो केंद्र से बाहर छूट गया, हाशिए में धकेल दिया गया। अलखनन्दन एक महत्वपूर्ण निर्देशक थे, लेकिन

उनके महत्व को समझने के लिए, आप को यह जो सो कॉल्ड पॉलिटिक्स है , जो एकेडमिक्स में भी है। थिएटर में भी है और हर इलाके में है। जैसे संगीत की दुनिया में यदि आपका घराने से वास्ता नहीं हैं, तो आप का कोई महत्व नहीं है। आप चाहे जितने अच्छे गवैए हैं। न कोई कार्यक्रम मिलेगा। न पूछेगा। जब तक आप किसी महान परंपरा या गुरु के विद्यार्थी नहीं हैं। ठीक वैसे ही यह बात है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है। यह सिर्फ अलखनन्दन के बारे में नहीं है। यह सभी लोगों के काम के बारे में है।'[9]

आशीष त्रिपाठी के मत के अनुसार कुछ चीजें तो स्पष्ट हैं। जो कि खटकती भी हैं। बड़े-बड़े संस्थानों का ,बड़े-बड़े शहरों ,बड़े-बड़े देशों और अर्थव्यवस्थाओं के आगे छोटे शहर की प्रतिभाओं को दबा दिया जाता है। कुलीनता; मध्यवर्गीय, निम्न वर्ग की प्रतिभाओं को भुना लेते हैं। लेकिन, उनका नाम और उनका भविष्य खा लेते हैं। यही हाल अलखनन्दन का इन लोगों ने किया है। जितना ढोल बड़ी जगह से आने वालों का पीटा जाता है। उतना छोटी जगह वालों का नहीं? अलखनन्दन सत्ता से मुठभेड़ करने वाले नाटककार ,रंगकर्मी थे। इसलिए भी रंगकर्म में किए गए उनके योगदान को लोग जानबूझकर भूल बैठे हैं। यह हिंदी रंगमंच में साहित्य में खूब होता रहा है। बड़ी-बड़ी नाटक संस्थाओं तथा फिल्म केंद्रों में उच्च तथा संभ्रांतों की तूती बोलती है। यानी, उनका कहा ,लिखा, प्रदर्शित किया हुआ ही श्रेष्ठ होता है। बाकी का नहीं। कुछ ऐसी ताकतें हर जगह मौजूद हैं। जो ग्रामीण पृष्ठभूमि के व्यक्तियों को किसी बड़ी पदवी, पुरस्कार लायक ही नहीं समझतीं। ऐसी शक्ति संरचनाएं न सिर्फ नाटक में बल्कि खेल ,पत्रकारिता ,साहित्य ,फिल्म ,टेलीविजन ,राजनीति ,धर्म ,समाज ,विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में सभी जगह मौजूद हैं। तो ऐसी शक्ति संरचना से ही ग्रामीण, ठेठ भदेस व्यक्तियों का गला घोंटने का काम किया जाता है। क्योंकि, इनके पास सारे संसाधन मौजूद रहते हैं। पूरी चटक-भटक टीम-टाम होती है। आधुनिक तौर तरीके सब कुछ मौजूद रहते हैं। जिसकी वजह से यह ग्रामीणों को पिछड़ा हुआ मानते हैं। छोटे शहरों वालों को उनकी प्रतिभा को तवज्जो नहीं देते हैं। जबकि, अलखनन्दन के विषय में यह खुली बात है कि उन्होंने रंगमंच में मितव्ययिता से काम किया। कम रूपयों पैसों में बेहतर रंगमंच करके दिखा दिया। यह उनके रंग कर्म की पहचान और योगदान दोनों हैं। यही अलखनन्दन की ताकत थी। छोटी-छोटी जगह, क़स्बों ,छोटे शहरों, मोहल्लों, गांव में भी काफी बड़ी-बड़ी प्रतिभाएं मौलिक रूप से काम करती हैं। प्रौढ़ और गंभीर काम करती हैं। लेकिन, उनको वह पहचान नहीं मिलती, जिसके वह हकदार होते हैं। उन्हें वही सम्मान और नाम कई बार नहीं मिलता जो मिलना चाहिए या जिन्हें मिलता है, वह बहुत देर से मिलता है। यानी शक्ति संरचना शक्ति संपन्न लोगों के साथ खड़ी है। चापलूसों के साथ

[9] प्रो आशीष त्रिपाठी से 13 अप्रैल 2022 को काशी हिन्दू विश्व विद्यालय से लिए साक्षात्कार से अंश

खड़ी है। सिफारिश के साथ खड़ी है। राजनीति के साथ खड़ी है। तो जो व्यक्ति स्वाभिमानी होगा। वह भला क्यों झुकेगा अपने सिद्धांतों से? कैसे समझौता करेगा? अलखनन्दन को अपने काम में भरोसा था। वह रंगकर्म को बड़ा मानते थे। तिकड़मों को बड़ा नहीं मानते थे। छोटी जगह, छोटे परिवारों तथा तथाकथित छोटी जाति से आने वालों की प्रतिभाओं की उपेक्षा इस देश के जीन का हिस्सा बन चुकी है। इस कारण जो वास्तविक लोग हैं। वह कम दिखते हैं। जो तथाकथित तिकड़म भिड़ाना-लगाना जानते हैं। बड़े हैं? महान हैं? वहां अलखनन्दन का भला कैसे हो सकता है? इस व्यवस्था में इस भ्रांति को दूर कौन करेगा? मेरे ख्याल से, जब अलखनन्दन जैसी अन्य प्रतिभाओं को, जब खुले मन से स्वीकार किया जाने लगेगा। तभी ग्रामीणों में, निम्नवर्ग तथा निम्न जातियों में भी व्यवस्था के प्रति विश्वास पैदा होगा? अन्यथा जिसकी लाठी उसकी भैंस चलता रहेगा। अलखनन्दन के साथ यही हुआ। इस तथाकथित शक्ति संरचना के शिकार हुए और उनको जो वाजिद सम्मान मिलना था, जिस स्थान के लिए वह थे। वह उन्हें मिल नहीं पाया। यह एक विडंबना नहीं तो और क्या है? राजनीति ,साहित्य ,संस्कृति ,धर्म में केंद्रीय शक्तियां कुंडली मारकर बैठी हुई हैं? जो आपको भीख तो दे सकती हैं। आपके सामने कुछ टुकड़े फेंक सकती हैं। लेकिन मठाधीश तो वही होंगे। उसमें कोई साधारण व्यक्ति कभी सेंध नहीं लग सकता। उसका गला तो आने से पहले ही रेता जा चुका होता है। केंद्रीय शक्तियां हासिए के लोगों के आगे बढ़ने में सहायक नहीं सिद्ध हो रहीं, बल्कि बाधक बनी हुई हैं। छोटे शहरों की प्रतिभाओं का मजाक यह कहकर उड़ाया जाता है कि भई! होता होगा तुम्हारे गांव में ,तुम्हारे शहर में ऐसा। वहीं करो यह पागलपन। यहां इसकी जरूरत नहीं है। तो वैश्विक बाजार में बड़े ,बड़ों पर बहुत जोर है। छोटी जगह, छोटे स्थलों से आने वालों पर कोई ध्यान तक नहीं देता है। जिसका जितना बड़ा नाम है। उसी को लोग सिर आंखों पर उठा लेते हैं। उसके कार्य चाहे कितने भी मूर्खतापूर्ण क्यों न हों? छोटी जगह के लोगों के काम भी छोटे होते हैं। यह लोगों ने धारणा बना ली है। इसलिए अलखनन्दन की उपेक्षा होती है। यदि एक ओर बड़े-बड़े संस्थान संस्थाओं से बड़े लोग बनकर निकलते हैं, तो यह कहीं नहीं लिखा कि झोपड़ियों में प्रतिभाएं नहीं पलतीं? प्रतिभाएं झोपड़ी से लेकर राज भवन कहीं भी जन्म ले सकती हैं। इसी प्रकार मूर्खता भी? अलखनन्दन ग्रामीण मध्यम वर्गीय प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करते हैं। सर्वश्रेष्ठ उदाहरण पेश करते हैं। अलखनन्दन के हृदय में कहीं भी मलाल भी नहीं है कि मैं ग्रामीण हूं। मैं जबलपुर का हूं। अलखनन्दन तो बल्कि हिंदुस्तान की श्रेष्ठ रंग हस्तियां बीवी कारंत ,हबीब तनवीर के साथ कदमताल करते हैं। पाश्चात्य रंग निर्देशकों के समकक्ष खड़ा होने की हिम्मत रखते हैं। हमें छोटे शहरों तथा तथाकथित छोटी जातियों तथा मध्य वर्ग से आए हुए लोगों के प्रति, अपने दृष्टिकोण में उलटफेर करना पड़ेगा। तभी अलखनन्दन जैसे लोगों के साथ न्याय हो पाएगा। नहीं तो ऐसी हस्तियों

का श्रम व्यर्थ होता रहेगा। कोई ढंग का कार्य नहीं हो पाएगा। केंद्र से बाहर हुए अलख को मुख्य स्थान दिलाना होगा। लोग बड़े, महानों को ही गले न लगाएं ,बल्कि ग्रामीण परिवेश से आए हुए को भी पहचानें।

5.3 सांस्थानिक एवं सामाजिक संबद्धता

अलखनन्दन के नाटकों में रंग संगीत देने वाले आमोदकृष्ण भट्ट उनके योगदान को कुछ इस प्रकार से रेखांकित करते हैं। 'अलख जी का योगदान, उन्होंने एक तरीके से रंगमंडल को कारंत जी के साथ मिलकर जो खड़ा किया और उसमें बहुत बड़ी भूमिका उनकी रही है। रंगमंडल ने राष्ट्रीय पहचान बनाई थी। राष्ट्रीय पहचान तो अलख जी की रही है। उन्होंने सारे देश में घूम-घूम कर रंगकर्म नाटक किए। लेकिन, उनकी राष्ट्रीय पहचान है। उन्होंने अपने नाटकों से साबित किया कि वह एक अलग मौलिक विचारों वाले, एक अलग नवीनता के थे। सोचने वाले आदमी हैं। उनके थिएटर में नवीनता है। उनके थिएटर में कंटेंपरेरी चीजें हैं, तो वह चीजें सब उन्होंने शामिल करके, उन्हें ठीक है, मध्यप्रदेश रंगमंडल में जब उन्होंने काम किया तो उसकी प्रस्तुतियों को ऑल इंडिया में देखा गया। सारे देश में उनकी प्रस्तुतियां हुईं तो एक राष्ट्रीय नाटककार और नाट्य निर्देशक कहने में कोई बुराई नहीं है।'[10]

रंगमंच का इतिहास कभी अलखनन्दन को भुला नहीं सकता। यदि भुला दे तो उसकी यह हीनता साबित होगी। यदि भारत भवन रंग मंडल में अलखनन्दन और बी वी कारंत न होते, तो शायद ही भोपाल सांस्कृतिक नाटक की नगरी के रूप में विकसित होती। संपूर्ण मध्य प्रदेश में अलखनन्दन और बी वी कारंत ही दो बड़े नाम थे ,जिनके कारण लोग नाटक को गंभीर विधा के रूप में स्वीकार कर पाए। आप कह सकते हैं कि, भारत भवन भोपाल रंग मंडल में दो रत्न अगर कोई हैं, तो वह हैं अलखनन्दन और बी वी कारंत। भोपाल कला सांस्कृतिक नाट्य केंद्र के रूप में उदित न हुआ होता, अगर उसमें ब व कारंत, अलखनन्दन, हबीब तनवीर, बंसी कौल जैसे श्रेष्ठ रंग साधक न आए होते। इन चारों की एक राष्ट्रीय, अखिल भारतीय स्तर पर एक विशिष्ट पहचान बनती चली गई। इन रंग प्रतिभाओं का सम्मान संपूर्ण नाटक संसार में बढ़ता चला गया। नवीनता और मौलिक नाट्य गुणों से अलख विशेष हैं। नवीन नाट्य चिंतन, नवीन रंग शैलियों, नए-नए रंग अभ्यासों से अलख की प्रतिभा चमक उठी। उनके कठोर परिश्रम ,अनवरत रंग साधना ने सबको अचंभित कर दिया। उनके रंगमंच में तात्कालिक मुद्दे ज्यादा उभरे हैं। इसलिए

[10] संगीतकार आमोद भट्ट से 21 दिसम्बर 2021 से लिए गये साक्षात्कार से अंश

वह देशव्यापी अपनी प्रस्तुतियां दे पानी में समर्थ बने। आमोद भट्ट अलखनन्दन में एक राष्ट्रीय नाट्य प्रतिभा की छवि देखते हैं और उन्हें राष्ट्रीय नाटककार और नाट्य निर्देशक कहते हैं।

सुरेन्द्र वानखेड़े ने अलखनन्दन के मंच पर रंग संगीत कई बार दिया है। नाटक के सांगीतिक पक्ष को संभालने की शुरुआत सुरेंद्र वानखेड़े ने अलखनन्दन के साथ ही की थी, जो कि आज भी जारी है। वह अलखनन्दन के योगदान को याद करते हुए कहते हैं कि—'अलख जी का खासकर मध्यप्रदेश के रंग जगत में उनका बहुत बड़ा योगदान है। वह बहुत सारी चीजें हम जैसे लोगों को सिखा कर गए हैं। बहुत बड़ा योगदान है। योगदान, उनका इस तरीके से मैंने शुरू में भी कहा था न? वह चलते फिरते नाट्य विद्यालय, मोबाइल नाट्य विद्यालय थे। उनसे कोई भी आदमी रंग जगत के बारे में पूछता था, तो वह बहुत अच्छी तरीके से बताते थे। बहुत अच्छी तरीके से बताते थे। इतने प्यार से और इतने अच्छे तरीके से बताते थे। यह ऐसा करना चाहिए। ऐसा करना चाहिए। ऐसा होना चाहिए। लोग भोपाल में उनको बहुत सारी चीजें उनकी याद करते हैं।'[11]

मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में अलख के शिष्यों की लंबी कतारें हैं। उन्होंने आजीवन मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में ही रंगमंच किया। धुन के बहुत पक्के थे। घूम-घूम कर भी रंगमंच किया करते थे। वह नाट्य शिविरों में, नाट्य कार्यशालाओं में, रंग प्रशिक्षुओं को प्रशिक्षित भी करते थे। अलखनन्दन को वानखेड़े जी एक विद्यालय, नाट्य संस्थान मानते थे। अलखनन्दन के हृदय में नाटक व रंगमंच के लिए अनंत स्नेह समर्पण था। उन्होंने कठोर रंग साधना के द्वारा मध्य प्रदेश में नाटक, रंगमंच, कविता, निर्देशकीय कौशल के क्षेत्र में, सर्वोच्च शिखर अर्जित किया था। नाटक, रंगमंच, नाट्य परंपरा, लोकनाट्य, लोक कलाओं के बारे में अलख का अध्ययन विशद् था। उनके बराबर रंगमंच का ज्ञान रखने वाला, व्यवसायिक मंच करने वाला भी नहीं था। अलख ने संपूर्ण मध्य प्रदेश में नाटक ,रंगमंच, कविता की , लोक कलाओं के प्रति सम्मान की अलख जलाई थी। अलख रंग जिज्ञासाओं को शांत करना अपना दायित्व समझा करते थे। अलखनन्दन नाटक, रंगमंच, कविता में ही अपनी पूर्णता का एहसास करते थे। रंग परंपरा, गीत-संगीत, सांस्कृतिक बोध से आप आसानी से अलख को अलगा नहीं पाएंगे।

लोक कलाओं की जानकारी और आदिवासी जीवन की गहरी समझ रखने वाले प्रसिद्ध वसंत निरगुणे, अलखनन्दन के योगदान पर कुछ हमें इस प्रकार बताते हैं–'निश्चित रूप से एक मतलब अस्सी के दशक और उसके

[11] संगीतकार सुरेन्द्र वानखेड़े से 2 जनवरी 2022 को रीवा म लिए साक्षात्कार से अंश

बाद के 2010 तक, अलखनन्दन मध्यप्रदेश के नाट्य के केंद्र में ही रहे। मैं सोचता हूं कि उनको, उनका जो काम है। जब भी एक इस तरह से बात निकलेगी तो अलखनन्दन का उदाहरण जरूर दिया जाएगा।'[12]

लगभग तीन दशक तक अलखनन्दन संपूर्ण मध्य प्रदेश में रंग जीवन का एक जीता जागता नमूना थे। उसकी धाक और उसके रंगमंच के काम की चर्चा संपूर्ण देश में होती थी। अलखनन्दन नाट्य समर्पण का एक ज्योतिपुंज है। वह नाटक से समाज में बदलाव देखना चाहते हैं। देश के कई नामी ग्रामी संस्थाओं ने जब कब अलख को बुलाकर काम सौंपा। उनकी प्रतिभा का सम्मान भी किया। यह हमें नहीं भूलना चाहिए। अलख को मध्य प्रदेश सहित देश की सृजनात्मक प्रतिभाएं याद करती हैं। मध्य प्रदेश में अलख के नाम बिना नाट्य इतिहास अधूरा माना जाएगा। आपातकाल के बाद अलखनन्दन का उदय होता है। 2010-12 तक उनका सक्रिय रंगमंच चलता है। कविता-नाटक से ही उनकी संरचनात्मक रचनाधर्मिता की शुरुआत होती है। इसी से उनका अवसान होता है।

मुकेश शर्मा , अलखनन्दन के शुरुआती मित्र और आलोचक हैं तथा नाट्य निर्देशन भी करते हैं। वह अलख के योगदान पर निम्न टिप्पणी करते हैं। ' जो लब्बोलुआब है, वह दो तीन बातों पर ही केंद्रित है, कि पूरे मध्यप्रदेश में रंग आंदोलन जैसी स्थिति उत्पन्न हुई या उत्पन्न की गई या उन्होंने शिष्यों की एक लंबी परंपरा छोड़ी है। थिएटर बैकग्राउंड से और कहीं से प्रशिक्षण न करने की वजह के बावजूद भी यह रंग मंडल भोपाल में, यह जो भारत भवन हैं के असिस्टेंट डायरेक्टर के पद पर पहुंच जाना और तीन से चार दशक तक सक्रिय रंगमंच में रहना। ऐसी कुछ उपलब्धियों की तरफ थोड़ा लोगों ने थोड़ा-थोड़ा इशारा किया है। बस यही है। यह बड़ी बात सब मिलाकर। कुल मिलाकर यही कहेंगे। मेरी भी यही है। इससे ज्यादा कुछ नहीं। कई जगह तो हम विरोध भी करते थे ना? वैसे इस पृष्ठभूमि के इस तरह के हम लोग भी तो थे। हमने कौन सा प्रशिक्षण ले लिया था? हम चार दशक से काम कर रहे हैं ना? आज हमने भी बड़ी फौज तैयार की है। मैं लाया नहीं हूं। नहीं तो मैं, नहीं तो मैं देता। मैं आपको हमारी 40 साल की यात्रा। अभी तो 43 साल हो गए हैं। यह कहने के पीछे मेरा यह कहीं से नहीं है कि अलग अर्थ है। यह सारा मेरा नहीं है और न मैं ऐसा कहना चाहता हूं। मैं यह कहना चाहता हूं कि यही बात सबके लिए लागू होती है। अलख के लिए भी विशेष तौर से लागू होती है। उसने बहुत पिछले तीन-चार दशक में अपने आप को बनाए रखना है, तो नए युवा रंग कर्मियों की फौज लानी पड़ेगी। करनी पड़ेगी। वर्कशॉप करते रहने पड़ेंगे। लोगों को जोड़ते रहना पड़ेगा । हम अभी भी चलते हैं। हमारी वर्कशॉप अभी भी चलती है। मेरे कई सिखाए स्टूडेंट्स जो हैं

[12] लोक कलाओं के जानकार वसंत निरगुणे से 14 जनवरी 2022 को भोपाल लिए साक्षात्कार से अंश

,अभी वहां हैदराबाद में पढ़ रहे हैं। कुछ पास होकर वहां हैदराबाद में नौकरी भी कर रहे हैं। कुछ एनएसडी भी गए हैं। है ना? हम जिस समय में नाटक कर रहे थे। उसमें सिर्फ दो ही तरीके के लोग नाटक करते थे। एक वह जो एनएसडी से प्रशिक्षित थे । वह भी बहुत कम आते थे। वह लोग भी दिल्ली से बाहर कम निकलते थे। अब जहां तक सवाल है मध्य प्रदेश का, तो जहां पर जबलपुर हो, रायपुर हो, ग्वालियर हो, इंदौर हो। अगर आप यहां के रंगकर्मियों की एक लंबी लिस्ट लें तो, आप पाएंगे कि इसमें कोई व्यवसायिक रंगकर्मी नहीं है। सत्तर के दशक से नब्बे बल्कि 2000 तक इसमें कोई भी व्यवसायिक रंगकर्मी नहीं था। वह कहीं न कहीं सरकारी नौकरी करते थे। बैंकों में काम करते थे। उसके बाद शाम को नाटक करते थे। इसीलिए, उनके लिए एक अजीब सी बात हमारे साथ भी वही जुड़ती है। हम भी नौकरी करते थे। शाम को नाटक करते थे। यह अजीब बात थी कि साहब आप व्यवसायिक नाटक नहीं करते। आप गैर व्यवसायिक नाटक करते हैं। इसलिए और सही बात थी, क्योंकि वह लोग व्यवसाय के तौर पर, उन्होंने प्रशिक्षण लिया था। प्राप्त किया था। तो वह करेंगे। हम लोगों ने जिन लोगों ने व्यवसाय के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त किया था, उनसे प्रशिक्षण लेकर के किया, कई लोगों ने वह भी नहीं किया। हर शहर में रंगकर्मी हुए हैं। आज नहीं हुए हैं। आज से पचास साल पहले, सौ बरस पहले से यह परंपरा चल रही है। दो सौ वर्ष से भी हर शहर में कोई न कोई नाटककार होता था, जो जानता था, जो पढ़ा लिखा था, जो पढ़कर के नाटकों को समझता था और वह अपने दोस्तों के साथ नाटक करता था। उनको बताता था कि वही साथ रहिए कहते हैं या हम इसका नाटक कर रहे हैं। अब तो खैर उसके बारे में बात ही नहीं करते, लेकिन, इसको तो उस वक्त के आपके सारे रंगकर्मी जो हैं। वह दो भाग में मैंने कहा कि व्यवसायी भी बहुत कम थे, जो आ जाता था दिल्ली से कभी कराने के लिए। उसने किसी शहर में एक वर्कशॉप ले ली। क्योंकि, दिल्ली वाले उनको एनएसडी भी पेमेंट देती है। पैसा भाई ! पालना भी तो है न? आपने प्रशिक्षण दे दिया। उनको कुछ खिलाओ पिलाओ भी तो। उन्होंने कहा भाई, जा भाई लोकेंद्र वहां जाकर एक वर्कशॉप ले ले तू। वहां पर एक वर्कशॉप ले ले तो आपने ले लिया। वहां वर्कशॉप ले ली तो आपने तीस -चालीस लोगों को सिखा दिया। उसमें से दो-तीन रहेंगे, दो-चार रहेंगे जो आप की परंपरा को आगे बढ़ाएंगे। बाकी हो सकता है कि अपने काम धंधे में लग जाएंगे। बट शौकिया रंगमंच इसीलिए ब व कारंत को कहते थे, शौकिया रंगमंच किसी भी शहर का पिरामिड होता है। क्योंकि, वही से सब कुछ मिलता है। बाकी लोग तो कमाने के लिए आते हैं ,और जाते हैं लेकिन शौकिया रंगकर्म किसी भी शहर की रीढ़ होता है। वह लोग समर्पण के साथ करते हैं, दिन भर नौकरी करते हैं। शाम को आकर पागल कुत्ते ने काटा है कि जो छ: बजे नहीं सात बजे नहीं चले आ रहे हैं। 9:30 बजे तक 10 बजे तक रिहर्सल कर रहे हैं। और उसके बाद छुट्टियां ले ले कर के अपने प्रदर्शन

कर रहे हैं। वह ले रहे हैं। फोन ले रहे हैं। जेब से पैसा लगा रहे हैं। सब कर रहे हैं। यह सब क्या है? यह तो बहुत बड़ा डिवोशन था। तो यह समझना थोड़ा सा आउट ऑफ द कांटेक्ट होगा। लेकिन, यह समझना बहुत जरूरी है सत्तर ,अस्सी ,नब्बे और 2000 के दशक में तक का रंगकर्म बिल्कुल अलग रहा है। 2000 के बाद लोग जब प्रशिक्षण लेने वाले बहुत सारे हो गए और जिन्होंने फिल्मों की राह नहीं ली और फिल्मों में उनको उतना मौका भी नहीं मिला। तो वह बंद करके अंततः अपने स्थानीय स्तर पर वर्कशॉप लेने लगे। उस वर्कशॉप से स्थानीय बहुत सारे युवाओं को उन्होंने प्रशिक्षित किया। वही युवाओं ने आगे चलकर के दूसरों को प्रशिक्षित किया। इस तरह से संस्थाएं बनती रही। बिगड़ती रही। टूटती रही। बनती रही मगर रंगकर्म चलता रहा।'[13]

इस बातचीत से अलखनन्दन के योगदान के कुछ बिंदु सामने आते हैं । जैसे उन्होंने मध्य प्रदेश ,छत्तीसगढ़ में रंग आंदोलन का नेतृत्व और उसको विस्तार दिया। उन्होंने रंग पीढ़ियों को तैयार किया। उनको नाटक के संस्कार अपनी सघन कार्यशालाओं और प्रशिक्षण से दिये। एक बात और है कि जो ज्यादातर लोगों ने रेखांकित की है, कि उनकी नाटक रंगमंच की कोई पृष्ठभूमि तथा कोई रंग प्रशिक्षण न लेने के बावजूद, उन्होंने रंगमंच में अपनी एक जगह सुनिश्चित की। यह एक बहुत बड़ी बात थी। वह यहीं नहीं रुके। बल्कि, 'संगीत नाटक अकादमी अवार्ड' और भारत भवन भोपाल रंग मंडल में सह-रंगनिर्देशक तक जाना भी हमें अचंभित करता रहा है। लगभग चार दशकों तक रंगमंच में लंबी पारी खेलना भी हमें रोमांचित तथा प्रेरित करता रहा है। वह लगातार इस क्षेत्र में अपने को साबित करते रहे। इस विधा में टिके रहे और अपने काम को लगातार तवज्जो देते रहे। उनके काम तथा ऊर्जा में कहीं भी कमी देखने को नहीं मिली। नए-नए लोगों के साथ अलखनन्दन ने एक ताजगी बनाए रखी तथा ताजगी भरा रंगकर्म करते भी रहे। इसके लिए भी लगातार प्रशिक्षण देने के कार्यक्रमों में अपने को व्यस्त रखते थे। कई सरकारी व गैर सरकारी कार्यशालाओं का संचालन करते हैं। अनेक जिलों, कस्बों में, युवाओं में रंगकर्म के प्रति जिज्ञासा रुचि और उत्साह का संचार भी करते हैं। एक तरह से उनके साथ काम करने वालों की एक श्रृंखला बनती चली गई। उस रंगमंच के लिए नौकरी जरुरी समझी जाती थी। शाम के वक्त रंगमंच करते थे। क्योंकि, उनका गुजारा नौकरी से हो जाता था तथा शौकिया रंगमंच भी। शौकिया रंगमंच के बड़े नामों में हमें अलखनन्दन पहली पंक्ति में खड़े नजर आते हैं। अलखनन्दन सरकारी नौकरी भी करते थे। रंगमंच के लिए भी प्राणपण से समर्पित होते थे। इससे उनके सर्जनात्मक मन को आत्मतुष्टि मिलती होगी। उनके रंगमंच के प्रति कर्तव्य को भी उड़ान मिलती होगी। उस जमाने में अलखनन्दन व्यावसायिक रंगमंच की तरफ नहीं गए। उन्होंने छोटे से स्तर से ऊपर उठकर बड़ी छलांग

[13] रंगकर्मी मुकेश शर्मा से 15 जनवरी 2022 को भोपाल मे लिए साक्षात्कार से अंश

लगाई। उन्होंने छोटे तथा सड़क नाटक ,नुक्कड़ नाटक रंगमंच से अपनी शुरुआत की थी। सात-आठ वर्षों तक अर्थात 1974 -75 से 1981 तक अलखनन्दन जबलपुर में डटे रहे। वह अपनी नाटक कला को गति देते रहे। अपने रंग प्रशिक्षण, निर्देशकीय कौशल को पैना बनाते रहे। इससे हुआ क्या? उन पर अशोक वाजपेई जैसे बड़े साहित्यकर्मी का ध्यान गया। अखबारों तथा पत्र पत्रिकाओं में उनके नाटकों के मंचन की समीक्षाएं छपने लगीं। इतना सब कुछ करने के बाद ही उन्होंने एक लंबी यात्रा शुरू की, जिसमें वह कभी रुके नहीं। यह यात्रा 2012 तक निरंतर जारी रही। मध्य प्रदेश ,छत्तीसगढ़ में उस दौर में व्यावसायिक रंगकर्मियों की संख्या उंगली पर गिरने लायक थीं । सरकारी नौकरी वालों ने शौकिया रंगमंच करने का बीड़ा उठाया था। गैर व्यावसायिक नाटकों की तरफ अलखनन्दन का भी ध्यान गया होगा। लेकिन, नाटक और रंगमंच से पैसा न हो तो तो आदमी खाएगा क्या? उसके लिए तो कुछ करना होता था। टिकट से पैसा जुटाते थे। रंगकर्म रुका नहीं चल पड़ा। चाहे सीमित ही उसका दर्शक वर्ग था। मगर था जरूर। शौकिया रंगमंच, पढ़कर ,पढ़ा लिखा नाटक करना भी अलखनन्दन का योगदान है। अलखनन्दन मनगढ़ंत नाटक नहीं करते थे। कुछ लोग राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय सरीखे के संस्थानों से भी, दिल्ली से बाहर भी यदा-कदा कार्यशालाएं कर रंगमंच सिखा के जाते थे। लेकिन, यह काम अलखनन्दन करते थे। अपनी शक्ति के अनुसार शहर जबलपुर में करते थे। आस पड़ोस के कुछ छोटे कस्बों, जिलों में भी रंगमंच करते थे और सिखाते थे। अलखनन्दन ने ऐसी कार्यशालाओं से हजारों लोगों को रंगकर्म सिखाया तथा नाटक की बारीकी से अवगत कराया। शौकिया रंगमंच की ताकत को हर बड़े रंगकर्मी आचार्यों ने मुक्त कंठ से स्वीकारा है। अलखनन्दन भी शौकिया रंगमंच के बड़े प्रशंसकों में से एक रहे हैं। क्योंकि, शौकिया रंगमंच में ही वह ताकत है कि कुछ स्वतंत्र ढंग की कोई रंग प्रणाली विकसित हो जाए। क्योंकि, इसमें सिद्धांतों का उतना दबाव भी काम नहीं करता। क्योंकि, इसमें स्वेच्छा शक्ति काम करती है। इसलिए यह रंगमंच का बड़ा खंभा बन जाता है। शौकिया रंगमंच ,रंगमंच की बड़ी ताकत है। इस ताकत के दम पर संस्थाओं को भी चुनौती दी जा सकती है। क्योंकि, संस्थानों में सीमाबद्धता ज्यादा होती है। नियम कानून, सरकार का डंडा वहां चलता है। जबकि, शौकिया रंगमंच इन सबसे स्वतंत्र रहता है। समर्पण, कर्तव्य, कठोर परिश्रम ,नाट्य प्रेम ,ही प्रेरणा है जिनके दम पर वह बड़े से बड़े लोगों के छक्के छुड़ा सकते हैं। शौकिया रंगमंच जुनून का मामला है। वरना नौकरियों से इस्तीफा देकर, छुट्टी लेकर रंगमंच कौन करता है? अलखनन्दन ने भी ऐसे अनेक बलिदान देकर शौकिया रंगमंच को समृद्ध बनाया। सत्तर के दशक से 2000 तक रंगमंच काफी ईमानदारी भरा कहा जा सकता है। उसमें अलखनन्दन जैसे रंगकर्मी काम कर रहे थे ,जो पैसे उधार लेकर ,गहने बेचकर भी शौकिया रंगमंच करने के लिए खड़े थे। इस समय तक रंग प्रशिक्षणार्थियों

की संख्या काफी बढ़ गई, तो सीखे हुए लोग भी प्रशिक्षण, रंग कार्यशालाएं लेने लगे। इससे रंगमंच का विकास हुआ और प्रचार प्रसार भी बढ़ गया। रंगकर्म करके लोग फिल्मों की तरफ मुड़ते गए। लोग आते रहे और कारवां बढ़ता चला गया।

गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा भी अलखनन्दन के साथ जबलपुर से रंगकर्म में जुड़ गए थे। उन्होंने कुछ दिनों तक भारत भवन भोपाल में भी रंगमंच किया था। वह अलखनन्दन के योगदान पर बड़ी बेवाकी से अपनी राय रखते हैं। कहते हैं कि— 'अलख जी ने, आप समझ गए कि सन 75 से उन्होंने शुरुआत की। 75-76 से आप समझिए कि चार दशक तक लगातार रंगमंच में अपना योगदान देते रहे, देते रहना। पूरे देश के अंदर घूम-घूम कर नाटक करना। नाटकों का निर्देशन करना। तरह-तरह के कलाकारों से मिलना जुलना। अपने विचार विचारों को आदान प्रदान करना। यह तो अलख जी का कह सकते हैं कि नाट्य इतिहास में एक हस्ताक्षर हैं, जिन्होंने जबलपुर से निकलकर भारत भवन भोपाल सह निर्देशक और नाटकों के निर्देशक रहे। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से पूरे भारत में काम किया। हमें याद है। जब हम दिल्ली गए थे तो श्रीराम सेंटर का इंटरनेशनल ड्रामा फेस्टिवल था। जब भारत भवन बना ही नहीं था। भारत भवन की कल्पना भी नहीं थी। जब हम 'इक तारे की आंख' कर रहे थे तो एक अनपब्लिश्ड स्क्रिप्ट जो छपी भी नहीं थी। मणि मधुकर ने लिखी थी। जो ज्ञान जी ने दी थी कि अलख इसे डायरेक्ट करो। जब आप अपनी क्रिएटिविटी, अपनी कल्पना से किसी चीज का एक तत्वों में किताबों में लिखा हुआ एक नाटक, आप एक दृश्य में परिवर्तित करते हैं और दृश्य में परिवर्तित करके, आप जब इंटरनेशनल ड्रामा फेस्टिवल, शायद हिंदी का एक ही नाटक था। जब वहां हुआ तो जिस तरह से उसके बारे में पूरे दिल्ली में लिखा गया। जिस तरह से चर्चाएं हुईं। घोषणा हुई। जो बातचीत हुई तो अलख जी का तो हिंदी रंगमंच के इतिहास में हमेशा नाम रहेगा। क्योंकि, उन्होंने जिस तरह से आप देखिए कि जैसे 'वेटिंग फॉर गोदो' द्वारका और अमर दोनों करते थे। वह एक अलग तरह का नाटक है। उन्होंने किया। उन्होंने कभी अपने आप को रिपीट नहीं किया। अलख जी चैलेंज लेते थे। जब एक निर्देशक अपने आपको ,जब एक मुकाम हासिल कर लेता है, तो थोड़ा सा भयभीत रहता है। कहीं मेरी छवि खराब न हो जाए। मुझे बनाए रखना है। लेकिन, अलख जी का ऐसा कभी नहीं था। अलख जी ने नाट्य जगत में बहुत ही अलग-अलग तरह के प्रयोग किए। इन प्रयोगों को ही मतलब सफल किया। उनकी असफलता की कभी बात नहीं रही। उन्होंने जो भी काम किया। वह बहुत चैलेंज के साथ काम किया। हमारा जो भारतीय रंगमंच का इतिहास है। उसमें अलख जी का जो भी चार दशक का योगदान रहा। वह बहुत ही सराहनीय है। अलख जी के जिन नाटकों को जिन लोगों ने देखा है। वह तमाम उम्र भूल नहीं सकते हैं। क्योंकि, वह दूसरों से

हटकर हुआ करते थे। ऐसा नहीं कि कोई आए और हमने देखा और चले गए। नहीं! अगर कोई भी नाटक उनका जीवन में किसी दर्शक ने भी चाहे वह भोपाल में हो। चाहे वह उज्जैन में हो। चाहे वह दिल्ली में हो। अगर किसी ने अलख जी का नाटक देखा है तो भूला नहीं होगा। हां! जब तक जीता रहेगा। अगर आप उससे पूछोगे अलखनन्दन का कोई नाटक देखा है? अरे हां! यह देखा है। कैसा लगा था? उसके बारे में वह आपसे बात करना शुरू कर देगा। क्योंकि, एक सबसे अहम बात है। यही बात होती है कि आपकी जो डिजाइनिंग है। आपके जो कलाकार हैं। आपने उनसे जो काम लिया है। आपकी कॉस्टयूम है। आपकी लाइटिंग है। आप की प्रॉपर्टी है। जो कुछ भी आपने उसमें संजोया है ,जो भी आपने उसको उसका श्रृंगार किया है। वह कहीं न कहीं दर्शक अगर नहीं भूल पाता है। इसका मतलब यही होता है कि वह कुछ न कुछ भिन्न था। अलख जी के सारे कामों में भिन्नता है । इसी वजह से भारतीय रंगमंच के इतिहास में कह सकते हैं न, कि हस्ताक्षर हैं। उनका एक मुकाम है। उनकी एक जगह है। उनकी एक पहचान है। उसे कोई मिटा नहीं सकता कि कोई उस पर कुछ कर दे। उस तरह का काम करने का साहस अभी हो नहीं पाता।'[14]

गंगा मिश्रा अलखनन्दन के घुम्मकड़ी रंगमंच की चर्चा करते हैं। लगभग चार दशकों तक अलखनन्दन की रंग यात्रा फैली हुई है। इन चार दशकों में अलखनन्दन ने विविध आयामी रंगमंच किया है। वह एक ही तरह का रंगमंच नहीं करते हैं। उन्होंने अपनी रंग शैलियों को लोकनाट्य, विसंगतिबोध, पाश्चात्य ,यथार्थवादी, संस्कृत रंगमंच तथा कविताओं के रंगमंच के अनुरूप ही बनाया है और उनमें परिष्कार किया है। वह लगातार रंगमंच करते रहे हैं। कभी रुके नहीं। कभी झुके नहीं। कभी थके नहीं। ऐसा नहीं था कि रंग महोत्सवों में ही जाकर रंगमंच करना है। वह अलग-अलग तौर तरीकों से, रंग युक्तियों से, अपनी बनाई लकीर तोड़ते भी हैं तथा उसे लांघकर कुछ नया रचने को बेचैन भी दिखाई देते हैं। कभी वह कलाकारों, रंगकर्मियों को प्रशिक्षण देने जाते हैं। कभी अपने नाट्य दलों समूहों में समन्वयक की भूमिका निभाते हैं। जगह-जगह अनेक शहरों में, गांव ,देहातों, कस्बों में जाकर रंगमंच के प्रचार प्रसार हेतु जी जान लगा देते हैं। कलाकारों को अनेक बारीकियों का ज्ञान भी कराते हैं। दूसरे नाट्य दलों का नाटक रंगमंच देखते हैं। ऐसा नहीं है कि केवल अपनी चलाते हैं। दूसरों के रंगमंच से बहुत सीखते भी थे। अपने नाटक और रंगमंच को समृद्ध भी बनाते थे। जबलपुर के अलखनन्दन ने पूरे देशभर में घूम-घूम कर काम किया। अपने रंगमंच के द्वारा अपनी पहचान बनाते हैं। यह उनका बहुत बड़ा योगदान है। भारत भवन जाने से पहले ही अलखनन्दन श्री राम सेंटर में दस्तक दे चुके थे। उन्होंने तो कुछ अप्रकाशित नाट्य कृतियों को भी रंगमंच पर उतार दिया था। यह

[14] रंगकर्मी गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा से 16 जनवरी 2022 को लिए टेलीफोनिक साक्षात्कार से अंश

अलखनन्दन का योगदान नहीं तो और क्या है? अलखनन्दन की सृजनात्मक प्रतिभा का ही यह कमाल कहा जाएगा कि , अपनी अद्वितीय कल्पनाशीलता से लिखी हुई चीजों को, दृश्य में बदलकर जान डाल दी। यह काम बड़ी बात ही थी। उनके नाटकों का जब-जब रंगमंच हुआ तो कई जाने-माने लोगों ने भी अपनी प्रतिक्रियाएं जरूर दीं। अलखनन्दन का काम बहुत बड़ा और विशाल था। इसलिए, उनका नाम हिंदी नाटक के इतिहास में, रंगमंच के इतिहास में, अमिट रहना चाहिए। पूरा जीवन ही जिस व्यक्ति ने नाटक रंगमंच के हवाले कर दिया। उसका तो नाटक के इतिहास को भी ऋणी होना होगा? अलखनन्दन के रंगमंच में आपको कहीं भी दोहराव की स्थिति का सामना नहीं करना पड़ेगा। दोहराव से अलखनन्दन सायास तरीके से बचते थे। हमेशा अपने दर्शकों के सामने नाटक रंगमंच में कुछ नया पेश करते थे। ऐसा वही व्यक्ति कर सकता है, जिसकी समाज, धर्म, राजनीति की समझ बेहतर हो तथा जो निरंतर होते घटनाचक्र पर तथा वैश्विक घटनाओं, राजनीति तथा उसके प्रभाव को समझता हो। उसका विश्लेषण और आकलन कर पाने में सक्षम हो। यह अलखनन्दन का महत्वपूर्ण योगदान है कि वह इन सभी में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं तथा सार्थक रंगमंच करते हैं। अलखनन्दन चुनौतीपूर्ण रंगमंच करने के लिए भी जाने जाते हैं। उन्होंने बहुत ही महत्वपूर्ण रंगकर्म किया है। अलखनन्दन के रंगमंच की पहचान निर्भयता तथा निर्भीकता भी रही है। उन्हें अपनी महिमा मंडन की छवि विकसित नहीं करनी थी। वह वस्तुत: रंगमंच में क्रांति करने आए थे। अलखनन्दन नाटक व रंगमंच को, कविता को, साहित्य को, सामाजिक परिवर्तन के लिए दरअसल बहुत जरूरी मानते थे। अलखनन्दन का योगदान प्रयोगात्मक रंगमंच के लिए भी है। यदि आप घिसे-पिटे संवाद, वही तामझाम हर बार लेकर जाते हैं, तो इसका मतलब है कि आप अंदर से खाली हैं। नाटक रंगमंच में प्रयोग वही व्यक्ति सार्थक कर सकता है जो या जिसके मस्तिष्क में नवीन विचार प्रवाह का तूफान होता है। जो कल्पनाशीलता की हिलोरें ले रहा होता है। अलखनन्दन में यह दोनों गुण भरपूर थे। सफलता-असफलता पर वह बहुत समय बर्बाद नहीं करते थे। अलखनन्दन ने जिस भी काम को अपने हाथ में लिया। उस काम को बहुत ही इमानदारी, समर्पण से किया तथा इसको एक चुनौती माना। चार दशकों तक रंगमंच पर डटे रहना ही अपने आप में एक दस्तावेज तथा इतिहास है। इतनी लंबे समय तक रंगकर्म कर्मठ, सृजनधर्मी, कल्पनाशील ही रह सकता था। उन्होंने जो भी नाटक रंगमंच अपने जीवन में किया। उसकी एक याद लोगों में बनी हुई है। उनके नाटक किसी के अनुकरण नहीं होते थे। प्रभाव पड़ना अलग बात है। उनके नाटक सबसे अलग होते थे। उनकी अपनी छाप उनमें स्पष्ट दिखाई देती थी। अलखनन्दन के नाटक भुलाए नहीं जा सकते। जिन्होंने भी उनके नाटकों को पढ़ा, देखा मंचित होते हुए ,उनसे आप बात कर सकते हैं तथा वह इन पर रोचक बातें भी आपसे साझा कर सकेंगे। अलखनन्दन के नाटकों की वस्त्र सज्जा ,मंच

सज्जा ,प्रकाश व्यवस्था भी जबर्दस्त होती थी। रंगमंच का स्वरूप ही उनका ऐसा था कि कोई आसानी से भूल नहीं पाएगा। अगर दर्शक किसी चीज को नहीं भूल पाता, इसके माने यही है कि वह अभिभूत करने वाली प्रस्तुति थी। दर्शकों को कैसे हिला के रख देना है। इस काम में अलखनन्दन का कोई मुकाबला नहीं कर सकता। अलखनन्दन के योगदान में मौलिकता का अपना महत्व है। उन्होंने अलग-अलग तरह की चीजें नाटक व रंगमंच से जनता के बीच परोसी थीं। इसलिए ,वह भारतीय लोकनाट्य परंपरा में तथा संपूर्ण नाटक इतिहास के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी जगह को, पहचान को तथा जहां भी वह पहुंचे, उसे आसानी से मिटाया नहीं जा सकता। ऐसा साहस किसी में नहीं था। अलखनन्दन स्वयं साहसिकता से भरे थे तथा उनका रंगमंच साहसपूर्ण था।

आलोक चटर्जी मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व छात्र तथा इरफान खान के सहपाठी और अलखनन्दन के शुरुआती शिष्य, हमें उनके योगदान को समझाते हैं–' मैंने आपको पहले ही कहा उनका इवैल्यूएशन अभी होना बाकी है। अभी उनको प्रॉपर ढंग से रेखांकित किया ही नहीं गया है। न सिर्फ राष्ट्रीय रंगमंच में बल्कि, मध्यप्रदेश के रंगमंच में चालीस-पैतालीस साल वह आदमी काम करता रहा। चालीस साल, तो चालीस साल में अविभाजित मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ में उसने कितनी पीढ़ियां तैयार की होंगी? अलखनंदन जी के योगदान को शब्दों में क्या बांधना? उनके योगदान को दिखलाने के लिए, आपको उनके ऊपर पुरस्कार घोषित करने चाहिए। फेलोशिप घोषित करनी चाहिए। उनके नाम से प्रतिष्ठान होना चाहिए। उनके नाम से प्रोफेसर्स कॉलोनी की सड़क होनी चाहिए। जहां वह रहते थे। अभी तो उनके लिए कुछ भी नहीं हुआ। बहुत कुछ है जो होना शेष है।'[15]

अलखनन्दन का संपूर्ण मूल्यांकन अभी हुआ ही नहीं। रंग समीक्षकों तथा नाट्य आलोचना के शिखर पर बैठे हुओं के द्वारा, अलख के रंगमंच की उपेक्षा की गई है। जब तक उनका संपूर्ण दस्तावेजीकरण सामने नहीं आता और कोई रंग समीक्षक , नाट्य आलोचक निरपेक्ष भाव से, उनके काम को नहीं देखता। तब तक कुछ नहीं हो सकता। इतना बड़ा रंगकर्मी ,रंग निर्देशक ,नाटककार, अभिनेता मध्य प्रदेश में हो गया और उनके साथियों और कलाकारों के अलावा, उनका कोई नाम तक नहीं लेता । अलखनन्दन नाट्य आलोचना ,रंग समीक्षा ,पत्र पत्रिकाओं तथा साहित्यकारों से ज्यादा वंचित हो गए हैं। उनकी उपेक्षापूर्ण तथा संकीर्ण सोच ने अलख को स्थापित करने से आनाकानी जरूर की है। अलख ने जब से होश संभाला नाटक , रंगमंच , कविता, निर्देशन में ही पूरा जीवन खपा दिया। फिर उनके लिए सरकार ने भी कुछ नहीं किया। अलखनन्दन न जाने कितनी पीढ़ियों को नाटक का

[15] रंगकर्मी आलोक चटर्जी से 13 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए साक्षात्कार से अंश

पाठ पढ़ा गए हैं। छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश में उनको जानने और मानने वालों की संख्या बेशक अधिक है। लेकिन, अलख की पहचान इन राज्यों के बाहर धूमिल कर दी गई है। नाट्य संसार ने उनको लगभग भुला ही दिया है। उनके नाम से तो काफी कुछ किया जा सकता था। पर नहीं हुआ। अलखनन्दन के नाम पर 'मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय' का नाम किया जा सकता था। पर नहीं हुआ। अभी बहुत होना बचा है। शायद कोई आएगा जो यह मुमकिन करके दिखा देगा।

संजय मेहता भारत भवन भोपाल के कुशल अभिनेताओं में से एक हैं। अलखनन्दन के मार्गदर्शन में रंगमंच करने वाले हैं तथा खुद भी नाट्य निर्देशन करते है। उन्होंने अलखनन्दन के योगदान को इस प्रकार रेखांकित किया। 'बहुत बड़ा योगदान है! बहुत बड़ा योगदान इसलिए है कि जबलपुर जैसे शहर में जन्म लेना , जहां पर मतलब जन्म कहीं भी हो , पर ज्यादातर समय उनका जबलपुर में गुजरा है। उस समय भी थिएटर का कुछ बहुत ज्यादा माहौल नहीं था। अस्सी के दशक में अगर हम बात करें तो तो थिएटर कि आप कितनी कल्पना करेंगे? क्योंकि, मैं उसके बगल से ही कटनी एक जगह है, वहां से आता हूं। वहां तो बिल्कुल ही नहीं था। न के बराबर था। ऐसे समय में नाटक करना और नौकरी के साथ करना, तो यह सब चीजों को अगर देखा जाए तो और वहां से निकलकर, भारत भवन बना जब तो, भारत भवन के शुरुआती लोगों में से एक हैं। यह भी कहा जाए। क्योंकि, 81 से शुरुआत हुई तो अलखनन्दन जी असिस्टेंट डायरेक्टर तभी बना दिए गए थे। मध्य प्रदेश से एक व्यक्ति चिन्हित किया जाना जो असिस्टेंट डायरेक्टर हो । उनका यह अपने आप में एक बहुत बड़ा योगदान था। यह उनके लिए अवार्ड था। हम कहें तो क्योंकि, उस समय तो मध्यप्रदेश में ऐसा कोई आज की तारीख में भी, हम ढूंढने जाते हैं, तो बहुत बार बाहर देखना पड़ता है। तो अस्सी के दशक में हमारे पास ऐसा आदमी था। इसलिए ,अलखनन्दन की उससे भी अहमियत बढ़ती है, कि मध्य प्रदेश में जब भारत भवन एक अंतरराष्ट्रीय स्तर का नाट्य कंपलेक्स खुला, तो उसमें अलखनन्दन जी को असिस्टेंट डायरेक्टर चिन्हित किया गया। यह अपने आप में बहुत बड़ी बात है।'[16]

संजय मेहता जी शत प्रतिशत सही बात कह रहे हैं। जब उस समय जबलपुर में जो नाटक होता था। वह बहुत ही फूहड़, धार्मिक रंग में रंगा हुआ, पौराणिक और मिथकीय चेतनायुक्त तथा महिमा मंडन की संस्कृति परंपरा से भरा हुआ था। उसमें राजा का सम्मान करना है तो करना है। राजा चाहे जैसा भी हो। ब्राह्मणों का महिमा मंडन ,वेद, पुराण ,रामायण की चीजें बड़ी चीजें हैं। इनका अंधानुकरण करना है। इसी तरह के नाटक होते थे। इन नाटकों का ध्यान कभी शोषण, भेदभाव ,जाति-पांति, छुआछूत ,सामाजिक, धार्मिक ,राजनीतिक समस्याओं पर नहीं जाता

[16] रंगकर्मी संजय मेहता से 4 जनवरी 2022 को लिए रीवा से साक्षात्कार से अंश

था। एक तरह से कह सकते हैं कि जमीनी हकीकत न दिखाकर , स्वर्गीय आनंद की कल्पना करवाने वाला रंगमंच होता था। लोगों का बेड़ा पार होने की बजाय, बेड़ा गर्ग ही होता था। थोथी नैतिकता बोध पैदा करना, इन नाटकों का सस्ता सा उद्देश्य होता था। लोग धार्मिक बन रहें। ईश्वर से ,जमींदार से, ठाकुर से ,राजा से, बनिया से, साहूकार से, कोई प्रश्न न करें। यह प्रश्नातीत थे। इस तरह का रंग मंच हमें शिक्षा देता था। मतलब नाटक भी होगा तो भक्त बनाने वाला। यह चल रहा था। लोगों के तार्किक, बौद्धिक उत्थान की चिंता किसी को न थी। यथास्थितिवादी रंगमंच करके जनता को गुमराह किया जाता था। जब अलखनन्दन ने रंगमंच की कमान जबलपुर में संभाली तो ,रंगमंच को आधुनिकता से जोड़ा, तर्क ,बुद्धि , विज्ञान , विचारधारा की परंपरा से जोड़ा । उन्होंने रंगमंच को आंदोलन, क्रांतिकारी चेतना से जोड़ा। अलखनन्दन सामाजिक उत्थान की भावना से रंगमंच को जोड़ते हैं। अलखनन्दन आधुनिक ,पाश्चात्य तथा लोक रंग में भी बौद्धिकता का तत्व ,विचारधारा का तत्व रखते हैं। एक तरह से कह सकते हैं कि उन्होंने नाटकों को भक्ति से निकालकर जनोन्मुखी तथा जनवादी बनाया। मानवीय मूल्यों की स्थापना का सपना अपने नाटकों और रंगमंच में संजोया। समानता, स्वतंत्रता ,आपसी भाईचारा का सपना अपने नाटक और रंगमंच में दिखाया। यह अलखनन्दन का योगदान है। यह अलखनन्दन का मौलिक काम है। उनसे पहले इस तरह का रंगमंच शायद ही मध्य प्रदेश छत्तीसगढ़ के किसी कोने में आधुनिक ढंग से होता होगा? अलखनन्दन की यात्रा नवीनता और आधुनिक रंगमंच की मिसाल है। अलखनन्दन ने परंपरा से हटकर या कह सकते हैं कि नाटक की परंपरा में नवीन रंग शैलियों, नवीन नाटक तत्वों का इस्तेमाल ,अपनी मौलिक तार्किक प्रतिभा के दम पर किया। यह काम अलखनन्दन जैसा प्रबुद्ध रंगकर्मी ही कर सकता था। अलखनन्दन अपने नाटकों में जनता की भलाई का सपना दिखाते हैं। मैं यह कोई छोटा योगदान नहीं मानता हूं। सबसे बड़ी बात वह कहीं रुकते नहीं। वह इस यात्रा को भोपाल ,छत्तीसगढ़ ,बिहार ,महाराष्ट्र ,दक्षिण के राज्यों ,बंगाल ,उत्तर प्रदेश ले जाते हैं। यह बहुत बड़ी बात मानी जाएगी। अलखनन्दन की जो गाथा है ,वह अदम्य साहस और प्रेरणा से भरी हुई है। अस्सी के दशक में अलखनन्दन जैसा विशद् व्यक्तित्व, रंग चेतना का एक सशक्त पुरुष मध्य प्रदेश में मौजूद था। अलखनन्दन अंतरराष्ट्रीय स्तर की रंग हस्तियों के साथ भारत भवन में बतौर सह-रंग निर्देशक की हैसियत से कंधे से कंधा मिलाकर चलते थे।

सूर्य मोहन कुलश्रेष्ठ , भारतेंदु नाट्य अकादमी के पूर्व निदेशक तथा अलखनन्दन के गहरे मित्र हैं। उन्होंने अलखनन्दन के योगदान को इस तरह याद किया। 'एक तरीके से बहुत कम निर्देशक ऐसे हुए हैं, जोकि राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से नहीं हैं। नॉर्थ बेल्ट में खासतौर से, बंगाल में तो बहुत सारे मिल जाएंगे। दक्षिण भारत में बहुत

सारे मिल जाएंगे, जो एनएसडी से प्रशिक्षित नहीं है। उन्होंने बहुत बड़े काम किए हैं। अच्छे काम किए हैं। लेकिन, नॉर्थ बेल्ट में गिने चुने लोग हैं, जो राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से नहीं है। प्रशिक्षण नहीं प्राप्त किया। उसके बावजूद भी एक निर्देशक के तौर पर अपनी एक बड़ी पहचान रखते हैं। अलखनन्दन उनमें से एक हैं।'[17]

सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ अलखनन्दन के योगदान को बहुत बड़ा मानते हैं। ऐसा वह इसलिए मानते हैं क्योंकि अलखनन्दन किसी विरासत से जन्मे रंगकर्मी नहीं थे। अलखनन्दन ने अपने स्वाध्याय से बड़े सपने देखे । उनका उद्देश्य यह था कि नाटक और रंगमंच से प्रभाव ऐसा पड़े कि समाज में जरूरी परिवर्तन आए। वह कभी किसी नाटक की पाठशाला नहीं गए। वह कभी बड़े प्रशिक्षक से प्रशिक्षण लेने भी नहीं गए। लेकिन, जब एक जबलपुर शहर का रहन-सहन , बनावट , चुटीलापन, उसकी मिश्रित संस्कृति ,संस्कृति में भी बुंदेली ठेठपन तथा अनेक साहित्यकारों की संगत ,बैठक तथा राजनीतिक-सामाजिक आंदोलन तथा विचार मंचों में आना-जाना ,विमर्श बहसों में शामिल होना इत्यादि से उनके मन मस्तिष्क पर जोर का प्रभाव परिलक्षित होता है। वह ऑर्डिनेंस फैक्ट्री में मजदूरों की पीड़ा ,श्रमिकों के साथ रहतेरहते शोषण को जान गए थे। वह निम्न मध्यम वर्ग का घुटनपूर्ण वातावरण जान गए थे। इन सबके खात्मे के लिए अर्थात शोषण ,भुखमरी ,रिश्वतखोरी ,कुपोषण के लिए अलखनन्दन का सृजनधर्मी मन बेचैन हो उठा था। वह इन सब के खात्मे की जड़ों तक गए तथा सामाजिक परिवर्तन के सपने रंगमंच , कविता के माध्यम से देखने लगे। शोषण, भेदभाव किसी का कभी न हो। वह ऐसा सोचने लगे। वह अपने रंगमंच और निर्देशन में इन सब का प्रदर्शन करने लगे। उनकी रंग शैलियों की चर्चा फैलने लगी। उनके रंगकर्म, नाट्य निर्देशन की क्षमता से सब नतमस्तक हुए। उन्होंने समाज के नग्न यथार्थ को एक अलग ही अंदाज में जनता के सामने प्रदर्शित कर दिया। उनका रंगमंच को लेकर दृष्टिकोण साफ था । उन्होंने विभिन्न रंगशैलियों से भारतीय रंग आंदोलन में एक स्थान बनाया। वह बेहद पढ़े-लिखी रंगकर्मी थे। उत्तर भारत में इस तरह के रंग कर्मियों का नितांत अभाव था, जो बहुत पढ़े-लिखे हों। उत्तर भारत में कई बार तो रंगमंच के लिए ज्यादा पढ़ना, गंभीर रूप से पढ़ना, अनिवार्य नहीं माना जाता था। लेकिन, सिर्फ रंगकर्म करना है और काम चलाऊ रंगकर्म करना है। ऐसा उनकी सोच में कहीं शामिल नहीं था। देश में दूसरे हिस्सों में भी पढ़ा-लिखा और गंभीर नाट्य होता है। अलखनन्दन उसी का अनुकरण करते थे।

पूषण भट्टाचार्य हिंदी और बंगाली नाटकों के अभिनेता तथा अलखनन्दन के साथी हैं। वह अलख के रंगमंच में दिए गए योगदान को इस तरह दर्ज करते हैं —'उनके योगदान को, उनके थिएटर में वह एक बिरले व्यक्तित्व थे। ऐसा थिएटर डायरेक्टर जैसा मैंने कहा कि जो कहीं अंकित नहीं है। पर, चंडीगढ़ यूनिवर्सिटी का थिएटर डिपार्टमेंट

[17] सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ से 6 जनवारी 2022 को लिए साक्षात्कार से अंश

,उनसे विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में काम करवाता है। यह एक बिरले व्यक्ति के साथ ही हो सकता है। उन्होंने, खूब थिएटर के जितने भी नियम हैं। उन्होंने थ्योरीटिकल जो चीजें हैं, पूरी की पूरी चीजें खुद पढ़कर सीखी हैं। उनको पढ़ने का बड़ा शौक था। उनकी अपनी लाइब्रेरी थी। उनकी लाइब्रेरी की किताबों का हमने खूब उपयोग किया। यह उनका एक (योगदान) था।'[18]

पूषण भट्टाचार्य ,अलखनन्दन को विलक्षण ,असाधारण प्रतिभा का नाटककार, रंगकर्मी, रंग निर्देशक मानते हैं। अपने तर्क में वह यह बताते हैं कि, उन्होंने कहीं से किसी प्रकार का प्रशिक्षण आदि नहीं लिया था। मगर उस व्यक्ति में कुछ भी ऐसा जरूर रहा होगा, जिसकी दम पर वह भारत भवन भोपाल रंग मंडल में सहायक रंग निर्देशक बतौर काम करता है। बी वी कारंत जैसी हस्ती के साथ काम करता है। पूरे मध्य प्रदेश से एक ही नाम निकलकर सामने आता है। कमाल का उसका काम था। कमाल की वह हस्ती थे । वह कठोर परिश्रमी तथा कभी न रुकने वाला, निरंतर कोशिश से ही, मुकाम हासिल करता था। वह बेंगलुरु में उर्दू थिएटर की स्थापना करता है। चंडीगढ़ विश्वविद्यालय में अपनी सेवाएं भी देता है। यह उसकी प्रतिभा का कमाल था। ऐसी विलक्षण प्रतिभा का धनी व्यक्ति कोई-कोई होता है। सामान्यतः ऐसे लोगों को जो मध्यम वर्ग से आते हैं ,उन्हें संभ्रांत विधाएं स्वीकार नहीं कर पाती हैं। लेकिन, प्रतिभा जब उफान पर हो और कड़े इरादों वाली हो, तो किसी चुनौती में इतना दम नहीं जो रोड़े अटका सके। यह घोर अध्ययनशीलता से भी संभव है।

5.4 रंगमंच का विस्तार एवं जनोन्मुखी प्रयास

अलखनन्दन के अवसान से पहले अर्थात तीसरी पीढ़ी के उनके शिष्य और 'नट बुंदेले' के कलाकार संजय गर्ग, उनके योगदान को कुछ इस प्रकार से दर्ज करते हैं– 'देखिए! योगदान को तो ऐसा है कि उनके कंट्रीब्यूशन को सबने माना और सराहा है। यह अलग बात है कि अलख जी के जाने के बाद एक कलाकार के काम का या उनकी उपस्थिति में, अनुपस्थिति में जो काम होना चाहिए, उनकी रचनाओं पर काम होना चाहिए। वह नहीं हो पाया । उसके लिए हम सब जिम्मेदार हैं। मतलब उसमें मैं भी इंक्लूडिंग मी। संस्था के बारे में आपको पता ही चल गया होगा। मैं ज्यादा कुछ नहीं बोलना चाहता। बहुत बड़ी संस्था जिसका एक बड़ा कैनवास था। उसकी बड़ी शक्ल थी। 'नट बुंदेले' बड़ा नाम था। नाम से जाकर कहीं बोलते थे, तो उनको मतलब थोड़ा लोग अच्छे ढंग से थोड़ा

[18] बांग्ला और हिन्दी अभिनेता पूषण भट्टाचार्य से 3 फरवरी 2022 को लिए टेलीफोनिक साक्षात्कार से अंश

हमको लेते थे। वह हम कोई नहीं कर पाए। इसके लिए संस्था और संस्था को चलाने वाले जितने भी लोग हैं। वह जो होना चाहिए था। वह नहीं हुआ। उनको अलग-अलग लोगों ने, अलग-अलग ढंग से, उनका काम देखा है। समझा-सराहा है। अलग-अलग जगह से लगातार हमारे शोज होते थे। नांदीकार में हुआ। हमको कोलकाता ने बुलाया। जोनल सेंटर के जो बड़े फेस्टिवल्स होते थे। उसमें लगातार जाते जाते थे। फिर उनको राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में पाँच बार भारंगम में बुलाया। 'चंदा बेड़नी' भी गया। 'जाति ही पूछो साधु' की भी गया। 'राजा का स्वांग', 'महानिर्वाण' यह सारे नाटक गए हैं(चारपाई)। इसका मतलब है कि उनके काम को लोगों ने देखा। सोचा। समझा। सराहा। राष्ट्रीय स्तर पर उनके काम को उन लोगों ने देखा। छत्तीसगढ़ में उनके काम को लोग बुलाते थे। उनकी वर्कशॉप के लिए बुलाते थे। पर, उनके काम को तो पर उनके जाने के बाद, जो काम जिन पर होना चाहिए था। वह मतलब यह बात है कि अलग-अलग कारणों से नहीं हो पाया। अलख जी के नाम पर रीवा में एक नाट्य समारोह आनंद मिश्रा, मनोज मिश्रा करते हैं। यह एक चीज जरूर है। बाकी उस तरह से कोई काम नहीं हो रहा है।'[19]

अलखनन्दन का योगदान छुपा नहीं है। भले ही इस संबंध में राजनीति हुई हो तथा दस्तावेजीकरण भी कम हुआ हो। लेकिन, एक आदमी के काम को तथा उसकी पहचान को आखिरकार कब तक रोका जा सकता है? एक न एक दिन तो स्पष्ट हो ही जाता है, कि कौन कितने पानी में है? उनके शिष्यों ने भी उनके कारवां को उतनी उड़ान नहीं दे पाई, जितनी देनी थी। यह बात बहुत पीड़ादायक है। अलखनन्दन के लिए उनके परिवारीजन भी कुछ खास नहीं कर पाए। मध्य प्रदेश की सरकारों तथा रंगकर्मियों का रवैया भी अलखनन्दन के प्रति उत्साहजनक और उदार नहीं रहा। उनका वामपंथी रुख़ लोग पचा नहीं पाए। इसके पीछे एक तो यही वजह होती है कि लोग अपने वर्ग, जाति, धर्म की लकीर से बाहर नहीं निकाल पाते हैं। बौद्धिक ,तार्किक काम करने वालों की संख्या हमेशा कम रही है। किसान ,मजदूर ,शिक्षा की समस्याओं ,दलित-आदिवासी जीवन की समस्याओं ,पिछड़ों के लिए रंगमंच करने की फुर्सत किसे है? इनसे बस लीला नाटक करवा लो? लोक-लुभावन, भाव-भंगिमाओं का रंगमंच करवा लो? धार्मिक पाखंड में वृद्धि करने वाला तथा महिमा का बखान करने वाला, अलौकिक-पारलौकिक नाटक करने में सबका मन लगता है। लेकिन ,समस्याओं पर आधारित रंगमंच करना हो। विचार केंद्रित नाटक करना हो। कौन अपना सर खपाए? समाज केन्द्रित, प्रतिबद्ध रंगमंच से तो सब की नानी मर जाती है। लोग रंगमंच में मसाला-मनोरंजन ज्यादा ढूंढते हैं। यथार्थ परक रंगमंच में कोई-कोई बिरला रंग साधक ही हाथ आजमाता है। ऐसा रंगमंच कोई रंग अध्येता ही कर सकता है। अलखनन्दन का यही योगदान है कि उन्होंने परंपराओं की सीमाओं का

[19] रंगकर्मी संजय गर्ग से 26 जनवरी 2022 को लाइ गए टेलीफोनिक साक्षात्कार से अंश

अतिक्रमण किया। अलख ने पारंपरिक रंगमंच की सीमाओं को लांघकर सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक मुद्दों ,समस्याओं को नाटक, रंगमंच ,कविता में रेखांकित किया है। अलखनन्दन ने जो संस्था 'नट बुंदेले' बनाई। वह भी ठीक से लोग चला नहीं पा रहे हैं। यह लोग एक तरह से अलखनन्दन के काम को डुबोने का ही काम कर रहे हैं। जबकि, अलखनन्दन के रंगमंच की तारीफ अलग-अलग दृष्टिकोण वालों तथा भिन्न विचारधारा वालों ने भी उनके काम को स्वीकारा। अलखनन्दन के नाटकों की प्रस्तुतियां देश के नामी-ग्रामी नाट्य संस्थाओं तथा नाटक समारोहों -महोत्सवों में भी की गई हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि उन्होंने बुंदेलखंड की लोक संस्कृति ,लोकनाट्य की परंपरा को अखिल भारतीय स्तर पर प्रदर्शित कर अपार ख्याति प्राप्त की। उन्होंने बुंदेली लोकनाट्य का भी गौरव गान किया। यानी एक तरह से वह बुंदेली लोक नाटकों के साथ-साथ ,हिंदी रंगमंच के प्रचार-प्रसार के लिए देशाटन करते थे तथा अपनी अमर छाप अपने रंगमंच के माध्यम से छोड़ते थे। उन्हें जगह-जगह रंग कार्यशालाओं तथा रंग प्रशिक्षण के लिए बुलाया जाता रहा है। इसका मतलब यह हुआ कि उन्होंने रंगमंच के प्रचार-प्रसार के लिए ही अपना जीवन समर्पित किया। यही उनका वास्तविक योगदान माना जाएगा।

देवीलाल पाटीदार मूर्तिकार और अलखनन्दन के मित्र हैं। उनकी राय में अलखनन्दन का योगदान इस प्रकार है —' यार ! कुछ लोगों के जेहन में ही होता है। दरअसल यह जो आर्ट का कीमिया है न? वह यह है कि मेरे अंदर या आपके अंदर या उन्होंने जिनके साथ काम किया या जिन्होंने उनका नाटक देखा। दरअसल, यह स्थापित या रचा हुआ वहां जाता है। ऐसे भारत भवन की तरह या इसकी तरह कोई बिल्डिंग, कोई इंस्टिट्यूशन, कोई स्थापत्य ,उसका कोई बाह्य स्वरूप नहीं होता है। हम जो बाह्य स्वरूप रिकॉर्डिंग करके या चार फोटो खींच कर रख भी लेते हैं, तो वह भी किसी के दिल-दिमाग में क्या चीज पैदा करता है? उसके साधन के तौर पर क्रिएट किया गया है। वह भी साध्य भी नहीं है। साध्य तो दर्शक के अंदर आप क्या प्लांट कर रहे हैं। क्या उसको इंट्रोड्यूस कर रहे हैं? किसी भी रचनाकार का जो वास्तविक मूल्यांकन है। वह जिस पीढ़ी के साथ उसने काम किया है। जिस पीढ़ी को उसने आगे बढ़ाया है। वह पीढ़ी जब अपना काम शुरू करती है। तब सामने आता है। जैसे इसका उदाहरण कारंत जी खुद हैं। मतलब कारंत जी ने जिस पीढ़ी के साथ काम किया और जो कारंत जी के साथ काम किए हों। वह लोग अब जब प्ले करते हैं तो उनके प्ले के हर सीन, बैकग्राउंड में ,म्यूजिक में, कॉस्टयूम में इसमें उसमें कहीं न कहीं कारंत जी खड़े होते हैं।'[20]

[20] मूर्तिकार देवीलाल पाटीदार से 12 जनवरी 2022 को भारत भवन भोपाल से लिए साक्षात्कार से अंश

किसी में जन्मजात ही घोर तपोवल होता है। कोई-कोई व्यक्ति जीवटता लेकर पैदा होता है। अलखनन्दन ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे। कला का कीड़ा बचपन में ही आ जाता है। रास्ते खुद व खुद बनते चले जाते हैं। ऐसा व्यक्तित्व किसी संस्थान में क्या ही बनेगा? ऐसे व्यक्तियों से संस्थान खुद बन जाते हैं। संस्थान बड़े हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के रंगकर्म से संस्थाएं गौरव पाती हैं। भारत भवन को बी वी कारंत, अलखनन्दन मिले। तभी वह पूर्ण स्वरूप में आ पाया। उन्होंने कोई बात या नाटक यूं ही मतलब हल्के में आकर नहीं किया था। वह बड़े गंभीर किस्म का रंगमंच दिखाकर, दर्शकों को भी प्रौढ़ बनाने का कार्य कर रहे थे। वह अपने दर्शकों के बीच एक विचार पैदा कर देना चाहते थे। अलखनन्दन का वैचारिक रंग साधना में ही मूल योगदान है। अलखनन्दन की सामाजिक, वैचारिक रंग आंदोलन पैदा करने में, सामाजिक-वैचारिक रंगमंच तैयार करने में बहुत बड़ी भूमिका थी। इसको आज समझने की आवश्यकता है। वह लोगों के दिलों-दिमाग में कुछ विचार, छाप, दृश्य छोड़ जाते थे। जिसको मिटा पाना संभव नहीं था। दर्शक के अंदर इतनी समझ पैदा कर दो, जिससे वह जान जाए, जैसी यह दुनिया दिखाई दे रही है। दरअसल, ऐसी है नहीं है। इसके पीछे बहुत सारे दिमाग धार्मिक ,पूंजी ,राजनीति तथा तकनीकी की ताकतें काम कर रही हैं। अलखनन्दन अपनी रंग प्रस्तुतियों के द्वारा कुछ छोड़ जाते थे। ताकि, दर्शक अपने दिमाग में अपने साथ कुछ लेकर जाएं। खाली आए थे तो खाली न जाएं। नाटक की प्रस्तुति को भले भुला दिया जाए। लेकिन, अपने साथ कोई चेतना भी साथ लेकर जाए। उन्होंने जो अपने कलाकारों शिष्यों में रोपा था। विचार का जो बीज बोया था। अब वह वृक्ष बनने लगा है। वह रंगकर्म अब ज्यादा सजग और चेतना आधारित तथा वैचारिक रंगमंच करने लगे हैं। महिमा मंडन से रंगकर्मी बाहर निकल रहे हैं। अब जब अलखनन्दन के शिष्य काम करते हैं, तो उनके काम में अलख के काम की छाप, शैली, बानगी को आसानी से रेखांकित भी किया जा सकता है।

5.5 रंगमंच में वैचारिक एवं शैलीगत नवाचार

हिमांशु राय 'विवेचना' नाटक संस्था में काम करते हैं और उन्होंने अलखनन्दन के रंगकर्म को बहुत नजदीक से या कह सकते हैं, उनके उदय और अवसान दोनों को देखा था। उनकी राय में अलखनन्दन का जो योगदान है। वह इस प्रकार है–'देखिए! नाटक करने वाले के साथ सबसे बड़ी दिक्कत यही होती है कि यह अलखनन्दन ने खुद ही बोला था, यह अलख का बड़ा खास वाक्य था। बोले यार! न एक्टर जिंदा रहता है। न डायरेक्टर जिंदा रहता है। जिंदा तो रहता है लेखक। सैकड़ों साल बाद भी उसकी कृति मौजूद रहती है। अब एक्टर का आप लाख मूल्यांकन

कर लीजिए। आप मगर आज वह आज के आदमी को उसको दिखा तो सकते नहीं कि शंभू मित्रा कैसी एक्टिंग करते थे? कैसा निर्देशन करते थे? यह बहुत बड़ी विडंबना है। वह जो चाहे आप उसको फिल्मालें, फिल्म में परिवर्तित कर लें तो भी वह चीज तो नहीं आएगी, जो चीज अंत में आती है। यह भारी संकट है तो उनका मूल्यांकन तो भैया! उन्होंने जो लिख कर छोड़ दिया। उसी से होगा। आप जो काम कर रहे हैं। उससे होगा।'[21]

हिमांशु राय ने स्पष्ट तौर पर बता दिया है कि अलखनन्दन की प्राथमिकता क्या थी? अभिनेता, निर्देशक का अंततः गौरव समाप्त हो जाता है। लेकिन, अगर कृति में, मौलिक सृजन में, शक्ति है तो अनेक कालखंडों तक लेखक अमर रहता है। इससे अलखनन्दन की मन: स्थिति भी समझने में खासी मदद मिलती है। नाटक लेखन से, कविता के लेखन से, साहित्य में कुछ पृष्ठों में दर्ज होने की अलखनन्दन की प्रबल आकांक्षा स्पष्ट हो जाती है। तकनीकी के इतने साधन संसाधन आ गए हैं कि आसानी से दस्तावेजीकरण हो जाता है। लेकिन, इसकी क्या गारंटी है कि चीजें सुरक्षित रहेंगी या नहीं? लेकिन, अलखनन्दन ने 'राजा का स्वांग', 'उजबक राजा तीन डकैत', 'घर नहीं पहुंच पाता', 'स्वांग शकुंतला' इत्यादि जो लिख दिए तो इससे साहित्य में उनका योगदान सुनिश्चित हो गया। उनके जहां भी अनेक साक्षात्कार, कविताएं, नाट्य रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। उसी से अलखनन्दन का मूल्यांकन होगा। निर्देशन और अभिनय की चर्चा तो समीक्षा का विषय होती है। लेकिन, लेखन से आलोचना का जन्म हो जाता है। किसी भी व्यक्ति का मूल्यांकन, उनके योगदान का रेखांकन तो कृर्ति से होगा। कविता से होगा। कृतित्व से होगा और जीवन की भी रचनाओं में झलक मिल जाती है। व्यक्तित्व चिंतन इत्यादि चीजें भी आ जाती हैं। रचनाओं से ही लेखक का मूल्यांकन संभव होता है। रचनाशीलता से ही वैचारिक गहराई का पता लगाना संभव हो पाता है। धर्म, राजनीति, समाज, पाखंड, कुरीतियों, भेदभाव, जातिवाद, भ्रष्टाचार, वर्गवाद, पाप-पुन्य, न्याय-अन्याय, पितृसत्तात्मक समाज , स्वदेश प्रेम, स्त्री विवेचन, दलित का शोषणयुक्त जीवन ,आदिवासियों के जीवन के संघर्षपूर्ण जीवन की व्याख्या , ब्राह्मणवाद ,पूंजीवाद इत्यादि पर लेखक की अपनी सोच क्या थी? उसका लेखक कहां खड़ा है? किसके साथ बैठता है? किसकी पक्षधरता सुनिश्चित करता है। यह सब जानकारी आपको कृतित्व की गहराई से लग सकती है।

तपन बनर्जी ने अलखनन्दन के साथ रंगमंच में भूमिकाएं अदा की हैं तथा अलखनन्दन के प्रिय अभिनेताओं में से एक हैं। हम उनकी राय में अलखनन्दन के योगदान को इस प्रकार देख सकते हैं–' मैं थोड़े से में ही समाप्त करूंगा। मुझे लगता है कि मैंने उनके अलावा, मैंने दो-तीन निर्देशकों के साथ और भी काम किया है। मैं नाम नहीं

[21] विवेचना संस्था सदस्य हिमांशु राय से 28 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार से अंश

लेता। कभी नाम नहीं लूंगा। जानबूझकर कंपैरिजन शुरू हो जाएगा। देखा भी है। मैंने बड़े नामचीन लोगों के काम देखे हैं। मेरे साथी उस बात से सहमत होंगे। मेरे साथ जो और अलखनन्दन के साथ भी जो रहे और आज भी। भाई! अलख दा की बात निराली थी। मुझको लगता है कि इतनी स्पष्ट नजर किसी-किसी की थी और हो सकती है। क्या कहना है और कैसे कहना है? उनको यह खूब अच्छे से आता था। अलखनन्दन का योगदान तो अनक्वेश्चनेबल है। मुझे लगता है कि उनको जितना स्थान मिलना था। वह नहीं मिल पाया। उनका अवसान भी हो गया। खत्म भी हो गए। उनका देहांत हो चुका। बाद में उनको संगीत नाटक एकेडमी अवार्ड मिला। लेकिन, मुझे लगता है कि अभी अलखनन्दन को बहुत लंबे समय तक रहना था। उनको लंबे समय काम करना था। उनके द्वारा रचित, पता नहीं नाटक क्षेत्र में अभी क्या-क्या देखने को मिलता? क्योंकि, अभी के परिदृश्य में इक्का-दुक्का लोग ही हैं, जो कुछ सोच लेकर चलते हैं, विचार लेकर चलते हैं। समाज को सोच कर चलते हैं। ऐसा बहुत कम है। अब तो मैं यह देख रहा हूं। अब तो यह है कि समारोह में गए और कुछ भी किया। जिन्होंने बुलाया था। उनको उन्होंने बुला लिया। इस तरह से पूरा का पूरा लेन-देन का काम चल रहा है। पूरे खुले तौर पर पैसों का खेल चल रहा है। अब वह बात खत्म हो चुकी है। कला के क्षेत्र से, हिंदी बेल्ट की तो मैं बात कर सकता हूं कि, यहां पर सरोकारों से कोई मतलब रहा नहीं। लेकिन, हम लोगों के समय में सरोकारों से मतलब था। मैं अपने बारे में ही कहता हूं। अगर सरोकार से कोई मतलब नहीं तो, उस नाटक से मैं भी सरोकार नहीं रखता हूं। मुझे दुःख भी होता है। कभी-कभी क्या अक्सर दुख रहता है। जिस संस्था को अलखनन्दन जी ने बड़ा किया। उसमें ही सरोकारों से मतलब बहुत कम रह गया है। अब सिर्फ प्रोग्राम हम करते हैं।'[22]

तपन बनर्जी अलख के काम से अभिभूत हैं। अभिभूत व्यक्ति तभी हो सकता है, जब कोई न कोई बात, कोई न कोई विचार, चिंतन, व्यक्तित्व का कोई न कोई गुण, काम करने का कोई तौर-तरीका, कुछ न कुछ तो ऐसा होता है कि भुलाए नहीं भूलता। अलखनन्दन का यही योगदान है कि उन्होंने अपने हुनर और काम से, नाट्य कौशल नाट्य युक्तियों से, रंग शैलियों से, नाट्य संरचनाओं से, अपनी अभिव्यक्ति से, अपनी अनोखी प्रतिभा से ,एक बड़े रंगवर्ग को प्रभावित-प्रेरित किया और अपनी ओर आकर्षित भी किया। अलखनन्दन सचमुच कोई बड़ी रंग शख्सियत रही होगी। अलखनन्दन की दृष्टि साफ और सौदेश्य पूर्ण थी। उनका नाट्य चिंतन स्पष्ट था। अलखनन्दन एक सुलझे व्यक्ति का नाम है। उन्हें रंगमंच, लेखन में, कविता में कैसे और कहां कहना है? खूब आता था। वह समाज, धर्म ,राजनीति, लोकतंत्र के गहरे अवलोकन कर्ता थे। उनकी दृष्टि में एक पैनापन हमेशा से मौजूद था।

[22] रंगकर्मी तपन बनर्जी से 6 मार्च 2022 को लिए गये जबलपुर से साक्षात्कार से अंश

निसंदेह अलखनन्दन का योगदान भारतीय रंगमंच में अद्वितीय है। उनके योगदान को खारिज नहीं किया जा सकता। अलख को पैंतरेबाजी , चापलूसी नहीं आती थी। यद्यपि वह इन पर नजर रखते थे । वह यह अपने रंगमंच, कविता, साहित्य में प्रदर्शित भी करते थे। जितना उनको शोहरत मिलनी थी, उतनी उनको नहीं मिली। उनके नाम की पताका फहरनी थी। उतनी नहीं पहर पाई। उसके कारणों में उनका व्यक्तित्व और साहित्य की अपनी एक राजनीति है। छोटे से शहर मध्यमवर्गीय परिवार से आना भी कहीं न कहीं बाधक बना। लेखन, नाट्य, साहित्य, नृत्य, अभिनय और निर्देशन में भी एक खास तरह की अंदरूनी संभ्रांतता के दर्शन प्रायः होते ही हैं। ऐसे वर्ग में अपनी पहचान बना पाना भी तो, वह भी बिना कूटनीति, राजनीति और चापलूसी के यह असंभव सा लगता है। अलखनन्दन का देहांत बहुत कम अवस्था में हुआ। यही सबसे ज्यादा दु:खदाई है। और ज्यादा उनका रहना होता तो, जरूर कुछ नए मानक अलख दादा रचते । अभी भी उनका दिमाग काफी सक्रिय था। वह काफी सृजनशील थे। वह बहुत कुछ भारतीय रंग परंपरा और लोकनाट्य परंपरा में जरूर दे कर जाते। ऐसा विश्वास किया जा सकता है। अलखनन्दन का रंगमंच, लेखन, नाटक कला, रंग निर्देशन, कविता का रंग मंच, विचार विमर्श लेकर साथ चलता है। उसमें सिर्फ मनोरंजन ही नहीं होता बल्कि संदेश भी छुपा रहता है। बहुत थोड़ी संख्या में रंगकर्मी हैं जो विचारधारा, चिंतन और विमर्श का रंगमंच करते हैं। अभी रंग समूह बनाना है। सरकारी ग्रांट लेनी है। पुरस्कार लेना है। यही खुला खेल चल रहा है। विचारधारा तुरंत बदल लेनी है। सरकार की सोच का ही रंगमंच सर्वत्र हो रहा है। सबको तरक्की चाहिए। रंगमंच में लाभ ही लाभ हो । ऐसी सोच का रंगमंच इस समय हो रहा है। अलख की सोच इस प्रकार की दिखाई नहीं देती थी। नाटक के नाम पर, रंगमंच कला के नाम पर, कला साहित्य संस्कृति के नाम पर, लोग न जाने क्या-क्या हरकतें करते जा रहे हैं? अलखनन्दन इन पचड़ों में नहीं पड़े। लेनदेन परक रूपयों का रंगमंच चहूं ओर दिख रहा है। जबकि अलख का रंगमंच प्रेरित करने वाला, संघर्ष करने वाला, उधार के पैसों से होने वाला रंगमंच था। उसमें लालच के लिए स्थान न था। बल्कि, रंगमंच के लिए सर्वस्व बलिदान की भावना काम कर रही थी। सामाजिक सरोकारों का रंगमंच अब दिखाई नहीं देता। जबकि, अलख ने पूरे जीवन एक विवेकपूर्ण और सामाजिक प्रतिबद्धता संपन्न नाटक की लौ जलाए रखी और मशाल लेकर आगे खड़े रहे। अलखनन्दन का योगदान सरोकारों के रंगमंच में आवश्यक रूप से माना जाना चाहिए और माना जाएगा।

सतना की लोक कलाकार और रंगमंच करने वाली और अलखनन्दन के संपर्क में रहने वाली सविता दाहिया, हमें अलखनन्दन के योगदान के बारे में बताती हुई कहती हैं कि 'मैं मध्यप्रदेश के लिए तो मानती हूं। मध्यप्रदेश के लिए वह एक वरदान के समान थे। जिद को फॉलो कर रहे हैं। लोग ऐसा नहीं है। बहुत सारे लोग

उनके जो भी उनका लिखा हुआ है। अच्छा! राइटर भी बहुत अच्छे थे। गीत लिखना, नाटक लिखना, करना यह जो था उनमें लेकिन उनकी जो डिजाइनिंग थी। उन्होंने जो डायरेक्शन किया हुआ है। उसकी उनकी कोई वह नहीं है।(तुलना) उनकी मेथ्डोलॉजी बढ़िया थी। फोक को लेकर के उन्होंने मध्यप्रदेश में किया। उनका तो बहुत बड़ा योगदान है। लोगों को उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। सीखना चाहिए।'[23]

सविता जी मध्य प्रदेश के नाटक-रंगमंच और साहित्य के लिए अलखनन्दन के योगदान को विशिष्ट मानती हैं। नाटक, गीत लिखने में वह अलखनन्दन को बेजोड़ पाती हैं। इस क्षेत्र में उनको टक्कर देने वाला कोई नहीं है। मध्य प्रदेश में उनके शिष्यों, चाहने वालों और पहचान वालों की लंबी सूची दृष्टिगत होती है। अलखनन्दन रंग निर्देशन में मध्य प्रदेश में सर्वोत्तम थे। उनके अद्वितीय रंगमंच में निर्देशन का विशेष स्थान व कमाल था। इस मामले में अलखनन्दन की विशिष्ट रंग शैली दिखाई पड़ती थी। लोक रंगमंच को लेकर तो अलखनन्दन ने लगता है कि इतिहास ही रच दिया था। उनके जैसी लोकनाट्य की गहरी समझ पूरे मध्य प्रदेश-छत्तीसगढ़ में किसी की भी नहीं थी। अलखनन्दन का प्रभाव और प्रेरणा अभी तक लोगों में देखा जा रहा है। इसलिए, अलखनन्दन का कद बड़ा और उनका योगदान बहुत विशेष श्रेणी में आता है।

सीताराम सोनी अलखनन्दन के योगदान को इस प्रकार बताते हैं— ' क्या है कि, अब पहले से समय में यह कैमरे वगैरह का और ऑडियो इतना चलन था नहीं। उन्होंने जिन नाटकों को किया है। शायद मेरी नजर में नहीं है कि कैमरे में कैद हो सके। नहीं तो आपको और सहूलियत मिलती। थ्योरी प्रेक्टीकली आपको बता रहा हूं। आपको प्रैक्टिकली साक्षात्कार होता। ऐसा कोई उदाहरण नहीं है। 'गिनी पिग', 'गोदो के इंतजार में', 'जैसे हम लोग'(शशांक), 'डरा हुआ आदमी'(फजल ताबिश) इन नाटकों तक तो मैं दर्शक था। सिर्फ टिकट बेचता था। 'दरिंदे' एक नाटक था, जिसमें मैं काम कर रहा था, तो लखनऊ से, मैं उनका नाम भूल रहा हूं। हिंदी नाटक तो दरिंदे नाटक जितने नाटक से मेरा परिचय था नहीं। लेकिन, जिस तरह से तैयार करवा रहे थे। अचानक उनका जाना बाहर हुआ। तो दरिंदे, नाटक की बागडोर उनके हाथ में आई। तब उनकी परिकल्पना से मेरा थोड़ा सा साक्षात्कार हुआ कि चरित्र की विराटता क्या होती है। एक्टर की विराटता क्या होती है। उसके तह तक पहुंचना, सत्य के भीतर के सत्य को खोजना कितना बड़ा काम है। वह करते थे। मैं उस समय नासमझ था। आज मैं समझता हूं। आज मैं थोड़ा समझदार हो गया हूं। जानकार हुआ हूं। सरसठ वर्ष मेरी उम्र है। लेकिन, मैं पुराने समय में जो उनके साथ काम किया है, जिस तरह वह

[23] अभिनेत्री सविता दाहिया से 3 जनवरी 2022 को रीवा से लिए गये साक्षात्कार से अंश

परत दर परत बात -बात की खोलते थे। वह एक्टर को समृद्ध करते थे। बहुत बड़ा करते थे। वह मुझे काम करते हुए समझ में आया। दर्शक के रूप में मुझे समझ में नहीं आया।'[24]

सीताराम सोनी घुमा फिरा कर एक बात कह रहे हैं कि अगर आपने उनका रंगमंच देखा होता तो आप आसानी से चिन्हित कर पाते कि अलखनन्दन का भारतीय रंग परंपरा ,भारतीय नाट्य साहित्य इतिहास में योगदान को कैसे दर्ज करना है। मतलब, सीताराम सोनी जी शब्दों में बात बता नहीं पा रहे हैं। लेकिन, उनके कहने के ढंग के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वह उनकी विशिष्ट रंग शैलियों से अभिभूत हैं। कहने का अभिप्राय है कि उनको रंगमंच की तैयारी ,अभ्यास से लेकर अलखनन्दन कुछ विशेष गढ़ रहे थे। उनमें कुछ तो था ,जो उन्हें विशिष्ट बना रहा था। वह नाटकों की परंपरागत शैलियों से खुश नहीं रहे होंगे अथवा यह भी संभव है कि पुरानी रंग शैलियों में वह नवीन विचारधारा ,नवीन विचार सरणियों को तथा देश के अन्य क्षेत्रों की रंग संपदा , पाश्चात रंग परंपरा से कुछ प्रेरणा लेकर, पारंपरिक लोकरंग में कुछ नए आयाम दे रहे हों। कुछ ऐसा जो उनके योगदान से भी जाना जाए। कोई चीज को लोग तभी स्वीकार करते हैं, जब उसमें कुछ नएपन की गुंजाइश हो। आप पुराना, घिसा-पिटा कितने दिन चलाएंगे। कभी न कभी तो उसकी हवा निकालनी ही होती है। अलखनन्दन नाट्य चरित्रों के निर्माण में सिरमौर हैं। उनकी चरित्रों की पहचान अद्वितीय है। वह अपने नाटकों में ऐसे-ऐसे चरित्र लाते हैं कि लोगों को लगता है कि हां! यार यही सब तो जीवन के संघर्षपूर्ण रंगमंच में होता है । अलखनन्दन का चरित्र चित्रण ,प्रदर्शन, बनावटीपन, कृत्रिमता लिए हुए नहीं है। उन्होंने जिन भी चरित्रों का मंचन, जिन भी चरित्रों को मंच पर उतारा है अथवा अपने नाट्य लेखन में गढ़ा है, उनमें से कुछ तो एकदम विशिष्ट बन गए हैं। ऐसा लगता है कि इस चरित्र को तो कोई गहरी समझ का, सोच का व्यक्ति तथा सूक्ष्मदर्शी अवलोकन कर्ता ही बना सकता था। उन्हें नाटकों में कैसे चरित्र का विकास करना है। कैसे उनमें अनेक रंग, भावों को भरना है। कैसे उनमें कई रसों का भावों का समावेश करना है। कैसे कोई चरित्र बड़ा करना अलखनन्दन इन सारी कलाओं में को महारत हासिल थी। अलखनन्दन ऐसे-ऐसे चरित्र ,ग्राम्य जीवन, लोक जीवन से उठाकर लाते हैं कि देखने वाले देखते रह जाते हैं। यह अलखनन्दन का अपने नाटकों के चरित्रीकरण में योगदान है। इसलिए वह विशिष्ट हैं और उनका चरित्र चित्रण विशेष है। वह चरित्रों को तैयार करने में छः-छः महीने का समय लेते थे तथा उपयुक्त पात्र की तलाश वर्षों तक करते थे। अगर उन्हें वैसा चरित्र न मिले जिसकी उन्हें तलाश थी, तो वह नाटक उन्हें उठाना ही नहीं है।

[24] रंगकर्मी सीताराम सोनी से 3 मार्च 2022 को जबलपुर से लिए गये साक्षात्कार से अंश

राकेश दीक्षित ,अलख के कलाकार तथा वामपंथी पत्रकार हैं। उनकी नजर में अलख का योगदान इस तरह से है—'देखिए! उसका इस तरह से है कि यहां पर बांकी सब जगहों पर जो एक परंपरा रही है। मराठी में नाटकों की परंपरा रही है। बंगाली में नाटकों की परंपरा रही है। सभी क्षेत्रीय भाषाओं में नाटकों की परंपरा रही है। हिंदी में भी नाटकों की परंपरा रही है। लेकिन, ज्यादातर नाटक हिंदी में दिल्ली में थे। खासकर नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा से निकले नाटक थे। उसके अलावा जो नाटक होते थे। वह बहुत ही फूहड़ किसम के छोटे-छोटे कस्बों में नाटक होते थे। स्कूल की सोशल गैदरिंग स्तर के नाटक होते थे। करीब सत्तर के दशक के बाद में जब यह लोग आए हैं। खास तौर पर जो हबीब तनवीर, रायपुर में उन्होंने 'नया थियेटर' शुरू किया। उसके बाद से हिंदी अंचल में और मध्य प्रदेश में खासतौर से एक नई चेतना जागी है। उसमें एक हबीब तनवीर थे। दूसरे बीवी कारंत थे। एमके रैना थे। बंसी कौल थे। पर ,इन्होंने मध्यप्रदेश में उस तरह से गंभीर नाटकों के चलन, अभी भी होना बाकी था। अलखनन्दन ने गंभीर नाटकों को प्रतिष्ठित किया। उस बहाने मध्यप्रदेश में भी प्रतिष्ठित किया कि यहां भी गंभीर नाटक की गुंजाइश भी है और उसके दर्शक भी हैं। उसमें एक उनका मील का पत्थर था। वह 'वैटिंग फ़ॉर गोदो' 1974 में उन्होंने किया था। अलखनन्दन एक तरह से यहां पर मध्यप्रदेश में रंग क्रांति हैं। रंग चेतना है। उसको आगे लाने में उनका बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। मध्य प्रदेश के बारे में, जब भी उसके रंगनिर्देशक के बारे में ,जब भी रंगमंच में चर्चा होती थी। अलखनन्दन का नाम सबसे ऊंचे सबसे ऊपर आता था।'[25]

अनेक राज्यों की नाट्य परंपराओं का हवाला देकर राकेश दीक्षित अपनी बात स्पष्ट करते हैं। इसमें यह स्थापना भी देते हैं कि लोगों को इकट्ठा करने की जितनी तरकीबें में नाटककार रंगकर्मी जानते हैं ,करते थे। फूहड़ता का नंगा नाच होता रहा है। अश्लीलता भी परोसी जाती रही है। उचक-कूंद भी दिखाई जाती रही है। लोक-लुभावनी क्रियाएं, भाव-भंगिमाओं द्वारा जनता को बिगाड़ा भी जाता रहा है। नाटकों के माध्यम से धन की उगाही भी होती रही है। ऐसे में सामाजिक परिवर्तन की भावना पीछे छूट जाती थी। नाटक रंगमंच में संवेदनहीनता भी दिखाई जाती रही है। कभी नैतिक आग्रह में गठित नाटक भी होते थे। धार्मिक ढंग के पौराणिक, मिथकीय चेतना के भी नाटकों का बोलबाला था। इसमें भी बे सिर पैर की बातें नाटकों में की जाती थीं। इधर-उधर की बातों में जनता को उलझा कर रखा जाता था। असली मुद्दे और सामाजिक समस्याएं नाटकों में न के बराबर आती थीं। आती भी थीं तो बड़े दयनीय ढंग से। मसलन जातिवाद की समस्या पर शायद ही किसी परंपरा में कोई नाटक मिलता हो। कोई तार्किक चिंतन, बौद्धिक चेतना तथा सामाजिक आंदोलन ,इन नाटकों की पृष्ठभूमि का हिस्सा नहीं था। इसलिए, इस तरह

[25] वामपंथी पत्रकार राकेश दीक्षित का 30 जनवरी 2022 को लिए गये टेलीफोनिक साक्षात्कार से अंश

का रंगमंच ब्राह्मणवाद ,पाखंडवाद, अंधभक्ति का समर्थन इत्यादि की वृद्धि में सहायक ही सिद्ध हुआ। इससे समाज में शायद ही किसी की भलाई हुई हो। तथाकथित उच्च जाति के अभिनेताओं को बड़ी और महत्वपूर्ण भूमिकाएं दी जाती थीं। निम्न जनता की मूर्खता इन नायकों को ही भगवान मानकर पूजने लगती थी। इससे भी सामंती-पुरोहिती प्रवृत्तियां पारंपरिक रंगमंच में आती गई हैं। निम्न वर्ग को रंगमंच कई बार देखने भी नहीं दिया जाता था। अथवा निम्न वर्ग ही उच्च वर्ग की मनोरंजक की वस्तु बना हुआ था। अलखनन्दन ,बंसी कौल ,एम के रैना , हबीब तनवीर ,बी वी कारंत ने रंगमंच और रंग परंपरा में ऐतिहासिक परिवर्तन किये। इन सब ने मिलकर क्रांतिकारिता से ,आंदोलनपूर्ण रंगमंच को अंजाम दिया। नाटक की दिशा एवं दशा को महिमामंडन ,फूहड़ता ,अश्लीलता से हटाकर जन सरोकारों, सामाजिक जागरूकता, सामाजिक राजनीतिक चेतना ,स्पष्ट विचारधारा सजगता से जोड़ा। शोषण किस प्रकार हो रहा है? यह अपने रंगमंच द्वारा समझाने की कोशिश अलखनन्दन लगातार करते रहे हैं। नाटक एक गंभीर विधा है। इससे सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे जैसा काम किया जा सकता है। क्योंकि, व्यंग, हास्य इत्यादि की नाट्य युक्ति से किसी भी संभ्रांत राजनेता , जमींदार, ठाकुर ,पुरोहितवाद तथा वाणिज्य व्यापार से चूना लगाने वाले वर्ग का मजाक उड़ाया जा सकता है। गंभीरता से किए हुए रंगमंच का प्रभाव भी बहुत अधिक पड़ता ही है। इस तरह से कह सकते हैं कि अलख एक क्रांतिकारी चेतना का रंगमंच कर रहे थे। रंगमंच को उन्होंने जनवादी -जनोन्मुखी बनाया। इससे पहले की स्थिति विकट थी। अलख का इस स्थिति का समूल परिवर्तन की चेष्टा करना बृहद योगदान है। अलख से बड़ा नाम रंग परिवर्तन में मध्य प्रदेश में उस समय कोई नहीं था। अलखनन्दन ने धारा के विपरीत जाकर रंगमंच किया। नाटक और रंगमंच की दिशा और दशा बदलने का काम किया। अलखनन्दन का स्थान अनन्यतम है।

इस प्रकार हमने इस शोधकार्य के पंचम अध्याय में अलखनन्दन के लेखकीय, नाट्य शैलीगत, रंगमंच के प्रचार-प्रसार, प्रशिक्षण, सान्स्थानिक, रंगमंच में चिंतन, सामाजिक, साहित्यिक योगदान पर विभिन्न साक्षात्कारों के माध्यम से अपनी बात रखी।

उपसंहार

उपसंहार

अलखनन्दन पर प्रकाशित सामग्री का अभाव था। जो सामग्री उनकी प्रकाशित भी हुई वह दुर्भाग्यवश अप्राप्य थी। उनके बेटे अंश पायन सिन्हा से प्रदर्शित नाटकों के छायाचित्र, वीडियोग्राफी तथा प्रकाशित सामग्री किन्हीं कारणों से नहीं मिल पाई। मेरे पास अलखनन्दन लिखित सिर्फ तीन प्रकाशित नाटक 'उजबक राजा तीन डकैत', 'स्वांग शकुंतला', 'चंदा बेड़नी' थे तथा एक कविता संग्रह 'घर नहीं पहुंच पाता' था । अलखनन्दन के बारे में थोड़ा बहुत इंटरनेट पर पढ़ने को मिला। केवल इतनी सामग्री से शोधकार्य संपन्न होना नामुमकिन था। मध्य प्रदेश के रंग इतिहास में इतने महत्वपूर्ण व्यक्ति पर कोई शोध कार्य न होना ही अपने आप में एक बड़ी विडंबना थी। जिस व्यक्ति ने रंगमंच का कोई प्रशिक्षण न लिया हो, कोई रंगकला की विधिवत शिक्षा न पाई हो, वह भारत भवन रंग मंडल में बी वी कारंत के साथ सह-रंगनिर्देशक नियुक्त हों और देशव्यापी रंग आंदोलन का हिस्सा बनें फिर भी उन पर कोई काम न हो, इससे बड़ी त्रासदी क्या हो सकती है? मुझे अनुमान नहीं था कि अलखनन्दन इतनी बड़ी रंग हस्ती थे। जितना विविध और विशाल उनका रंगकर्म है, उसकी कल्पना मैंने नहीं की थी। आजीविका चलाने की चुनौतियां, मध्यम वर्गीय जीवन और उनकी रंग शैलियों में विविधता एक अनोखा व्यक्तित्व रचती हैं। मैंने तलाश जारी रखी और उनके शिष्यों, रंगकर्मियों, निर्देशकों, यार-मित्रों, कलाकारों, सहयोगियों तथा शेष बचे पारिवारिक जनों से संपर्क किया तथा उनके व्यक्तित्व के बारे में जो कुछ निकाल पाया। यह आप सबके सामने हैं। मैं यह दावा नहीं कर सकता कि यह शोध कार्य अंतिम है और संपूर्ण है, लेकिन पचास से अधिक साक्षात्कार आने वाले समय में अलखनन्दन पर दस्तावेजों के रूप में इस्तेमाल होंगे। यह मुझे पूर्ण विश्वास है।

बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा समृद्ध रही है। उसे केवल राई, स्वांग, कांड़रा, नौटंकी, रहस, रामलीला, भंड़ैती तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। यद्यपि इन पारंपरिक नाट्यों में स्वांग हर जगह आपको मिल जाएगा। ज्यादातर नाट्य जैसे नौटंकी, स्वांग, लीला नाटक बुंदेलखंड में आयातित हैं लेकिन उनका स्वरूप बुंदेलखंडी है। इसके अलावा ऐसी भी कई विधाएं बुंदेलखंड में हैं जिनमें निश्चित रूप से गीत, नृत्य और संवाद यानी अभिनय की स्थितियां बनती हैं और उन्हें पारंपरिक बुंदेली लोकनाट्य के रूप में पहचान मिलनी चाहिए। इनमें से रावला, बहुरूपिया और आल्हा को गीति नाट्य की श्रेणी में लाया जा सकता है।

बुंदेलखंडी लोक नाटक में हास्य, व्यंग्य, चुटीलापन देखने को मिलता है तथा समाज, धर्म, राजनीति की जो विकृतियां, कुरीतियां, सामाजिक ताना-बाना, ब्राह्मणवाद-सामंतवाद के खिलाफ आंतरिक विद्रोह ,गुस्सा,

विडंबनाएं, धार्मिकरूढ़ियां , बेमेल विवाह, लोकजीवन, रहन-सहन देखने को मिलता है। इसमें बुंदेली लोकगीत ,लोक नृत्य और लोकाभिनय का बड़ा ही मनोरम संयोग दिखाई देता है। जहां तक अलखनन्दन की बात है तो अलखनन्दन ने बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा से दो चीजें ली हैं क्योंकि उन्होंने बुंदेलखंडी स्वांग(राजा का स्वांग, स्वांग शकुंतला, उजबक राजा तीन डकैत, भगवत अज्जुकम्) का अध्ययन भी किया था और इसका इस्तेमाल उन्होंने अपने नाटकों में भी किया। दूसरा उन्होंने नौटंकी शैली(चंदा बेड़नी) का भी प्रदर्शन किया। दरअसल बुंदेलखंड की पारंपरिक नाट्य परंपरा बाहर से मनोरंजन प्रधान अधिक लगती है लेकिन, अपने कलेवर में बहुत कुछ ऐसा समेटे हुए हैं जिससे, सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे की स्पष्ट झलक मिलती है। एक तीसरी शैली को भी उन्होंने इस्तेमाल किया। यह थी आल्हा गायन की शैली। इसका उन्होंने चंदा बेड़नी,मोटेराम का सत्याग्रह में प्रयोग किया।

अलखनन्दन मुझे आत्महंता रंग निर्देशक लगे। उन्होंने कभी अपने आप को नाटक और रंगमंच में दोहराया नहीं। वह अपने को रोज तोड़ते थे और रोज गढ़ते थे। नया करने की बेचैनी उनमें बनी रही। नाटक और रंगमंच की दुनिया में अलखनन्दन कम संसाधनों में उच्च कोटि का रंगमंच करने वाले रंग निर्देशक हैं। वह साधारण वेशभूषा, मंच सज्जा का इस्तेमाल करके कमाल कर देते थे और वह अपने कलाकारों पर सर्वाधिक काम करते थे। अभिनय को ही उन्होंने हमेशा प्राथमिकता में रखा। कठोर अनुशासन उनके व्यक्तित्व का हिस्सा रहा।

अलखनन्दन ने समकालीन रंगमंच की सभी रंगशैलियों में प्रगतिशील रंगमंच किया। जनवादी नाट्य निर्देशक की उनकी परंपरा समझ में आती है। अलखनन्दन जहां एक ओर लोकरंग मंच में बुंदेलखंडी(चंदा बेड़नी, राजा का स्वांग, वेटिंग फॉर द गोदो, भगवत अज्जुकम्, स्वांग शकुंतला इत्यादि), ब्रजभाषा(महानिर्वाण), भोजपुरी(सूपना का सपना, मोटे राम का सत्याग्रह) और छत्तीसगढ़ी(गोडाला देखत हन,अड़हा राजा तीन ठगरा) का इस्तेमाल करते हैं। वहीं दूसरी ओर विसंगत नाटकों में तांबे के कीड़े, वेटिंग फॉर गोदो करते हैं। इसी प्रकार 'आधे अधूरे', अंडोरा जैसे यथार्थवादी नाटक भी करते हैं तो संस्कृत का भगवत् अज्जुकम्,'धूर्त समागम' भी करते हैं। वह कविताओं का रंगमंच भी करते हैं। मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में', श्रीकांत वर्मा के कविता संग्रह 'मगध' पर और रवींद्रनाथ टैगोर की कविताओं पर 'काव्य रंग' करते हैं। वह बाल रंगमंच भी करते हैं। कविताएं भी लिखते हैं। अभिनय भी करते हैं। एक तरह से कह सकते हैं कि उनका रंगमंच बहुआयामी और उनका व्यक्तित्व भी बहुआयामी है।

अलखनन्दन आंदोलनजीवी रंग निर्देशक-नाटककार हैं। अलखनन्दन रंग पीढ़ियों को तैयार करने वाले रंग कर्मी हैं। कोई अगर कहना चाहे तो अलखनन्दन को घुमक्कड़ रंगकर्मी भी कह सकता है। यद्यपि उन्होंने ज्यादातर

रंगमंच भोपाल भारत भवन रंग मंडल, नट बुंदेले(1987, पहले रश्मिरथी नाम से) तथा जबलपुर में 'कचनार' और 'विवेचना' के झंडे तले किया है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ तथा उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार में घूम-घूम कर कार्यशालाएं करके रंग आंदोलन को मजबूती देने वाले और एक से एक रंग प्रतिभाओं के खोजकर्ता अलखनन्दन नजर आते हैं। चाहे आप मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय के निर्देशक और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के श्रेष्ठ विद्यार्थी आलोक चटर्जी, नीरज कुंदेर, हेमंत देवलेकर, अरुण पांडे, सीताराम सोनी, राजकुमार कामले, रंजना तिवारी, मनोज मिश्रा, आनंद मिश्रा कितनों के नाम गिनाए जा सकते हैं? अलखनन्दन द्वारा प्रशिक्षित बहुत सारे रंग कर्मी पूरे देश भर में फैले हुए हैं। फिल्म, सिनेमा, टेलीविजन में तथा रंगमंच में कमाल कर रहे हैं और उनकी परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। अलखनन्दन के लिए नाटक और रंगमंच का माध्यम रोजी-रोटी ही नहीं था बल्कि, वह इससे सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक जागरूकता, सचेतनता ,सतर्क नागरिक बनाने के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे।

अलखनन्दन मुझे लोक रंगमंच की तरफदारी करते नजर आए। उनका विश्वास भारतीय लोक सांस्कृतिक जड़ों में था। रंगमंच उन्होंने हर तरह का किया लेकिन लोक नाट्य में उनके प्राण थे। अलखनन्दन रंग गीतों तथा लोक धुनों के इस्तेमाल में बेजोड़ नजर आते हैं। संगीत प्रधान नाट्य प्रस्तुतियाँ उन्होंने पर्याप्त तैयार की थीं। उनका नाट्य संगीत,रचित नाट्य गीत आपको झूमने और सोचने पर विवश कर देंगे। उन्होंने बुंदेली आल्हा, ढिमरयाई, बुंदेली फागें, भोजपुरी संगीत तथा आवश्यकता पड़ने पर कहीं-कहीं फिल्मी धुनों की तर्ज पर भी गीत तैयार किये। बी वी कारंत, ओम प्रकाश चौरसिया, शारदा सिन्हा, अभिषेक त्रिपाठी, हेमंत देवलेकर इत्यादि ने भी अलखनन्दन के नाटकों में रंग संगीत दिया है; जो कि शास्त्रीय और लोक दोनों हैं। इसके साथ-साथ बहुत कम उन्होंने अपनी रंग प्रस्तुतियों में रिकॉर्डिड संगीत का इस्तेमाल किया। बुंदेली संस्कृति में वह रमे हुए नजर आते हैं। बुंदेलखंडी स्वांग का ही उन्होंने अपने नाटकों में इस्तेमाल किया। बुंदेलखंडी स्वांग की यह प्रकृति भी है कि वह बुंदेली लोकनाट्य कोई भी हो, उसमें स्वांग होता ही होता है। काव्य और कविता की आंतरिक लय और पकड़ अलखनन्दन के प्रदर्शनों में अंतः सलिला की भांति बह रही है।

अलखनन्दन के अगर स्त्री पात्रों की बात की जाए तो उनके नाट्य चिंतन में, प्रदर्शन में और लेखन में स्त्री केंद्रीय पात्र की भूमिका में आती है। 'चंदा बेड़नी' की चंदा श्रमशील जनजाति जाति की स्त्री, कला में पारंगत तथा राजा के भी सामने अपनी देह से समझौता नहीं करती बल्कि, एक प्रेमी ब्राह्मण को अपना जीवन साथी चुनती है, 'उजबक राजा तीन डकैत' की रानी और नौकरानी झक्की राजा पर प्रभावी पात्र हैं, 'स्वांग शकुंतला' की शकुंतला तथा अन्य सखियां प्रभावी चतुरपात्र हैं। 'राजा के स्वांग' की पूर्वा अत्यंत ही रोचक पात्र है जो सदैव समीर के साथ

खड़ी है। यदि 'सलोनी गौरैया',की चिड़िया को एक स्त्री पात्र के समानांतर रखा जाए तो सलोनी एक जिद्दी, हठीली, अडिग पात्र के रूप में सामने आती है और कभी झुकती नहीं है। अपनी शर्तों पर जीवन जीती है।

अब बात उनके लेखन पक्ष की कीजाए तो, इसमें कोई दो राय नहीं कि वह नाटककार, रंगकर्मी, अभिनेता से पहले कवि हैं। वह ताउम्र कविताएं लिखते रहे लेकिन, उन्होंने रास्ता नाटक और रंगमंच का चुना जिसमें; वह आजीवन व्यस्त रहे। अलखनन्दन के नाटक मौलिक नहीं कहे जा सकते, फिर भी मौलिकता लिए हुए हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने लोक कथाओं (चंदा बेड़नी), कहानियों (इंपरर्स इन न्यू क्लॉथस, सुदास) पंचतंत्र (सलोनी गौरइया) इत्यादि का नाट्य रूपांतरण किया है न की कोई मौलिक लेखन। कालिदास के शकुंतला नाटक की उन्होंने पैरोडी लिखी। नाटकों में प्रयुक्त रंग गीतों में मौलिकता है। नाटक के घटनाक्रम को बदलने में अलख बेजोड़ हैं । सीधे-सीधे नाट्य रूपांतरण अलख का नहीं होता है। रूपांतरण में भी अलख अपने घटनाचक्र को रख देते हैं। कई बार कहानी पूरी बदल जाती है और उनकी अपनी कृति लगने लगती है। नाटकों की कल्पनाशीलता में मौलिकता है। 'मुक्ति संग्राम' नाटक उन्होंने इतिहास ग्रंथों के आधार पर तैयार किया था। 'राजा का स्वांग' उन्होंने 'वोल्गा से गंगा' में एक कहानी 'सुदास' का नाट्य रूपांतरण किया। इसके अलावा 'रामकली', 'चिंदियों की झालर' तथा अन्य जागरूकता नुक्कड़ नाटक भले ही उनके मौलिक कह जाएं लेकिन ज्यादातर उनका नाट्य लेखन नाट्य रूपांतरण ही कहा जाना चाहिए।

अलखनन्दन महज एक नाटककार, कवि, निर्देशक अभिनेता भर नहीं हैं। इसके साथ-साथ वह संगीत निर्देशक, दृश्य-प्रकाश एवं वेशभूषा के अभिकल्पक तथा नृत्य निर्देशक, मंच सज्जक जैसी नेपथ्य की भूमिकाएं भी समय-समय पर निभाते रहे हैं। इसके अलावा अलखनन्दन ने फिल्मों में भी काम किया हैं। इसके साथ ही यहां यह बात कह देना सही है कि सम्मान तो उनका ज्यादा रंगमंच के लिए ही रहा है, फिल्मों के लिए नहीं।

जिस प्रकार अलखनन्दन के काम पर लोक रंगमंच का प्रभाव है। पारंपरिक नाट्य शैलियां के प्रति उनका गहरा अनुराग और आग्रह है। इसी प्रकार यदि कुछ रंगकर्मियों, रंग पुरोधाओं के नाम लिए जाएं जिनका प्रभाव अलखनन्दन पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से है तो, उनमें प्रमुख नाम हबीब तनवीर(लोक रंगमंच), ब व कारंत(नाटक का सांगीतिक ढांचा,आधुनिक रंगमंच) और बंसी कौल(अभिनेता की शारीरिक बनावट और पुष्टता) का नाम हमेशा लिया जाएगा।

अलखनन्दन के ज्यादातर नाटक जो उन्होंने लिखे और प्रदर्शित किये, उसमें सांगीतिक पक्ष बहुत ही आकर्षक, लोक धुनों से युक्त, नृत्य गतियों, शारीरिक भाव-भंगिमाओं, व्यंग्य, हास्य से लबालब हैं। इसका कारण

उन्हें हरिशंकर परसाई और शरद जोशी के सानिध्य में रहने का अवसर प्राप्त हुआ और उनकी रचनाओं से गुजरने का भी।

अलखनन्दन के रंग प्रदर्शनों में भाषाई सघनता की एक अद्भुत छवि देखने को मिलती है। जैसे उन्होंने 'उजबक राजा तीन डकैत' में बंबइया दर्जी, दिल्ली का दर्जी, भोपाली दर्जी, बिहार का दर्जी, मद्रासी दर्जी, बंगाल का दर्जी, लखनऊ का दर्जी इत्यादि जो पात्र सृजित किये, वह अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं। इसके अलावा 'स्वांग शकुंतला' में एक पात्र उर्दू भी बोलता है। अलखनन्दन ने स्वांग के अंतर्गत कुछ अंग्रेजी शब्दों को भी तोड़-मरोड़ कर नाटकीयता पैदा की है।

अलखनन्दन पर और उनके रंगमंच पर जिस वैचारिक पृष्ठभूमि की अप्रत्यक्ष छाप देखने को मिलती है, उसमें राम मनोहर लोहिया, जेपी आंदोलन, शरद यादव के साथ मित्रता, मार्क्सवाद, समाजवादी विचारधारा, इप्टा का प्रगतिशील रंगमंच, उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्धारण करता है। अलखनंदन का रंग चिंतन, उनके प्रदर्शन तथा उनका रंगमंच के लिए जो योगदान है, वह गरीब, दलित, आदिवासी, स्त्री, आम जनों के साथ खड़ा है तथा सामंतशाही, ब्राह्मणवाद, अन्याय, दमन, शोषण, राजनीतिक वर्चस्व,पूंजीवाद के खिलाफ मुखर है।

अलखनन्दन के यहां उनके रंगमंच, चिंतन तथा लेखन में सहजता, व्यवहार कुशलता, निडरता, भदेसपन, साफ-गोई, वैचारिक-परिपुष्टता की एक स्पष्ट छाप तो देखने को मिलती ही है साथ ही बुंदेली चरित्रों को उभारने में वह बेजोड़ हैं। लोक संस्कृति में अलखनन्दन की गहरी आस्था है, उसमें भी खासकर बुंदेली लोक संस्कृति में। साहित्य के प्रति उनमें अपार प्रेम देखने को मिलता है। अलखनन्दन का जीवन आडंबरहीनता का पर्याय है तथा उनका जीवन संघर्ष एकाकीपन से भरा हुआ, पारिवारिक जिम्मेदारी और कलह, अनगढ़ता, सामाजिक प्रतिबद्धता को लिए हुए और निर्देशकीय कौशल में अद्भुत हैं।

अलखनन्दन ने बुन्देली लोक नाट्य को आधुनिक बनाया। आधुनिक तौर तरीका का इस्तेमाल कर आधुनिक रंगमंच से जोड़ा और लोक नाट्य को शहरी जीवन तक ले गए। बुन्देलखंडी लोकनाट्य को आधुनिक रूप देने वाले मेरे ख्याल से मध्य प्रदेश के वह एकलौते रंगकर्मी हैं। बुन्देली लोकनाटकों और बुन्देली लोकनाट्य के कलाकारों को अलख हबीब तनवीर की भांति संस्थानों में ले गये। बुन्देली लोकनाट्य को अलख अखिल भारतीय स्तर पर ले गए और उसको पहचान दिलवाई।

अलखनन्दन फक्कड़ व्यक्तित्व के धनी थे और वह कठिन मार्ग को चुनते थे। वह मूलतः बुंदेली चरित्र थे। रंगमंच के लिए वह साहित्य का अध्ययन अनिवार्य मानते थे। वह बहुत ही पढ़े-लिखे, सुलझे दिमाग के और लोक

संगीत और लोक संस्कृति के जानकार व्यक्ति नजर आते हैं। उन्हें बुंदेलखंड से विशेष लगाव था और बातें कम,काम ज्यादा करते थे। उनका मूल रूप तो कवि का है। वह सैद्धांतिक नहीं थे। बल्कि, व्यावहारिक ज्यादा थे। अलखनन्दन को, लोकनाट्य को आधुनिक नाटक में बदलने में और आधुनिक नाटक को लोकनाट्य में बदलने में महारत हासिल थी। वह पश्चिमी रंगमंच से भी लोक तत्वों को बाहर निकाल लेते थे तथा प्राचीन भारतीय नाटक, क्लासिक यूरोपीय नाटकों को भी वह बोलियों में प्रदर्शन, मंचन करने की क्षमता रखते थे।

अलखनन्दन का व्यक्तित्व कलाओं का सम्मान करने वाला, साहित्य नाटक की गहरी समझ रखने वाला और मार्क्सवादी रुझान की कविता में रुचि रखने वाला तथा स्त्री के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण और नारी की स्वाधीनता और स्वाभिमानता की वकालत करने वाला ठहरता है।

वह बहुत ही बीहड़, असंतुलित, मुंह फट, बेलौसपन से भरे हुए एक किस्म के इंसान थे। वह स्वाभिमानी, संवेदनशील, कोमल आदमी तो थे। लेकिन, बहुत व्यवस्थित नहीं थे। समाज, धर्म, राजनीति, परिवार से कहीं न कहीं असंतुष्ट थे जो कि उनके रंगमंच में भी दिखाई देता है। शौकिया रंगमंच की तो बात ही छोड़ दीजिए। उनसे ज्यादा पढ़ा लिखा व्यावसायिक रंगमंच में भी लोग नहीं थे। वह गैर प्रशिक्षण प्राप्त रंगकर्मी थे। लेकिन, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय दिल्ली, भारतेंदु नाटक अकादमी लखनऊ, खैरागढ़ विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़ और चंडीगढ़ विश्वविद्यालय के नाटक विभाग में उन्हें बतौर नाट्य विशेषज्ञ बुलाया जाता रहा है।

उन्होंने रंगमंच को लोक से उठाया। उनके रंगमंच में किसी की छाप नहीं है। वह रंग मंच को गंभीरता से लेते थे और उसे एक गंभीर विधा मानते थे। अलखनन्दन के रंगमंच में सामाजिक सरोकार और प्रतिबद्धता तो मिलती ही है। इसके साथ-साथ गहरा अनुशासन भी देखने को मिलता है। उनका ज्यादातर रंगमंच विचारवान रंगमंच है। वह किसी की परवाह और ज्यादा चिंता नहीं करते थे। उन्होंने निर्भीकता से रंगमंच किया।

जब जबलपुर में अलखनन्दन ने रंगमंच शुरू किया तो वहां गंभीर नाटक नहीं होते थे। और तो और पाश्चात्य नाटकों को कोई समझने वाला तक नहीं था। वहां बहुत ही पौराणिक और फूहड़ किस्म के नाटक होते थे। ऐसे समय में उनमें प्रतिरोध की संस्कृति और आधुनिकता के तत्व अगर कोई रंगकर्मी लाया है तो वह अलखनन्दन है। जबलपुर और मध्य प्रदेश में आधुनिक रंगमंच के पुरस्कर्ता एक तरह से अलखनन्दन थे। पाश्चात्य नाटकों से पहली बार जबलपुर के दर्शकों को अलखनन्दन ने ही परिचय करवाया।

अलखनन्दन का व्यक्तित्व सहज, व्यवहार कुशल तो था ही था। लेकिन, जब किसी नाटक के मंचन की तैयारी चल रही होती थी तो उनका रंग निर्देशक का अलग रूप होता था और तैयारी के बाद वह मित्र रूप में हो जाते थे। उनका रंग निर्देशक रूप गाली गलौज, गुस्सा, डांटने-डपटने वाला, लिजलिजापन-लचीलापन न बरतने वाला, कठोरता से अनुशासन पालन करवाने वाला, कठोरता से भरा हुआ होता था और बाद का रूप मित्रता पूर्ण।

अलखनन्दन खुले व्यक्तित्व के धनी थे। साफ-साफ कहने वाले आलोचना तो आलोचना तारीफ तो तारीफ और व्यक्तिगत संबंधों में प्यार था। उनके व्यक्तित्व में और उनके अंदर के कलाकार में फर्क था। उनकी सैद्धांतिक समझ स्पष्ट थी और उनकी चेतना में विस्तार था। उनकी दृष्टि साफ थी और वैचारिक परिपक्वता उनके अंदर थी। बड़े शहरों की नाट्य प्रतिभाओं से वह कमतर नहीं थे। वह आकर्षक व्यक्तित्व के धनी तो थे ही। उनके ऊपर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव भी था और उनका एक व्यवस्था विरोधी स्वभाव भी था। वह खुद को डी क्लास करते हैं।

बच्चों के रंगमंच को उन्होंने प्राथमिकता में रखा। नवोदय विद्यालयों में जा जाकर कार्यशालाएं तो की ही। इसके साथ-साथ उन्होंने कई शहरों में जा जाकर बाल रंग कार्यशालाओं में बच्चों को रंगमंच के गुर सिखाए। बाल रंगमंच को अलखनन्दन पूरे मध्य प्रदेश में एक रंग आंदोलन में बदलने में सफल रहे।

अलखनन्दन के रंगमंच में अनगढ़ता का सौंदर्य दिखाई देता है। यानी, बहुत साफ सुथरा और व्यवस्थित रंगमंच वह नहीं करते हैं। वह बाहरी चमक-दमक, चटक-भटक, भड़कीलेपन से नाटक को नहीं सजाते बल्कि कलाकारों को ही इतना तरासते थे कि वह मंचन, प्रस्तुति खुद व खुद बेहद अनोखी बन जाती थी। वह किसी नाटक के मंचन की तैयारी के दौरान बहुत कठोरता से सामना करते थे और ढीलापन बर्दाश्त नहीं करते थे। वह अपने कलाकारों को सृजनात्मक स्वतंत्रता देते थे। वह बहुत सफाई और गहराई, तन्मयता के साथ पात्रों को गढ़ते थे। उन्हें छोटे-छोटे चरित्रों की पकड़ थी और वह कई बार टिपिकल कास्टिंग भी करते थे। उनके नाटकों के विषय, पात्र तलछठ के जीवन से आते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वह एक कुशल रंग प्रशिक्षक थे। सीखने-सिखाने में ही उनका पूरा जीवन गया।

अलखनन्दन के नाटकों में निम्न मध्यम वर्ग, व्यक्तिक स्थान, सामाजिकता के साथ-साथ घुटन, तनाव, हताशा-निराशा, सामाजिक विद्रूपताएं और कुंठाएं भी प्रमुखता से जगह पाती रही हैं और उन्हें उभारने का प्रयास अलखनन्दन ने रंगमंच में किया है। अलख के रंगमंच में प्रगतिशीलता तो है ही इसके साथ-साथ सांप्रदायिकता के खिलाफ आक्रोश है। नाटकों का चयन ही इस आधार पर होता था कि उसमें कुछ मुद्दे हों। कुछ बात हो। वह बेवजह

नाटक नहीं करते थे। यह सब चीजें स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है ज्यादा दिमाग लगाने की दर्शकों को जरूरत नहीं है। धार्मिक पाखंड, अनुष्ठानिक पागलपन से उन्हें कोफ्त होती थी और राजनीति सीधे-सीधे उनके नाटकों में नहीं आती थी। बल्कि, व्यंग्य के माध्यम से आती थी।

वह अपने नाटक रंगमंच में संवेदनशीलता के साथ अन्याय के विरोध में आवाज उठाते हैं। सत्ता की तानाशाही, दमनकारी नीतियों, सामाजिक विकृतियों का विरोध करते हैं। उनका नाटक समाज के लिए है। सर्वहारा के सम्मान और न्याय की बात वह करते हैं। जातीय, सांप्रदायिक विद्वेष, संक्रीणता से वह समाज की मुक्ति चाहते हैं और सांप्रदायिक सौहार्द, सांप्रदायिक सद्भावना के हितेषी वह अपने रंगमंच के माध्यम से ठहरते हैं।

उन्हें उनके रंग साथी जात-पात का विरोधी, अधार्मिक अर्थात नास्तिक, मानवता का पक्ष लेने वाला और दुनिया को बेहतर बनाने का सपना देखने वाला मानते हैं। सामाजिक सामंजस्य स्थापित हो ऐसा उनका सपना था। वह रंग मंच में चुनौतियों को स्वीकार करते थे। निर्भीकता उनके रंग कर्म की पहचान है। वह सत्ता पर हमला करते हैं। सत्ता की गलत कारगुजारियां, जनता पर अत्याचार और जो समाज-सत्ता का घिनौना रूप है। उसे अपने नाटकों में उभारते हैं। वह अपने कुछ नाटकों में धार्मिक रूढ़ियों पर सीधे हमलावर हैं।

अलखनन्दन रंगमंच के लिए पढ़ाई जरूरी मानते थे और यह भी मानते थे कि समाज से जुड़कर ही रंगमंच होगा। अलखनन्दन रंगमंच में मनोरंजन के लिए नहीं आए थे। बल्कि, उनके लिए रंगमंच सामाजिक परिवर्तन का एक माध्यम था। स्त्री और श्रमिक के गठबंधन से स्त्री और दलित मुक्त होंगे अर्थात वह अपने रंगमंच में धर्म सत्ता, सामंत सत्ता, राज सत्ता ,पितृ सत्ता को चुनौती अपने चरित्रों के माध्यम से देते हैं। शोषित, कुंठित, सत्ता से प्रताड़ित समाज, सरकारी तंत्र, राजतंत्र समाज के भीतर की व्यथा, विद्रोह उनके नाटकों में बार-बार आते हैं। अलखनन्दन का रंगमंच जनता से जुड़ाव का, आम आदमी के लिए था। वह सामाजिक जिम्मेदारियां को अपने लेखन और निर्देशन में जगह देते थे।

अलखनन्दन ने पारिवारिक रिश्तों के नाटकों को कल्पनाशील ढंग से प्रस्तुत किया है। समाज के मूल सवाल कारणों की तलाश और उनकी अपने ढंग से व्याख्या यह अलखनन्दन की विशेषता है। उन्होंने कभी फायदे के लिए समझौता नहीं किया। एक तरह से कह सकते हैं कारणों की तलाश का रंगमंच ही अलखनन्दन का रंगमंच है। व्यवस्था ही जिम्मेदार नहीं होती है। हम भी उतने ही जिम्मेदार होते हैं। अलख के रंगमंच में मनुष्य केंद्रीय चीज है। इसके अलावा आकांक्षाएं, जद्दोजहद, स्त्री पुरुष संबंध की उलटवासी भी नजर आती है। व्यवस्था गरीब, कमजोर के पक्ष में नहीं है। इसी को कहां से, किस प्रकार अमानवीय बताया जाए इसके लिए अलखनन्दन रंगमंच में जूझते हैं। उन्होंने

रंगमंच में विचार और विषय वस्तु पर ज्यादा ध्यान दिया। कहीं न कहीं ब्रेख्त के रंग मंच का प्रभाव उन पर दृष्टिगोचर होता है। अलखनन्दन के रंगमंच पर विचारधारा का अंत: प्रवाह अथवा सामाजिक राजनीतिक वामपंथ का अंत: प्रभाव देखा जा सकता है। कुल मिलाकर नाटक में मानवीकरण की प्रक्रिया को वह रेखांकित करते थे। जिन नाटकों का अलखनन्दन ने प्रदर्शन किया। वह समकालीन जीवन समस्याओं को उठाते हैं। समसामयिक विषयों को उठाते हैं। उनमें इतिहास, कल्पना और भविष्य की बात नहीं बल्कि वर्तमान ज्यादा स्थान पाता है। बेवजह की नारे बाजी से वह बचते हैं।

नाटक की शुरुआत, अंत तथा रंग गीतों में इशारों इशारों में दर्शकों को समझाते हैं। स्वांगों में लोकतंत्र, राजतंत्र की विसंगति दिखाते हैं। वह सत्ता के प्रतिपक्ष में खड़े हैं। क्योंकि, नाटक जनता की समाज की आवाज है। सामाजिक संवाद है। वह अपने रंगमंच में सामाजिक विमर्श, राजनीतिक विमर्श, सांस्कृतिक विमर्श दर्शाते हैं। अलखनन्दन के लिए प्रस्तुति ही सब कुछ थी। प्रस्तुति में व्यावहारिक पक्ष को लेते थे। सिद्धांतों के पचड़ों में नहीं पड़ते थे। पाश्चात्य नाटकों का देसीकरण आसानी से कर सकते थे। तथाकथित विचारों, विचारधाराओं में बंधे नहीं थे।

शोध-प्रबंध की महत्वपूर्ण उपलब्धियां निम्नलिखित हैं-

- पहली उपलब्धि तो यही है कि यह अलखनन्दन पर पहला शोधकार्य है ।
- यह शोधकार्य अलखनन्दन पर शोध करने के लिए आने वाले शोधार्थियों के लिए मानक साबित होगा। प्राथमिक स्रोत इसी शोधकार्य से मिलेंगे। यह पूर्णतः मौलिक शोधकार्य है। इसलिए यह एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसमें देश के नामी रंग हस्तियों, समीक्षकों, आलोचकों, कलाकारों ,रंगकर्मियों से साक्षात्कार लेकर शोध को आगे बढ़ाया गया है ।

- अलखनन्दन पर यह शोधकार्य पहला है इसलिए इसमें मौलिकता है। इस शोध कार्य को करने के लिए उनकी पांडुलिपियों तथा उनके कुछ प्रकाशित लेखों के साथ-साथ उनके साथ रहे रंगकर्मियों, साहित्यकारों, कलाकारों, रंग समीक्षकों नाट्य आलोचना के शीर्षस्थ लोगों के साक्षात्कारों के माध्यम से संश्लेषण विश्लेषण करने का कार्य किया गया है।

- पचास से अधिक साक्षात्कारों के माध्यम से अनेक मौलिक स्थापना और तथ्यपरक जानकारी से इस शोधकार्य को नवीन रूप दिया गया है। यह कार्य अत्यंत समर्पण और कर्मठता के साथ किया गया है।
- एक ऐसे रंगकर्मी के संपूर्ण रंग व्यक्तित्व और कृतित्व की झांकी इसमें आपको देखने को मिलेगी, जिनका नाम और काम बहुत बड़ा था और शायद भारतीय रंग इतिहास ने उनके साथ न्याय नहीं किया था, तो शोधार्थी ने इतने सारे लोगों के मत-मतांतर जानकर अपनी बौद्धिक प्रतिभा से तार्किक दृष्टि से शोध कार्य को मंजिल तक पहुंचाने का काम किया है। इस प्रकार एक संपूर्ण रंग व्यक्तित्व को आकार देने का काम शोधार्थी द्वारा हुआ है।
- शोधार्थी का यह कार्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इतिहास में गम होते एक समर्पित रंगकर्मी को फिर से इतिहास में जगह दिलाना भी एक बड़ा काम है। इस शोधकार्य के माध्यम से अलखनन्दन की पहचान राष्ट्रीय होगी और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी उनका नाम जाएगा। आप सिर्फ उन्हें मध्य प्रदेश का रंगकर्मी कहना न्याय संगत नहीं होगा, बल्कि उन्हें अखिल भारतीय स्तर पर भी जाना-पहचाना जाएगा। एक तरह से अलखनन्दन पर दस्तावेजीकरण की एक बुनियादी रूप से शुरुआत मानी जानी चाहिए।
- आने वाले समय में शोधार्थी इस शोध कार्य से लाभान्वित होंगे ऐसी मुझे पूरी उम्मीद है। यह शोध कार्य आधार स्रोत का काम करेगा। इस शोधकार्य में अलखनन्दन की तीनों पीढ़ियों(जबलपुर की शुरुआती साथी, भारत भवन भोपाल रंग मंडल के साथी और नट बुंदेले रंग समूह के कलाकार) के साक्षात्कार और अनुभव मिल जाएंगे।
- कोई भी अलखनन्दन पर शोधकार्य तब तक अधूरा रहेगा जब तक इस शोधकार्य से शोधार्थी न गुजरे। इसके अलावा चौदह से अधिक शोध आलेख मेरे द्वारा अलखनन्दन पर प्रकाशित हुए हैं तथा आने वाले समय में पचास से अधिक साक्षात्कार दो पुस्तकों में प्रकाशित होंगे। यह भी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इन शोध आलेखों का विवरण इस प्रकार है–
- अलखनन्दन के रंग गीतों में समाज और संस्कृति –चन्द्र पाल (हिंदी साहित्य, समाज और संस्कृति ISBN:978-93-95104-13-5) 2023
- स्वतंत्रता संग्राम के समय हिंदी नाटक और आपातकाल में अलखनन्दन की उपस्थिति–चन्द्र पाल (सृर्जन हिंदी कन्नड़ त्रैमासिक पत्रिका ISSN:2320-0391) पीअर रिव्यू,2023

- दलित आदिवासी विमर्श के आलोक में नाटक चंदा बेड़नी–चन्द्र पाल (आधुनिक हिंदी साहित्य विविध विमर्श -1, ISBN:978-93-5782-792-8),2023
- बुंदेली लोक संस्कृति और अलखनन्दन के बुंदेली लोक शैलीबद्ध नाटक–चन्द्र पाल (कला वसुधा पत्रिका, ISSN-2348-3660) पीअर रिव्यू,2022
- श्यामसुंदर दुबे से अलखनन्दन पर समीक्षात्मक साक्षात्कार–चन्द्र पाल (शोधऋतु पत्रिका, ISSN-2454-6283) पीअर रिव्यू,2022
- पचमढ़ी कार्यशाला और संगीत नाटक पुरस्कार विजेता अलखनन्दन – चन्द्र पाल (ISSN:2278-0408 world translation) पीअर रिव्यू,2022
- सांस्कृतिक संवाददाता और कला समीक्षक विनय उपाध्याय से नाटककार और रंग निर्देशक अलखनन्दन पर बातचीत– चन्द्र पाल (International Literary, ISSN:2319-7137) पीअर रिव्यू,2022
- अलखनन्दन और उनका बाल रंगमंच: एक परिचयात्मक विवरण– चन्द्र पाल (कलावसुधा, ISSN-2348-3660), 2022
- नाटक 'चंदा बेड़नी' के रंग गीतों में यथार्थ बोध–चन्द्र पाल (संशोधक पत्रिका, ISSN:2394-5990) यूजीसी केयर लिस्टेड,2023
- नाटक 'राजा का स्वांग' के रंगगीतों का वैशिष्ट्य – चन्द्र पाल, प्रोफेसर गजेंद्र पाठक (संशोधकपत्रिका, ISSN:2394-5990) यूजीसी केयर लिस्टेड,2023
- अलखनन्दन के नाटकों की रंगभाषा और हिंदी

  (चंदा बेड़नी, राजा का स्वांग, उज़बक राजा तीन डकैत, जगर मगर अंधेर नगर, स्वांग शकुंतला के विशेष संदर्भ में) Bohal Shodh Manjusha AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL, ISSN 2395-7115, January 2023, vol.17, Issues-1
- स्वाधीनता आंदोलन के दौरान नाटक और आपातकालोत्तर रंग निर्देशक नाटककार अलखनन्दन –चन्द्र पाल संशोधकपत्रिका, ISSN:2394-5990) यूजीसी केयर लिस्टेड,2023

- 'स्वांग शकुंतला' के नाट्यगीतों का विश्लेषण और पर्यावरण–चन्द्र पाल, Vivek Research Journal - A National Multidisciplinary Peer Reviewed Bi-annual Journal, VIVEK RESEARCH E-JOURNAL, Vol. VII, SPECIAL ISSUE NO. 1, MARCH, 2023 ISSN :2581-8848
- सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकता का बुंदेली लोकशैलीबद्ध नाटक है 'राजा का स्वांग', भैरवी पत्रिका, (Special Volume), अप्रैल 2023, यूजीसी केयर लिस्टेड, ISSN 0975-5217, UGC-Care list (Group-I)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आधार ग्रंथ
2. सहायक ग्रंथ
3. पत्र-पत्रिकाएं
4. कोश
5. वेब-सामग्री
6. पुस्तकालय
7. साक्षात्कार

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आधार ग्रंथ

1. अलखनन्दन, उजबक राजा तीन डकैत, मेधा बुक्स, संस्करण 2016
2. अलखनन्दन, घर नहीं पहुंच पाता, मेधा बुक्स, दिल्ली, संस्करण 2016
3. अलखनन्दन, चंदा बेड़नी, मेधा बुक्स, संस्करण 2005, दिल्ली
4. अलखनन्दन, जगर मगर अंधेर नगर, संपादित पांडुलिपि
5. अलखनन्दन, जादू का सूट, पांडुलिपि
6. अलखनन्दन, भेड़िया तंत्र, पांडुलिपि
7. अलखनन्दन, राजा का स्वांग, पांडुलिपि
8. अलखनन्दन, सलौनी गौरैया, पांडुलिपि

2. सहायक ग्रंथ

1. डॉ आद्याप्रसाद द्विवेदी और अशोक मिश्र (सं), रंग लोक : भोजपुरी का लोकधर्मी नाट्य
2. कपिल तिवारी(सं), रंगभूमि, बुंदेलखंड कि लोकनाट्य परंपरा – डॉ राधावल्लभ त्रिपाठी, आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल, प्रथम संस्करण 2009
3. गिरीश रस्तोगी, नाटक तथा रंग परिकल्पना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1992
4. जगदीश चंद्र माथुर, परंपराशील नाट्य, राष्ट्रीय नाटक विद्यालय, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2019
5. जयप्रकाश राय, डॉक्टर योगेंद्र प्रताप सिंह, उत्तर मध्य क्षेत्र की लोक संस्कृति, द्वितीय संस्करण 1999 प्रशासन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

6. देवेंद्र राज अंकुर, रंगमंच की कहानी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021

7. नर्मदा प्रसाद गुप्त, बुंदेली संस्कृति और साहित्य (प्रथम पृष्ठ अनुपलब्ध)

8. नेमीचंद जैन, रंग परंपरा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020

9. नंदल हितैषी, लोक नाट्य -नौटंकी : एक विवेचन, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2018

10. डॉ बहादुर सिंह परमार, बुन्देली लोक साहित्य, ए के पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, 2016

11. भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियां –1, सेंटर फोर कलचरल रिसोर्सेस एंड ट्रेनिंग, न्यू दिल्ली, बृजबासी आर्ट प्रेस 2011

12. भारत की पारंपरिक नाट्य शैलियां –2, सेंटर फोर कलचरल रिसोर्सेस एंड ट्रेनिंग, न्यू दिल्ली, बृजबासी आर्ट प्रेस 2011

13. विद्या सिन्हा, भारतीय लोक साहित्य परंपरा और परिदृश्य, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, द्वितीय संस्करण 2016

14. शैलजा भारद्वाज, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक साहित्य में लोकतत्व, भारतीय कला प्रकाशन दिल्ली (इंडिया) प्रथम संस्करण 1998

15. डॉ हिमांशु द्विवेदी और डॉ नवदीप कौर, भारतीय लोक नाट्य : स्वांग, अरुण पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण, चण्डीगढ़, 2016

16. ज्ञान रंजन, उपस्थिति का अर्थ, प्रथम संस्करण 2020, सेतु प्रकाशन दिल्ली

3. पत्र-पत्रिकाएं

1. संपा. डॉ उषा बनर्जी, कला वसुधा, आल्हा प्रसंग विशेषांक, जनवरी-मार्च -2021, लखनऊ

2. संपा. डॉ उषा बनर्जी, कला वसुधा, बुंदेलखंड प्रसंग विशेषांक, बुंदेली लोकगीत - देवकीनंदन शांत, जनवरी मार्च 2019, लखनऊ

3. भारत के प्रसिद्ध पारंपरिक नाटक या लोकनाट्य की सूची, दैनिक जागरण, 2 अगस्त 2018

4. तुहिना चटर्जी, भारतीय लोक नाट्य-परंपरा और 'बिदेसिया', साहित्यसेतु ई-पत्रिका, वर्ष 11, अंक 63, मई जून 2021
5. अतिथि सं रवींद्र त्रिपाठी, रंग प्रसंग, कर्नाटक की लोक शैली – 'दोड्डाटा' और उसमें सारथी का महत्व, बी एस पाटिल, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, अंक 41, 2013, दिल्ली
6. सं. नेमिचन्द जैन, स्वांग शकुंतला, अलखनन्दन, नटरंग, अंक 73, मार्च 2005, दिल्ली
7. छाया नट-78, बुंदेलखंड में रामलीला : परंपरा और विकास, नर्मदा प्रसाद गुप्त, उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी
8. संपा. अशोक वाजपेयी और रश्मि वाजपेयी, नटरंग-92, अप्रैल-जून- 2012
9. संपा. अशोक वाजपेयी और रश्मि वाजपेयी, रंग प्रसंग, वर्ष 6 अंक 2 : जुलाई-दिसंबर 2003
10. संपादक- अशोक वाजपेई, रश्मि वाजपेई, नटरंग, हबीब तनवीर विशेषांक, अंक 86-87, जुलाई दिसंबर 2010

4. कोश

1. सं.प्रतिभा अग्रवाल, भारतीय रंगकोश, रंग व्यक्तित्व, खंड-2, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, प्रथम संस्करण 2006

5. वेब-सामग्री

1. https://www.bhaskar.com/news/mp-bpl-alakhnandan-is-no-more-2856754.html
2. https://amp.bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%85%E0%A4%B2%E0%A4%96%E0%A4%A8%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A4%A8

3. https://timesofindia.indiatimes.com/city/nagpur/middle-class-travails-rest-on-charpai/articleshow/12551367.cms

4. https://ndsharma.wordpress.com/tag/alakhnandan/

https://youtu.be/99qqrKlUIDY?si=j95u0sKQODKGGanu [02/03/2024]

https://youtu.be/XSU3qBcElbI?si=vETci9vEeYXajCs6

https://youtu.be/x_Hkvkwm0rw?si=Zg0pIdMsfmWxdBT-

https://youtu.be/8jLKdw-_jN4?si=eZSx_PUdFOz0jIs1

(सुपनवा का सपना)

5. https://youtu.be/CzNp0Z-dM5Q?si=hmZU-AmYJU08n9X3

https://youtu.be/4NL_FTaSV74?si=C2VfIMbxyGwT8aDT

(अंडोरा)

6. https://youtu.be/8U-HKJVIcSM?si=tfa7n3Do4gp_ugF3

(भगवदज्जुकम)

7. https://youtu.be/EWDylY-Q-zo?si=mqptQ9tRIWAC9lgz

https://youtu.be/bg7xPqc20-8?si=sBfLd-a1zUx52k3E

(स्वांग मल्टीनेशनल)

8. https://youtu.be/MCHwc79GUkw?si=Fw_ouddiSWQ7kILr

https://youtu.be/z7xmM08w_Rg?si=j8KULCOe_TetLPhy

(स्वांग शकुंतला)

9. https://youtu.be/6YBToDm4lZ8?si=14aDOjoji0nEVn9I

https://youtu.be/H8e6GBKrOtA?si=klDDAZQpsm2NhJw4

https://youtu.be/tpGWArIyQRs?si=It34AyNdick1O3XU

(तांबे के कीड़े)

10. https://youtu.be/YUxdKkioQBk?si=viGv_T8FCBeUyR3B

https://youtu.be/ImdusPjgGdQ?si=u6OpP8Vmyt9j_Qmt

(चारपाई)

11. https://youtu.be/YUxdKkioQBk?si=zO7Bg4q4cRjdcze-

https://youtu.be/PO89otr7Pfk?si=w_CFllCoAzK6zRuF

(चंदा बेड़नी)

12. **https://youtu.be/p0cJ1_TnB0M?si=IHFWnZC-s2a9DMsj**

https://youtu.be/-H4lzDqGcgM?si=6Oq1TJmH0Byr5m7S

दौरा लाट साहब का (सत्याग्रह मोटेराम का)

13. **https://youtu.be/ADqQ6PdND1Q?si=8uniIiaPh2Sl0lGi**

https://youtu.be/kzHCtImVi0k?si=_xVrjkLKnV5klXRb

(जागर मगर अंधेर नगर)

14. https://youtu.be/vhRpicZm84I?si=rKoWUVaYn202pTiT

https://youtu.be/9hhBgCpRLuo?si=um_JfxeN6Ra9XO–

(महानिर्वाण)

15. https://youtu.be/R-mKb8NgBKs?si=Fwqacndl4RIavqoW

https://youtu.be/j3fNHtkU7mk?si=B9TGy0XrcDrOkH3v

(राजा का स्वांग)

6. पुस्तकालय

1. संगीत नाटक अकादमी के पुस्तकालय से नटरंग, छायानट, अलखनन्दन निर्देशित नाटकों के छायाचित्र इत्यादि।
2. इन्द्रा गांधी मेमोरियल लाइब्रेरी, हैदराबाद विश्वविद्यालय से भारतीय रंगकोश

7. साक्षात्कार

1. अरुण पाण्डेय से 3 मार्च 2022 को जबलपुर में लिए साक्षात्कार का अंश
2. आनंद मिश्रा का 2 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश
3. आनंद सिन्हा का 17 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश
4. आमोद भट्ट का 21 दिसंबर 2022 को हैदराबाद विश्वविद्यालय में लिए गए साक्षात्कार का अंश
5. आलोक चटर्जी का 13 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश
6. प्रो आशीष त्रिपाठी से 13 अप्रैल 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश
7. गंगा मिश्रा उर्फ आनंद मिश्रा का 16 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश
8. गिरिजा शंकर का 14 जनवरी 2022 को भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश
9. जयंत देशमुख का 17 मार्च 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश
10. तपन बनर्जी का 6 मार्च 2022 को जबलपुर में लिए गए साक्षात्कार का अंश
11. देवीलाल पाटीदार का 12 जनवरी 2022 को भारत भवन भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश
12. देवेन्द्र राज अंकुर का 26 अक्टूबर 2022 राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली में लिए गए साक्षात्कार का अंश
13. प्रेम प्रकाश अस्थाना का 4 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश
14. पूषण भट्टाचार्य का 3 फरवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश
15. महेश आनंद का 27 अक्टूबर 2022 को दिल्ली में लिए गए साक्षात्कार का अंश

16. मुकेश शर्मा का 15 जनवरी 2022 को भारत भवन भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

17. योगेंद्र चौबे का 4 फरवरी 2023 को खैरागढ़ (छत्तीसगढ़) में लिया गया साक्षात्कार का अंश

18. राकेश दीक्षित का 30 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

19. राजकुमार कामले का 6 मार्च 2022 को जबलपुर में लिए गए साक्षात्कार का अंश

20. राजीव गोहिल का 17 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

21. रामेश्वर प्रेम से 1 नवंबर 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

22. रंजना तिवारी का 4 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

23. वसंत निरगुणे का 14 जनवरी 2022 को भोपाल में लिया गया साक्षात्कार का अंश

24. विजय सिंह का 1 मार्च 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

25. विनय उपाध्याय का 9 मार्च 2022 को भारत भवन भोपाल में लिए गए साक्षात्कार का अंश

26. विशाल आचार्य का 2 जनवरी 2022 को रीवा में लिया गया साक्षात्कार का अंश

27. श्यामसुंदर दुबे से 4 जनवरी 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

28. शरद सबल का 2 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

29. शशांक का 19 मई 2023 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

30. सविता दाहिया से 3 जनवरी 2022 को रीवा से लिए गये साक्षात्कार से अंश

31. सीताराम सोनी से 3 मार्च 2022 को लिए साक्षात्कार का अंश

32. सुरेन्द्र वानखेड़े का 2 जनवरी 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

33. सूर्यमोहन कुलश्रेष्ठ का 6 जनवरी 2022 को लिए गए साक्षात्कार का अंश

34. संजय गर्ग का 26 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

35. संजय मेहता का 4 जनवरी 2022 को रीवा में लिए गए साक्षात्कार का अंश

36. हिमांशु राय का 28 जनवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

37. हेमंत देवलेकर का 3 फरवरी 2022 को लिए गए टेलीफोनिक साक्षात्कार का अंश

38. ज्ञान रंजन से 10 मार्च 2022 को जबलपुर में लिये गये साक्षात्कार का अंश

परिशिष्ट

1. ज्ञानरंजन, महेश आनंद, देवेन्द्रराज अंकुर, रामेश्वर प्रेम, शशांक से लिए गए साक्षात्कार
2. प्रकाशित शोध-आलेख -1
3. प्रकाशित शोध आलेख-2
4. राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाण-पत्र -1
5. राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाण-पत्र -2
6. अलखनन्दन निर्देशित रंग प्रस्तुतियों से कुछ छायाचित्र

परिशिष्ट

ज्ञानरंजन जी[1]**,**प्रसिद्ध कहानीकार और संपादक

चन्द्र पाल-सर अलखजी का जो व्यक्तित्व है और आपका जो उनसे एक संबंध है, उस पर सर आपकी राय ?

ज्ञानरंजन जी– अलखजी का व्यक्तित्व और उनकी शारिरिक रचना, उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनका बोलना-चालना, बहुत फक्कड़, जिसको कह सकते हैं, वह बहुत फक्कड़ थे और अक्खड़ भी थे। फक्कड़ भी थे और अक्खड़ भी थे। इसको समझिए! मतलब ये कि वह किसी की परवाह नहीं करते थे। अपने रास्ते पर चलते थे। एक कठिन मार्ग उन्होंने चुना था। ये बुन्देली चरित्र हैं। यद्यपि वह बुंदेलखंड के नहीं थे। लेकिन, ये बुन्देली चरित्र है कि वह फकीर की तरह रहता है। मौज-मौला की तरह रहता है। बहुत अक्खड़-पंथी होता है। और धूल झाड़कर चलने वाला आदमी होता है। गिरता है। धूल झाड़ता है और फिर चल देता है। वह अकेला होता है। फिर धीरे-धीरे उसके पास लोग इकट्ठे होते हैं। क्योंकि, उसके साथ रहना कठिन है। वह कठिन मार्ग का साधक है। तो अलखनंदन कठिन मार्ग का साधक था। वह माइग्रेट करके बिहार से छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़ से फिर, उस समय तो छत्तीसगढ़ भी मध्यप्रदेश ही था,वहां से फिर जबलपुर आया और जबलपुर में उसने नौकरी की, गन कैरिज फैक्टरी में। एक दिन जाता था। एक दिन नहीं जाता था। तनख्वाह कट जाती थी। कभी-कभी आधी भी नहीं मिलती थी। लेकिन, चूंकि उसे नाटक का रंग चढ़ा हुआ था, नाटक करने का। उसने क, ख, ग से नाटक करना शुरू किया। वह शून्य था। उसके पास जो स्लेट थी, शून्य थी। लेकिन उसने उस स्लेट को पूरा भरा। आप इस बात को समझिए। इसका प्रतीकात्मक अर्थ है कि उसने जो कुछ भी किया। उसको मिला नहीं, अर्जित किया। उसने अर्न किया। उसने कभी नौकरी की परवाह नहीं की और अंततः हम लोगों के बहुत समझाने-बुझाने के बावजूद भी कुछ दिनों तो चलाता रहा। बाद में उसने नौकरी भी छोड़ दी। उसको पूरी पेंशन नहीं मिली। पूरा फण्ड नहीं मिला। उसके आर्थिक जीवन में बहुत तंगी रही। लेकिन, उसके पास दो रुपये भी जेब में होता था,तो वह यहां पंद्रह किलोमीटर बस करके, टेम्पो करके, पैदल, सायकिल चला कर के रिहर्सल की जगह पहुंच जाता था। तो, मैंने जो अलखनंदन को देखा है। मैंने जो अलखनंदन को समझा है। वह यह है कि वह सूनी स्लेट पर, खाली स्लेट पर इबारत को भरने वाला, रंग

[1] पहल पत्रिका के सं. और कहानीकार ज्ञानरंजन से 10 मार्च 2022 को जबलपुर से लिया गया साक्षात्कार

भरने वाला, नाटक की कलाओं को सीखने वाला , गिरकर-उठकर, धूल-झाड़कर चलने वाला, एक अनोखा इंसान था।

चन्द्र पाल–और आपके संबंध ?

ज्ञानरंजन जी— मेरे संबंध में ऐसा है कि मैं जबलपुर 1960 में आया तो, मुझे आये हुए अब करीब 60 वर्ष हो गए हैं। मैं यहाँ पर आया और आने के बाद से ही मेरा सम्पर्क जिन लोगों से हुआ। तत्काल मैं इलाहाबाद से आया था। तो, इलाहाबाद को 'पूरब का ऑक्सपोर्ड' कहते थे। इलाहाबाद में हम लोगों का डंका बजता था। इलाहाबाद में हम लिखते-पढ़ते थे। सड़कों पर घूमते थे। कॉफी हाउस में बैठते थे । वाद- विवाद करते थे। संवाद करते थे और हमारे पास ऐसी सोहबत थी कि फ़िराक गोरखपुरी उन दिनों; जैसे लोग भी हमारी कॉफी की टेबल पर बैठते थे। धर्मवीर भारती हमारे लास्ट टीचर थे। कुलमिलाकर ये कि जो गैलेक्सी थी ,जो इंद्र धनुष था, इलाहाबाद का उससे हमारा संबंध था। और उसको छोड़कर जब यहां हम आये तो हमको खाली-खाली लगता था। यहां नौकरी करने आ गए थे हम। तो जब हम आये तो सबसे पहले हमारी मुलाकात;16 अगस्त को हमने नौकरी जॉइन की, और 17 अगस्त को हमारी मुलाकात हरिशंकर परसाई से हुई और तब से वो हमारे मित्र बन गए। उसके बाद बहुत से लोगों से उसमें अलखनंदन हैं। अलखनंदन उस समय बहुत छोटि उम्र के थे। मैं भी बहुत कम उम्र का था। तो, अलखनंदन को पढ़ने लिखने का शौक था। उनको खबर मिली;यहां पर उन दिनों नरेश सक्सेना थे,यहां पर विनोद कुमार शुक्ल थे। ये लोग पढ़ रहे थे। एक इंजिनीरिंग की पढ़ाई कर रहा था। एक एग्रीकल्चर की पढ़ाई कर रहा था। और मैंने एक दो कहानियाँ उस समय लिखी थीं। इन सबसे मेरी मित्रता शुरू हुई। और उसी दौर में अलखनंदन से मेरा साक्षात्कार हुआ। और अलखनंदन से वह मेरी मैत्री जीवन-पर्यंत उनसे चली।

चन्द्र पाल–सर अलखनंदन जी का जो सात-आठ वर्षों का जबलपुर का शुरुआती रंगमंच है। उसका क्रमिक विकास क्रम?

ज्ञानरंजन जी–अलखनंदन ने जबलपुर में रंगकर्म शुरू किया। उस समय जबलपुर में रंगकर्म और रंगकर्मी तो बहुत थे। और लोग करते भी थे। लेकिन, आधुनिक रंगकर्म की जो परिभाषा है। डिजाइन है, उससे लोग परिचित नहीं थे। वह लोग पारंपरिक शैलियों में मतलब लोक शैलियों में,पारसी थिएटर की शैलियों में,रामलीला की शैलियों में नाटक करते थे। और अपने टूटे-फूटे तरीके से उनका बहुत बड़ा योगदान है। अब जब अलखनन्दन आते हैं तो, अलखनन्दन के रंगकर्म से जबलपुर में आधुनिक रंगकर्म की शुरुआत होती है। उन्होंने श्रीराम सेंटर दिल्ली और उस समय तक जब वह आये थे तो, यहां पर भारत भवन का निर्माण नहीं हुआ था। भारत भवन का निर्माण बाद में

हुआ। उन्होंने यहाँ नाटक करना शुरू किया। 'विवेचना'(हरिशंकर परसाई) भी उस समय तक अपने टूटे-फूटे फॉर्म में थी। 'इप्टा' भी एक नामालूम रूप में थी। और मुझे ये याद है कि जो मेरा उनका गहरा संपर्क हुआ, नाटक की कला की वजह से वह था। जब उन्होंने वह नाटक 'वेटिंग फ़ॉर द गोदो' यहां किया। 'वेटिंग फ़ॉर द गोदो' जबलपुर के इतिहास में और मुझे लगता शायद मध्यप्रदेश के इतिहास में ऐसा नाटक, ऐसा निर्देशन, ऐसा प्रदर्शन; एक कठिन नाटक है, एक अमूर्त नाटक है, जो यूरोप में भी कई बार असफल हो गया, बाद में वह सफल हुआ। आपको भी पता होगा कि 'वेटिंग फॉर द गोदो' जब जेल के कैदियों को दिखाया गया। पहले जब वह असफल हो गया तो, जेल के कैदियों को एक बार दिखाया गया। जेल के कैदियों ने उसको बहुत पसंद किया। अब उसके क्या कारण हैं? उसके क्या सूत्र हैं? उसको पहचानना मुश्किल है। लेकिन, जब जबलपुर में 'वेटिंग फॉर द गोदो' चुना करने के लिए,मैं जानता हूँ। यहां उस समय अंग्रेजी के बड़े-बड़े प्रोफेसर विद्वान लोग थे। अशोक चौहान, सुभद्रा कुमारी चौहान के बेटे हमारे मित्र थे। अंग्रेजी के प्रोफेसर जो बहुत पढ़े-लिखे आदमी थे। अब उनकी मृत्यु हो चुकी है। उन्होंने इस नाटक को जब सुना कि ये नाटक किया जा रहा है तो, हँसने लगे। कि! ये मूर्ख लोग क्या करेंगे? लेकिन अलखनन्दन तो धुन के पक्के थे। आप विश्वास नहीं करेंगे कि महीनों-महीनों इस नाटक की रिहर्सल हुई। अलखनन्दन नौकरी करके आते थे। टेम्पो से। फिर यहाँ पहुँचते थे चार-पांच बजे और ग्यारह बजे रात तक रिहर्सल होती थी। और, अलखनन्दन एक ऐसे रिहर्सल करने वाले, ऐसे निर्देशक थे जो मार देते थे ,पीट देते थे,गाली बक देते थे। निकाल देते थे। अगर उनको परफेक्शन नहीं मिलता था। वह परफेक्शनिस्ट थे। परफेक्शन होना चाहिए। अगर परफेक्शन नहीं है तो नाटक नहीं होगा। तो, आप सोचिये कि जो चार पात्र थे 'वेटिंग फॉर गोदो' के उन्होंने छः महीने,आठ महीने, साल भर उसका रिहर्सल किया। थक गए, परेशान हो गए। वह अब रंगकर्म की दुनिया में, दृश्य में वह कहीं नहीं है। तो, अलखनन्दन एक ऐसे निर्देशक थे; जिन्होंने अभिनय न करने, न जानने वालों को अभिनय सिखा दिया। और, अभिनय सिखाकर के उनको 'वेटिंग फॉर गोदो' जैसे अमूर्त और कठिन और जटिल पात्रों को अभिनय में उनको सफलता दिलवायी। उनको सिखा दिया। चलना, जूता कैसे पहनते हैं। ये सब चीजें सिखायी उन्होंने। और, फिर 'वेटिंग फॉर द गोदो'; मुझे स्मरण है, यहां होम साइंस कॉलेज के हॉल में हुआ और वह अंग्रेजी के प्रोफेसर आये और खड़े होकर के तालियां बजाने लगे। क्योंकि, वह, यूरोप की जो नाट्य परम्परा है उससे वह परिचित थे। उन्होंने कहा यह असाधारण हुआ है। जबलपुर जैसी जगह में और मध्यप्रदेश में कोई इसको करने वाला नहीं है। उन्होंने अलखनन्दन को बहुत ट्रिब्यूट दिया।

चन्द्र पाल– सर अलखनन्दन का छात्र जीवन, संघर्ष और उनकी आजीविका के संबंध में सर कुछ बताइये।

ज्ञानरंजन जी–उनके छात्र जीवन का परिचय तो मुझे इसीलिए नहीं है कि उनकी पढ़ाई-लिखाई कहीं दूसरी जगह हुई। ये जरूर है कि उन्होंने, कुछ पढ़ाई, कुछ पाठशाला ऐसी होती है, जो स्कूल में चलती है। कुछ पाठशालायें ,ऐसी होती हैं जो जीवन और समाज में चलती हैं। तो अलखनन्दन स्कूल की पाटी में उतना नहीं पढ़े जितना संसार की, जीवन की पाटी में पढ़े। और, आपको एक बात बता दूँ कि अलखनन्दन मूलतः एक प्रगतिशील विचारों वाले व्यक्ति थे। उनका नैसर्गिक विचार ही प्रगतिशील था। वह मनुष्य को प्रगतिशीलता में बांधते थे। तो, उनका जो एटीट्यूड था,उनका जो दृष्टिकोण था,उनका जो एंगेल, आयाम था, उनका जो मार्ग था, उनका जो समीकरण था; वह सब मानवीय और प्रगतिशील दृष्टा के रूप में थे। तो, मेरा कहना ये है कि पढ़ाई-लिखाई जो भी उनकी हुई हो, उससे मेरा ज्यादा परिचय नहीं है। लेकिन, उन्होंने रोज की अपनी पढ़ाई में **परसाई** जी को पढ़ा। उन्होंने **मुक्तिबोध** को पढ़ा। आप सोचिये कि उन्होंने मुक्तिबोध की कविताओं का नाटकों में प्रयोग किया। मुक्तिबोध की कविताएं, मैंने खुद उनके एक नाटक में मुक्तिबोध की एक कविता 'भूल गलती',भूल गलती कविता मैंने खुद पढ़ी है। तो, वे कविताओं का भी प्रयोग करते थे। ये उनकी पढ़ाई थी। मेरा कहना ये है कि जैसा कि गोर्की ने कहा है कि जीवन की पाठशाला में हम ज्यादा सीखते हैं। स्कूल की पाठशाला में तो हम कुछ पाठ्यक्रम ही सीख पाते हैं। जान पाते हैं। लेकिन, एक बड़ी शिक्षा हमारी जो है, मनुष्यता की,इतिहास की, जीवन की, वह बाहर होती है।

चन्द्र पाल–सर अलखनन्दन जी की विचारधारा?

ज्ञानरंजन जी–विचारधारा,मैंने आपको पहले ही कहा कि वह किसी संगठन, किसी पार्टी में नहीं थे। लेकिन, विचारधारा उनकी प्रगतिशील थी। उस समय तक 1936 तक प्रगतिशील लेखक संघ और इप्टा(1940 के बाद) का निर्माण हो चुका था। सारे देश में उसकी धारा बह रही थी। संगीत में, रंगमंच में,चित्रकला में सब चीजों में तमाम लोग फैले हुए थे। तो, निश्चित रूप से इसका प्रभाव तो पड़ता है न? तो, वह असर उन पर पड़ता रहा।

चन्द्र पाल–सर अलखजी के निजी जीवन पर आपकी टिप्पणी।

ज्ञानरंजन जी–निजी जीवन उनका बहुत दुःखी था। पैसे होते थे। नहीं होते थे। शादी कर ली थी उन्होंने और पत्नी उनकी बहुत छोटे विचारों वाली थी। यद्यपि , वह पढ़ी लिखी थी। पीएचडी -वीएचडी भी कर रही थी। पीएचडी उन्होंने की है। वह पीएचडी मैंने देखी है। और, राजेश्वर सक्सेना हमारे दोस्त थे विलासपुर में उनके अंडर में की थी। तो, अलखनन्दन को ये लगा कि राजेश्वर सक्सेना जैसे विद्वान के अंडर में इसने पीएचडी की है। मुक्तिबोध पर उसने पीएचडी की है। कुछ कविताएँ भी लिखती हैं। डायरी भी लिखती हैं। लेकिन, ये सब बाहरी झलक है। इसका अंतरंग जीवन भी है। जैसे नाटक में अंतरंग और बहिरंग होता है। तो, उसका अंतरंग बहुत अच्छा नहीं था। वह

सताती थी,तंग करती थी। कॉ -ऑपरेट नहीं करती थी। उसके काम को सराहती नहीं थी। ये सब। तो, इस वजह से और अलखनन्दन तो दबंगई में इन चीजों को टाल देते थे। लेकिन, अंदर-अंदर इन चीजों का असर तो पड़ता ही था।

चन्द्र पाल–अलखनन्दन जी का रंगकर्म में निजी जीवन?

ज्ञानरंजन जी–मुझको तो लगता है; अपने निजी जीवन को तोड़कर उन्होंने रंगकर्म को किया। और, उन्होंने रंगकर्म तो निजी जीवन के पहले ही शुरू कर दिया था। विवाह तो उनका बाद में हुआ, काफी देर से हुआ। ऐसा नहीं है कि कोई रंगकर्म उन्होंने बाद में किया हो। रंगकर्म, उन्होंने अपने शुरुआती जीवन से ही कर दिया था।

चन्द्र पाल–सर जितने भी लोगों से मेरी बात चीत हुई। मुझे अलखनन्दन जी बहु-आयामी व्यक्तित्व के धनी नजर आते हैं। एक तरफ उन्होंने कविताओं का रंगमंच किया–रवीन्द्रनाथ की कविताओं पर उन्होंने 'काव्यरंग' किया,मुक्तिबोध की लम्बी कविता 'अँधेरे में' का भी मंचन किया तथा श्रीकांत वर्मा की कविताओं पर आधारित 'मगध' भी किया। तो, वहीं दूसरी ओर यथार्थवादी नाटक 'आधे अधूरे', एब्सर्ड नाटक 'तामे के कीड़े' ,बाल्यरंगमंच भी किया। वह कवि भी थे। बाद के दिनों में उन्होंने लोकशैलीबद्ध नाटक भी मंचित किये। तो सर, किस प्रकार अलखनन्दन ने ग्रो अप किया इतना सब?

ज्ञानरंजन जी–देखिए! जो प्रतिभाशाली लोग होते हैं। उनके अन्दर एक विस्फोटक होता है। वह विस्फोटक हमेशा नहीं फटता रहता है। जो व्यक्ति शून्य से शिखर तक की यात्रा करता है। और, जिसके अंदर आग होती है। और, जिसके अंदर रचनात्मक-सम्वेदनशीलता बहुत बड़े पैमाने पर धधक रही होती है ; वही व्यक्ति बहुआयामी होता है। जैसे मुक्तिबोध ने कविता भी लिखी,डायरी भी लिखी, आलोचना भी लिखी और कहानी भी लिखी। दुनिया में जितने बड़े लोग होते हैं। बड़े रचनाकार होते हैं। उनके अंदर ये विशेषता होती है कि वे कई प्रकार के विषयों को उठा सकने की क्षमता रखते हैं। तो, अलखनन्दन जब जबलपुर से चले गए। तो, अच्छा हुआ क्योंकि जबलपुर में उनके विकास का जो घेरा था। वह अब रुक रहा था। भोपाल जाने पर उनको क्या हुआ कि पूरे देश का जो करेंट था। वह करेंट उनको मिला। उन्होंने कविताएँ लिखीं। उनकी कविताएं छपी। उन्होंने बच्चों के नाटक किये। उन्होंने लोकभाषाओं के नाटक किये। तो, ये सब उनके अंदर, ये सब राजनीतिक चेतना, ये भी कि मेरा मेसेज, मेरा संदेश, ये जो बच्चे हैं, ये तो कठपुतलियां हैं, ये जो अभिनेता हैं, रंगकर्मी हैं। ये सब इस संसार की कठपुतलियां हैं। ये कठपुतलियां अपना तमाशा तरह-तरह से दिखाती हैं। तो, बच्चे अपनी तरह से अपना तमाशा दिखाते हैं। बड़े लोग अपने तरह से अपना तमाशा दिखाते हैं। और, बिल्कुल स्थूल-यथार्थवादी नाटक, स्थूल मैं कह रहा हूँ।

यथार्थवादी नाटक जिसमें प्रोपगेंडा भी थे; ऐसे नाटक भी किये उन्होंने। और, ऐसे नाटक भी किये जिनको समझने के लिए दस बार अपना माथा ठोकना पड़ता है; ऐसे नाटक भी किये। जिसको कहते हैं मूर्त से अमूर्त। और ऐसा है कि जब तक एब्स्ट्रेक्शन नहीं हो। किसी भी कला का सर्वोत्तम रूप उसके एब्स्ट्रेक्शन में आता है। उसकी अमूर्तता में आता है। क्योंकि , अमूर्तता वो शंख है जिसके भीतर बहुत दिनों तक आवाज बची रहती है। उन्होंने रवीन्द्रनाथ से लेकर मुक्तिबोध तक की कविताओं, जो दुनिया के महानतम कवि थे। उसने श्रीकांत वर्मा को,श्रीकांत वर्मा का उन दिनों डंका बज रहा था। श्रीकांत वर्मा ने 'मगध' कविता लगभग अपने जीवन के अंत में लिखी थी। बहुत निराशा में लिखी थी, वह कविता। बहुत अवसाद में वह कविता लिखी थी। उस पर बहुत वाद-विवाद भी है। लेकिन, अलखनन्दन ने जब 'मगध' को किया तो उसको सकारात्मक बना दिया। आप, ये देखिये अगर उसके अंदर कुछ नकारात्मक बीज थे आलोचकों के हिसाब से। तो , अलखनन्दन ने उसको अभिनीत करके,मंचित करके सकारात्मक बना दिया। तो, बड़ा कलाकार वह होता है, जो पोजिटिव होता है। पॉजिटिविटी, उसके लिए बड़ी चीज होती है। वह सकारात्मक होता है। वह मानव बिंदुओं को पकड़ता है। उसने युद्ध को पकड़ा, युद्ध की विभीषिका को पकड़ा, सभ्यताओं के विनाश को पकड़ा, संस्कृति के पतन को पकड़ा। दुनिया के वे जो ऐसे परिवर्तन हैं, जिनसे मानव जाति हताश हो गई थी,उन चीजों को पकड़ा। अलखनन्दन, मैंने आपसे पहले कहा अलखनन्दन प्रारंभ में ऐसे नहीं थे। अलखनन्दन, जीवन की पाठशाला में वह सीखते गए,सीखते गए। और, फिर उन्होंने जब 'मगध' किया। कविताओं का जब उन्होंने मंचन किया। जिन मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' को आप कह रहे हैं कि ‘अँधेर में’ कविता को; जो है बहुत पहले शायद आपको स्मरण नहीं, एक बार इलाहाबाद में अल्काजी ने किया था। जी हाँ! 'अंधेरे में' का मंचन इलाहाबाद में एक दीवार पर उन्होंने किया था। अलखनन्दन एक संस्करण हैं, वह टकराते हैं। किससे ? अल्काजी से और अपनी लाइन पकड़ी। तुम उसको छाया के रूप में बता रहे हो। मैं उसको मूर्त रूप में बताऊंगा। ये अलखनन्दन की विशेषता रही है। इसीलिए, हम अलखनन्दन को प्यार करते हैं। वह दोस्त भी था, दुश्मन भी था। वह विचारक भी था। लेखक भी था। और, रंगकर्मी भी था। वह नाट्यनिर्देशक भी था। वह एक मनुष्य भी था। मतलब , उसके अंदर केवल विधाओं की विविधता नहीं है। उसके अंदर मनुष्य की विविधता भी है। उनकी जब मृत्यु हो रही थी। मैं हाथ पकड़कर बैठा हुआ था। मैंने तो उसको एक जीते जागते जुगनू की तरह भी देखा है और पटाक्षेप होते ध्रुव तारे की तरह भी देखा है।

महेश आनंद[2] **,** प्रसिद्ध रंग आलोचक

चन्द्र पाल - मेरा सर पहला सवाल तो यही है कि अलखनंदन का जो रंग व्यक्तित्व है, वह क्या है? मतलब रंग जगत में उनकी पर्सनालिटी क्या है?

महेश आनंद - क्या मतलब हुआ? यह सवाल नहीं होता है। क्लियर नहीं होगा। बताइए न रंग व्यक्ति? क्या मालूम की जानकारी क्या थी? उनकी समझ क्या थी? सबसे पहली बात जो है, कविता को वह बहुत अच्छे से पहचानते थे और जो आदमी कविता को बहुत अच्छे से पहचानता है। वह थिएटर को भी बहुत अच्छे से जानता है। जो कविता के बिंबो को पहचानता है और समझता है। तभी जाकर के वह कविताएं लिखता है या पढ़ता है। या समझता है या करने की कोशिश करता है। उसी की समझ उसके अंदर पैदा हुई। उन्हें तो फॉरवर्ड कहेंगे ही लेकिन उस समझ के साथ-साथ नई दुनिया को कितना अच्छे से पहचानता है। वह अपने समाज को कितना अच्छा पहचानता है। उस समाज को पहचानने के भीतर फिर वह नाटक को पहचानता है? वह नाटक को पहचानता है। तभी तो वह आगे 'आधे अधूरे' भी खेल जाते हैं। कभी-कभी वह 'वेटिंग फॉर गोदो' भी खेलते है। फिर वह 'मगध' भी खेलते हैं। तो वह खेल उनका इसलिए है, जो यह पूरा का पूरा खेल आता है। वह इसलिए पहचानते हैं थिएटर को। इसलिए वह अलग-थलग हो जाते हैं हिंदी में। जब वह 'चंदा बेड़नी' खेलते हैं तो वह एकदम अलग हो जाते हैं। वह 'चंदा बेड़नी' भी दिखाते हैं लेकिन वह चंदाबेड़नी का नृत्य ही नहीं दिखाते या उसी से लुभाते रहें। उसके भीतर को भी दिखाते हैं। 'आधे अधूरे' खेलते हैं तो लोगों से और लोगों से हटकर रचना करते है। वह सेट डिजाइन है जो देर से बंद है वह एकदम अलग है और वही अलग नहीं होता बल्कि उसका मीनिंग ही पूरा बदल जाता है। वह कहीं सावित्री का रोल ही अलग कर देते हैं। सावित्री को मीनिंग ही अलग देते हैं। वह इसलिए देते थे, अगर वह यह जो दूसरे नाटक जो 'वेटिंग फॉर गोदो' खेलते हैं; तो 'वेटिंग फॉर गोदो' वहीं के ग्रामीण इलाके का बनाकर बना देते हैं और वह ग्रामीण इलाका हमेशा गांव के जो किसान हैं। वह हमेशा एक जिसे कहते हैं इंतजार ही करता रहता है। बारिश का इंतजार करता है। कभी न बारिश का इंतजार करता है। कभी सूखा रोकने के लिए करता है। कभी वह अपनी खुशहाल जिंदगी के बारे में करता है तो, वह इंतजार ही करता रह जाता है और वह गोदो जो है, उसकी होशियारी, उसके पास नहीं आता, आता ही नहीं और वह बतियाते ही रहते हैं। ठीक कह रहे हैं। कहानी बिल्कुल वैसे ही बन जाती है जैसे पूस की रात को प्रेमचंद दिखाते हैं। वह भी दोनों बिल्कुल नजदीक है। वह

[2] प्रसिद्ध रंग आलोचक महेश आनंद से 27 अक्टूबर 2022 को दिल्ली से लिया गया साक्षात्कार

भी वहाँ पर सारी चीजें हैं। वह मां को नहीं देखते। आलू खाते रहते हैं। खा जाते हैं। तो पूरी अपसेट पॉइंट पर ही खत्म होती है तो, यही तलाश है उनकी। उनकी भाषा की। जब भाषा की तलाश करते हैं तो शारीरिक भाव-भंगिमाएं भी अलग हो जाती हैं थिएटर की। तो, वह वाला हो जाती है । जब पूरा स्ट्रक्चर, जो पूरी संरचना है; उसके थिएटर की वह भी अलग हो जाती है। जब वह अलग हो जाती हैं तो फिर एक नाटक नया बन जाता है। फिर रंगमंच को एक नया अर्थ मिलता है। एक नया रूप मिलता है और वही रूप है अलखनन्दन का सामने आता है। इसलिए अलखजी इतने इंपॉर्टेंट हो जाते हैं और जिन दिनों वह ज्यादा ही परिपक्व, मैच्योर हो गए थे। इन चीजों के बारे में 'चंदा बेड़नी' में उन्होंने बहुत सारे किए हैं मेरी जानकारी में। उनके बहुत सारे फोटो रखे हैं, तो करते हैं वह। यहीं उनका रंग व्यक्तित्व नया बनता है। जब औरों से अलग होता है। क्योंकि, वह खुद जुड़े रहे उससे रंग प्रदेश से, उस रंग शिल्प से, उस रंग शैली से गहरे जुड़े रहे। उनका देखना, करना। एक समझ लो कि मतलब अच्छे समझदार सा ह्रदय व्यक्तित्व का धनी लेखक का जुड़ना है। एक सिर्फ रंगकर्मी नहीं थे वह। रंगकर्मी के साथ-साथ वह एक अच्छे लेखक थे। अच्छे कवि थे। एक अच्छे श्रोता थे। बहुत सारे पहलू हैं उनके। और ,वह पहले एक साथ जुड़े हुए हैं। जोड़ते हैं। जोड़कर, मुड़ कर के नहीं देखते जिसे कहते हैं कि वह सिर्फ टेक्निक के बारे में सजग थे। टेक्निक ही सब नहीं होता है। टेक्निक के साथ-साथ जो इनर मीनिंग होता है, जो आंतरिक अर्थ होता है, जो आंतरिक पाठ होता है और उस आंतरिक पाठ के साथ-साथ कहना चाहिए। उसके भीतर का जो मर्म है। उसके मीनिंग क्या होते हैं? थिएटर में के उस मर्म को दृश्य में डाल दो। मर्म को शब्दों में व्यक्त करना नहीं। वह शब्दों में व्यक्त करते हैं। दृश्य में नहीं डालते। लेखक क्या करता है? दृश्य में डालने के लिए संभावनाएं पैदा करता है? डायरेक्टर उन संभावनाओं को मूर्त रूप देता है। पहले अमूर्त होता है। फिर मूर्त होता है। जब मूर्त होकर वह सामने आती हैं। हम देखते हैं फिर वह अमूर्त हो जाती हैं तो हमें वह दृश्य याद रहता है। वह डायलॉग-वायलॉग सब मर्ज हो जाता है। खत्म हो जाते हैं। सिर्फ दृश्य याद रहते हैं और दृश्य से निकला हुआ मीनिंग याद रहता है। यही उसकी कुशलता होती है। यही अच्छे प्रदर्शन की, एक अच्छे नाटक की, एक स्क्रिप्ट की यही पूंजी है। इसकी तलाश करते हैं बार-बार। इसी भाषा में करने का क्योंकि अगर आप 'रंगमंच के सिद्धांत' पढ़ेंगे तो वह सारा का सारा झमेला ही यही है। अरस्तु से लेकर के आज तक पीटर ब्रूक तक सब कुछ यही मिला हुआ है और भरत से लेकर के, भरत का पूरा का पूरा चैप्टर क्या है? अभिनय को लेकर ऊपर ही तो है तो अभिनव से लेकर के जयशंकर प्रसाद से लेकर मोहन राकेश तक यही है। यही तो करते हैं। यही रंग विधा है।

चन्द्र पाल - सर अब मैं अलखनन्दन आपसे लोक पर जानना चाहूंगा कि अलखनन्दन के तीन-चार नाटक जिनकी मुझको जानकारी है जिसमें 'राजा का स्वांग' है, 'चंदा बेड़नी' है, 'उजबक राजा तीन डकैत' है और बोधायन का एक नाटक 'भगवत अज्जुकम' को भी बुंदेली में खेला है तो ऐसे कुछ उनके नाटक हैं और उन्होंने 'जगर मगर अंधेर नगर' भी किया है कई नाटकों को मिलाकर। उसमें भी कुछ लोक तत्वों का उन्होंने इस्तेमाल किया है तो सर यह अलखनन्दन का लोक की तरफ जो एक झुकाव है। वह किस तरह से आप देखते हैं? किस तरह से उन्होंने प्रदर्शित किया सर?

महेश आनंद -लोक तत्व उनका तलाश ही है और क्या है? उस भाषा की जो अधिक से अधिक संप्रेषण ये हो। जो दर्शक को संबोधित करता है जब एक्टर तो वह उसको समझ में आए। जिस इनर मीनिंग की जिस आंतरिक अर्थ की वह तलाश करते हैं, कर रहा है, वह अर्थ का अर्थ उसको तो समझ आ रहा है जिसको ऐसे वह बताएं या सम्प्रेषित करें कि दर्शक भी पूरा समझ जाए। वैसा ही जो उसका है। अपने अनुभव को दूसरे में रूपांतरित करना। दूसरे के अनुभव को रूपांतरित करना यह मुश्किल होता है। इसलिए जो नए निर्देशक हैं या नाटककार हुए हैं, उन्होंने एक्चुअली किया है कि जब शब्द नाकाफी हो जाते हैं या शब्द उस शब्द का बोध वहां नहीं कर पाते तो फिर क्या करता है? आदमी तब अमूर्त की तरफ आता है और वह उस अमूर्त में भी वह यह नहीं है कि यूं ही कल्पना में रहे सिर्फ कविता नहीं है, कविता में जो है वह भी एक तरह से यह है कि वह दृश्य है पठान की ओर है। दृश्य नहीं है। कल्पना के जो बिंब बनते हैं लेकिन उन बिंदुओं को कैसे डाला जाए मंच पर कि वह समझ में आए तो उनके लिए आप वाचिक भी हो सकते है। दैहिक भी हो सकते हैं और आप कायिक भी हो सकते हैं। एक वाचिक हुआ। दैहिक हुआ। एक आहार्य हुआ। तो किस तरह से उनको संप्रेषित कर पाएं कि वह मोर्निंग दे पाए। लेकिन, आहार्य से भी ज्यादा और वाचिक और दैहिक दो ही मुख्य हैं। आहार भी उसके ऊपर इतना अपनी तलाश नहीं रहती, जितनी दूसरों की तलाश होती है। वह तो सिर्फ पहने होता है उस तरह से लेकिन, उस सीन में से वेशभूषा का इस्तेमाल वह कैसे करता है ? यह उसके ऊपर निर्भर करता है। यानी उत्तरीय अगर है तो उत्तरीय का इस्तेमाल कैसे करेगा या हाथों को उंगलियों को कैसे संचालित करेगा? कितने पद घूमेगा? कैसे चलेगा? कैसे देखेगा? यह उसकी हो सकती है। और, और दूसरा यह उसकी स्वतंत्रता ,उसका जो कल्ट है। दो ही चीजें इंपॉर्टेंट होती हैं एक्टर के पास- उसके एक्सप्रेसन्स हैं और कुछ नहीं होता। उसके पास सब बकवास का चक्कर हैं। यह सब सेट वेट सब बकवास है। एक व्यवस्थित और नंगे रंगमंच ऊपर भी एक एक्टर परफॉर्म कर सकता है। किया है लोगों ने और वह सारे के सारे इल्यूजन क्रिएट कर सकता है। कुछ लोग सेट लगाकर करते हैं। यह सब होता है और जो अलख था वह उसकी

तलाश यह थी उन लोकतत्वों को लोक परंपरा में से उसे क्या कहते हैं कि उनकी रूढ़ियों से, उनके व्यवहारों से जिसको मोटे तौर पर आप तत्व कहते हैं। इनमें से किन चीजों को, की चीजों की तलाश वह करता है और जिन चीजों की वह तलाश करता है, उनको किस रूप में वह व्यवहार में लाता है? यह ज्यादा इंपोर्टेंट है। किताब तो आपने भी पढ़ी। किताब दूसरे ने भी पढ़ी लेकिन, वह जो किताब का पढ़ना है; आपने किस मीनिंग को लिया और उसने किस मीनिंग को लिया? यही तो अर्थ हो जाता है लेकिन, उसके पीछे एक तर्क होना चाहिए। ऐसा नहीं कि मैं यह मानता हूं जी, आपके मानने से क्या होता है? यह तो बेकार किताब है जी, आपके बेकार कहने से क्या हो जाता है? तथ्य है आपके पास? तथ्य होना चाहिए। तो, वह तथ्य थिएटर की भाषा में होना चाहिए। यह तलाश करते थे वह बुंदेलखंड की परंपरा से और यही उनकी तलाश होती थी।

चन्द्र पाल - सर जो भी नाटक अलखनन्दन ने प्रदर्शित किए या जिनका भी प्रदर्शन आपने देखा है। उन नाटकों का एक ऐसा विश्लेषण किया जाए कि उनके नाटक राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक किस तरह से जो पाखंड हैं, रूढ़ियां हैं और विद्रूपताएं हैं। उन पर वह किस तरह से कटाक्ष करते हैं? किस तरह से सामाजिक संदेश देते हैं? किस तरह से राजनीति पर चोट करते हैं? किस तरह से धार्मिक पाखंड और रूढ़ियों को वह निशाना साधते हैं? अगर इस तरह से कुछ बन सके तो सर?

महेश आनंद - नहीं! नहीं! क्या बताऊं इस तरह से मतलब मुझे क्या बताना है? जो नाटक आलेख हैं, वह आलेख हैं। वह न तो मैं कर सकता हूं न कोई कह सकता है। वह आलेख हैं। हालांकि इस आलेख में से कौन सा अर्थ चुनता है। उसका कौन सा अर्थ को रेखांकित करता है। यह ज्यादा इंपॉर्टेंट है। उन्होंने पूरे समाज का जो भ्रष्ट रूप है। समाज की विडंबनाएं जो हैं और व्यक्ति का जो , व्यक्ति की भी जो विडंबना है, जो है उन्होंने उन दोनों को मिलाकर देखा है । समाज को वह अलग-अलग करके नहीं देखते थे। मतलब वह अगर वह 'आधे अधूरे' में थे तो आधे अधूरे में यह नहीं था कि महेंद्र नाथ ही इंपॉर्टेंट था कि महेंद्र नाथ के कारण ही सारा घर टूटा है या बिखरा है। ना! वह सावित्री भी जिम्मेदार है लेकिन, केवल सावित्री ही जिम्मेदार नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि सावित्री ही जिम्मेदार हैं। नहीं! महेंद्र नाथ भी उतना ही जिम्मेदार है। एक पुरुष भी उतना ही जिम्मेदार है। अगर एक पुरुष के द्वारा लिखा गया नाटक है तो वह पुरुष को महत्वपूर्ण सिद्ध करता है लेकिन, औरत है तो गड़बड़ है। लेकिन, नहीं औरत भी गड़बड़ नहीं है। औरत को तो बल्कि शोषित किया गया है। उसको तो हर एक आदमी छल रहा है। उसको तो हर एक आदमी धोखा दे रहा है। वह तो कहीं एक सहारा ढूंढती है, अस्तित्व ढूंढती है या चीजों को ढूंढती है तो वह है। तो, वह इस तरह से वह समाज के मूल सवाल जो इस व्यवस्था ने पैदा किए और लेखक ने जिस रूप में लिया तो

वह उसकी अपने ढंग से व्याख्या करते हैं कि यह व्यवस्था में है और इसके कारण यह है। मतलब ब्लैक एंड वाइट में भी नहीं कहते। वह भाई एक ही पक्ष है। बिल्कुल ना! पक्ष दोनों होते हैं जिम्मेदार या जहां जैसे 'वेटिंग फॉर गोदो' है, वेटिंग फॉर गोदो मैं भी यही है कि वह व्यवस्था है। इस पूरी व्यवस्था में कभी भी गोदो नहीं आता। आता ही नहीं है। हम इंतजार ही करते है। अच्छे दिन आएंगे। विकास होगा। न विकास हो रहा है न अच्छे दिन आ रहे हैं तो क्या कहें व्यवस्था जिम्मेदार है? नहीं! वह तो है। गोदो आता नहीं पर कभी गोदो को आना चाहिए क्योंकि आएगा गोदो लेकिन वो तो अपने आप नहीं आता। आपको कोशिश करनी पड़ती है। आपको वहां से हिलना पड़ता है। एक ही जगह पर टिके हुए बातचीत से भी नहीं आता। सिर्फ व्यवस्था ही जिम्मेदार नहीं होती। व्यक्ति का एक्शन में होना, क्रिएटिव होना बहुत जरूरी होता है। यह भी है एक मीनिंग।

उनकी अच्छी समझ थी। अलख समझौता नहीं करते थे। और, वह समझौते के लिए अपने फायदे तलाश नहीं करते थे कभी या यूं कह सकते हैं कि वह अपने फायदों से समझौता नहीं कर सकते थे। तो समाज में जिस व्यवस्था में हम रह रहे हैं और जिस व्यवस्था में हमारे कर्तव्य भी जो निश्चित होते हैं। फर्ज भी जो निश्चित होते हैं। हक नहीं हक तो बहुत सारे होते हैं हमारे और उन दोनों के बीच में से वह तलाश करते थे कि क्या, कौन से कारण हैं? अगर हम ऐसे हैं तो उसको बनाने के कौन से कारण ? अगर 'गोडाला देखत हन' में है तो तो वह दोनों करेक्टर्स क्या कर रहे हैं या सावित्री या महेंद्र नाथ कैसा था? ऐसा क्यों था तो उसकी तलाश करना भी बहुत जरूरी है कि घर ऐसा है तो ऐसा क्यों है? घर उसके क्या कारण है? उनकी वो तलाश करते थे। कितने सफल हुए और कितने सफल नहीं हुए अलग बात है। मुद्दा है लेकिन, यह उनका ऐसा था उनका। हालांकि 'आधे अधूरे' मुझे बहुत अच्छा नहीं लगा लेकिन एक नोवेल्टी तो उसके अंदर थी। उसके अंदर नयापन तो था। उस नएपन की तलाश तो थी उनके अंदर और इतने सारे ढेर सारे प्रदर्शनों के बीच में एक नया प्रदर्शन करना वह भी बहुत मुश्किल होता है। यही था उनका बस।

चन्द्र पाल - सर अंत में मैं एक चीज और आपसे जानना चाहूंगा कि अलखनन्दन जी का कैसे मूल्यांकन किया जा सकता है?

महेश आनंद - कैसे क्या? उनकी तलाश करिए कि उन्होंने जो व्याख्या की है वह नाटक के साथ और नाटक के साथ-साथ अपने समय के साथ कितना मेल खाती है? नाटक, जो क्या है? नाटक अंततः है क्या? नाटक अंततः एक सामाजिक घटना है और जब हम कहते हैं कि एक सामाजिक घटना है तो उसका उसमें समाज का होना तो बहुत जरूरी है तो वह समाज कैसा है? समाज तो वही पुरानी बातें दोहराता हूं। जो समाज की विडंबनाएं हैं। समाज

की जो स्थितियां हैं और उसमें व्यक्ति का शोषित रूप है। उसको न बढ़ने देने के लिए, उसको न आगे बढ़ने के लिए जितने भी स्पीड ब्रेकर आ रहे हैं जिंदगी के वह किसकी देन है? क्या उसकी अपनी नियति है या वह व्यवस्था की देन है या उसको दूर करने के लिए उसकी कमजोरियां हैं क्या? वह करता ही नहीं उनको दूर तो इन सारे सवालों से जूझते हुए वह व्यक्ति वह व्याख्या करते थे। तो, वह जितनी व्याख्या करते थे। आप उनसे सहमत हैं या नहीं सहमत हैं और वह आज के वक्त से जब मैं कहता हूं कि भाई सामाजिक घटना है तो वह समाज में हो रही घटना है तो वक्त के साथ उसका तालमेल है। उस समय को पहचाने बिना आप नाटक की व्याख्या नहीं कर सकते। तो, नाटक का जो समय है लेकिन नाटक होता हमेशा वर्तमान में है। यह याद रखिएगा। नाटक कभी पास्ट टेंस में कभी नहीं होता। नाटक हमेशा प्रजेंट टेंस में होता है। हमेशा प्रजेंट में होता है। पास्ट टेंस में हो ही नहीं सकता। पास्ट टेंस में कहानी हो सकती है। एक राजा था लेकिन नाटक में एक राजा है तो वह वक्त क्या है ? तो उस वक्त की पहचान कितनी उनकी प्रस्तुतियां सफल रहीं? एक पॉइंट तो यही है। उस सफल होने में उनकी दृष्टि ,भाषा की तलाश है। तो, कहां तक थी? किन-किन स्तरों पर वह जूझते रहे, यह है और दूसरा यह है कि और लोग उस वक्त क्या कर रहे थे? अकेले तो नहीं थे। वह कर रहे थे और लोग क्या कर रहे थे? उन लोगों के बीच में से ये अलख कहां है? किस बिंदु पर से अलग हो जाते हैं? इसकी तलाश कीजिए। यही मूल्यांकन है उनका। यही दो-तीन पॉइंट है। मूल्यांकन करना ही नहीं है।

हम दोनों नाटक देखने चले गए। औरतें डांस कर रही थीं। नृत्य कर रही थीं तो मैंने उनसे कहा कि देखो यही है नौटंकी का भ्रष्ट रूप। अच्छे आदमी थे। एक-दूसरे के दुख-दर्द को समझने वाले, एक-दूसरे के मतलब इंसान की मदद करने वाले और दूसरा यह कि उनको अच्छा खासा ज्ञान था। हिंदी भाषा का बहुत अच्छा ज्ञान था। हिंदी साहित्य का बहुत अच्छा ज्ञान था और अच्छी गहराई से बातें करते थे। समझते बहुत अच्छा थे। वह बहुत अच्छा समझते थे और जो एक आदमी मैंने बताया न? एक तो आपको साहित्य का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। आप नाटक को समझ पाएंगे और दूसरा मैंने कहा न कि कविता की अच्छी पहचान होनी चाहिए जिससे आप इनर मीनिंग और बिंबो की तलाश जल्दी कर सकें और तीसरा यह कि टेक्निक आनी चाहिए। कहने का ढंग भी आना चाहिए। नाटक का मतलब कोई संवादात्मक पाठ नहीं होता। मतलब दृश्यात्मक पाठ होता है। जब आप एक संवादात्मक पाठ कहते हैं तो, वहां पर आप एक कहानी कह रहे हैं एक तरह से। और, नाटकीय क्षण की पहचान भी होनी चाहिए उस आदमी को, जो कि नहीं है लोगों में। मतलब बहुत सारे लोगों में नहीं हैं। जो बहुत अच्छे डायरेक्टर हैं। उनमें टेक्निक ज्यादा अच्छी है। कई लोगों को लिटरेचर की और कविता की अच्छी पहचान नहीं है। क्योंकि,

मगध ,उन्होंने पहली बार किया और वह सीढ़ियों पर किया था। अगर आपको किसी ने बताया हो तो सीढ़ियों में किया था उन्होंने। यह मैंने नहीं देखा था। मैंने तीन चार नाटक ही देखे हैं अलख के। ज्यादा देख नहीं पाया लेकिन, हम भोपाल में एक साथ रहे हैं। उस समय दस-ग्यारह दिन रहे इकट्ठे 'सत्यदेव दुबे प्रसंग' था तो, उसमें नाटक में रहे। हम एक हफ्ता रहे शायद एक हफ्ता या दस दिन वह भी इलेक्शन के दिनों में थे। जब इंदिरा गांधी हार गई थी 77 से हारी थी। हां! हां! इमरजेंसी जैसे ही हटी तो वह तभी था हो वह लास्ट डे या वह यह कोशिश चल रही थी तभी अनाउंसमेंट हुआ था कि वह हार गई हैं। भारत भवन में वह बाद गए हैं लेकिन ,वह फेस्टिवल को देखने के लिए भोपाल में आए थे सस्हत्तर में जबलपुर से। एक्चुअली क्या था भारत भवन में उस जमाने में शायद यह मध्य प्रदेश कला रंगमंच होता था या क्या होता था नाम अलग था कला परिषद तो, वहां अलग-अलग स्टेट से मध्य प्रदेश के अलग-अलग स्टेट से और कुछ कभी-कभी दिल्ली से भी जैसे हम भी दिल्ली से ही गए थे। कविता नागपाल गई थीं। नेमीचंद जैन गए थे तो अलखनन्दन भी आए थे और यहां बीकानेर से भी कोई आए थे। कोई आदमी राजस्थान से भी आए थे। कुछ ग्वालियर से एक आए थे और जबलपुर से आए थे। ज्वाइन करने आए थे। ज्वाइन करना एक अलग बात है वह तो ज्वाइन कर लिया जब रंगमंडल बन गया। वह अलग बात है। वह तो खैर भारत भवन गए जब हम 'स्कंद गुप्त' देखने गए थे। वहां चार दिन रुका था मैं भारत भवन। तभी हम मिले थे। दिल्ली आए थे। तब हम मिले थे। फिर फेस्टिवल हुए दिल्ली में तो मिलते ही रहे। तो, लास्ट हमारी विजिट थी। तो ,मैं कारंत जी की स्मृति श्रद्धांजलि थी तब गया था। तो ,तब भी वह मिलने आए थे तो उन्होंने मुझे डिनर दिया था जंगल में जाकर के नया रेस्टोरेंट खुला था। तो, वहां ले गए थे हमें। तो वह अचानक चले गए बीमार होंगे अंदर से। तो स्ट्रगल बहुत किया। उन्होंने लाइफ का बहुत स्ट्रगल किया लाइफ में। ऐसा नहीं है कि मतलब कोई बहुत ही आसानी से सब कुछ चीजें मिल गई हों। ऐसा नहीं था बहुत संघर्ष किया उन्होंने। संभावनाएं बहुत सारी चीजों की थी साफ-सुथरा सोचते थे और समझौता बिल्कुल भी नहीं करते थे किसी के साथ भी। और अच्छे भले व्यक्ति थे। खैर उनके बेटे से कभी मिला नहीं हूं। उस तरह से उससे मुलाकात ही नहीं हुई कभी और मिला भी हूं तो मुझे याद नहीं है, कभी मिला हूं। देखा हूं तो मुझे याद नहीं है तो ऐसा ही है और कुछ बोलो।

चन्द्र पाल - और तो लगभग सर आपने ज्यादातर बातें कह ही दी हैं इससे जुड़ी हुई। 'स्वांग शकुंतला' उन्होंने किया था।

महेश आनंद - हां यह उन्होंने किए हैं और उन्होंने मुझे कुछ फोटोज भी भेजे हैं। उन्होंने बहुत सारे एक्सपेरिमेंट किए थे 'अंधेर नगरी' को लेक। उन्होंने किया था। 'स्वांग शकुंतला' को लेकर भी किया था और भी बहुत सारे थे। वह

हम नहीं देख पाए। वह दिल्ली आए नहीं कभी और हम वहां गए नहीं कभी। फिर धीरे-धीरे छूट गया। मैंने सत्तर से लिखना शुरू किया था थिएटर तो मुझे 50 साल हो गए हैं।

देवेंद्र राज अंकुर[3] **,** राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व निदेशक एवं कहानी रंगमंच के प्रवर्तक

देवेंद्र राज अंकुर -त्रिपुरारी के साथ जरूर उसने काम किया था। चंदा वाली वहां की लोक गाथा है। उस पर उसने त्रिपुरारी ने बाद में नाटक भी लिखा था । उसको अलखनन्दन ने भी किया था तो यही है। मैंने तो उसका हिंदी नाटक देखा दिल्ली में तो, रामेश्वर प्रेम उसके काफी नजदीक रहे। अलखनन्दन, दोनों अच्छे दोस्त भी थे। उसका नाटक भी उसने बहुत अच्छा किया था 'चारपाई' नाम से प्रोडक्शन था। अशोक वाजपेई, रामेश्वर प्रेम और त्रिपुरारी शर्मा, यही तीन लोग हैं दिल्ली में। बाकी बहुत कम लोग दिल्ली में अलखनंदन को जानते हैं। मुख्य भूमि तो उनकी जबलपुर रही। फिर बाद में भोपाल लेकिन, तब भी यह बुंदेलखंड-बुंदेलखंडी वाला जो काम है; वह भोपाल में आने के बाद ही और खासकर रंगमंडल, जब कारंत जी के वक्त जब यह दौर चला की भाषाओं के साथ-साथ यहां की बोलियों बुंदेलखंडी ,छत्तीसगढ़ी और बघेली ऐसी कई वहां की जो बोलियां हैं; उनमें उन्होंने प्रोडक्शन करने शुरू किए रंगमंडल के साथ क्योंकि, वह भोपाल में होते थे और दिल्ली, उस तरह से बहुत ज्यादा बड़ा फेस्टिवल उन्होंने किया था। 'गोडाला देखत हन' वाला देखा था। लेकर आए थे। वह वह मूल रूप से छत्तीसगढ़ी में था क्योंकि, उसके जो एक्टर थे। वह छत्तीसगढ़ को ही बिलॉन्ग करते थे, तो यह था। हम थे, उसके दोस्त लेकिन, हम दिल्ली में रहते थे। रामेश्वर प्रेम भोपाल में रहे क्योंकि वह भारत भवन रंगमंडल में आवासीय नाटककार थे। अशोक जी वहां थे ही। त्रिपुरारी और उन दोनों ने मिलकर अलखनन्दन ने उसको इनवाइट किया था अपने ग्रुप के लिए, एक प्रोडक्शन के लिए ,'बांझ घाटी' तो बाद की बात है लेकिन यह 'चंदा बेड़नी' जो है वह मूल रूप से वह दोनों ने ही मिलकर किया था। जहां तक मेरी जानकारी है। वैसे वह बता सकती हैं तो, 'नट बुंदेले' उसका ग्रुप था। फिर भोपाल में उसका लड़का भी रहता है। हालांकि, वह बहुत ज्यादा कर नहीं पा रहा है। हमारे 'भारत रंग महोत्सव' में भी उसके प्रोडक्शन आये थे लेकिन, वह महत्वपूर्ण प्रोडक्शन नहीं है। वह सब हिंदी वाले प्रोडक्शन हैं उसके। उस तरह से यहां कोई उसका यहां मुझे तो देखने को नहीं मिला नहीं तो, मैं बता ही सकता था। 'चारपाई' लेकर

[3] प्रसिद्ध रंग समीक्षक और नाट्य निर्देशक देवेन्द्र राज अंकुर से 26 अक्टूबर 2022 को राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय,दिल्ली से लिया गया साक्षात्कार

आए थे। रामेश्वर प्रेम के ही नाटक उसने ज्यादा किए थे। हिंदी वाले 'अजात घर', 'चारपाई' और 'सुप्रीमो' करके एक नाटक है। तीन तो मैं ही जानता हूं , जो अलखनंदन ने किए हैं लेकिन, वह हिंदी में है। उसमें डायलेक्ट वाली कोई बात ही नहीं है क्योंकि, वह डायलेक्ट भी नहीं था। रामेश्वर प्रेम यूं तो मैथिली भाषी हैं। बिहार के हैं। हिंदी में लिखते थे। अब भी लिखते हैं। इधर तो थोड़ा सा लिखना कुछ कम हो गया है क्योंकि, स्वास्थ्य को लेकर जो भी एज के साथ समस्याएं हैं। क्योंकि, मेरा उसके साथ दोस्ताना संबंध था। बल्कि, हम सभी लोग जब शुरू में रंगमंडल बन रहा था। उसकी चुनाव प्रक्रिया में शामिल थे। कारंत जी, बंसी कॉल साहब, मैं था और अलखनंदन को अशोक जी ने शुरू से ही डिप्टी डायरेक्टर के रूप में वहां बुला लिया था जबलपुर से क्योंकि, वह जबलपुर में काफी दिनों से काम कर रहा था। उसकी चर्चा भी होने लगी थी कम से कम मध्यप्रदेश में तो हो ही रही थी। फिर, उनको बोला कि यहां पर ज्वाइन कर लो। उसने आकर ज्वाइन कर लिया ।

चन्द्र पाल– सर एक सवाल ऐसा है कि अलखनंदन का जो रंग व्यक्तित्व है, वह किस प्रकार का है?

देवेंद्र राज अंकुर - ज्यादातर नाटकों के सिलसिले में जब कभी वहां जाते थे तो मिलना हो जाता था। बाकी पढ़ने लिखने वाला आदमी था। साहित्य से ताल्लुक था और स्पेशली हरिशंकर परसाई क्योंकि, जो भी उनका ग्रुप था; उसमें ज्ञानरंजन और हरिशंकर परसाई जैसे हिंदी के बड़े लेखक 'विवेचना' में शामिल थे। तो, उन सब का साथ उसको मिला। उनका प्रोत्साहन मिला और इसीलिए वह इतना काम कर पाया। और फिर नए से नया नाटक अब शायद भोपाल या मध्यप्रदेश में मुझे लगता है कि 'वेटिंग फोर गोदो' जैसा नाटक सबसे पहले वही(अलखनन्दन) था, करने वालों में। इलाहाबाद में सत्यव्रत सिन्हा ने किया किया था। मध्यप्रदेश में अलखनंदन ने किया था। पहले 'विवेचना' ने किया। फिर, उसी को यहां छत्तीसगढ़ी में किया रंगमंडल में। नए से नया रंगकर्म और फिर उसने नाटक लिखने का भी प्रयास किया । 'उजबक राजा तीन डकैत', 'स्वांग शकुंतला'। हां! तो इस तरह से तो यह भी लिखे तो, हर तरह से सक्रिय था और ऑर्गेनाइजर अच्छा था।

चन्द्र पाल– सर मेरा एक सवाल यह भी था कि आपने जो भी नाटक अलखनंदन के देखे हैं। तो, उन देखे हुए नाटकों में; वह धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक पक्ष को किस तरह उद्घाटित करते हैं?

देवेंद्र राज अंकुर - अब देखिए न 'चारपाई' जैसा नाटक तो पारिवारिक रिश्तों का नाटक है। वह प्रोडक्शन मुझे बहुत अच्छा लगा था क्योंकि, बहुत ही इमेजनेटिव ढंग से उसने उस प्रोडक्शन को तैयार किया था। अलखनंदन ने दिल्ली में किया था। सबसे पहले एनएसडी के रंगमंडल में 1976 में उसमें भी बहुत बड़े-बड़े लोग काम कर रहे थे। सुरेखा सीकरी, उत्तरा बावकर, राजेश बैग, मनोहर सिंह ने डायरेक्ट किया था। लेकिन आज मैं याद करता हूं तो, फिर दोनों

प्रोडक्शन में देखता हूं तो, बेशक इसमें इतने बड़े स्ट्रेचर के अभिनेता नहीं थे। लेकिन, अलखनंदन का प्रोडक्शन ज्यादा इमेजीनेटिव था अपने सीमित संसाधनों के बीच । उस वजह से उसके राजनीतिक नाटक तो नहीं दिखाई पड़ते। मतलब एक 'सुप्रीमो' नाटक है, जो एक रामेश्वर प्रेम जी का नाटक है। जो सत्ता में बैठ जाते हैं और फिर लोगों को कंट्रोल करना शुरू करते हैं। वह एक ढंग से मतलब थोड़ा सा राजनीतिक अंदाज में लिखा गया है और उसको अब जब लिखा ही उसमें है लेकिन, वह भी एक तरह का व्यंग नाटक ज्यादा ज्यादा था ।

चन्द्र पाल– सर अगर अलख जी के रंगकर्म के मूल्यांकन को लेकर, उनके नाट्य शिल्प और नाट्य विधान को थोड़ा समझने की कोशिश करें तो उसको हम किस प्रकार से समझ सकते हैं?

देवेंद्र राज अंकुर - हम लोग तो समकालीन लोग थे। उसने अपने क्षेत्र में उस तरह से काम करना शुरू किया। हमने यहां अपने क्षेत्र में काम करना शुरू किया था। धीरे-धीरे एक-दूसरे के नजदीक आए और खासकर रंगमंडल खुल जाने के बाद मैं काफी भोपाल आता जाता था। क्योंकि, मैं उसके एडवाइजरी बोर्ड से जुड़ा हुआ था। फिर मैं खुद भी वहां एक प्रोडक्शन करने गया। एक डिसीप्लिंड डायरेक्टर था। दो ही तरह के निर्देशक रंगमंच में होते हैं। एक तो वह निर्देशक जो पहले से सब कुछ तय कर लाता है कि मुझे अपने अभिनेताओं से यह करवाना है। रोज की रिहर्सल का एक चार्ट कहीं अपने अंदर बना होता है। चाहे कागज पर बना हो और दूसरा रास्ता यह है की आप पहले से कुछ तय नहीं करते और जब आप पूर्वाभ्यास में जाते हैं; तो अभिनेता को कुछ काम दे देते हैं कि, मैं यह चाहता हूं। अब आप ट्राई करो और मुझे करके दिखाओ और फिर मैं देखूंगा। उसमें से क्या क्या लिया जा सकता है। क्या छोड़ा जा सकता है। अलखनंदन, पहले वाले रास्ते को ब्लॉन्ग करता था और मैं खुद अपने आप को दूसरे वाले रास्ते में से गुजर कर काम करने वाला मानता हूं। मेरे हिसाब से रंगमंच अभिनेता का माध्यम है। निर्देशक जो भी कुछ करना चाहता है। वह मूलतः अभिनेता के माध्यम से गुजर कर ही उसको अचीव करता है। इसके बावजूद अच्छी दोस्ती थी और खुला हुआ रिश्ता था। दोनों को कोई अपेक्षा नहीं थी एक दूसरे से। ठीक है ! एक मित्रता थी। जितना भी उसको अच्छे से अच्छा कहा जा सके या फॉर्मल कहा जा सके। यही कुछ बातें हैं। प्रॉब्लम क्या है कि हमें कहीं एक साथ जगह पर साथ-साथ रहने के बहुत मौके नहीं मिले। जब-जब जाते थे या वह लोग जब दिल्ली आते थे। तभी मुलाकात होती थी। वह ऐसी ही मतलब भागती-दौड़ती मुलाकातें होती रहीं। उनमें फिर आप कितना किसी आदमी को जान सकते हैं? या उसके बारे में बात कर सकते हैं? यह सब लिमिटेशंस हैं। बाकी उसकी प्रोडक्शन देखीं । इसके बारे में मैंने बताया ही। 'चारपाई' देखा या फिर एक सुप्रीमो'(रामेश्वर प्रेम,सुपरईमो) देखा या फिर 'वेटिंग फॉर गोदो' देखा। यह तीन प्रोडक्शन और एक उसका 'महानिर्वाण' देखा था (सतीश आलेकर)। वो

उस ने बहुत अच्छा किया था। खासकर उसमें उसने कारंत जी को कास्ट कर लिया था, जो मुख्य पात्र है और कारंत जी बहुत दिनों से अभिनय करना छोड़ चुके थे। उनका किस तरह से अच्छे से अच्छा उनसे काम लिया जाना यह कला उसको खूब आती थी। इन दिनों आकर कारंत जी अक्सर संवाद भी भूल जाते थे। म्यूजिक उनका बहुत स्ट्रांग पॉइंट था। उससे वह उसकी भरपाई कर लेते थे। लेकिन, इसमें उन्होंने बहुत मेहनत की और उसने भी उनको नहीं छोड़ा। करवा कर ही छोड़ा। उनके भाऊराव की जो भी भूमिका है। मुख्य पात्र है। जो मर गया है। उसकी जो दहन क्रिया की जानी है। इसी को लेकर वह नाटक है। बहुत अच्छा प्रोडक्शन था और उसने म्यूजिकल भी बना दिया था उसको। बहुत ही कलरफुल प्रोडक्शन और कारंत जी की बहु-आयामी प्रतिभा का उसने बखूबी इस्तेमाल किया। नजर थी उसके अंदर मतलब काम करने की। उसको अचीव करने की। यह सारी बातें उसमें थी। वह बहुत जल्दी चला गया। उसको अंततः संगीत नाटक एकेडमी ने रिकॉग्नाइज किया। उसको(संगीत नाटक पुरस्कार) लेने से पहले ही शारीरिक रूप से इतनी समस्याओं में घिर गया था। सांस की तकलीफ और क्या-क्या कहा जा सकता है। उसको भुगतना पड़ा और अंततः हम लोग मिले थे। लास्ट, तब उसके वह सब ट्यूब्स लगी हुईं थीं। नाक में ,मुंह में, गले में पता नहीं कहां-कहां। मेरी आखिरी मुलाकात उसके घर पर ही मुलाकात हुई थी। मैं और आनंद सिन्हा दोनों गए थे। तब तक वह पूरी तरह से अशक्त था। हालांकि उस वक्त भी जीवंतता से भरा हुआ था कि मैं इन सब से जल्दी से बाहर आ जाऊंगा। हम भी चाहते थे कि वह आए। कौन नहीं चाहेगा? फिर, बस वह बच नहीं पाया। फिर, कुछ दिनों बाद उसकी पत्नी भी चली गई। उस दिन की मुलाकात में वह भी उस वक्त बहुत बीमार-सी ही दिखाई दे रही थी। हालांकि, हम लोगों को उन्होंने चाय बनाकर पिलायी। काफी देर तक बैठे रहे। फिर जाहिर है कि उसको कहीं न कहीं आराम लेना था। वह अपने को बहुत ज्यादा एडजस्ट भी नहीं कर सकता था। हमने भी यही ठीक समझा कि अब यहां से विदा लिया जाए। मैं फिर उसके बाद दिल्ली लौट आया। उसके कुछ दिनों बाद ही यह समाचार आया कि वह नहीं रहे। अच्छा नहीं लगा मतलब रहना चाहिए था। अभी तो मिल कर आए थे। अभी ऐसा और रहता तो कुछ और अच्छा काम देखने को मिलता। यही सारी कुछ उसकी शार्ट में जिंदगी रही।

चन्द्र पाल– सर मुझको एक सवाल बहुत परेशान करता है कि एक ऐसा रंगकर्मी है; अलखनंदन- नाटककार, निर्देशक है जो इतिहास से लगभग गायब है। मतलब मैंने गिरीश रस्तोगी मैम की दो पुस्तकें पढ़ी। एक आपकी भी पढ़ी है। उसमें उन्होंने अलख के बारे में चार-चार पंक्तियां लिखी हैं। कहीं अलखनंदन का जिक्र बहुत नहीं मिलता। कहीं छपा नहीं है?

देवेंद्र राज अंकुर - किसी का भी इतिहास में कोई जिक्र नहीं मिलता। यही तो हिंदी और हिंदी रंगमंच की त्रासदी है। हिंदी रंगमंच में जितने भी बड़े-बड़े लोग निकल गए। उनके बारे में कहीं आपको कुछ नहीं मिलेगा। यही तो हम लोग शुरू से ही कृतघ्न रहे हैं। इसलिए, सिर्फ अलखनंदन के बारे में ही क्या कहा जाए? डॉ सत्यव्रत सिन्हा के बारे में आपको कुछ नहीं मिलेगा। जिस आदमी ने पहली बार ही आधुनिक रंगमंच किया हो इलाहाबाद में, हिंदी प्रदेश में, आपको कहीं कुछ नहीं मिलेगा। एक-आध दो प्रोडक्शन के रिव्यु मिल जाए तो मिल जाए। ऐसा है! हमारे यहां कोई परंपरा ही नहीं है। नहीं रही है। अल्काजी के बारे में क्या मिलता है? कुछ नहीं मिलता। यह तो अब हम लोगों ने उनके बारे में एक पूरा वह भी उनके जाने के बाद या मैंने एक लंबी सीरीज की थी अपनी एक किताब में। उनके काम को लेकर 'पहला रंगमंच' हिंदी के साथ बड़े निर्देशकों के बारे में ग्यारह डिटेल आर्टिकल। उनके काम करने के ढंग को लेकर और जितना भी उनके साथ मेरा इंटरेक्शन था उसको लेकर। अल्काजी, हबीब तनवीर, सत्यदेव दुबे, श्यामानंद जालान, बादल सरकार, पणिक्कर। बाद में रतन थियम पर भी एक लंबा आर्टिकल लिखा। फिर, रैना पर भी लिखा। कोई लिखने वाले ही नहीं है और लिखने वाले हैं तो वह जानबूझकर नहीं लिखना चाहते। फिर जो लोग लिखने वाले हैं। राज ठाकरे किस्म के लोग हैं। वैसे लिखने का क्या फायदा? जिन्होंने कभी किसी का काम ही नहीं देखा। अब अगर वह अपने अलखनंदन के ऊपर लिखेंगे तो क्या लिखेंगे? मुझे नहीं लगता कि गिरीश को भी किसी का काम देखने का मौका मिला हो। अच्छा लिखती थी। खुद भी थिएटर करने वाली थी । फिर उस तरह से बाहर आने-जाने के मौके ही कम मिलते थे। आप गोरखपुर जैसी जगह पर काम कर रहे हैं। हालांकि, बाद में वह काफी बाहर भी आई। उन्होंने दुनिया भी घूमी लेकिन, अलखनंदन पर ऐसा कोई काम मुझे नहीं लगता, उसको देखने को मिला। फिर वह आदमी के लिए इतनी सारी जानकारियां हो जाती हैं। जिन्होंने खूब देखा है। वह लिखना नहीं जानते। लिखना भी जानते हैं तो लिखना नहीं चाहते हैं। उसके बारे में हम क्यों लिखें? हमारे बारे में कोई लिखता ही नहीं है! बात खत्म हो जाती है। यह भी तो चक्कर है ना? यहां सब लेन-देन का मामला है। तुम मेरे बारे में लिखो। मैं तुम्हारे बारे में लिखूंगा तो उससे तो कोई बात बनती नहीं है। बस यही सारी बातें हैं। एक तो किसी के बारे में भी यही कहा जा सकता है और हिंदी रंगमंच में तो खासकर रंगमंच के साहित्य के बारे में। किसी के बारे में कुछ नहीं मिलेगा आपको। ठीक है! वह दौर था। जिनके बारे में था। वह था। इधर के जो नए-नए लोग और अच्छा लिख रहे हैं। उनके बारे में कुछ नहीं मिलेगा। इसको लेकर क्या कहा जा सकता है? अलग-अलग खेमो में बंटे हुए हैं। आप का फंक्शन है। उसमें वही लोग जाएंगे जो आपको पसंद करते हैं। उनका फंक्शन है वहां वही लोग होंगे जो उनको पसंद करते हैं। अब मुझे मालूम नहीं। यह दूसरी भाषाओं में भी यही स्थिति होगी। यह

जो भारतीय मानसिकता है। इसका कोई इलाज नहीं है। कोई इन सबसे ऊपर उठकर चीजों का एक ब्रॉड पर्सपेक्टिव में मूल्यांकन करने के लिए तैयार ही नहीं है। अपना नजरिया पहले उस पर लागू हो जाता है कि मैं इस तरह से देखता हूं और अगर वह मुझे नहीं पसंद है तो कितना भी अच्छा काम कर रहे हो। वह खराब ही रहेगा तो ठीक है। फिर बात ही खत्म हो जाती है। फिर, क्या संवाद हो सकता है? ऐसे में अलखनंदन को कौन पूछेगा? कोई कितना भी काम कर ले। यह हैं सारी बातें और क्या? मेरे उस तरह के संबंध उससे रहे नहीं लेकिन, इसके बावजूद उससे अच्छे संबंध थे। जितना भी उस से निकलकर कर आ सकता था। मैंने आपके साथ शेयर किया।

रामेश्वर प्रेम जी[4], प्रसिद्ध नाटककार

चन्द्र पाल– सर आप अलखनन्दन जी को मेरे ख्याल से 1980 के दशक से तो जानते ही होंगे? उनका जो दौर है, वह कैसी उनकी रंगयात्रा है, जो लगभग तीन साढ़े तीन दशक तक फैली हुई है? इसको आप किस प्रकार देखते हैं?

रामेश्वर प्रेम जी— मूलतः अलखजी कवि थे। जिन रचनाओं में कविताएँ होती हैं या जो रचनायें कविता पर आश्रित होती हैं या उस तरह से प्रेरित होती हैं। इस पर उन्होंने बहुत अच्छा काम किया। उसमें मैं भी शामिल हूँ। और भी उनकी जितनी रचनायें हैं। बुंदेलखंडी भी हैं। इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं। जिस दौर में उन्होंने काम किया। वह ऐसा दौर था जिसमें बहुत काम होता था। बातचीत कम होती थी। काम ही ज्यादा होता था। वह बुंदेलखंड-बुन्देली से किस तरह से प्रेरित थे । ये कुछ रचनाएँ मिल जाएं आपको चंदा बेड़नी टाइप। आपको अपने आप उन सब में दिखाई देगा। वह ऐसा सैद्धांतिक नहीं है जिसको लेकर बातचीत की जाय या कहा जाय। उनका जो है प्रेक्टिकल है। उनकी रचना 'चन्दा बेड़नी' खासतौर से उसको पढ़कर उसमें से बहुत सारी चीजें आप निकाल सकते हैं कि वह क्रियापद का इस्तेमाल कैसे करते थे? उसमें व्याकरण नहीं होता था । व्याकरण, जो बोलचाल की भाषा थी। वह ही होती थी। मैं आपको ऐसा नहीं बता सकता जो सैद्धान्तिक हो। उनका अनुभव काफी बड़ा था रंगमंच पर। एज अ राइटर भी वह बहुत अच्छा काम कर रहे थे । अभी और कुछ करने वाले थे। तब तक उनकी मौत हो गई। मेरा संयोग उनके साथ काफी बड़ा था। संग-संग के थे। आप कह सकते हो। वह संगाती थे। उन्हें बुंदेलखंड से विशेष

[4] प्रसिद्ध नाटककार रामेश्वर प्रेम से 1 नवंबर 2022 को लिया गया टेलीफोनिक साक्षात्कार

लगाव था। भोपाल का जो अपना रंगमंच था और उसकी जो भाषा थी, उनका उससे काफी प्यारा ताल्लुक था और उसी तरह से उनको देखा जाना चाहिए।

चन्द्र पाल– सर एक प्रश्न ये भी मेरे दिमाग में बार-बार आता है । अलखनन्दन जी के नाटकों की जो प्रस्तुतियां हुई हैं; जो कि आपने भी देखी ही होंगी। जो सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक विद्रूप होता है। जो भी विकृतियां समाज, धर्म और राजनीति में होती हैं। अलखजी के नाटक इन सब पर किस प्रकार चोट करते हैं? इन सबको(धर्म, राजनीति और समाज को) अलखजी कैसे अपने नाटकों में उभारते थे?

रामेश्वर प्रेमजी— देखिये! ये तो प्रोडक्शन में दिखाई देता है। कहने को तो मैं बहुत कुछ कह सकता हूँ। लेकिन, उसका कोई फायदा तो है नहीं उससे। वह तो उनसे ताल्लुक रखने वाली बातें हैं। लेकिन, वह इस सब के खिलाफ थे। वह विशेष धर्म के पक्ष में नहीं थे और न ही उनका कोई विशेष सिद्धांत था । प्रैक्टिकल थे। इसी को लेकर वह काफी काम करते थे। मैं यही कह सकता हूँ । मैंने उनके जो नाटक देखे हैं। कुछ तो विदेशी नाटक थे, जिनका देशीकरण किया गया था। 'जज' और क्या क्या? नाटक याद आ रहा है 'जज'। 'गिनीपिग' ओपेरा किया था। वह अपने काम में हबीब तनवीर से ज्यादा ताल्लुक रखते थे। कुछ ऐसा नहीं बता सकता जो प्रोडक्शन से अलग हो। जैसे प्रोडक्शन होता है और फिर उसपर बातचीत होती है। ऐसा कुछ वह नहीं कर रहे थे, जिससे बातचीत का मौका मिले। वह मौके की तलाश प्रोडक्शन में ही कर रहे थे। उनका सबसे बड़ा काम है नाटक की प्रस्तुति। उसी के तहत जो कुछ भी निकल कर आ जाय। कोई उनमें ऐसा बड़बोलापन नहीं था । वह एक प्रशिक्षु की तरह थे। रंग प्रशिक्षु जिसे कहते हैं। लगातार सीखना ही उनका लक्ष्य था। कारंत के बहुत सारे नाटकों से वह प्रभावित थे। नाटकों से नहीं तो प्रोडक्शन से,म्यूजिक से। यही सब था , जिस पर मैं एक छोटी-सी टिप्पणी कर चुका हूँ।

चन्द्र पाल–सर आप अलखजी से जुड़ा कोई संस्मरण विशेष रूप से सुनाना चाहें ?

देखो! मैं जानता हूँ। उनका मेरा काफी देर तक का साथ था । लेकिन, किसी एक प्रोडक्शन को याद करना मेरे लिए कठिन है । उस समय प्रोफेशनलिज़्म काफी जबरदस्त था। एक से बढ़कर एक रंग उस समय था। वह एक आदमी, समूह के लिए नहीं लिख रहे थे। उनका ताल्लुक पूरा समाज था। इसलिए, बोलने में कठिनाई होती है । जो कुछ भी था उनका प्रोडक्शन था। 'सुपरइमो' फेल्ड था। वह ठीक से हो नहीं पाया । एक तो उन्होंने किया था 'भारत रंग महोत्सव' में। उन्होंने सिर्फ कर दिया था । कुछ था नहीं।

चन्द्र पाल– सर अलखनन्दन मुझे काफी व्यापक और विस्तृत व्यक्तित्व के धनी नजर आते हैं। उन्होंने जहां एक ओर पाश्चात्य और विसंगति बोध के नाटक किये तो वहीं दूसरी ओर उन्होंने संस्कृत, लोकनाट्य, बालनाट्य और कविताओं और कहानियों तथा आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आधारित रंगमंच(यथार्थवादी) किया है।

रामेश्वर प्रेम जी—संस्कृत नाटकों पर उनका जो हक था। रंगकला में जितने भी अंग हो सकते हैं। वह कुछ न कुछ करते रहते थे। वह प्रायोगिक रंगमंच के बहुत बड़े इंसान थे। प्रयोगधर्मी थे। लेकिन उन्होंने 'सुपरइमो' में कर नहीं पाया। वह नाटक भी ऐसा ही था। वह कुछ मुझे अच्छा नहीं लगा था। लेकिन, वह लिख गया था। चूँकि उनके लिए, रंगकर्मियों के लिए 'भारत रंग उत्सव' में शामिल होना बड़े गौरव की बात होती है। तो, उनको लगा किसी एक नाटक का नाम, ये नाम रखने से मेरा आ जाएगा। ऐसा ही हुआ। मेरा नाम उसमें आया। सुपरईमो नाटक में। रंग रेपर्टरी वालों ने कहा रामेश्वर प्रेम जी का है तो, होना ही चाहिए। ये नहीं देखा गया। अभी भी नहीं देखते। इस नाटक में है क्या? क्यों होना चाहिये? मैंने ही सवाल किया था। आपने क्यों किया यह नाटक? बोले, आपने अनुमति दे दी थी। फिर भी बातचीत तो होनी चाहिए थी न? वह आपने की नहीं और इस नाटक को कर लिया। मुखौटे-उखौटे लगाए थे। वह मैंने देखा था। उषा गांगुली ने भी देखा था। वह बहुत निराश थीं। सामने मैं था। वह कहतीं मुझसे। आपसे ऐसी उम्मीद नहीं थी। वह इस तरह से था। कोई खास नहीं था। और 'चारपाई' रेपर्टरी ने पहले से कर रखा था। मनोहर सिंह ने किया था। बहुत अच्छा किया था। तमाम ताम-झाम जितना होता है। वह कमानी(प्रेक्षागृह) में हुआ था। वह बहुत बड़े स्तर हुआ था। वह नाटक जिसके लायक नहीं था । नाटक छोटा था और छोटे स्तर पर होना था। उसे इतने बड़े मंच पर नहीं होना था। अच्छी बात ये थी कि अलख ने जो किया। अलख ने रस्सियां लटकाकर किया। रस्सियां लटकाकर, उन्होंने एक नई व्यंजना दी।

राजेश जोशी[5],प्रसिद्ध कवि,आलोचक एवं नाटककार

राजेश जोशी- जहां तक अलख जी का सवाल है। नाटक थोड़ा देखा है तो खैर उस पर बात कर सकते हैं।

चन्द्र पाल - सर आप अलख जी के रंग व्यक्तित्व,कृतित्व पर ही बात कर सकते हैं।

राजेश जोशी- व्यक्तित्व का तो ऐसा है, मेरे बहुत ज्यादा तो संबंध रहे नहीं। मैं भोपाल में उनके बहुत ज्यादा नजदीक नहीं था। जैसे, क्योंकि वह भोपाल में काफी रहे। ऐसे उनसे मुलाकात बीच-बीच में होती रही। बाकी अलख जी के दो नाटक छपे थे। वह तो होंगे ही आपके पास। हां! 'उजबक राजा तीन डकैत'। एक उनका कविता संग्रह भी छपा है 'घर नहीं पहुंच पाता'। जानने के लिए हम सब लोग जानते हैं। अलख हमारे संग का ही है। पर अब यह होता है कि सिर्फ जो परफॉर्मिंग साइट में होते हैं, थिएटर के परफॉर्मिंग वाले लोग जो हैं। मैं परफॉर्मेंस में नहीं रहा। मैंने नाटक

[5] प्रसिद्ध कवि राजेश जोशी से 17 जनवरी 2022 को लिया गया टेलीफोनिक साक्षात्कार

जरूर लिखे। परफॉर्मेंस की जो बारीकियां है। वह तो मैं जानता नहीं। उस तरीके की मेरी ,उनसे मुलाकात थी। उसके नाटक देखे हैं। उसके ऊपर बात कर सकते हैं।

चन्द्र पाल - सर आप उनके व्यक्तित्व पर नहीं बोलेंगे।

राजेश जोशी- मतलब! अब ऐसे तो मतलब यूं मित्रता ही थी। क्योंकि, जब अलख भोपाल आए। बहुत पहले आए थे। तब वह नाटक नहीं करते थे। नाटक में वह बाद में गए। पहले जब आए तो वह एक तरीके से पत्रकारिता और कुछ इस तरीके के जगत पाठक जैसे दोस्त थे उनके। है ना? प्रभाकर श्रोत्रिय उसी समय एक गोष्ठी करवाते थे। 'संवेदना'! हमसे तो उनका कविता पाठ रखा गया था। उसमें कविता पाठ होता था। एक आदमी का या दो आदमियों का और उसके बाद उन पर चर्चा होती थी। उस समय तक अलख कवि थे। उन पर मुक्तिबोध का काफी गहरा असर था। मुक्तिबोध को पढ़कर जैसा अक्सर हो सकता है। यही उस दोस्ती का लब्बोलुआब था। यानी उस गोष्ठी में बहुत सारे लोगों ने इस बात को कहा भी। उस समय तक ऐसा होता था। काफी हाउस में कभी मिल गए अलख। ऐसे मुलाकात होती थी। फिर दोबारा जब अलख आए तो जबलपुर से नाटक लेकर आए थे। वह 'वेटिंग फॉर गोदो'(सैमुअल बैकेट)। एक नाटक कोई-सा लेकर आए थे।(अखाड़े के बाहर) 'दुलारी बाई' उस समय लेकर नहीं आए थे। 'वेटिंग फॉर गोदो' के साथ एक कोई और नाटक लेकर आए थे। 'वेटिंग फॉर गोदो' बहुत अच्छा हुआ था। हालांकि, 'वेटिंग फॉर गोदो', उन्होंने कोई बुंदेली कुछ इस तरह से किया था। पर उसकी काफी चर्चा हुई। काफी तारीफ हुई थी। फिर, अलख जब रंगमंडल बना। उसके बीच में आते-जाते रहे। नाटक करते रहे। पर, तब तक वह नाटक वहीं जबलपुर में करते थे। 'गन कैरिज फैक्ट्री' में वह काम करते थे। वह एकाउंट्स में या किसी में थे। वह बीच-बीच में यह चाहते थे कि नौकरी छोड़कर पूरी तरह नाटक में चले जाएं। पर जैसा होता है। बड़ा मुश्किल होता है नौकरी छोड़ना। नौकरी नहीं छोड़ पा रहे थे। तब तक तो शायद अलख की शादी भी नहीं हुई थी। अलख की शादी देर से हुई शायद। खैर, फिर भारत भवन में वह आ गए। अलख भारत भवन में जो आ गए। फिर उनसे काफी उस तरह से मुलाकातें होती रहीं बीच-बीच में। मुलाकात होती थीं। फिर कई नाटक उसके पहले वह कर चुके थे। 'दुलारी बाई' में सीताराम सोनी ने उसमें लीडिंग रोल किया था साधु वाला। उन्हें लगा कि यहां आने के बाद, उन्होंने यहां पर बहुत सारे काम किए। फिर, खासतौर से एक शुरू में एक्सरसाइज इसे कहते हैं। उन्होंने फिजिकल एक्सरसाइज का एक प्रदर्शन किया। एक और बात थी कि उनको, क्योंकि वह कविता से नाटक में गए थे; तो उन्हें हमेशा इस बात की भी लालसा मन में थी और इच्छा थी कि वह कविता का मंचन करें, जिसके तहत उन्होंने पहले कभी मुक्तिबोध का कुछ किया था। पर जो भारत भवन में आने के बाद सबसे बड़ा प्रदर्शन उन्होंने किया। वह मुख्य

था 'मगध' । श्रीकांत वर्मा के 'मगध' से। उन्होंने एक ओपन में, सीढ़ियां बनी है भारत भवन में तो उन सीढ़ियों को मंच की तरह यूज़ करते हुए, उनमें ऊपर-नीचे गलियों को लेते हुए करते थे। वह एक बहुत ही अच्छा प्रदर्शन किया 'मगध' का। है ना ? एक जो, अपार्ट फ्रॉम द मतलब भारत भवन रंगमंडल से बाहर उन्होंने एक 'अंधेर नगरी' में कुछ और जोड़कर, भारतेंदु यानी भारतेंदु की कुछ ,'जगर मगर अंधेर नगर' जो नाम रखा। उनकी इच्छा थी कि जैसे रामनगर की रामलीला होती है। रामनगर की रामलीला इस तरह से होती है कि उसमें बहुत बड़ा यानी शहर में कई जगह घूम-घूम के वह होती है। यानी कहीं लंका बनती है। कहीं कुछ बनता है। कहीं कुछ। है ना ? उसमें सब काफी ऐसा ओपन स्टेज होता है। उन्होंने दूर-दूर तो नहीं पर गांधी भवन में ओपन स्पेस थी। नीचे की तरफ मैदान जैसा था। उस ओपन स्पेस का यूज़ करते हुए, उन्होंने, वह 'जगर मगर अंधेर नगर' किया था। जिसमें मोमेंट होते रहते थे। एक जगह से दूसरी जगह, दूसरी जगह से तीसरी जगह, जाकर करते थे। यह दो एक्सपेरिमेंट ऐसे थे, जो एक भारत भवन के साथ उन्होंने किया। यानी मगध का और यह उन्होंने अपने ग्रुप के साथ किया। 'नट बुंदेले' के साथ किया। उनकी एक इच्छा यह थी कि एक, हालांकि उन्होंने कोशिश भी की इस बात की ;जिस तरीके से हबीब साहब ने छत्तीसगढ़ी के कलाकार लेकर छत्तीसगढ़ी में पूरा नाटक किया। उसी तरह तरह से उनकी इच्छा थी कि वह बुंदेली में मॉडर्न थिएटर करें। उनके साथ इस तरह के लोग थे जो बुंदेलखंडी बोल सकते थे। बुंदेली के लोग थे। जबलपुर के लोग भी बुंदेली बोल सकते थे। कुछ और लोग थे जो बुंदेली बोल सकते थे। उन्होंने कोशिश की और उसका 'वेटिंग फॉर गोदो' का, बुंदेलखंडी अनुवाद करवाया। कुछ नाम था , मैं नहीं बता सकता। बुंदेलखंडी में कुछ टिपिकल-सा नाम है। छत्तीसगढ़ी में किया? यार मेरे ख्याल से तो बुंदेली में किया। अब यह कंफर्म कर लेंगे तो कंफर्म करेंगे। मेरा ख्याल है कि बुंदेली में किया क्योंकि, अलख की इच्छा ही थी कि वह एक बुंदेलखंडी में मॉडर्न थिएटर को स्टेबलिश करें। यह कोशिश उनकी पैरालिल तो, हबीब तनवीर यानी हबीब तनवीर ने जैसा छत्तीसगढ़ी में किया। उनकी ऐसी इच्छा थी। इसी तरीके से बुंदेली में कुछ करें। क्योंकि, उसी समय भारत भवन में यह कोशिश हो रही थी कि बोलियों में जैसे मालवी में एक नाटक कारंत जी ने किया। हालांकि, क्योंकि कारंत जी को तो मालवी आती नहीं थी। वह तो कन्नड़ थे। हिंदी आती थी। कन्नड़ आती थी। पर जैसे वह थे। मालवी के तेईस कलाकार थे रंगमंडल में। मालवी में उन्होंने एक कोई या तो मृच्छकटिकम् को मालवी में किया था। और उसका मालवी में तर्जुमा किसी ने किया था। मृच्छकटिकम् का अनुवाद 'गारा की गाड़ी', 'मिट्टी की गाड़ी'; मृच्छकटिकम् का ही अनुवाद है। हबीब साहब मिट्टी की गाड़ी के नाम से करते थे। यह 'गारा की गाड़ी' के नाम से मालवी में अनुवाद हुआ। जिसको कारंत जी ने किया। हरीश निगम ने नाट्य रूपांतरण किया था और बुंदेली में

एक नाटक तो हुआ। अलखनन्दन ने ही किया था। 'कॉकेशियन चौक सर्किल' का बुंदेली में अनुवाद हुआ था, जो मदन सोनी ने किया था। अलख की इच्छा यह थी कि वह बुंदेली में एक पैरालिल थिएटर इस्टैबलिश्ड करें क्योंकि वह खुद बुंदेलखंडी थे।

चन्द्र पाल - सर इसी बात से मैं एक कन्फ्यूजन दूर करना चाहता हूं। जब मैं आलोक चटर्जी सर से मिला तो वह बोल रहे हैं कि किस बेवकूफ ने यह टॉपिक तुमको दिया है और अलख जी का कोई भी काम बुंदेली में नहीं है। न ही बुंदेली में उन्होंने कोई काम किया है। केवल दो-चार लोकगीत डाल देने से और दो-चार बुंदेली के शब्द डाल देने से कोई बुंदेलखंड की लोकनाट्य परंपरा नहीं हो जाती।

राजेश जोशी- यह ठीक है। यह आलोक जी ही कह सकते हैं। अलख तो आए थे बिहार से बेसिकली। पर उनका जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा जबलपुर में बीता था। जबलपुर यूं बुंदेलखंड नहीं है। वह गोंडवाना है बुनियादी रूप से। पर वहां की भाषा बुंदेली है। यानी बुंदेली वहां का एक वह है। जैसे भोपाल मालवा नहीं है। अदरवाइज मालवा में ही आता है। ऐसी ही गोंडवाना की स्थिति है। गोंडवाना बुंदेलखंड नहीं है। पर अलख का जो कुछ भी था यानी बात का संस्कार वह बुंदेली का था। उस तरह से वह कोई वैसा नाटक नहीं करना चाहता था। जैसे बड़ा ठेठ बुंदेली परंपरा या बुंदेलखंड में जो लोकनाट्य की परंपरा है। वह नहीं। कमाल है! यह तो हबीब साहब ने भी नहीं किया। हबीब साहब ने नाचा का यूज किया। जब हबीब साहब ने जब मॉडर्न थिएटर बनाया। मॉडर्न थिएटर का मतलब क्या था? मॉडर्न थिएटर का मतलब ही यह है कि हम उन लोकनाट्य परंपराओं का इस्तेमाल करेंगे। अलखनन्दन, लोकनाट्य थोड़ी ही कर रहे हैं। हा ! भाई! उनका काम लोकनाट्य करना नहीं था। वह लोकनाट्य करने थोड़ी ही आए थे। वह तो मॉडर्न थिएटर करने आए थे। हबीब साहब जो कर रहे थे। वह भी मॉडर्न थिएटर कर रहे थे। उन्होंने सारी स्क्रिप्ट तो मॉडर्न थिएटर की चुनी ना? या खुद लिखा तो भी मॉडर्न थिएटर लिखा। ऐसे ही अलखनन्दन कर रहे थे। अलखनन्दन कोई बुंदेली, बुंदेलखंड की लोक परंपरा का नाटक थोड़ी कर रहे थे। वह तो मॉडर्न थिएटर कर रहे थे। यानी पश्चिम का सबसे मॉडर्न थिएटर 'वेटिंग फॉर गोदो' तो मॉडर्न थिएटर है। वह कर रहे थे 'अंधेर नगरी'। कोई लोक परंपरा का नाटक थोड़ी है 'अंधेर नगरी'। मॉडर्न थिएटर है। वह जो भी कुछ कर रहे थे। अलखनन्दन का काम यह नहीं था कि अलग बुंदेलखंड की कोई लोक परंपरा को जान के लोक का नाटक करना और उनका न उद्देश्य था। न कोई उनकी इच्छा थी। क्यों होनी चाहिए? किसी भी मॉडर्न थिएटर आदमी की इच्छा क्यों होनी चाहिए कि वह लोकनाट्य में चला जाए? यह तो ठीक है कि आप को आलोक जी की उस चीज को समझना चाहिए? आलोक जी जो कह रहे हैं। वह ठीक है। मैं भी यह मानता हूं कि अलखनन्दन में कोई लोकनाट्य नहीं किया और

वह लोकनाट्य करना भी नहीं चाहते थे। वह मॉडर्न थिएटर के आदमी थे। इस में दिक्कत क्या है? जब मैं यूज करूंगा लोकनाट्य का तो कुछ गीत डालूंगा। कुछ शब्द डालूंगा। कुछ लोक का, लोकनाट्य का कुछ मुझे कुछ अच्छी डिवाइस लगेगी। उसमें अच्छी प्रविधियां लगेंगी। उनका यूज करूंगा। यही तो करूंगा न भाई? ब्रेख्त ने भी यही किया। ब्रेख्त ने भी चाइना के लोकनाट्य वगैरह देखे और उसका उन्होंने यूज़ किया। यह तो होता ही है मॉडर्न यार मॉडर्न थिएटर में यह इल्जाम करना कि उन्हें यह नहीं आता था। उन्हें वह नहीं आता था। भैया हमें लोकनाट्य नहीं करना। यार! अलख को इस तरह से समझना चाहिए। मॉडर्न थिएटर के आदमी थे। पहली बात तो यह कांसेप्चुअली साफ होनी चाहिए। वह हिंदी के मॉडर्न थिएटर के व्यक्ति थे, जो मॉडर्न थिएटर करते हुए आए थे। उन्हें लगा कि मॉडर्न थिएटर की एक सीमा है। उसे उस सीमा को तोड़ने के लिए कुछ नई प्रविधियों का, नई डिवाइसेज के लिए, हम कहीं लोकनाट्य को जाने। जो हबीब साहब ने किया। जो अलखनन्दन ने किया। जो कारंत जी ने मालवी न जानते हुए भी किया। यह वह पूरा पीरियड ऐसा है जिसमें लोक नाटकों को इसीलिए देखा जा रहा था कि हिंदी का मॉडर्न थिएटर एक जगह जाकर जहां उसकी सीमा आ गई थी। उसमें कैसे कुछ नया करें। इसके लिए हम लोक की तरफ जा रहे थे। इसके लिए नहीं जा रहे थे कि हमें कोई लोकनाट्य करना है। इसको बहुत साफ कर लेना चाहिए। इस बात को दिमाग में एकदम साफ होना चाहिए। अलख जी पर काम करना है तो आप मान कर चलिए कि अलख जी एक मॉडर्न थिएटर के आदमी थे।

चन्द्र पाल - सर इसके अलावा एक और लास्ट है। जो आपने बताया। उनके जो नाटक आपने देखे हैं। उनका आपका क्या अनुभव है? उसमें आपने क्या कुछ नया देखा? क्या आपकी ऑब्जर्वेशन है सर?

राजेश जोशी- वही जो मैं बता रहा था। एक तो उन्होंने जैसे 'अंधेर नगरी' , 'जगर मगर अंधेर नगर' किया। उसे उन्होंने 'रामनगर की रामलीला' की स्टाइल में एक बड़े स्पेस यानी मैदान जैसा एक स्पेस था गांधी भवन में। उस तरह से उन्होंने 'रामनगर की रामलीला' के फॉर्म को इस 'अंधेर नगरी' को करने में एक डिवाइस निकाली। यानी एक तरह से नये ढंग से किया। यह एक बहुत दिलचस्प एक बात है। जो दूसरा नाटक उसका बहुत ही हालांकि एक नाटक और बहुत अच्छा उसने किया। वह था 'महानिर्वाण'(सतीश आलेकर), उसने किया और उसमें कारंत जी ने एक्ट किया। वह बहुत अच्छा हुआ। ऐसे कई नाटकों का नाम लिया जा सकता है जो बहुत अच्छे हुए। जहां पर उसने एक्सपेरिमेंट किए। उसमें एक तो जो उसने एक्सपेरिमेंट किया 'वेटिंग फॉर गोदो' में, जो उसे बिल्कुल उसका इन्डिनाइज ,यही कहना चाहिए कि उसका भारतीयकरण तो नहीं कहेंगे। भारतीय उसमें किया या नहीं एक तरह से उसका भारतीयकरण हुआ। है ना? यह एक उसका अच्छा हुआ और दूसरा मुझे यह लगता है 'अंधेर नगर'

और दूसरा यह याद किया जा सकता है। वैसे 'चंदा बेड़नी' भी। 'चंदा बेड़नी' अलखनंदन ने ही लिखा। 'चंदा बेड़नी' पहले वह लिख रहा था त्रिपुरारी शर्मा के साथ। फिर, इन लोगों के बीच में कुछ असहमतियां हुईं और फिर त्रिपुरारी ने अपना अलग लिखा। अलख ने अपना नाटक अलग लिखा। अलख ने फिर उसमें थोड़ा-थोड़ा बुंदेली थिएटर और इसका क्योंकि, वह लोककथा भी बुंदेलखंड की है। वह नाटक उसने, थोड़ा सा कहा जा सकता है। उसमें उसने लोक की डिवाइसेज का यूज किया, जो भी हो टोटल थिएटर की स्टाइल का जिसमें गाना, नाच और सब कुछ होता है। टोटल थिएटर जिस तरह से कंसीव किया गया ब्रेख्त के बाद। वह उसी स्टाइल का थिएटर था। उसका यह काम, बहुत अच्छा नाटक माना जाता है 'चंदा बेड़नी'। उसके शो भी बहुत हुए। इस तरह देखा जा सकता है। कुछ एक्सपेरिमेंट में इन एक्सपेरिमेंट को देखा जा सकता है। दो-तीन एक्सपेरिमेंट उसने किए। बाकी उसमें मजेदार तरह के एक्टर मतलब अभिनय भी किए। जैसे हबीब साहब का एक नाटक था, शेक्सपियर का नाटक था जिसमें जिसका अनुवाद था शायद 'बगरो बसंत'। राजा का रोल करता था या किस चीज में किसी हबीब साहब के एक नाटक में शायद 'बगरो बसंत' ही है, में वह एक रोल करता था। वह फ्रिट्ज़ बेनेविट्ज़ ने किया था। हबीब साहब ने किया। एक तो स्मृति धीरे-धीरे कम हो गई है। कोई एक नाटक याद आएगा तो बताऊंगा। हबीब साहब ने एक छोटा नाटक किया है। उसमें अलख ने अभिनय किया था। अलख ने बहुत ही कम नाटकों में अभिनय किया है। वह बाद में तो सिर्फ डायरेक्शन ही करता था बुनियादी रूप से। कहीं अलख के दिमाग में एक ऐसा मॉडर्न थिएटर था, जो टोटल थिएटर की स्टाइल का हो। यानी जिसमें म्यूजिक हो, जिसमें सब कुछ हो और दूसरा, जो उसकी इच्छा थी जो उस तरह से नहीं बना। पर, उसकी इच्छा थी कि बुंदेलखंडी का इस्तेमाल करते हुए एक मॉडर्न थिएटर बने। यह तमाम जो इंप्रेशन मुझे है। वह यही है।

शशांक[6]**,**सुप्रसिद्ध कहानीकार

शशांक - मैं जबलपुर में पढ़ रहा था। उस दौरान भेंट ही हुई थी उससे। साथ रहे हम लोग। फिर वह भोपाल आ गए। फिर भोपाल में वह भारत भवन में थे। नाट्य संस्था उसकी और मगर उसके बाद फिर धीरे-धीरे मुलाकात कम हो गई उससे।

[6] प्रसिद्ध कहानीकार शशांक से 19 मई 2023 को लिया गया टेलीफोनिक साक्षात्कार

चन्द्र पाल - आपको ज्ञानरंजन जी ने कमरे में बंद कर दिया था। वह जो आपने नुक्कड़ नाटक लिखा था- 'जैसे हम लोग'

शशांक – दरअसल, अलखनन्दन ने 'चिन्दिओं की झालर' नाम से एक नाटक लिखा था। वह करना चाहता था। उन लोगों को, 'विवेचना' चलाते थे ज्ञान। ज्ञान जी ने कहा कि नहीं शशांक ,तुम्हारी रूपरेखा ठीक है। तुम घर में रहो। मैं हॉस्टल में था। दो दिन के अंदर तुम लिख कर दे दो। जबरदस्ती की गई। मुझे बंद कर दिया गया। फिर मैंने लिखा। हम और अलख कॉफी हाउस में रोज बैठते थे। तो वह एक मस्त आदमी थे। उनके नाटक अच्छे हैं। उनका सबसे अच्छा नाटक हुआ है- 'वेटिंग फॉर गोदो'। सबसे अच्छा वही है। फिर 'नट बुंदेले' संस्था से उन्होंने जो बुंदेली में किए। वह भी अच्छे नाटक हैं।

चन्द्र पाल - सर मेरा पहला सवाल आपसे यह है की अलखनन्दन जी का जो रंग व्यक्तित्व है और आपके बीच में जो एक संबंध है उनसे तो उसको याद करते हुए आपकी जो भी ऑब्जर्वेशन रही हो, जो भी अनुभव रहे हों। उसको लेकर आपकी राय?

शशांक - मुझे 1974 में मिले अलखनन्दन। अक्सर हम लोगों की जो मुलाकातें थीं कॉफी हाउस में ही होती थीं। जब पहले उनको देखा। उनके लंबे घुंघराले, बड़े बाल थे। खादी के बड़े-बड़े छापों वाली ढीली-ढाली कुर्तानुमा शर्ट पहनते थे और बातचीत में बीच-बीच में चश्मा निकाल-निकालकर बात करना। मतलब एक ट्रांस में जिस तरह आदमी प्रवेश कर जाता है। बेसुधी में कभी-कभी थोड़ी-थोड़ी बातचीत करता है। वैसे ही वह बात करते थे। उनका बहुत आकर्षक व्यक्तित्व था। इसके पीछे कहीं न कहीं उनकी जो वेशभूषा है, उसमें कुछ वह रेणु जी का प्रभाव झलकता था। वह रेणु की बातें भी बहुत करते थे। उनका स्वभाव जो था बहुत मीठा था। बातचीत अच्छे से करते थे। हमारी इस तरह की दोस्ती थी। वह प्रायः कॉफी हाउस में ही आया करते थे। उन दिनों उन्होंने एक नाटक 'चिन्दयों की झालर' लिखा था। साथ में वह कविताएं भी लिखते थे। कविताओं का जो वाचन है ,वह भी उन्होंने काफी हाउस में भी किया। मुझे ऐसा लगता है। उनकी बातचीत में भी, कविताओं पर भी, उन पर समाजवादी पार्टी विचारधारा का बहुत प्रभाव था। इस नाते वह भवानी भाई! भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं को वह बहुत पसंद किया करते थे। मेरे संबंध तो यही है। दोस्ताना संबंध रहे हैं। चूंकि, नाटक वह अभी शुरुआत ही थी। उनके नाटक की। 1975 में नाटक की योजना बनी, 'चिंदियों में झालर' की। नाट्य मंचन किया जाए। उस पर 'विवेचना' में बैठक हुई। 'विवेचना' एक साहित्यिक ,सांस्कृतिक और नाटक संस्था थी। इसकी शुरुआत हरिशंकर परसाई जी ने की थी। फिर उसका दिशा निर्देशन, फिर उसमें सक्रियता ज्ञानरंजन जी ने की थी। वहां यह नाटक पढ़ा गया। नाटक

पढ़ने के बाद फिर लोगों का उत्साह उतना दिखाई नहीं पड़ रहा था। फिर मैंने उनको बताया कि आजकल जो है थोड़ा एक 'सड़क नाटक'(नुक्कड़ नाटक) ,सड़क नाटक की शुरुआत भी हुई थी उस समय सत्तर-पचहत्तर में। रमेश उपाध्याय ने बांग्ला नाटक जो कुछ हिंदी में किए गए थे। मैंने उनको बताया कि बेरोजगार, नौजवान, मजदूर, फोटोग्राफर को एक लेकर एक नाटक किया जाए, किया जा सकता है जो थोड़ा बड़ा होना चाहिए। आमतौर पर पहले सड़क नाटक चौदह-पंद्रह मिनट के होते थे। एक दो गीत होते थे। फिर वह बढ़ जाता था। फिर नाटक को करने के बाद, फिर जो टीम होती थी दूसरे चौराहे पर जाकर करने लगती थी। मगर मेरी राय यह थी कि आप नाटक इतना थोड़ा बड़ा हो जो दूसरे चौक पर किया जाए। उसे लोग देखकर पसंद करें, जिसमें नाटक भी हो और संदेश भी हो। यह जो मैंने बताया प्रारूप कि ऐसा होना चाहिए। यह लोग मेरे हॉस्टल के कमरे में ही बैठे थे। ज्ञान जी ने कहा कि अब यह तय हो गया कि तुम इस नाटक को लिखकर मुझे दोगे। इसको ही अलख खेलेंगे। कोई दूसरा नहीं खेलेगा। तुमको, जो है परसों तक दे देना है। तुम निकल नहीं सकते। उस मीटिंग में मलयज भी थे। श्यामसुंदर दुबे थे। ज्ञानरंजन जी थे। हिमांशु राय थे। अलख थे। इस प्रकार मैंने नाटक लिखा। उस नाटक को अलख ने देखा। इस नाटक की जो पहली रिहर्सल हुई। पहला नाटक का प्रदर्शन हुआ। 1 मई 1975 को हुआ। उस 75 में जो नाटक किया गया। वह मई में होने से गन कैरिज फैक्ट्री, व्हीकल फैक्ट्री, इनके जो मजदूर जो हैं बहुत बड़ी तादाद में घनश्याम दास एक चौराहा है, वहां पर प्रमुख इलाका वहां पर यह नाटक हुआ। इतने अधिक लोग थे। मने इतने नाटकों में तो मैंने देखे ही नहीं है। हजारों की संख्या में लोग थे। मगर वे नाटक के लिए नहीं, वे अपने जुलूस के लिए थे। मगर उन सब ने भी नाटक देखा। इस नाटक में नंदकिशोर पांडे, नितिन श्रीवास्तव, अजय घोष के अलावा अलखनन्दन की भी भूमिकाएं थीं। डायरेक्शन भी अलखनन्दन का था। इससे अलखनन्दन को बहुत ज्यादा, उनके डायरेक्शन में बड़ी प्रशंसा मिली। उनकी नजदीकी भी हम लोगों से बढ़ी। कभी कविताओं पर बातचीत हो रही है। नाटकों पर बातचीत हो रही है। इसके बाद अलख ने सैमुअल बैकेट का नाटक 'वेटिंग फॉर गोदो' के लिए तैयारी शुरू की। उस नाटक को किया। उनके सभी नाटकों में मुझे उनके डायरेक्शन का प्रदर्शन सबसे अच्छा 'वेटिंग फॉर गोदो' का ही प्रभावित करता है। क्योंकि, उसमें उन्होंने अपनी प्रयोगशीलता का भरपूर किया उपयोग किया। इस नाटक को बहुत ही रोचक सामने रखा। बाद में चलकर अलख वहां 'गन कैरिज फैक्ट्री' में काम करते थे। उसमें वह अकाउंटेंट के डिपार्टमेंट में थे। वहां से हटकर वह असिस्टेंट थिएटर डायरेक्टर रंगमंडल में आ गए। भोपाल आ गए वो शिफ्ट होकर। यहां पर उन्होंने रंगमंडल संभाला और नाटकों के लिए काम करवाया। बहुत अच्छे ढंग से लोगों को सिखाया। एक रेपर्टरी में जैसे लोगों को शिक्षा दी जाती है। उन्होंने अपने अभिनेताओं जो भी हैं ,उनको शिक्षा दी। इसके

अलावा फिर बाद में उन्होंने अपना लोकनाट्य के ऊपर, लोक कलाओं पर आधारित एक के संस्था बनाई जिससे लोक कलाओं पर खासतौर से जो यहां के सागर और खजुराहो, छत्तीसगढ़ के इलाके की भाषाओं को लेकर के, बुंदेली को लेकर 'नट बुंदेले' ,उनकी संस्था का नाम था। उन्होंने कुछ नाटक यहां बनाएं। यह उनका विकास है। मगर मैं भी भोपाल में आया। पढ़कर 1975 के बाद। फिर मैं अपनी नौकरियों में इधर से उधर चला गया। बीच-बीच में आता था। मुलाकात होती थी। मगर वह दोस्ती की प्रगाढ़ता थम गई थी। क्योंकि, हम लोग अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग रहे हैं। मगर मैं कहीं गया हूं तो उनको मैंने वहां बुलाने का प्रयत्न किया है। जैसे छतरपुर में, पटना में, हमारे कार्यक्रमों में हम बुलाते थे उनको।

चन्द्र पाल - लगभग हमने उनकी जिंदगी को, उनके रंगकर्म को तीन भागों में बैठकर देखा था। एक तो पहला फेज तो आपने बताया ही कि जबलपुर का है; जिसमें वह 'दुलारी बाई,' 'वेटिंग फॉर गोदो' और आपका लिखा हुआ नुक्कड़ नाटक(जैसे हम लोग' और 'अखाड़े से बाहर', रस गंधर्व, इक तारे की आंख वगैरह उन्होंने किए हैं। वहां पर गिनी-पिग भी किया है। दूसरा फेज उनका बी वी कारंत जी के साथ भारत भवन रंगमंडल का है। तीसरा जो है जिसका आप जिक्र कर रहे थे 'नट बुंदेले' का। एक तरह की तीन साढ़े तीन दशक की उनकी जो है एक रंग-यात्रा हुई है। आपने उनकी कुछ नाटकों की प्रस्तुतियां देखी ही होंगी शुरुआती तौर पर। इसके माध्यम से उनकी कुछ रंग शैलियों को पकड़ सकते हैं क्या ?

शशांक – देखिए! जैसा कि मैंने बताया कि 'वेटिंग फॉर गोदो' में तो आपको आधुनिक तत्व स्पष्ट तौर पर सामने दिखाई पड़ेंगे। उसमें नाटक का आलेख भी उसको बहुत सुविधा प्रदान करता है। मगर जैसे 'दुलारी बाई' है या दूसरे नाटकों के आपने नाम लिए हैं। उन सभी में आपको बुंदेली के तत्व धीरे-धीरे, उन्होंने मुझे लगता है कि यह तय कर लिया था कि बहुत अधिक आधुनिकता के बजाय उस आधुनिकता को लोक संगीत में पिरोया जाना ज्यादा कारगर और ज्यादा प्रभावी होगा। जैसे आप 'दुलारी बाई' में ही आप देखें। उसमें जो गीत, संगीत और उनकी प्रस्तुति है। उसमें आपके यहां के बुंदेली की शैलियों का प्रभाव दिखाई देता है। मुझे यह लगता है कि अंततः यह पाया कि लोक तत्वों का समावेश कर के नाटक को आगे बढ़ाया जा सकता है।

चन्द्र पाल – समाज को लेकर जो उनका चिंतन है। समाज में जो धार्मिक रूढ़ियां, पाखंड है और राजनीतिक जो विद्रूपताएं हैं, जो देखने को मिलती हैं। उन पर सर उनके नाटक और उनका लेखन ,उनका व्यक्तित्व किस ढंग से वार करता है? किस ढंग से अलखनन्दन अपने नाटकों में इन सब चीजों को उभारते थे?

शशांक - निश्चित रूप से उनके नाटकों में यह बात आती है। जैसे मेरे ही 'जैसे हम लोग' को उन्होंने किया। वह उस पर उनका एक वाम विचारधारा को लेकर एकदम स्पष्ट रूप दिखाई पड़ता है 1975 में। बातचीत में भी वह काफी स्पष्ट वामपंथी थे। मगर धीरे-धीरे उनके नाटकों में यह चीज जो है थोड़ी कम हुई। समाजवादी विचारधारा भी उनकी थोड़ी कम हुई। जो नाटक हुए उनमें प्रयोगशीलता और मंच सज्जा यह दो चीजें उनकी मुझे हावी दिखाई पड़ती हैं। एक खास किस्म का खुलापन, निश्चिंतता और अपने ही लोगों के बीच में उन चीजों को अलग ढंग से देखना सोचना जिसमें यह चीजें दिखाई पड़ती हैं।

चन्द्र पाल - सर अंतिम कमेंट आपसे यह चाहता हूं। सर अलखनन्दन को हम बहुत कम जानते हैं। बहुत एकेडमिक चर्चा उन पर नहीं हुई। एक ऐसा व्यक्तित्व जो जबलपुर शहर से निकलकर, बी वी कारंत के साथ में आठ-दस साल काम करने वाला और जिसने लगभग हर उस रंग शैली को चाहे वह एब्सर्ड रंगशैली ,रियलिस्टिक , लोकनाट्य हो और कविताओं का मंचन हो। इतनी तरह की चीजें की। कवि भी थे। लेखन भी करते थे। नाटककार भी थे। अगर हम उनके योगदान को भारतीय रंगमंच में रेखांकित करना चाहें तो सर किस प्रकार से कर सकते हैं ?

शशांक - मुझे ऐसा लगता है कि देखिए! उस वक्त पर जबकि वह 'वेटिंग फॉर गोदो' नाटक खेल चुके थे। उसमें आप यह देखेंगे कि उनमें जिस तरह सबसे बड़ी रेखांकित करने वाली चीज है कि उन्होंने बुंदेली लोकगीतों और बुंदेली नाटक परंपराओं का समावेश किया था। ठीक वैसे ही जैसे बंसी कौल अपने नाटकों में, उनका भी समय काल यही है; जो विदूषक तत्वों का इस्तेमाल करते थे। एक ही समय के दो नाटककारों को यदि आप देखें। प्रस्तुतियों में आपको एक ताजापन दोनों में दिखेगा। मगर मध्य प्रदेश की बुंदेली का एक तत्व उसमें आपको ज्यादा अलखनंदन में दिखाई देगा पड़ता है। मगर मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैं देखूं|, मैंने तो कारंत जी के भी यह सब नाटक देखे हैं और उनके साथ यह रहे भी हैं। मैं यह पाता हूं कि जैसे आप एक किताब में एक कहानी पढ़ते हैं। उसको आप कुछ दिनों बाद विस्मृत होने लगते हैं। आपका मन करता है तो उस कहानी को पलट कर पढ़ लेते हैं। इस तरह से आप लेखक के साथ होते हैं। इस तरह से कहानीकार के साथ होते हैं। मगर नाटक के साथ अक्सर मुझे लगता है कि दो-चार चुटीले संवादों के अलावा आपकी स्मृतियों में जो चीज बची रहती है। वह बहुत मोहक आवरण जैसा ही होता है। वह समग्र रूप से अब उस नाटक के बारे में यह मैं अपनी बात कहूंगा दूसरों की नहीं, तो उस नाटक में चाहे कितने भी बड़े नाटककार का हो, कोई याद नहीं रह पाते। ठीक वैसे ही जैसे अच्छी फिल्मों के कुछ चुनिंदा शॉर्ट्स आपको याद रह जाते हैं सबसे। अलखनन्दन की सबसे प्रमुख और विशिष्ट बात मुझे लगती है। अलखनन्दन एक

कवि के रूप में बहुत सुदृढ़,तीक्ष्ण और उनके पास कहने को काफी कुछ था। मुझे कुछ ऐसा लगता है कि उनके कवि होने के, कविताओं के बारे में बहुत कम बातचीत की गई है। जबकि, उनकी समग्र कविताओं का अलग से वह होना चाहिए। मैं समझता हूं कि उनके नाटककार के समकक्ष उनका कवि भी बहुत उच्च स्तर पर है। शिखर पर है।

कलावसुधा

ISSN-2348-3660
जुलाई–दिसम्बर (संयुक्तांक), 2022
Peer Reviewed

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका

कलावसुधा

लोक संस्कृति प्रसंग

कलावसुधा

प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका

■ वर्ष : 22 ■ अंक : 38-39 ■ जुलाई–दिसम्बर (संयुक्तांक), 2022

ISSN-2348-3660

सलाहकार मण्डल

. पद्मश्री प्रो. राज बिसारिया
. पद्मश्री डॉ. पुरू दाधीच
. पद्मश्री दया प्रकाश सिन्हा
. पद्मश्री राम दयाल शर्मा
. पद्मश्री अजीता श्रीवास्तव
. प्रो. सुरेन्द्र दुबे
. प्रो. राधेश्याम जायसवाल
. प्रो. ऋत्विक सान्याल
. प्रो. सुनीरा कासलीवाल व्यास
0. रामचन्द्र पुलावर

समीक्षा मण्डल

1. प्रो. के. शशी कुमार
2. प्रो. संगीता पण्डित
3. प्रो. राजेश शाह
4. प्रो. उषा सिन्हा
5. प्रो. अनिल बिहारी ब्योहार
6. श्रीमती मन्जरी सिन्हा
7. डॉ. दीक्षा नागर
8. शशांक दुबे
9. कुमार अनुपम
10. डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा

सम्पादकीय मण्डल

1. डॉ. महेन्द्र भानावत
2. प्रो. कुमकुम धर
3. डॉ. श्याम सुन्दर दुबे
4. डॉ. चेतना ज्योतिष ब्योहार
5. प्रो. ऋचा नागर
6. डॉ. अरविन्द कुमार
7. डॉ. वीरेन्द्र निर्झर
8. भारत रत्न भार्गव
9. डॉ. गौतम चटर्जी
10. डॉ. ज़ाकिर अली 'रजनीश'

प्रधान सम्पादक	सम्पादक	सह–सम्पादक
शाखा बंद्योपाध्याय	डॉ. उषा बनर्जी	डॉ. ज्योति सिंह

सम्पादकीय ठिकाना :

कला वसुधा 'सांझी–प्रिया' बी–8, डिफेन्स कालोनी,
तेलीबाग, लखनऊ – 226029

R.N.I. No. : UPHIN/2001/6035

ISSN-2348-3660

वेबसाइट : **https://www.kalavasudha.com**

ई–मेल : **kalavasudha01@gmail.com**

मो. : **8052557608**, **9889835202**, **8009800436**
(प्रधान संपादक) (संपादक) (सह–संपादक)

"कला वसुधा का वेब अंक आप Not Nul (https://www.notnul.com) पर पढ़ सकते हैं।"

कलावसुधा
प्रदर्शकारी कलाओं की त्रैमासिक पत्रिका
■ वर्ष : 22 ■ अंक : 38-39 ■ जुलाई–दिसम्बर (संयुक्तांक), 2022
ISSN-2348-3660

सिलसिला.....

लोक संस्कृति प्रसंग

कहना–सुनना — 5

1. लोक वेद का ताना–बाना भारतीय संस्कृति — –डॉ. श्याम सुन्दर दुबे — 8
2. लोक संस्कृति की अवधारणा — –डॉ. कृष्णा जी श्रीवास्तव — 11
3. जनजाति संस्कृति साहित्य और समाज — –प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा — 14
4. लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का अन्तः सम्बन्ध — –मंजरी सिन्हा — 20
5. लोक संस्कृति — –डॉ. चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' — 22
6. हमारी लोक संस्कृति : हमारी धरोहर — –डॉ. सरिता पाठक यजुर्वेदी — 24
7. आदिम अनुष्ठान में शिव–पार्वती द्वारा ग्रामानुग्राम परिक्रमा — –डॉ. महेन्द्र भानावत — 27
8. लोक गीतों में अविव्यक्त लोक भाषा एवं संस्कृति — –डॉ. उषा सिन्हा — 30
9. लोक संस्कृति : सर्वज्ञता लोकज्ञता — –कीर्ति दीक्षित — 33
10. लोक संस्कृति में लोकोत्तर चेतना — –डॉ. गौतम चटर्जी — 37
11. लोक–साहित्य एवं लोक–संस्कृति में इतिहास — –डॉ. लहरी राम मीणा — 39
12. सांस्कृतिक संक्रमण और लोक कला की भूमिका — –डॉ. अर्जुनदास केसरी — 44
13. बुन्देली संस्कृति और जीवन दर्शन — –डा. बीरेन्द्र 'निर्झर' — 46
14. समाज प्रबोधन का एक प्रभावी माध्यम : 'कीर्तन' — –डा. चंद्रशेखर कणसे / डॉ. बलीराम धापसे — 54
15. वन–संस्कृति से हम क्या सीख सकते है? — –नरेंद्र नीरव — 58
16. लोक गीतों में पर्यावरण सुरक्षा — –उषा सक्सेना — 60
17. भारतीय लोकसंस्कृति में प्रेम तथा धार्मिक लोकनाटक — –डा. ममता धवन — 63
18. लोक गीत एवं संस्कार — –डॉ. उषा बनर्जी — 65
19. बुन्देलभूमि : ऋषि–मुनियों की साधना स्थली
लोक देवता — –डॉ. सरोज गुप्ता — 68
20. लोरी : लोक संस्कृति का स्वर सौंदर्य लोकगायन — –डा. पंकज बाला श्रीवास्तवा — 72
21. आदिवासियत के कला प्रतिमान एवं संस्कृति — –डा. आकांक्षा तिवारी — 75
22. यादों के सहारे
जीवन शैली में झलकती लोकसंस्कृती — –मनोज भट्ट 'गढवाली' — 77
23. सोलह संस्कार तथा लोकजीवन में गाये जाने वाले संस्कार गीत सार संक्षेप — –बबिता पाण्डेय — 81
24. सूफ़ी साधक और गाँव–गली के गायक–बंगाल के बाउल — –जयश्री पुरवार — 89
25. सामाजिक समरसता की वाहक 'रम्मत' — –राघवेन्द्र रावत — 95
26. वही गायन — –डा. महिमा मिश्रा अय्यंगार — 97
27. कॉकवरक भाषा भाषी की सभ्यता और संस्कृति — –डॉ. स्मिता देववर्मा / नरेन्द्र देववर्मा — 98
28. हे बीरा मिस्री के बूटे बाबुल राजा ब्याही मैं उजली — –डॉ. रमा यादव — 101
29. काँगडा की लोक–सँस्कृति
(चित्रकला और लोक–गीत के संदर्भ में) — –डॉ. निशा नाग — 104

30.	उत्तराखण्ड के गौरवशाली इतिहास का आईना लोक गाथा गायन परम्परा	–डॉ. दीपा जोशी	110
31.	राजस्थान की लोक संस्कृति संगीत के सन्दर्भ में	–डॉ. पामिल मोदी	112
32.	लोक–रंग से रंगा पूर्वोत्तर भारत	–डॉ. सुनील कुमार	117
33.	भारतीय संस्कृति के संवाहक : हमारे लोकगीत	–डॉ. अलका निवेदन	120
34.	भारतीय संस्कृति : विभिन्न रूप	–डा. चंपा मासीवाल	121
35.	लोक–संस्कृति में अवधी कहावतों का सामाजिक सरोकार	–जिज्ञासा सिंह	125
36.	मध्यप्रदेश की लोक संस्कृति एवम् विलुप्त होती लोक कलाएं	–वसुंधरा व्यास	129
37.	ठेठ बैसवारा का ठाठ	–डॉ. पुष्पा बरनवाल	131
38.	लोक संस्कृति के संवर्धन में हिमाचल की नृत्य कला का स्थान : एक विश्लेषण	–डॉ. संतोष कुमार	137
39.	हिमालयी संस्कृति : हरि प्रदर्शनी	–डॉ. पंकज उप्रेती	141
40.	लोकगीतों में संस्कृति का परिदृष्य कराते लोकगीत	–डॉ. सृष्टि माथुर	143
41.	लोकगीतों में जीवन्त सांस्कृतिक धरोहरें	–डॉ. मधु रानी शुक्ला	145
42.	लोक–संस्कृति में अंग–आलेखन : 'गोदना' के विशेष सन्दर्भ में	–डॉ. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'	148
43.	लोक संस्कृति, जन संघर्ष, और नौ संगतिनों की सामूहिक लेखनी	–प्रोफेसर ऋचा नागर	151
44.	अकूत सांस्कृतिक संपदा का भंडार–हरियाणा	–पंडित देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'	157
45.	बनारस की लोक संस्कृति : "जरई माता" एवं "रतजग्गा"	–अपराजिता पटेल	162
46.	लोक जीवन में दुख फक्कड़ता और हास्य ही जीवन है लोककलाओं में महिलाओं की सक्रिय और सार्थक भूमिका	–योग मिश्र	164
47.	बुंदेली लोकसंस्कृति और अलखनन्दन के बुंदेली लोकशैलीबद्ध नाटक	–चन्द्र पाल	167 – 170
48.	मालवा की लोक संस्कृति	–डा. अर्चना कुशवाहा	171
49.	उत्तर प्रदेश की लोकसंस्कृति में लोकनृत्य	–कौस्तुभ आनंद चंदोला	174
50.	लोकशाहीर अण्णा भाऊ साठे और अमर शेख़ आंदोलन में जिन्होंने लोककलाओं को हथियार की तरह इस्तेमाल किया	–ज़ाहिद खान	177
51.	उत्तराखण्ड की लोक संस्कृति विभिन्नता से परिपूर्ण	–गीता गैरोला	179
52.	भँड़ैती–परम्परा और उत्तर–प्रदेश	–डॉ. किरण शर्मा	182
53.	मयनपुरी के लोकरंग	–डॉ. बी.के. चन्द्रसखी	185
54.	रवांई क्षेत्र के लोक साहित्य में स्त्री	–महावीर रवांल्टा	192
55.	लोक परम्पराओं में गारी गीत	–डॉ. अमिता दुबे	196
56.	कजली–एक परम्परा, पर्व एवं उत्सव	–अजीता श्रीवास्तव	198
57.	कन्नौजी लोक संस्कृति	–डा अपूर्वा अवस्थी	201
58.	लोक गीति के विविध आयाम : नज़रूल गीति के संदर्भ में	–डॉ. देबोश्री रॉय चक्रवर्ती	203
59.	लोक नृत्य की उत्पत्ति और विकास	–प्रो. डॉ. भगवान दास माणिक महंत	205
60.	अवधी लोक सस्कृति	–डा. राम बहादुर मिश्र	207
61.	बज्जिका लोकगीतों में शिव महिमा	–डॉ. अरविन्द कुमार	209
62.	छत्तीसगढ़ के लोक खेलों का विवरणात्मक परिचय	–डा. श्रद्धा चोपडा	212
63.	हिंदी सिनेमा में लोक संगीत ठंडे–ठंडे हरे–भरे नीम तले	–शशांक दुबे	217
64.	लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का तुलनात्मक अध्ययन	–डॉ. पूनम श्रीवास्तव	220
65.	राजस्थानी नृत्यों से भी आती है माटी की महक	–डा. सन्तोष आशीष	222
66.	लोक संगीत और उसकी विशेषतायें	–आभा सक्सेना	226
67.	रामलीला कुमाऊँनी महाकाव्य	–ललित मोहन जोशी	229

68.	लोक संस्कृति और आकाशवाणी	–केवल कुमार	231
69.	हल्लौर की लोक संस्कृति	–सुल्तान अहमद रिजवी	233
70.	लोक संस्कृति की आधार शिला आत्मीयता	–डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा	235
71.	लोक संस्कृति	–ललित सिंह पोखरिया	236
72.	शोधालेख : उत्तरकाशी जनपद की लोक संस्कृति शोधालेख : उत्तरकाशी जनपद में प्रचलित लोकनृत्य	–डॉ. सुबाष चन्द सिंह कुशवाहा	239
73.	लोक परंपरा का ढोल नृत्य, कोकणा जनजाती की संस्कृती का आयना	–वर्षा कोल्हटकर	248
74.	अवध का पारम्परिक लोक नृत्य हड़ाहड़ाई	–कुसुम वर्मा	252
75.	लोक नृत्य पंथी	–डॉ. मानव महंत	254
76.	लोक हम न मरिहैं, मरिहैं संसारा	–अतुल द्विवेदी	256
77.	लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत	–आशा श्रीवास्तव	258
78.	लोक महाकाव्य लोरिकायन	–डॉ. ज्योति सिंह	260
79.	गवरी लोकनाट्य में अभिव्यक्त जातीय बोध	–ललित कुमार सिंह	262
80.	अवध की भित्तिचित्र कला, लोकगीत और लोक रीति–रिवाज पर महिलाओं का एकाधिकार..एक लुप्त होती विरासत	–प्रतिमा सिंह	264
81.	बिहार की लोक–संस्कृति के विविध आयाम	–डॉ. राकेश कुमार	269
82.	जयपुर में आखिरी सांस ले रही लोकगीतों की अनूठी गालीबाजी	–राकेश जैन कोटखाद्दा	271
83.	राम चरित मानस में लोक संस्कृति	–विनीता मिश्रा	275
84.	लोक संस्कृति का पर्याय लोक गीत	–डॉ. शालिनी शाहू	277
85.	Tribal of Traditional Folk Dance of Odisha (Spotlight on Male origin characters from the Folk Traditions of Maharashtra)	–Dhyananand Panda	279
86.	Benedictions, Bravado & Beguilement (Spotlight on Male origin characters from the Folk Traditions of Maharashtra)	–Sunil Sunkara	281
87.	Relevance of Folk Culture in Contemporary Society with Special Reference to the "BAUL" of West Bengal	–Keya Chanda (Chakraborty)	284
88.	प्रतिक्रिया		286

प्रधान सम्पादक
शाखा बंद्योपाध्याय

सम्पादक
डॉ. उषा बनर्जी

सह–सम्पादक
डॉ. ज्योति सिंह

विधि परामर्शी
रमेश चन्द्र पाण्डेय
अजीत श्रीवास्तव

आवरण चित्र
कुमार अनुपम

व्यवस्था सहयोगी
देवाशीष,
पर्ण शिशिर,
ऋचा,
हरिपाल,
राहुल

संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली द्वारा आंशिक आर्थिक सहयोग प्राप्त

सर्वाधिकार सुरक्षित
पत्रिका के किसी भी अंश का मंचन प्रकाशन अथवा प्रसारण करने से पूर्व सम्पादक की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

पत्रिका से जुड़े सभी व्यक्ति कला सेवा हेतु अवैतनिक एवं अव्यवसायिक हैं।

न्याय क्षेत्र लखनऊ

इस अंक का मूल्य 400/–

सम्पादकीय ठिकाना : *कला वसुधा* 'सांझी–प्रिया' बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग, लखनऊ – **226029**
वेबसाइट : **www.kalavasudha.com** ई–मेल : **kalavasudha01@gmail.com**
मो. : **8052557608, 9889835202**

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक डॉ. उषा बनर्जी द्वारा शिवम् आर्ट्स **512/569**, दूसरी गली, निशातगंज, लखनऊ से मुद्रित तथा 'सांझी–प्रिया' बी–8, डिफेन्स कालोनी, तेलीबाग लखनऊ – **226029** से प्रकाशित।

प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे 'कला वसुधा' और सम्पादक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

बुंदेली लोक संस्कृति और अलखनन्दन के बुंदेली लोकशैलीबद्ध नाटक

O चन्द्र पाल

संस्कृतियों से हम किसी क्षेत्र विशेष के रहन–सहन, खानपान, धर्म और साधनाएं, संगीत, गायन, वादन, चित्रकला, स्थापत्य नृत्य, नाट्य, वाद्य, सामुदायिक सामाजिक संरचना, तीज त्योहार, विशेष उद्योग वाणिज्य व्यापार मेले इत्यादि की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। डॉ. काशी प्रसाद त्रिपाठी संस्कृति को समझाते हुए लिखते हैं कि धर्म शब्द से जिन अनेक अर्थों की अभिव्यक्ति होती है, उनमें से एक वह जीवन पद्धति भी है, जो मानव को पशु समूह से पृथक करती है। अर्थात् अपने प्रारंभिक काल से ही मनुष्य न केवल भौतिक रूप में, अपितु आंतरिक और बाह्य प्रतिक्रियाएं भी होती हैं, जो संस्कृति को जन्म देती हैं।[1] अन्य क्षेत्रों की संस्कृतियों की भांति बुंदेली संस्कृति संमृद्ध और विशिष्ट है। बुंदेली लोक संस्कृति अपनी गठन व बनावट के लिए दुनिया भर में जानी जाती है। बुंदेलखंड की लोक संस्कृति की संमृद्ध परम्परा है। बुंदेलखंड की जमीन उपजाऊ न होते हुए भी यह अपने में एक विशाल सांस्कृतिक धरोहर छुपाए हुए है। संस्कृति का खजाना यहां अनमोल रत्न के समान है। आप चाहे अन्य क्षेत्रों में बुंदेलखंड को कितना भी पिछड़ा क्षेत्र घोषित करें मगर यह क्षेत्र लोक संस्कृति में हमेशा से अद्वितीय रहा है। बुंदेलखंड घोषित रूप से तो सिर्फ सात जिले उत्तर प्रदेश से यथा–झाँसी, ललितपुर, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बाँदा, चित्रकूट तथा मध्यप्रदेश से छः जिले यथा–छतरपुर, पन्ना, दमोह, सागर, टीकमगढ़, दतिया आदि शामिल हैं। मगर यह क्षेत्र मात्र तेरह जिलों तक सीमित नहीं है। इसके अलावा ग्वालियर के पूर्वी हिस्से जबलपुर, अशोक नगर, बीना, छिंदवाड़ा, बैतूल, नरसिंह पुर, सिवनी इत्यादि में भी आपको बुंदेली बोली, खान पान, रहन सहन, बुंदेली संस्कृति व सभ्यता, परम्परा देखने को मिल जाएगी। बुंदेली माटी वीर प्रसवा रही है। यह क्षेत्र मध्य देश में स्थित है। दस नदियों से घिरे भूभाग होने के कारण यह 'दशार्ण' कहलाता था। प्राचीनकाल में इसे जेजाकभुक्ति, जुझौती, चेदि इत्यादि नाम से जाना जाता था। बुंदेली लोक संस्कृति अपने गायन–वादन के साथ साथ नृत्य, संगीत, नाट्य, रहन सहन, खान पान में विशिष्ट और मौलिक रही है। बुंदेलखंड में सघन आबादी नहीं पाई जाती है। यहां प्रदूषण की भी खास समस्या नहीं है। इसका कारण यह है कि यहाँ पानी की कमी के चलते औद्योगिक इकाइयां कम लगी हैं। इस भूभाग पर बहुत बड़े महानगर भी नहीं हैं। इससे गंदे नालों की संख्या कम ही है। बुंदेलखंड से जितनी भी नदियाँ यथा केन, बेतवा, धसान, मंदाकिनी यमुना इत्यादि अत्यंत स्वच्छ और सुंदर रमणीय हैं। बुंदेलखंड अपनी कंकरीली–पथरीली मिट्टी के लिए भी जाना जाता है तथा पठारी और चट्टानी भूभाग के लिए भी। इसकी सीमा भी विंध्याचल पर्वत श्रेणी से जा लगती है जिस कारण यहाँ की मिट्टी कम उपजाऊ है। यहाँ दलहनी व तिलहनी फसलें ही बड़ी मात्रा में उपजती हैं। बुंदेलखंड के लोग दिल्ली तो काम की तलाश में बहुतायत जाते हैं। अन्य शहरों में बुन्देलखण्डियों का प्रसार बहुत कम है। बुन्देलखण्ड के ज्यादातर निवासी निम्नमध्यवर्गीय आय वाले दिहाड़ी मजदूरी और खेती–किसानी के कार्यों में संलग्न हैं। बुन्देलखण्डी पड़ोसी देशों और समुद्र पार के देशों में कम संख्या में जाते हैं। ज्यादा दिनों तक घर से दूर नहीं रह पाते हैं। काम भर का कमाते हैं और चलते बनते हैं। इसीलिए भोजपुरी की तरह बुंदेली लोक संस्कृति व्यापक रूप धारण नहीं कर पायी। बुंदेली खान पान, रहन सहन आपको देश के सभी शहरों में देखने नहीं मिलेगा। मजेदार बात यह है कि शहरों में बुन्देलखण्डियों की कोई खास पहचान नहीं बन पाई है और तो और उन्हें बिहार के निवासी समझ लिया जाता है। बुंदेली समाज एक जीवंत और जीवट शैली का है। बुन्देलखण्डी व्यवसायिक और पूंजीगत दृष्टिकोण के कम ही होते हैं। इसी कारण बुंदेली लोक संस्कृति का व्यापक प्रचार प्रसार कम ही हुआ है या न के बराबर हुआ है। इसका अर्थ कतई न लिया जाए कि इसका ठीकरा मैं मजदूरों, किसानों और व्यवसायियों पर फोड रहा हूँ। वस्तुतः ऐसा मैं महसूस करता हूं। बुन्देलखण्ड में बुंदेली लोक संस्कृति आधारित कोई चलचित्र उद्योग नहीं है। शैक्षिक तकनीकी पिछड़ापन तथा पूँजीगत अभाव भी एक बड़ी वजह समझ में आती है। इक्का दुक्का प्रयास अवश्य हुए हैं। धन्य कहो इन कन्हैया कैसेट, नटराज कैसेट, हरदौल कैसेट तथा यूट्यूब चैनल और आकाशवाणी छतरपुर, सागर, ग्वालियर, छिंदवाड़ा आकाशवाणी वालों की जो थोड़ा बहुत बुंदेली संस्कृति के प्रचार प्रसार में अपना महती अतुलनीय योगदान दे रहे हैं। यहाँ का समाज कर्मठ और जुझारू है। लोक संस्कृति के प्रमुख तत्व व्रत, त्योहार, देवता और उपासना पद्धति आदि हैं। काशी प्रसाद त्रिपाठी ने एक जगह लिखा भी है कि 'हमारे विशाल देश का लोकजीवन क्षेत्रीय भौगोलिक एवं समाज ऐतिहासिक कारणों से प्रभावित होता है तो उसी रूप में यहां संस्कृति के अनेक क्षेत्रीय रूप देश के सांस्कृतिक परिवेश को विविधतामय बनाते हैं।'[2]

बुन्देली साहित्य के विशद विद्वान कैलाश मड़बैया संस्कृति को समझाते हुए कहते हैं कि 'संस्कृति वस्तुतः अत्यंत व्यापक आशय बोधक शब्द है, जिससे संबंधित सम्पूर्ण मानव समाज का अतीत, वर्तमान और भविष्य जुड़ा होता है। संस्कृति का निर्माण संस्कृति से होता है।'[3]

बुन्देलखण्ड की एक झलक आपको घासीराम व्यास की पंक्तियों में मिलेगी–**चित्रकूट, ओरछौ, कलिंजर, उन्नाव तीर्थ/पन्ना, खजुराहो, जहां कीर्ति झुकि झूमि है।/जमुन, पहूज, सिंध, बेतवा, धसान, केन/मंदाकिनी, पयस्विनी प्रेम पाय घूमी है।/पंचम नृसिंह, राव चम्पतरा, छत्रसाल/लाल हरदौल, भाव चाव चित चूमी है।/अमर अनंदनीय, असुर निकन्दनीय/वंदनीय विश्व में बुन्देल भूमि है।**[4]

डा. बहादुर सिंह परमार भी बुंदेली लोकसंस्कृति के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि 'जनपदीय भाषाएँ एवं बोलियाँ जनपद की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक चेतना की संवाहक होती हैं। लोक संस्कृति गतिशील होती है इसलिए उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता रहता

है। बुन्देलखण्ड जनपद (अँचल) एक सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इकाई है, जो भारत देश के हृदय स्थल में अवस्थित है। इसकी भौगोलिक सीमा सामान्यतः उत्तर में यमुना से, दक्षिण में नर्मदा से तथा पूर्व में टोंस व पश्चिम में चम्बल से मानी जाती है। यह प्राचीन भूभाग है। यहाँ के लोकसाहित्य में गीत, कथाएँ, नाट्य के साथ कथाओं की अपनी सुदीर्घ परंपरा है। कोई भी संस्कार बिना गीत के संपन्न नहीं होता होता। वीरता और शौर्य के आख्यान गाथाओं के रूप में लोक प्रेरणा प्रदत्त करते हैं। ज्ञान व अनुभव का भंडार कथाओं के माध्यम से जनसामान्य में परिव्याप्त है। अँचल में व्याप्त विसंगतियों तथा विद्रूपताओं पर नाट्यों के माध्यम से प्रहार किया जाता है।'[5]

इस लेख को अलखनन्दन से जोड़कर लिखने का एकमात्र कारण यह है कि अलखनन्दन का जन्म बिहार राज्य में हुआ था, लेकिन बचपन से बुंदेली संस्कृति में रच बस गए थे,जिस कारण उन्होंने न सिर्फ बुंदेली लोकनाट्य शैली ,बुंदेली लोक गायन शैली का अध्ययन किया। वरन देश के अनेक राज्यों में अपनी अनेक बुंदेली लोकनाट्य प्रस्तुतियों से बुंदेली संस्कृति परम्परा का प्रचार प्रसार भी किया था। वह सही मायने में बुंदेली संस्कृति के ध्वज वाहक थे। उनका 'नट बुंदेले' नाम से नाट्य समूह इस बात का जीता जागता उदाहरण है कि वे धुर बुंदेली हो गए थे। उन्होंने वेटिंग फार गोदो का बुंदेली संस्करण में अपनी यादगार प्रस्तुतियां दीं। इसके अलावा उन्होंने 'राजा का स्वांग', 'उजबक राजा तीन डकैत', 'स्वांग शकुंतला', 'जगर मगर अंधेर नगर' तथा चंद बेड़नी इत्यादि उनकी लोकनाट्य शैलीबद्ध प्रस्तुतियां थीं। चंदा बेड़नी अलखजी की प्रतिभा का उत्कर्ष है। चंदा बेड़नी ही अलख की कीर्ति का आधार स्तंभ है।

बुन्देलखण्ड का पहनावा और खान पान जैसा कि हम सभी जानते हैं कि हमारे परंपरागत खानपान पहनावे में काफी अंतर आ गया है। बहुत से चीजें गांव घर, बाजार, समाज से गायब है। पर्दनियाँ, कुर्ता पैजामा कुर्ता, स्वाफी, मुरैठा, लिल्लम की साड़ी, सफेद सूती साड़ी को रंगाकर पहनना फतूम घौंच, फरिया, घंघरिया, सलूका, झबला बच्चे पहनते थे। पैरों में पनैय्यां और मुड्डा पहने जाते थे। बुन्देलखण्ड का खानपान भी अनूठा है। चाँउर दार जुंडी की रोटी बरा, लटा, गुडला, मठा महेरो, बिरचुन, डुबरी, भटा गकरिया, घोरुआ, फाँट, बफौरी, भूँजा, महुआ, बेर, गुलगुच, मकोरा, मुरका, सतुआ, सुआरी अठवाईं, दोहानों, घेंगौ, माड़े, कुचियाँ, बिर्रा से बनी रोटी इत्यादि खाई जाती थीं। अब तो खान पान और पहनावे में एकरूपता देखी जाने लगी है।

बुन्देलखण्ड के देई–देवता और धर्म–साधनाएं–बुन्देलखण्ड में वैसे तो सभी धर्म साधनाओं, पंथों–सम्प्रदायों को लोग सदियों से शांतिपूर्वक मानते चले आ रहे हैं। लेकिन यहाँ ग्राम देवता (मेंढ़े के देवता) शाक्त परंपरा का उत्स देखने को मिलता है। (भुमानी दाई) बगराजन माता, खेरे के देवता–मैड़े के देवता, चंडी माता, कारगदेव बब्बा, बुन्देला बब्बा, गौड़ बब्बा भालेरा बब्बा चौन्तरा वाले बब्बा, दूल्हादेव, मढ़ई माता, उगरे बब्बा, सिद्ध बाबा, काली माई। इनकी पूजा ज्यादातर पिछड़ी और दलित जातियाँ ही करती हैं। जिनसे उनका शाक्त होना सिद्ध होता है। बाकी बचे सवर्ण तो राम 'हनुमान' शंकर इत्यादि की पूजा–अर्चना करते हैं। पर ये नहीं कहा जा सकता कि ये मत सर्वमान्य है। दूल्हा दुल्हन घर जब आते हैं तो उतारे नदियों में और घर होते हैं। हरदौल को निमंत्रण दिया जाता है ओरछा जाकर। खीर अठवाईं की होती है। जवारे निकलते हैं। भागवतें कीर्तने भी खूब होती हैं। गोबर के गणेश की पूजा बड़े पैमाने पर होती है।

बुन्देलखण्ड का नृत्य–नाट्य, गायन–वादन–अन्य लोक संस्कृतियों की भांति बुंदेली लोक संस्कृति भी विविध रंगभरी है। यहाँ भी हर सुख दुःख के अवसर पर नृत्य, गायन–वादन की व्यापक संस्कृति है। जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक अवसर आते हैं। जब बुंदेली भाई लोग नाचते, गाते, बजाते और अभिनय करते आपको दिख जाएंगे। बुंदेली लोकसंस्कृति उत्साही रसिकता का हिस्सा सदियों से है। और क्या ही कहा जाए? रीतिकालीन कविता इसका जीता जागता उदाहरण है जिसके अधिकांश कवि इसी बुंदेली माटी की संतानें थीं। यूनीवार्ता ने लोकगायन पर चिंता प्रकट करते हुए लिखा है कि "तीन दशक पहले तक खेती बाड़ी का काम निपटा कर गांव की चौपाल पर हर शाम जमा होने वाले ग्रामीण अपनी थकान वीररस भरपूर लोकसंगीत का लुफ्त उठाकर मिटाते थे वहीं पेड़ों पर पड़े झूलों पर बच्चे किलकारी मारते हुए पींग मारते हुए नजर आते थे। खुशी का मौका या गम भुलाने की तरकीब, लोकगायन उनके लिए टानिक का काम करता था। लोकसंगीत की मिठास से भरपूर निराली दुनिया में बुंदेलखंड की संस्कृति की अमिट छाप साफ दिखती थी लेकिन मोबाइल और इंटरनेट की ग्रामीण इलाकों में पहुंच ने युवा वर्ग को उन्हें इस अनूठी परम्परा और संस्कृति से दूर कर दिया है।[6] नृत्य की बात की जाय तो यहाँ राई, रावला, बहुरूपिया, नागिन बैंड, दीवारी लोकनृत्य (पाई डंडा) बरेदी नृत्य, रब्बी बाजों, रमतूला, दुलदुल घोड़ी में जमकर नृत्य होता है। दलदल घोड़ी नृत्य का वर्णन पत्रिका ने इस प्रकार किया है कि 'बुंदेलखंड अंचल में दुलदुल घोड़ी नृत्य' की परंपरा चली आ रही है। धार्मिक, सामाजिक आयोजनों में भी यह नृत्य ग्रामीण अंचल में देखा जा सकता है। दरअसल, दुलदुल घोड़ी नृत्य बुंदेलखंड की पहचान है। इसमें करीब एक दर्जन कलाकार होते हैं। मुख्य नर्तक अथवा कलाकार अपने शरीर पर घोड़ी के आकार का पहनावा पहनता है। सिर पर बुंदेली पगड़ी बांधता है। चेहरे को आकर्षक रंगों से रंगता है। धोती–कुर्ता वाली खास तरह की बुंदेली ड्रेस के साथ वाद्य यंत्र रमतूला, तासो और ढपला की थाप पर इनके कदम थिरकते हैं तो राहगीरों के कदम ठहर जाते हैं। मुख मुद्राओं और अपनी अदाओं से ये दर्शकों को मोहित करते हैं। नृत्य के दौरान घोड़ी की लगाम की रस्सी को इस प्रकार से बांधा जाता है कि उसे खींचने पर कान और जीभ हिलते हैं, जिससे खट–खट की आवाज होती है।[7] दीवारी मार्शल आर्ट्स पर आधारित है। इसमें लोक कलाकार अपने विभिन्न अचंभित करने वाले करतब दिखाते हैं। इसको इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि दिवारी गीत एवं नृत्य का संरक्षण अहीर जाति के लोगों द्वारा हुआ है। दिवाली तारसप्तक और विलंबित लय में गाई जाती है तथा ढोलक, नगड़िया, झांझ, रमतूला जैसे वाद्य यंत्र गीत की पंक्ति के बाद बजाए जाते हैं। पंक्तियों के प्रारंभ एवं बीच में अरे और ओ तथा अंत में रे का प्रयोग टेर को तारत्व प्रदान करता है यह गीत विशेष मुद्रा में भाव भंगिमा के साथ बाद संगीत लोक नृत्य पर गाए जाते हैं।

दिवाली के दूसरे दिन प्रातःकाल से ही गांव के ग्वाले, अहीर, गड़रिया, आदि पशु पालक अपनी पारंपरिक पोशाक नृत्य के लिए निकलते हैं दीवारी नृत्य में गायक वादक एवं नर्तक तीन दल होते हैं।[8] नाट्य की भी बुन्देलखण्ड में संमृद्ध संस्कृति रही है। जैसे स्वांग, नौटंकी, लीला नाट्य (रासलीला, रामलीला), काड़रा, भाड़ भड़ैती इत्यादि। रासलीला

बुन्देलखण्ड में रहस कहलाती है। गायन में यहाँ धुबयाई, कछियायी, ढिमरयाई, चमरयाई, तमूरा गायन गोटें, लमटेरा। इनमें से अधिकांश जातिगत गीत राग रागनियां हैं। जन्म के समय यहाँ 'सोहर' गाये जाते हैं। संचत, सरिया, साध । तथा पीर के गीत अब सुनाई नहीं देते हैं। बुन्देलखण्ड में काजर आँजने, छटी, दस्तौन, गगरी उतारना (कुआं पूजना), पालना तथा मुण्डन के भी यहाँ पृथक गीत हैं। विस्तार भय से बचने के लिए हम यहाँ उदाहरण प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। इसके अलावा यहां विवाहों में यहाँ बनरा बनरी गीत, सगाई, लगुन, हल्दी चढ़ने तथा तेल चढ़ने के भी अनुपम गीत हैं। बारात आगमन, चीकट, चढ़ाव, भाँवर, पाँव पखुराई दूल्हा निकासी, धान बुआई, राछरे, लाकौर, बाबा बनना बन्द छोरना, खपरा लौटाई कुंअर कलेऊ मौचायने, दस्वानु तक के बुन्देलखण्ड में गीत गाये जाते हैं। गायन पर तो यहाँ पूरा एक अध्याय लिखा जा सकता है। बारहमासी गीत, फागें तथा बारहमासी भजनों की भी यहाँ समृद्ध संस्कृति है। श्रम गीतों में यहां बिलवारी, दिनरी तथा चक्की पीसने के गीत भी हैं। फागें, दीवारी गीत, कार्तिक गीत यहां के जनमानस में अत्यंत प्रसिद्ध हैं और अंत में बुन्देलखण्ड का आल्हा गायन जगजाहिर है। बिलवारी का एक उदाहरण देखिए–

'पतरी सी न जानों राजा मोए
अबै तो नब जैहों तीर धनइयाँ सी'

बुंदेली भजन का एक उदाहरण देखें आप–

'माई के भुअन एक चंदन को बिरआ
लंगड़े ने डारो कटाय मा'

लमटेरा का उदाहरण–

'नरबदा मैय्या उल्टी तो बहें रे'

लोकगीत की एक बानगी–'पुरा जरुआ धरो हँस के न हेरो मुनैय्यां' बुंदेली गायन शैली विविधतामयी जिनमें प्रमुख विधाएं निम्नलिखित हैं–लांगुरिया, देवी भजन, फागें, दिवारी, झूला गीत, चेतावनी, चौकड़िया, कबीरपंथी, बारामासी, चौत गीत, लमटेरा, कार्तिक गीत, बिलवारी, गारी, विवाह गीत इत्यादि। कुछ उदाहरण–* मोरी चट्टू पर गई जीभ जलेबी लैदे लांगुरिया। (लांगुरिया) * ज्ञान की ढाल बना लई रे सतगुरु की तलवार। एक अचंबौ हमनें सुनिती कुंआ में लग गई आग, गौंत गिलारो सबरो जर गयो मछली खेलै फाग। (कबीरपंथी गारी) * मोरे मन के चलन लगे राजा खिलौना से लगन लगे। (ढिमरयायी) * कहना से घिर आई कारी रे, अरे कहना बरस गए मेह बदरिया अरे हाँ। (झूला सावन गीत) * कहत के परधन बाढ़ों रे (विदाई गीत) * सखी री मैं तो भई न ब्रज की मोर। (कार्तिक गीत) * एक बात मोरी सजनी गठियालो चुनरिया में * चौता के चरेरे घाम मुइयाँ रे बदल गई घामें में। (चौत्र गीत) * आईं चिरैयाँ प्यारे चुन गयीं सो उड़ गयीं अपने देश रे, मोरे अभागन गिरा टले सो देखे न एकऊ देशे रे। (दीवारी गीत)

बुन्देलखण्ड का सामाजिक, सामुदायिक ताना–बाना–बुन्देलखण्ड में जरूरत के हिसाब से सभी जातियां पायी जाती हैं। यहाँ ऊंच नीच का भाव भी प्रबल रहा है। लोहार, नाई, बढ़ई, कुम्हार इत्यादि अपने परंपरागत कार्यों में लगे हुए हैं। गड़रिया, लोधी, कुर्मी, यादव, कुशवाहा यहाँ की प्रमुख किसान जातियाँ हैं। इसका यह अर्थ कतई न लिया जाए कि अन्य जातियाँ कृषि ही नहीं करतीं। यहाँ चमार, धोबी, कोरी, बसोर, खटीक, मेहतर भंगी इत्यादि दलित जातियाँ पायी जाती हैं जो प्रमुखतः श्रमजीवी जातिवर्ग है। आदिवासी जनजाति समुदाय के लोग भी इस भूभाग में निवास कर रहे हैं जो अधिकांश जंगलों पर निर्भर हैं। बीड़ी बनाने के लिए पत्ते जंगलों से तोड़ते हैं तथा अन्यान्य कार्यों में संलग्न हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, बनिया इत्यादि यहाँ फलता फूलता संभ्रांत कुलीन वर्ग है जो तरह तरह से अपनी आजीविका चलाते रहते हैं। बन गया तो सीधे सीधे नहीं तो साम, दाम, दण्ड, भेद तो है ही।

बुंदेली अटके (पहेलियाँ), अहाने और मुहावरे तथा लोकोक्तियां–बुन्देलखण्ड में अटकों, अहानों और लोकोक्तियों की एक विशद संस्कृति है जो अब कभीकभार बूढ़े बुजुर्गों के श्रीमुख से ही सुनने को बड़ी मुश्किल से मिल पाती हैं। नई पीढ़ी को इनकी फिकर नहीं। न ही वह इन सब का मतलब समझ पाते हैं। धीरे धीरे सब मिटा जा रहा है। अत्याधुनिक तकनीक में सब खोये हुए हैं। किसे इतनी फिकर है कि इनके संरक्षण पर ध्यान दे? बहरहाल उपर्लिखित सभी तरीकों से लोग अपनी बात कम शब्दों में, अप्रत्यक्ष रूप से तथा कोई सीख, नैतिक बात बताने में इस्तेमाल करते थे। इन सब उक्तियों में ज्ञान की संस्कृति की धारा बहती थी। आपके लिए कुछ उदाहरण मैंने रेडियो कार्यक्रमों से तथा लोक प्रचलित, सुने सुनाए उठाये हैं। उदाहरण देखें आप–* हाँथ पाँव के आलसी मूँमें मूंछें जाएं (कहावत) * फल, फूल और मिठाई, तीनों एक में पाई (गुलाब जामुन)। * हरि टोपी लाल दुशाला, पेट में है मोती की माला (मिर्च)। * अन्न खाय मनों पानी न पिये आपई बताऔ जौ कैसे जीये (तीलूला)। * जब लौ थी मैं भोरी मारी खूब सही मैंने मार, जब से पहनी लाल घंघरिया अब न सैंहों मार (घड़ा)। * खट्ट मुंडी खट्ट पांव, तीन मुंडी दस पाँव (बैलगाड़ी)। * पानी हलै, पानी में बेला हलै। सबई तकें मनों पकड़ न सके। (चंद्रमा) * एक चिरैया रंगी चंगी, बोले मीठी बात। भरे कुआ में चौपर खेलै पानी माँगत जाय। (मथानी) * ऐसो पेड़ो काय कौ होए, जाकी पाकी झरत न होय। (खजूर) * देख सखी मैं भोरी भारी, देखत की मोए लागि चोरी। घर उपजे न हाट बिकाय, जीखों सइयाँ मिस मिसाय। (ओरे) * चैतै गुर बैशाख तेल जेठें लटा असाड़े बेल सावने निब्बू भादों दई, क्वांर करेला कातिक मई। अग्ने जीरा पूषे धना माँओं में मिसरी फागुन चना। जो जे चीजें बँध के खाय बिना बुलाएं सरगे जाय। * निन्ने पानी जो पिये हर्र भूंजकर खाय। दूध ब्यारी जो करे, बैद घरे न जाय। * पत्ता तरें लुको तो, तोए बाप को का लेंये तो। (भटा, बैंगन) * लाल बिलैया हरीरी पूँछ। (मिर्ची) * नाएँ माएँ गई मेन्द्रे से टांग गई। (तारो, ताला)

बुंदेलखंड में सम्बन्ध और संबोधन की संस्कृति

बुंदेलखंड में रिश्ते–नातों की अपनी अलग और विशिष्ट पहचान रही है। लेकिन अब के समय में रिश्ते–नातों के फिल्मी और शहरी, बाजारी संस्करण भी आ गए हैं। जिन्हें लोग कौतूहल से सुनते हैं और बोलते समय अतिरिक्त उत्साह दिखाते हैं। वहीं दूसरी ओर पुराने शब्दों के संबोधन में उन्हें हिचकिचाहट महसूस होती है। आधुनिकता का दौर चल पड़ा है। ऐसे में जो लोग पुराने तरह से बोलते, हंसते, पहनते पाये जाते हैं उन्हें ये तथाकथित आधुनिकता छाप अपनी हंसी मजाक में खिल्ली उड़ा लेते हैं। संबंधों की अगर बात की जाय तो भौजी, बाई, कक्की, दद्दा, कक्का, बब्बा, नंद, नंदोई, देउर, बऊ, दाई, डुकरिया, मताई, बाप, लरका, मौड़ी, मौड़ा, जीजा, जिज्जी, फूफा, फुआ, खसम, बईयर, घरबारी, लुगाई, भँनेज, भँनेज बहू, फुआ सास, ममिया ससुर, साढू भाई, सारी, सरहज, सारो, दमाद, बहनोई, जेठ, जिठानी, देवरानी, मँझली, संझली। अब करते हैं संबोधन की बात। हमारे यहाँ बहू बेटियों के नाम नहीं लिए जाते थे। उनको बेटा कहकर बुलाया जाता

था। जू शब्द सम्मान सूचक होता था जैसे कक्को जू, बब्बा जू, आओ जू, दद्दा जू इत्यादि। बुंदेलखंड में लड़की के पैर मां बाप छूते हैं। ऐसे ही बुंदेलखंड में मामा मामी भांजे के पैर छूते हैं। बहन चाहे छोटी हो या बड़ी भईया को पैर बहन का छूना ही छूना है। इसका महिमामंडन नहीं किया जा रहा है। यह सदियों से बुन्देली लोक संस्कृति का हिस्सा है। यहाँ ब्राह्मणों को महाराज कहा जाता था। जब बहू को बच्चा हो जाता था तो वे लरकौरी कहलाती थीं।

बुन्देलखण्ड के प्रमुख पारंपरिक सांस्कृतिक वाद्ययंत्र–बुंदेलखंड में विभिन्न तरह के वाद्ययंत्र बजाए जाते थे, जिनमें अब कुछ के केवल नाम सुनाई दे जाते हैं, दिखाई नहीं। जिनमें से कुछ अब भी बजाए जाते हैं। कुछ का प्रयोग एकदम कम हो गया है। रमतूला के बारे में अमर उजाला समाचार पत्र लिखता है कि 'रमतूला ऐसा वाद्य यंत्र है, जिसे बजाने से वातावरण में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। शुद्ध तांबे से निर्मित इस यंत्र को बजाने के पीछे तांत्रिक, साइंटिफिक रीजन भी हैं। बुंदेलखंड में रमतूला को बजाकर शुभ और धार्मिक कार्यों की शुरुआत की जाती है। वहीं, इसे बजाने वाला वादक इसके एवज में पैसे पारिश्रमिक के तौर पर नहीं बल्कि प्रसाद से तौर पर ग्रहण करता है।'[9]

बुन्देली वाद्ययंत्र विभिन्न प्रकार के अवसरों पर, तीज त्योहारों तथा अनेक संस्कारों में बजाए जाते हैं। डा. रामभजन ने लोकवाद्यों की व्याख्या करते हुए अमर उजाला को बताया कि 'आसपास मौजूद सामग्री का प्रयोग कर इनका निर्माण किया जाता है। बुंदेली श्रमजीवी समाज में जातिगत गीत–संगीत तथा वाद्य यंत्रों की अलग पहचान है और इनके प्रयोग की विशेषता है। उन्होंने कहा कि यह वाद्य यंत्र बाजार में न तो बनते और न ही बिकते हैं।'[10] अब आप इन वाद्ययंत्रों के नाम भी जान लीजिए–नगड़िया, नगाडा, डफला, रब्बी बाजे, मृदंग, रमतूला, स्वर किन्नरी, डफ, खंजरी, ढांक, ताशा, नक्कारा, घेरो, लोटा नरना झांझ, चमीटा, बौकनास हुड़क, नागफनी, झींका, मजीरा, मटका, अलगोजा, पखावज, तुरही, तमूरा, किकीहरी, खड़ताल, सूपा, ढोलक इत्यादि।

यह बुंदेलखंड की संपूर्ण झाँकी नहीं है। एक झलक मात्र है। अब इस लेख का अभिन्न हिस्सा जो कि नाटककार, रंगकर्मी, कवि, नाट्य निर्देशक अलखनंदन से जुड़ा है, साझा किया जाएगा।

अलखनंदन के प्रमुख लोकशैलीबद्ध नाटक और उसमें निहित बुन्देली संस्कृति

* अलखनंदन ने बुन्देली लोकसंगीत, लोक नाट्य शैलियों का काफी इस्तेमाल अपने नाटकों में किया था। बुन्देली गायन शैली को लेकर उन्होंने तरह–तरह के प्रयोग किये थे। अपने नाटक 'चंदा बेड़नी' में उन्होंने बुन्देली लोककथा को ही आधार बनाया था उसे आधुनिक युगबोध से तालमेल बिठा कर पेश किया था। जिसमें सामंती और पुरोहिती शक्तियां कैसे निम्नवर्गीय जनता को अपने निजी स्वार्थों के लिए पीस डालते हैं, यही दिखाने का प्रयास किया गया है। यह नाटक एक आदिवासी समुदाय की बेड़नी की दारुण गाथा को प्रस्तुत करता है। इस नाटक को अलख ने बुन्देली बोलीबानी तथा बुन्देली स्वांग शैली में प्रस्तुत किया। इस नाटक में एक मोची और बेड़नी तथाकथित उच्चवर्गीय सामंतों और पुरोहितों के बलि के बकरे बनते हैं। जबकि यही आदिवासी और दलित पूरी निष्ठा और ईमानदारी से काम करते हैं। उन्हीं को अपना बलिदान देना पड़ता है। जबकि उच्चवर्ग उनकी मेहनत के दम पर विलासिता–पूर्ण जीवन जीता है।

* अलखनंदन का एक और नाटक 'उजबक राजा तीन डकैत' है। इसे उन्होंने कई नामों से किया था जैसे 'स्वांग मल्टीनेशनल', 'जादू का सूट' इत्यादि। इस नाटक के हाल ही में तेलगु और दक्कनी हिंदी संस्करण भी हैदराबाद में सफलतापूर्वक खेले जा चुके हैं। बहरहाल यह नाटक भी उनका बहुचर्चित रहा है। इस नाटक में उन्होंने विदेशी कंपनियों तथा देशी राजशाही की मूर्खता का पर्दाफाश किया है। राजशाही खजाने का दुरुपयोग और आम रियाया कैसे त्राहि–त्राहि करती है, इसी को कुशल चितेरे नाट्यकार ने प्रदर्शित किया है। विदेशी कंपनियां हमें लूट ले जाती हैं और हमारे आकाओं को भनक तक नहीं लगती। इस नाटक ने राजनैतिक कुव्यवस्था की धज्जियां उड़ाकर रख दी हैं।

* 'राजा का स्वांग' भी अलखनंदन का एक महत्वपूर्ण नाटक है। यह नाटक अलखनंदन ने 'वोल्गा से गंगा' राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक से तैयार किया था। वस्तुतः यह नाटक भी सामंतशाही, राजशाही तथा अलोकतांत्रिक व्यवस्था का मखौल उड़ाता है। यह नाटक भी स्वांग शैलीबद्ध है। राजनीतिक भ्रष्टाचार और राजा बेटा ही राजा बने या सबसे कमजोर आदमी राजा बजे। चलना तो दमन का चक्र ही है। कमजोर की कोई सुनता नहीं। बुन्देली गीत संगीत से इसमें चार चांद लग जाते हैं।

* 'स्वांग शकुंतला' नाम का अलख द्वारा रचित एवं निर्देशित यह प्राचीन संस्कृत नाटक के आधार पर जरूर तैयार किया गया है। परंतु नाट्य को नया रंग ढंग जरूर चढाया गया है। इसको पूर्णतः आधुनिक संदर्भों में अलखनंदन ने प्रस्तुत किया है। उपर्लिखित की भांति यह भी बुन्देली लोकगायन, वादन बोलीबानी, स्वांग शैली में खेला गया है। इसके अलावा उन्होंने 'जगर मगर अंधेर नगर' तथा बौधायन का नाटक भगवद उज्जकम भी बुन्देली में खेले हैं और वेटिंग फार गोदो इत्यादि भी।

सन्दर्भ सूची

* बुंदेलखंड : संस्कृति, परंपरा और विरासत–काशी प्रसाद त्रिपाठी, पृ. 5
* वही पृ. 6
* कला वसुधा, जनवरी–मार्च 2019 पृ. 7
* कवि घासीराम व्यास
* बुन्देली लोकसाहित्य–डा. बहादुर सिंह परमार
* फिजा से गुम हो चुकी है लोक संस्कृति की सुरमयी मिठास, यूनीवार्ता
* इस नृत्य के बिना अधूरी रहती है बजती है सीटी, पत्रिका
* बुन्देली दीवारी, बुन्देली उत्सव
* छतरपुरः बुंदेलखंड की कला–संस्कृति को सहेज रहा ये जनप्रतिनिधि, पारंपरिक वाद्ययंत्र रमतूला बजाकर करता है भरण–पोषण, अमर उजाला, 3 मार्च 2022
* विलुप्त हो रहे बुंदेली लोक वाद्य फिर गूंजे, अमर उजाला, 8 दिसंबर 2012

शोधार्थी हैदराबाद विश्वविद्यालय
एम.एस. नारायण
संपर्क : हाउस नं. 1–100/15,
सेकण्ड फ्लोर
नियर साउथ गेट आफ यूनिवर्सिटी
हैदराबाद, गोपानपल्ली हैदराबाद–500046
मो. : 6393177918

ISSN 0975-5217

भैरवी (अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन विशेषांक)

(अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन विशेषांक)

ISSN 0975-5217

UGC-CARE LIST (GROUP-I)

वर्ष 2023

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा (बिहार)

ISSN 0975-5217
UGC-Care list (Group-I)

भैरवी

(दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

(अप्रैल 2023)

(Special Volume)

मिथिलांचल संगीत परिषद्
स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित कला संकाय
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004

भैरवी (दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कला की शोध-पत्रिका)

ISSN 0975-5217

UGC-Care list (Group-I)

अप्रैल-2023 (**Special Volume**)

प्रधान सम्पादक

प्रो. (डॉ.) पुष्पम नारायण

प्रकाशक : मिथिलांचल संगीत परिषद्

स्नातकोत्तर संगीत एवं नाट्य विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा 846 004
मो. - 09430063265
ईमेल - npushpamji@gmail.com

मूल्य

इस अंक का मूल्य : 400/- रुपये

व्यक्तियों के लिए :

वार्षिक : 800/- रुपये / त्रैवार्षिक 2400/- रुपये

पंचवार्षिक 4000/- रुपये / आजीवन : 15000/- रुपये

संस्थाओं के लिए :

वार्षिक : 850/- रुपये / त्रैवार्षिक 2500/- रुपये

पंचवार्षिक 4500/- रुपये / आजीवन : 16000/- रुपये

(केवल मनी आर्डर / चेक / बैक ड्राफ्ट से)
(दरभंगा से बाहर के चेक में 40 रुपये अधिक जोड़ें)

''भैरवी'' विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित एवं UGC-Care list (Group-1) में शामिल है। साथ ही यह Peer Reviewed Refereed Visual and Performing Arts Research Journal है।

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद दरभंगा न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मुद्रक : विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद-201 102

Patron

Prof. Chaman Lal Verma
Ex. Dean and Head
University Department of Music
Himachal Pradesh University, Shimla

Prof. Pt. Ritwik Sanyal
Top Grade Dhrupad Artist
Ex. Dean, Faculty of Performing Arts
Banaras Hindu University, Varanasi

Prof. Pt. Sahitya Kumar Nahar
Vice-chancellor
Raja Maan Singh Tomar Sangeet Vishwavidyalaya
Gwalior, Madhya Pradesh

Editorial Board

Chief Editor

Prof. Pushpam Narain
Ex. Dean, Faculty of Fine Arts
Head, University Department of Music and Dramatics
Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

Editorial/ Advisory Board

1. Prof. K. Shshi Kumar
   Dean, Faculty of Performing Arts
   Banaras Hindu University, Varanasi
2. Prof. Snehashish Janpriya Das
   Head. Department of Music
   Women's College Jag Chowk, Amarawati, Maharashtra
3. Dr. Ashwani Kumar Singh
   Associate Prof, Department of Music
   Faculty of Performing Arts. M.S. University, Baroda, Gujrat
4. Dr. Shobhit Kumar Nahar
   Asst. Prof. Instrumental Music
   Women's College
   Banaras Hindu University, Varanasi

Contents

संपादक की कलम से ... 11

1. Pain and Anguish in Ngugi's Devil on the Cross
Shamrao J. Waghmare 19
2. The Symbolism of Irish Motherland in Eavan Boland's selected poems: Postcolonial Perspective
Mohammed Talib Ashour 24
3. Political marginalization: A study on the Muslim women in India *Dr. Rizawana B. Gadakari* 28
4. Dalit Literature: Past, Present and Future - Social Reformation, Literature and Philosophy of Dr. Veer Vinayak Damodar Savarkar for Upliftment of Untouchables (Dalits)
Manisha G Sadafule, Amit P Shesh 32
5. Asha purna devi And Feminism in Her Select Short Stories "The Matchbox And Other Stories"
Prof. Shivanand Hiremath 36
6. The Dark Secrets Of Rising India Disclosed By Arvind Adiga
Ashwini M.Ingale, Asst. Prof. Dr. Kishor K.Wagh 41
7. Rescuing History from Jingoism: Shivaji Underground in Bhimnagar Mohalla *Dr. Archana Joshi* 45
8. Repercussion of Homeland in Agha Shaid Ali's "Post card from Kashmir and other poems" *Dr. Pravin Bhaskar* 49
9. Buddhist Consciousness in the poetry of Dr. Uttam Ambhore *Bhikku Ananda* 52
10. Challenging Stereotypes in Preeti Shenoy's The Rule Breakers *Mr. K. R. Chaudhari, Dr. S. P. Zanke* 56
11. Black Feminist Identity Reflected in African American Literature *Dr Santosh S. Chouthaiwale* 61
12. Indian Agriculture Sector@75 Challenges and Innovations *Dr. Vijay Surve* 65

13. Humiliations Nexus: Analysis of the Marginalized Voices in Manoranjan Byapari's Interrogating My Chandal Life: An Autobiography of a Dalit. *Dr. Pradnya D Ghodwadikar* 69

14. A Study of Socio - Economic Status of Scheduled Tribes (ST) In Marathwada Region *Dr. S. L. Medhe* 73

15. Expression of Dalit Identity Politics in Joothan *Dr. P. A. Waghmare* 77

16. Challenging the Notions of Alienation, Ideology and Dialectics in the Works of E.M. Forster: Marxist Perspective *Fares Mohammed S. Ali, Anand Ubale* 81

17. Psychoanalytical view on marginality through Jataka Tales *Mr. Sirsat Nilesh Shashimohan* 86

18. Model Minority A Myth: A Special Study of John Okada's No-No Boy *Ratnamala Ratan Pagare* 90

19. Re-reading Marginality: Juxtaposing Lives Through Indian Women's Autobiographies *Dr. Geeta Sahu* 94

20. Gender inequalities and issues: A study of Tinsukia district in Assam *Dr. Kaberee Borpuzari Sarmah* 98

21. Mgnrega: A Social Security Programme for Marginalized Class Its Implementation and Chalenges *Dr. D.M. Javalkar* 102

22. Marginalization Through the Gender Identity of Female Protagonists of Anita Nair's Mistress *Patil Jayshree Ramdas* 106

23. Reflection of Marginalized Voices in Indian English Literature *Dr. Korde Rajabhau Chhaganrao* 110

24. "Social consciousness can change the society" by the Chetan Bhagat's Novels *Ku. K. V. Kakde and Dr. K. K. Wagh* 113

25. An optimistic vision of Langston Hughes' selected poems *Shirsak Ghosh* 117

26. Longing For Laburnum Flowers : A Study of Temsula Ao's Devotion And Rebellion *Ms.Aliya Shahnawaz, Vasant .R. Shedge* 121

27. Marginals in Mulk Raj Anand's The Barber's Trade Union *Dr. Vinod Chaudhari* 125

28. Gender Dysphoria: A Study of Marginalized Voices in Revathi's the Truth About Me – A Hijra Life Story *Mrs. Vijayadeepa R.* 129

29. Representations of Medusa in Literature, Culture and Art: A 'Reflection' of Patriarchy *Dr Sunita Kulkarni* 133

30. Petty Comments on Women in Shashi Deshpande's "That Long Silence" *Nisha Satish Kadam, Dr. Sunil Raut* 137

31. Diaspora: The View of Women Writers (With Special Reference To Selected Indian WomenWriters) *Dr. Pradnyashailee Bhagwan Sawai* 141

32. A Study on Farmers' Awareness Towards Krishi Vigyan Kendra in Tenkasi Area *R.Chitra, Dr. V. Jai Sudha Devi* 145

33. Representation of Dalits in Indian Cinema Devade Bhagyashri Baburao *Dr. Babasaheb* 149

34. Metaphorical elements represent the Marginalized Voices in film Fandry *Kalpana Pandit Raut, Dr. Vinod. P Chaudhari* 153

35. African Literature of Trauma: Must Read *Dr. Vivek Ramrao Mirgane Anjali, Anantrao Waghmare* 157

36. From margin to Centre: A critical study of Shobha De's Socialite evenings *Babita Bhausaheb Chandanshiv* 160

37. Rethinking Marginality in Tara *Dr. Nilofer Shakir* 164

38. Modern woman in 'The Secret Wish List' by Preety Shenoy *Dr. Nilima P. Kale* 168

39. The Works of Black Cultural Authorship from the Twenty-first Century by Colson Whitehead: Allegories of "Postracial" Capitalism *Khandare Shuddhodhan T.* 171

40. "Organizing" Women in S. N. D. P.: Agency and Possibilities *Sreebitha P V* 175

41. Status of Dalit Women in India *Mr. Amit M. Pawar* 179

42. Utopian quest in the film "The Platform" (2019) *Prashant Bahirao* 183

43. Cultural Nationalism and Identity Politics in India: A Study *Dr. Kishor Kadu Wagh* 188

44. A Study of Identity and Self-respect in Shankarrao Kharat's Marathi Novel 'MiMazya Gavachya Shodhat' *Dr.Prafullachandra Ramesh Bhoge* 193

45. Concept of Nationalism in George Orwell's Fiction
Dr. Shrimant Raosaheb Tonde 197

46. Prawasi Bhartiya Diwas: Indian Diaspora
Dr. Pradnya K. Kale, Dr. Amruta B. Wakle, Prof. Prajakta Kale 200

47. English language teaching in tribal areas of Nandurbar district: A critique
Santosh Eknath Dhanedhar, Prof. Dr. Milind B. Pandit 204

48. Post-Colonial Racism and Forbidden Love Relationship in The God of Small Things
Dr Leena V. Phate 208

49. Marginalization of Womenpreneurs in Entrepreneurial Space
Shweta Rishi 213

50. An analysis of food-based marginalisation in Hansda Sowvendra Shekhar's Short Story- 'They Eat Meat!'
Dr Kirti Y.Nakhare 217

51. Employing Racism and Patriarchy: A Debate Discussion on Film Vivah
Prajakta Prabhakar Shete 221

52. Family Relations and the Theme of Love in William Shakespeare's Tragedy KING LEAR
Amran Mansour Abubakr Mahamoud, Dr. Vivek R. Mirgane 225

53. Rereading marginality: American African voices in The Promise by Damon Galgut
Dr Prachi Sinha 230

54. Projection of Social Segregation: A Peasant Class in Gurdial Singh's The Last Flicker
Dr.Shivraj Mangnale 234

55. The Role of Bollywood and its Parallel Screen Adaptation of Indian Novels: Voice for Voiceless
Dr. Rajpalsingh Chikhalikar 238

56. Gender Disparity in Financial Inclusion in India: Insights from Global Findex
Ms. Varsha M. Atkari, Dr. Aparna Samudra 242

57. The Heart of Buddha's Teachings: The Golden Path
Gadekar Pawan Indrajit 246

58. The Inextricable Union of Hindi Cinema & Architecture
Dr. Pooja Pandya 250

59. Poisoned Bread: The Voice of Dalit Conscience
Mr. Sampat G. Salunke, Dr. Kamalkishor K. Ladda 255

60. William Golding's The Inheritors: Human Nature Good and Evil
Mr. Madhavrao Bhagwanrao Ambhore, Dr.Sachin L. Patki 259

61. A Study of Race and Gender in Zora Neale Huston's Autobiography : Dust Track On A Road
Mr. Bomble Dadabhau Balasaheb 263

62. Moral Ambiguity in Shakespeare's Hamlet
Khalid Yahya Mohammed Fadhael, Dr. K. S. Patil 267

63. A Study Of Cultural Landscape Depicted In Native American Novels – House Made Of Dawn, Ceremony, The Woman Who Owned The Shadows, Tracks
Jagannath Vitthalware, Dr. D. Y. Pratishthan's 271

64. Changing Scenario and Techniques of Interview Skills
Dr. Kailash Ankushrao Atkare 275

65. Cultural Discrimination as a Means of Marginalization in Buchi Emecheta's Second Class Citizen and The Bride Price
Laxmikant H. Kapgate, Dr. Shriram Gahane 279

66. Thought Experimentation of Music and Science Fiction: Evolution of Music *Tulashiram Ankushrao Atkare* 283

67. Depiction of Caste-system in Some Selected Indian English Novels *Dr. Pramod Machhindra Nile* 287

68. Condition of Dalits as Depicted in the Novel 'The God of Small Things' of Arundhati Roy *Dr. Zeba Siddiqui* 290

69. Depiction of Native American Culture in 'House Made of Dawn' by N. Scott Momaday
Dr. Arya D. W., Miss. Kendre S. A. 294

70. Namdev Dhasal: A Poet of Rebellious and Naked Expressions *Dr. Kamble Sachin Gundurao* 298

71. African American Voices *Mehraj Hussain Para* 301

72. World of Marginalization & Conflicts in selected novels of Manju Kapur & Anita Nair: A study
Mrs. Vrushali Manohar Londhe 305

73. Women's Conflict Between Career and Marriage in the Novels of Margaret Drabble
Dr. Seshirekha R. Maknikar, Dr. Rajesh S. Maknikar 310

74. Reflection of Socio Cultural Tensions in Select Indian Fiction A*njali Vilas Lashkare* 318

75. Modern woman in 'The Secret Wish List' by Preety Shenoy *Dr. Nilima P. Kale* 322

76. World of Marginalization & Conflicts in selected novels of : A study *Manju Kapur & Anita Nair* 325

77. Warkari Sampradaya; A movement for transformation and social upliftment *Siddharth Kharat* 330

78. Women's Conflict Between Career and Marriage in the Novels of Margaret Drabble *Dr. Seshirekha R. Maknikar, Dr. Rajesh S. Maknikar* 335

79. Youth and craze for materialism in Chetan Bhagat's 'ON@CC' *Dr. Vivek D. Pise* 339

80. Development of English in India: A Sociolinguistics Study *Dr. Vinay Bhogle* 343

81. Unnoticeable Voices *Dr. Farhat P. Durrani, Shaikh Nilofer Shaikh Masood* 353

82. The French Lieutenant's Woman: A Double Coded Postmodern Discourse *Dr. Shrikant Jitendra Jadhav* 357

83. Gender Marginalization in Sports *Dr. Asmaparvin Mohmmad Sayyad* 360

84. Marginality and Subalternity in 'Generosity' by Richard Powers *Abhijeet S. Dalavi* 364

85. Women Empowerment in the novel Brick Lane by Monica Ali *Bhuktar Arvind Raghunath* 368

86. Impact of Social Media Influencers in Life Style adoption of Users *Dr. Afaq Ahmad, Ms. Linumol* B. 372

87. आदिवासी समाज की वास्तव स्थिति और संजीव के उपन्यास *प्रो. माने शेषराव सुभाषचंद्र* 394

88. आदिवासी नृत्यकला संस्कृति का समाजशास्त्रीय अध्ययन *डॉ. प्रमिला हरीदास भुजाडे* 398

89. हिंदी दलित साहित्य विकास यात्रा *प्रो. डॉ. दत्तात्रय लक्ष्मण येडले* 401

90. भारतीय स्त्रियों की दिशा एवं दशा एक ऐतिहासिक अध्ययन *प्रो.राजकुमार एन. देशकर* 405

91. आदिवासी भाषा और लिपि *डॉ. शोभना पी. जैन* 408

92. सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकता का बुन्देली लोकशैलीबद्ध नाटक है 'राजा का स्वांग' *चन्द्र पाल* 411

93. दलित साहित्य में शरणकुमार लिंबाले का योगदान *डॉ. सुरेश मुंढे* 414

94. खेल में महिलाओं का योगदान *डॉ. शेख मुसाभाई इमामभाई* 417

सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकता का बुन्देली लोकशैलीबद्ध नाटक है 'राजा का स्वांग'

चन्द्र पाल

बुन्देली लोकनाट्य परम्परा में लिखित नाटक है 'राजा का स्वांग'। इस नाटक के लेखक हैं—अलखनन्दन। अलखनन्दन किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। उन्होंने लगभग लगातार चार दशक तक सक्रिय रंगमंच किया है। अलखनन्दन ने 'राजा का स्वांग' नाटक को राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'वोल्गा से गंगा' में दर्ज कहानी, 'सुदास' को इसका आधार बनाया है। यद्यपि बकौल रामेश्वर स्वयं कहते हैं कि उन्होंने यह नाटक सुदास नाम से स्वयं लिखना चाहा था लेकिन लिखा अलखनन्दन ने ही। यह कहानी कुरु—पंचाल महाजनपद से सम्बद्ध होने के साथ ही साथ वैदिक आर्ययुग के केन्द्र में रची गयी है। इस नाटक के माध्यम से अलखनन्दन ने गणतंत्र-राजतंत्र के द्वंद्व को बखूबी कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। अलखनन्दन की सहानुभूति के केंद्र में निम्नमध्यवर्गीय लोग, दलित और आदिवासी समाज रहा है। अलखनन्दन इस नाटक के माध्यम से गहरे तक जाकर सामाजिक रूढ़ियों सामंती शक्तियों से टकराते हैं। इस शोधालेख के माध्यम से आप सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ के दर्शन करेंगे साथ ही साथ इस नाटक के लेखक से परिचय हो सकेंगे। इस नाटक की पांडुलिपि मेरे पास है। नाटक का मंचन अनेक स्थानों पर हो चुका है। इसकी प्रस्तुती की एक झलक आपको मध्यप्रदेश नाट्यविद्यालय के आनंद मिश्रा यूट्यूब चौनल से मिल जाएगी। नाटक में श्रमिक ग्रामीण और किसान मौजूद हैं। एक तरफ राजा है तो दूसरी तरफ प्रजा है। इस शोधालेख में हैदराबाद विश्वविद्यालय के शोधार्थी चन्द्र पाल अनेक दृष्टिकोण से इस पर चिंतन विश्लेषण प्रस्तुत करेंगे तथा कुछ विद्वानों की इसमें टिप्पणियां रहेंगी और साथ ही साथ मूल नाटक से चुनिंदा संवाद और वोल्गा से गंगा से कुछ उद्धरण रहेंगे।

अलखनन्दन

अलखनंदन का जन्म ग्राम कल्याणपुरए जिला भोजपुर बिहार में पचास के दशक में हुआ था। आपके पिता ऑर्डिनेंस विभाग जबलपुर में कार्यरत थे। अलखनन्दन बहुमुखी प्रतिभा और बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। अतः आप भी बहुत बचपन में ही जबलपुर आ गए थे। लेकिन आजीवन अपने गांव और राज्य के बारे में सोचते रहे। उनकी कविताओं में यह दर्द मुखर अभिव्यक्ति पता है। अतः आपके जीवन पर भोजपुर और बुंदेलखंड तथा छत्तीसगढ़ के जीवन की जीवंतता, जीवटता, जिजीविषा और कर्मठता की छाप स्पष्ट देखी जा सकती है। अलखनन्दन को फुटबॉल खेलने का बहुत शौक था। आपने स्वाध्याय और गहन परिश्रम उपरांत ही अपने को एक सफल रंगनिर्देशक और नाटककार में तब्दील किया था। बिहार-बुंदेलखंड, छत्तीसगढ़ की संस्कृति और परंपरा, बुंदेलखंड का लोकजीवन जैसे उनमें एकाकार हो गया है। वह बहुत ही अनुशासन प्रिय व्यक्ति रहे। अलखनन्दन की

हिंदी विभाग ए हैदराबाद विश्वविद्यालय

संपूर्ण शिक्षा दीक्षा जबलपुर में ही सम्पन्न हुई है। अलखनन्दन मूलतः तो कवि चरित्र हैं। अलखनन्दन काफी अर्से तक छत्तीसगढ़ में भी रहे। अर्थात उनके व्यक्तित्व में कोई कहना चाहे तो कह सकता है कि उनका एक छत्तीसगढ़ी अंदाज भी था। अलखनन्दन ने शुरुआत पेशेवर तौर पर बतौर पत्रकार छत्तीसगढ़ से की थी। उनदिनों छत्तीसगढ़ मध्यप्रदेश प्रदेश का ही हिस्सा हुआ करता था। अलखनन्दन बहुपठित और गहन अध्येता के रूप में हमारे सामने आते हैं। अलखनन्दन ने जो भी अर्जित किया है वह उन्हें विरासत में तो कतई नहीं मिला। अलखनन्दन ने एक बहुआयामी व्यक्तित्व विकसित किया है। वह हमारे समक्ष कई रूपों में आते हैं मसलन कवि, पत्रकार, अभिनेता, नाट्य निर्देशक, नाटककार तथा ऑर्डिनेंस कर्मचारी इत्यादि। अलखनन्दन की रचनात्मक यात्रा लगभग चार दशकों तक बिखरी पड़ी है। इसको अध्ययन की सुविधा के लिए मौटे तौर पर तीन भागों में बांटा जा सकता है यथा जबलपुर का रंगमंच, भारत भवन रंगमंडल और ब व कारंत के साथ का रंगकर्म तथा नटबुन्देले के नाट्य समूह के बैनर तले उनका स्वतंत्र रंगमंच। कविताएं भी लिखते रहे हाँ कम जरूर हो गईं थीं व्यस्तताओं के चलते। जानकार बताते हैं कि अलखनन्दन के पूर्व जबलपुर में जो रंगनाट्य था वो बहुत परंपरागामी, महिमामंडन से ग्रसित, पौराणिक किस्म का तथा जनसरोकारों से कटा हुआ था। अलखनन्दन पहले व्यक्ति जबलपुर में हुए जिन्होंने हरिशंकर परसाई की सांस्कृतिक संस्था 'विवेचना' के तहत नाटक को बड़े पैमाने पर जनसरोकारों और प्रतिरोध की परंपरा से जोड़ा। अलखनन्दन का उठना बैठना भारत और पाश्चात्य के तमाम नामीग्रामी, बहुभाषी कवियों और रंगनिर्देशकों और साहित्यकारों के बीच था। अलखनन्दन ने जबलपुर बासियों को आधुनिक रंगकर्म के प्रथमतः दर्शन कराए थे। यूँ अलखनन्दन इप्टा से भी कुछ समय के लिए जुड़े रहे हैं। शुरुआती समय में आप लोहिया से प्रभावित रहे हैं। बाद के दिनों में आपको ज्ञानरंजन, हरिशंकर परसाई इत्यादि का भी सानिध्य मिला है। और आप पर वामपंथ की झलक भी देखने को मिलती है। यद्यपि आप समाजवादी थे और आपका समाजवाद मार्क्स उन्मुख समाजवाद था। आपकी निर्भीकता, निडरता सभी को अचम्भित करती है। जो कहते डंके की चोट पर कहते। चुनौतियों से टकराना कोई अलखनन्दन से सीखे। अलखनन्दन रंगप्रसंग और नटरंग जैसी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं। आपने अन्य नाटककारों द्वारा लिखित नाटकों का निर्देशन भी किया है

सामाजिक-सांस्कृतिक नाटकीयता का राहुल सांकृत्यायन पाठ

एक उद्धरण से अपनी बात शुरू करूं तो आपको एक झलक अवश्य ही सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की मिल जाएगी। बसंत समाप्त हो रहा था। चनाव (चंद्रभागा) की कछार में दूर तक पके गेंहुओं के सुनहले पौधे खड़े हवा के झोकों से लहरा रहे थे, जिनमें जहाँ तहाँ स्त्री-पुरुष गीत गाते खेत काटने में लगे हुए थे। कटे खेतों में उगी घास चरने के लिए बहुत-सी बछेड़ों वाली घोड़ियाँ छोड़ी हुई थीं। धूप में एक पान्थ आगे की ओर अपने भूरे केशों के जूट को दिखलाते हुए सिर में फटे कपड़ों की उष्णीष (पगड़ी) बांधे, शरीर पर एक पुरानी चादर लपेटे, घुटनों तक की धोती (अन्तरवासक), हाथ में लाठी लिए मन्द गति से चला जा रहा था। प्यास के मारे उसका तालू सूख रहा था। पथिक

ने हिम्मत बाँधी थी अगले गाँव में पहुंचने की (किन्तु मार्ग की बगल एक कच्चे कुएँ तथा छोटे से शमी वृक्ष को देखकर उसकी हिम्मत टूट गई।)1

शक्तिशाली वर्ग आपस में केवल सत्ता सुख के लिए लड़ रहे हैं। पूरे देश की अमूमन यही स्थिति है। सब एक से बढ़कर एक जनता के साथ खड़े हैं। कोई साम्प्रदायिक ढंग से लूटने में लगा है तो कोई नफरत की धार तेज किये बैठा है। कोई किसान आदिवासी दलित की लड़ाई लड़के सत्ता हथिया लेना चाहता है। लेकिन सामूहिकता सामुदायिकता में भरोसा नहीं रख रहा है। आपसी भाईचारा कम होता जा रहा है। वैमनस्यता और सबक सिखाने की राजनीति जोर मार रही है। कोई सबको साथ लेकर चलने को तैयार नहीं है। ''अभी राजा और पुरोहित में सिंहासन-वेदी और यज्ञ-वेदी का ही अंतर है।[3] कैसी विडम्बना है। जो जन (पिता) था, उसे ही आज प्रजा (पुत्र) कहा जाता है। आर्य! यह क्या सरासर वंचना नहीं है?''

सामाजिक-सांस्कृतिक नाटकीयता और 'राजा का स्वांग का' अलखनंदनीय पाठ

जैसे कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि यह नाटक अलखनन्दन ने बुन्देली लोकनाट्य शैली स्वांग में लिखा है तथा अनेक इसे मंचित भी किया है। अलखनन्दन का यह नाटक थोड़ा हटकर है। इस नाटक के बुन्देली लोकगीत और गीत स्वयं अलखनन्दन ने अपनी कलम से ही लिखे हैं। अलखनन्दन राहुल सांकृत्यायन की कहानी का आधार जरूर लिया है लेकिन अपनी पर्याप्त सृजनात्मक क्षमता के साथ पूर्ण कल्पना के साथ। इसके बहुत सारे पात्र उन्होंने खुद गढ़े हैं मसलन सूत्रधार, राजा उठापटक, गुप्तचर नायक, जियावन, सुमिरन, कवि, अर्दली, फरियादी, मंत्री, गुप्तचर, कौआ, महामंत्री इत्यादि। इसके साथ साथ राहुल सांकृत्यायन की कहानी के प्रमुख पात्रों का नामकरण जैसे जेता यहाँ जेठा हो गया है, सुदास यहाँ आकर समीर हो गया है और अपाला यहाँ पर पूर्वा हो जाती है तथा दिवोदास यहाँ राजा ईशान हो जाता है। नगर का नाम अलखजी ने मरुतनगर रखा है। यानी हम देख सकते हैं पुरानी कहानी को किस प्रकार नवीन बनाकर पेश किया जा सकता है। अलखनन्दन लोककलाओं का आधुनिक रूपांतरण करने में माहिर थे। खैर यहाँ पर बात होगी नाटक में उपस्थित निम्नमध्यवर्गीय पात्रों की सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों की।

जैसा कि राजतंत्र में होता है कि राजा का बेटा ही राजा होगा सब समीर पर दबाव बना रहे हैं राजा बनने जो क्या आज भी ऐसा नहीं हो रहा मुख्यमंत्री अपने परिवार जनों को आगे बढ़ाते काबिलियत गई तेल लेने। किसी के घर परिवार से कोई बड़े ओहदे पर पहुँचा और सिफारिशों के एक दौर शुरू हो जाता है और भाई भतीजाबाद का धंधा शुरू यही है सामाजिक वास्तविकता। तथाकथित उच्च सामंती परिवेश की एक झलक देखिये जो स्त्रियों को भोग के अलावा कुछ भी नहीं समझते कहने को इस नाटक के माध्यम से अलखनन्दन बहुत कुछ कह गए हैं। लेकिन शब्दों की एक सीमा और मर्यादा है। विस्तारभय से बचने के लिए हमने कुछ चुनिंदा उदाहरण आपके समक्ष रखे हैं आशा है आपको इस विषय में सोचने के लिए पर्याप्त सामग्री मिल गई होगी।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. सुदास, वोल्गा से गंगा पृ 89 राहुल सांकृत्यायन, किताब महल प्रकाशन, प्रयाग
2. राजा का स्वांग पृ. 10-11 अलखनन्दन
3. वही पृ 32-33

Faculty Members of Department of English Dr. Babasaheb Ambedkar Marathwada University, Aurangabad

In collaboration with

Milind College of Arts, Aurangabad, Lokseva Education Society's Arts & Science College, Aurangabad,

Dr. Rafiq Zakaria Centre for Higher Learning & dvanced Research, Aurangabad &

Prof. Dr. Uttam Ambhore Felicitation Committee, Aurangabad

organized a two-day

International Interdisciplinary Multilingual Conference on

Rereading Marginality: History, Politics, Economics, Literature and Culture

(English | Hindi | Marathi | Urdu)

Certificate

This is to certify that Prof./ Dr./ Mr. / Ms. Chandra Pal

of Hindi Department, University of Hyderabad.

participated in the Two Day International Interdisciplinary Multilingual Conference held on 20th and 21st January 2023,

He / She presented a paper entitled सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकता की पुनर्खोज लोकरात्रीविरुद्ध नाटक में राजा का स्वांग.

Dr. Mustajeeb Khan	Dr. Vaishali Pradhan	Dr. Arif Pathan	Dr. Liyakat Shaikh	Dr. Shaikh Parvez Aslam
Professor, Dept. of English, Dr. BAMU, Aurangabad	Principal,Milind College of Arts, Aurangabad	Director, Dr. Rafiq Zakaria Centre for H. L. & Advanced Research, Aurangabad	Principal, Lokseva Education Society's Arts & Science College, Aurangabad	Convener, Lokseva Education Society's Arts & Science College, Aurangabad

हैदराबाद विश्वविद्यालय

दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केन्द्र तथा हिन्दी विभाग

No. .....

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **चन्द्र पाल** ने दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केन्द्र तथा हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद और 'नागफनी' पत्रिका के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 16 एवं 17 मार्च, 2023 को **'हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श: विविध आयाम'** विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में भाग लिया और **"नाटक 'जगर मगर अँधेर नगर' में अभिव्यक्त सामाजिक ताना बाना"** विषय पर प्रपत्र प्रस्तुत किया।

प्रो. वी. कृष्ण
अध्यक्ष, मानविकी संकाय

प्रो. विष्णु सरवदे
संगोष्ठी संयोजक एवं अध्यक्ष
दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केन्द्र

कवि, नाटककार, रंग-निर्देशक अलखनन्दन

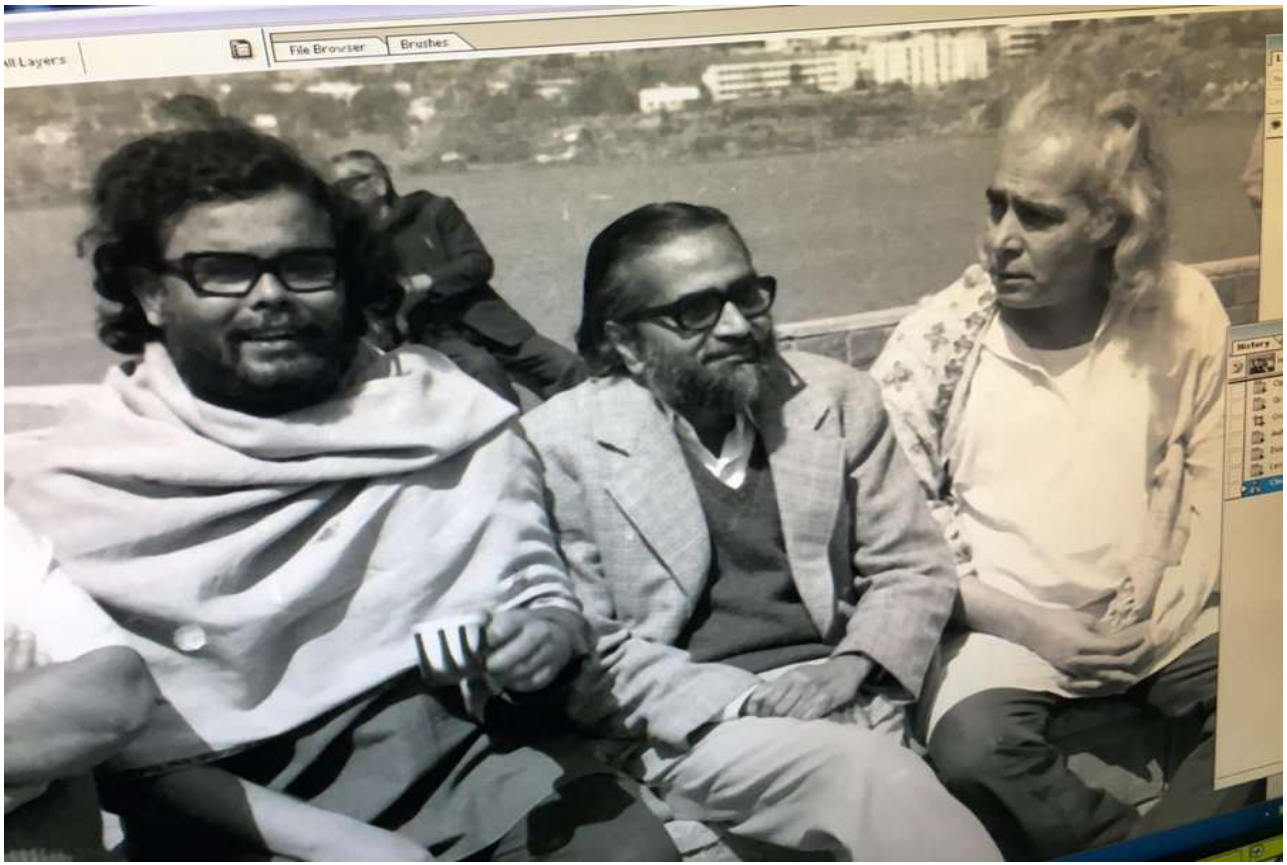

मशहूर शायर फजल ताबिश के साथ अलखनन्दन

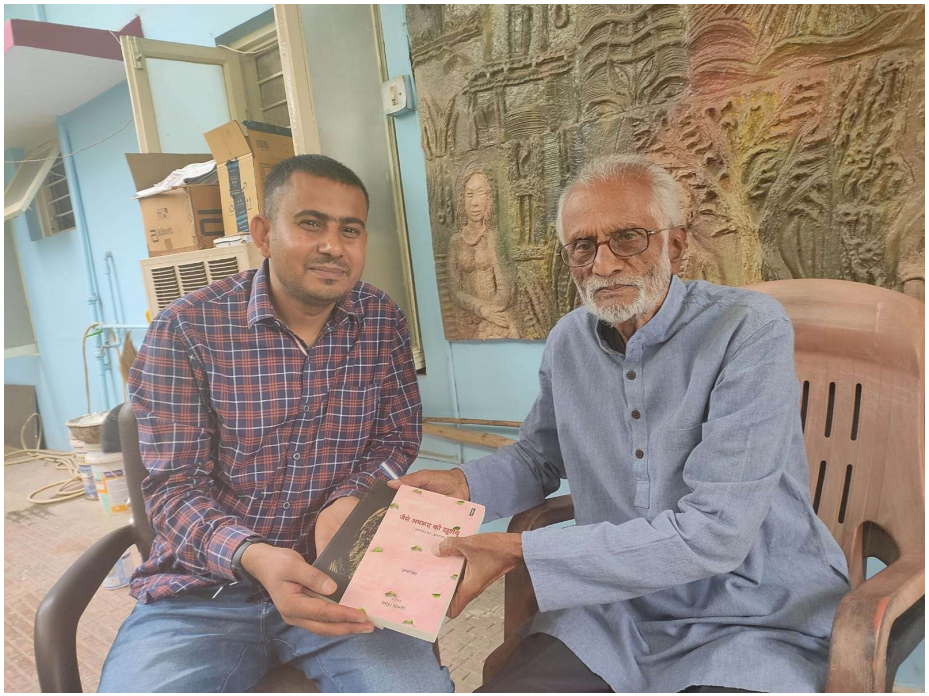

साक्षात्कार के दौरान ज्ञानरंजन के साथ शोधार्थी चन्द्र पाल

साक्षात्कार के दौरान देवेन्द्र राज अंकुर के साथ शोधार्थी चन्द्र पाल

बी वी कारन्त के साथ अलखनन्दन स्वर्णा नामदेव के सौजन्य से

साक्षात्कार के दौरान महेश आनंद के साथ शोधार्थी चन्द्र पाल

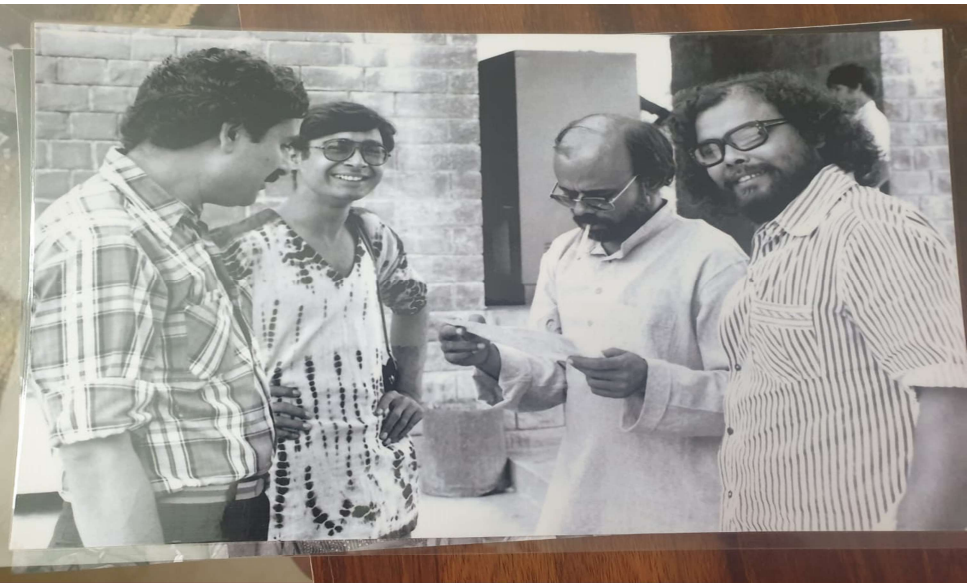

रामेश्वर प्रेम के साथ अलखनन्दन जयंत देशमुख के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

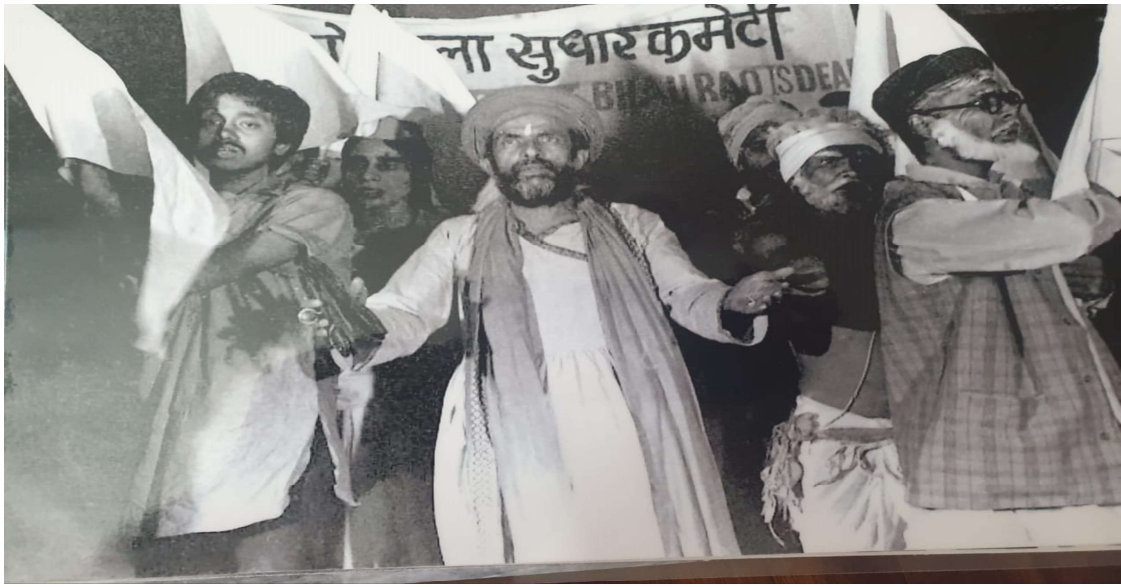

नाटक महानिर्वाण में भाऊराव की भूमिका में बीवी कारन्त जयंत देशमुख के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

‘भए प्रकट कृपाला दीन दयाला’ नाटक से जयंत देशमुख के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

‘क्लर्क की मौत’ नाटक से जयंत देशमुख के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

‘चंदा बेड़नी’ नाटक से संगीत नाटक अकादमी के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

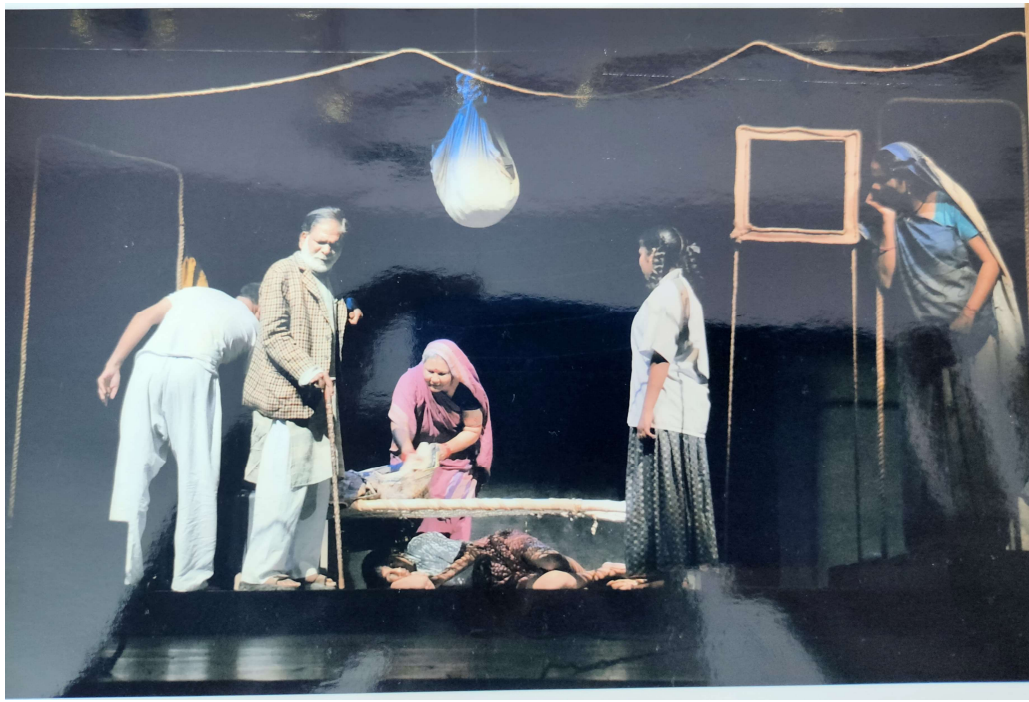

‘चारपाई’ नाटक से संगीत नाटक अकादमी के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

‘अंडोरा’ नाटक से महेश आनंद के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

मोटेराम का सत्याग्रह नाटक से महेश आनंद के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

‘सुपनवा के सपना’ नाटक से महेश आनंद के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

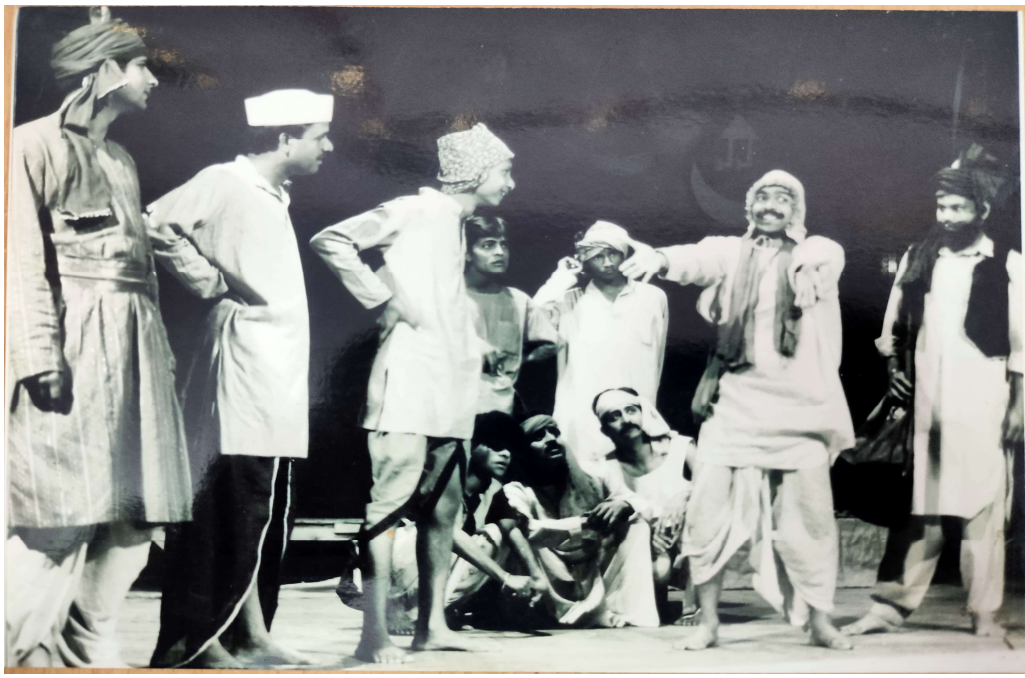

‘जगर मगर अंधेर नगर’ नाटक से महेश आनंद के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

‘भगवद अज्जुकम’ नाटक से महेश आनंद के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

‘स्वांग शकुंतला’ नाटक से महेश आनंद के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन

'ताम्रपत्र' नाटक से महेश आनंद के सौजन्य से निर्देशन अलखनन्दन